देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115
Feb. 2026
Vol.-23, Issue-2

Impact Factor
8.642

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
#202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

Bohal Shodh Manjusha Feb. 2026 Editor : Dr. Naresh Sihag, Advocate

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 23 I SSUE-2(part-one) (फरवरी 2026) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल
विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं शोध निर्देशक
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर-335001 (राज.)

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

<u>*Disclaimer :*</u>
1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा 'शंकी'
पूर्व शिक्षा अधिकारी,
साहित्यकार,
चरखी दादरी (हरियाणा)

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि.
रोहतक (हरियाणा)

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी
हिन्दी विभाग, त्रिभुवन वि.वि.
काठमाण्डू, नेपाल।

डिल्लीराम शर्मा संग्रौला
विभागीय प्रमुख, संस्कृत, पत्रकारिता, हिंदी
पद्मकन्या बहुमुखी कैंपस, काठमांडू, नेपाल।

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. इस्पाक अली
पूर्व प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास।

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब।

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. शबाना हबीब
गवर्नमेंट कॉलेज फॉर वूमैन
त्रिवन्तपुरम, केरल।

डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत विभाग
हरियाणा सरकार।

प्रो. नरेन्द्र सोनी
सूचना एवं जन सम्पर्क अधिकारी,
हरियाणा सरकार।

पठान चिन्ना जानी
सहायक प्राध्यापक
सी.एच.एस.डी. सेंट थेरेसा
महिला महाविद्यालय (ए)
एलुरु, आंध्र प्रदेश

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. राजकुमारी शर्मा
श्रीराम कॉलेज,
नई दिल्ली।

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

श्री राकेश शंकर भारती
साहित्यकार व अनुवादक,
यूक्रेन।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. शिवकरण निमल
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान
एसपीसी राजकीय महा. भीम, राजस्थान।

डॉ. नीलम आर्या
संस्कृत विभाग
उत्तर प्रदेश।

डॉ. रोहतास
एस.जी.पी.जी.आई.एम.एस.
लखनऊ, उत्तर प्रदेश।

डॉ. वैशाली सिंह
सहायक प्राध्यापक
शिक्षा विभाग, एस.एम.टी. अनार देवी
टी.टी. कॉलेज, बखराना
(कोटपुतली) राजस्थान।

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
भारत कला भवन
वाराणसी, उत्तर प्रदेश।

डॉ. रवि सुण्डयाल
हॉयर एजुकेशन डिपार्टमेंट
जम्मू कश्मीर।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य, कैलिफोर्निया।

डॉ. रेखा रानी
गवर्नमेंट रणबीर कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

शोध-पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतू बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंध, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रीत इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है। पत्रिका का वार्षिक शुल्क 1100 रु. है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव-10, कृतिदेव-21 में व अंग्रेजी के **Arial, Times New Roman** में पेज मेकर या माइक्रोसोफ्ट वर्ल्ड में हमारी **Email ID : grsbohal@gmail.com** पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्रा आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

<u>नोट :-</u> उर्दू, पंजाबी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज **7x9.5** पर टाईप कराकर **JPG** या **PDF** फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।

हमारी पत्रिका में शोध पत्र लेखक के फोटो सहित प्रकाशित किये जाते हैं। इसलिए आप अपने शोध पत्र के साथ पासपोर्ट साईज फोटोग्राफ, सम्पर्क सूत्र : टेलीफोन, मोबाईल नं., ई-मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।

★ शोध पत्र 2000-2500 शब्दों (4-6 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।

★ पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।

★ शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। पत्रिका में शोध आलेख प्रकाशन के लिए भेजने से पहले सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना लेखक का दायित्व है। प्रत्येक विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी (हरियाणा) होगा।

★ सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार समिति/सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

नोट :

सहयोग/सदस्यता राशि 1100/- रू. का ड्राफ्ट/चैक/आई.पी.ओ. 'गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी' के नाम भेजें तथा ऑनलाईन बैंक में सहयोग जमा राशि की रसीद की फोटोप्रति अपने आलेख के साथ हमें मेल कर सूचित करने का कष्ट करें ताकि समय पर रसीद भेजी जा सके। ऑनलाईन सहयोग राशि के साथ 50/- रू. अतिरिक्त अवश्य जमा करवायें। प्रकाशन सहयोग शुल्क वापिस देय नहीं।

बैंक का नाम	:	**पंजाब नैशनल बैंक, हालु बाजार, भिवानी (हरियाणा)**
खाता धारक का नाम	:	**गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी**
बैंक खाता संख्या	:	**1182000109078119**
IFSC Code	:	PUNB0118200
MICR CODE	:	127024003

अनुक्रमणिका-फरवरी 2026

क्र०	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	संपादकीय	डॉ० नरेश सिहाग	10-10
2.	भारतीय ज्ञान परंपरा में नाथ एवं अघोर दर्शन में चिकित्सा पद्धति का अध्ययन: पूर्वांचल के विशेष संदर्भ में	डॉ० अरुण कुमार सिंह	11-14
3.	दो हज़ार दस के बाद के महिला लेखकों की कहानियों में रचनात्मक लेखन और प्रवृत्तियाँ	अंजना एम	15-18
4.	The Influence of Language on Memory and Identity: Exploring Bilingualism in Diasporic Communities in Uttarakhand.	Ravi Shekhar, Rakhi Baliyan, Kuldeep Singh Tandwal	19-24
5.	श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों मे राजनितिक चेतना	देशराज	25-29
6.	स्मार्ट क्लास की वर्तमान शिक्षण में उपयोगिता एवं महत्व	राजेन्द्र सिंह झाला, डा० प्रियांशी पारेख	30-34
7.	राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और हिंदी भाषा की उपयोगिता	अतिशय वर्मा, डॉ. अशोक कुमार	35-39
8.	संत कबीर के साहित्य में सन्निहित: आदर्श राष्ट्रीयता का दर्पण	अभय कुमार 'अमर'	40-45
9.	सामाजिक चेतना के संदर्भ में पंडित दीन दयाल उपाध्याय और अटल बिहारी बाजपेयी के साहित्य की प्रासंगिकता	रितु शर्मा, प्रोफेसर इंद्र सिंह ठाकुर	46-50
10.	शारीरिक शिक्षा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एक नजर में	मदन मोहन मिश्रा	51-55
11.	आरण्यक ग्रन्थों में प्राप्त यज्ञ विधान एवं उसका मीमांसा दर्शन पर प्रभाव	अभिषेक बडगोत्रा, डॉ० विद्याधर सिंह	56-58
12.	विद्यालयों में बढ़ता शैक्षणिक दबाव : कारण, प्रभाव एवं समाधान	डॉ० सुकन्या चल्ला	59-62
13.	महाकवि तोषनिधि कन्नौजी भाषा के प्रथम कवि : एक अनुशीलन	डॉ रघुनंदन प्रसाद दीक्षित (प्रखर)	63-65
14.	ਕੈਨੇਡੀਅਨ ਨਾਟਕਕਾਰਾਂ ਦੇ ਨਾਟਕਾਂ ਦੇ ਮਰਦ ਪਾਤਰਾਂ ਦਾ	ਪੁਸ਼ਵਿੰਦਰ ਕੌਰ,	66-71

	ਮਨੋਵਿਸ਼ਲੇਸ਼ਣਾਤਮਕ ਅਧਿਐਨ (ਕੁਲਵਿੰਦਰ ਖਹਿਰਾ ਅਤੇ ਸੁਰਜੀਤ ਕਲਸੀ ਦੇ ਨਾਟਕ ਦੇ ਸੰਦਰਭ ਵਿਚ)	ਡਾ. ਗੁਰਪ੍ਰੀਤ ਕੌਰ	
15.	**Traditional Knowledge and Geographical Indications: Protecting Heritage and Promoting Sustainability**	**PRIYA SHUKLA**	**72-76**
16.	स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और पौराणिक आख्यान	दीपिका शुक्ला	**77-82**
17.	ਸੁਰਜੀਤ ਪਾਤਰ ਦੀ ਕਵਿਤਾ ਵਿੱਚ ਪੰਜਾਬ ਸੰਕਟ ਦੀ ਪੇਸ਼ਕਾਰੀ	ਜਸਪ੍ਰੀਤ ਕੌਰ	**83-87**
18.	**INFLUENCE OF MUGHAL'S EMPIRE IN KATHAK DANCE**	**Rohit Hazra, Dr. Priyanka Sharma**	**88-97**
19.	**Use of Artificial Intelligence in Electronic Resources Management**	**Dr. Devendra Kumar Sharma**	**98-107**
20.	**Role of Education Empowerment in Promoting Social Stability**	**Dr. Manish Rathore,**	**108-111**
21.	उत्तराधुनिक हिंदी कहानियों चित्रित सहजीवन	डां.श्रीकला .एस .आर	**112-115**
22.	छोटानागपुर के उरांव जनजाति की आर्थिक स्थिति का एक ऐतिहासिक अध्ययन	दुलाल गोप	**116-120**
23.	नीला आकाश में दलित सामाजिक स्थिति	अल्पना गौतम, प्रो० सुषमा गौड़ियाल	**121-123**
24.	हिंदी की चमक-दमक विज्ञापन में	डॉ. हृद्या. एम. पी	**124-126**
25.	भारतीय ज्ञान परंपरा में वसुधैव कुटुंबकम् की अवधारणा	श्री सायसिंग अवास्या	**127-130**
26.	**A Study on Consumer Behavior Towards Quick Commerce Platforms in Surat City**	**RAUT NILESHKUMAR KAILASHBHAI**	**131-138**
27.	श्रीलाल शुक्ल के कथा साहित्य में शैक्षिक स्वार्थ भावना	डॉ० विक्रम सिंह राठौर, नवीन नाथ	**139-143**
28.	शेखावटी नाथ संत श्री बैजनाथकृत गीता-मर्म एवं कर्मयोग की व्याख्या : एक समीक्षात्मक अध्ययन	श्रीमती किरण कुमारी, डॉ. हंसराज चौहान	**144-147**
29.	उच्च माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों में यौगिक एवं ध्यान क्रियाओं का संवेगात्मक विकास पर प्रभाव : एक अध्ययन	डॉ. विष्णु कुमार	**148-152**
30.	महिला नेतृत्व और राजनीति में भागीदारी	गणेश गिरी, डॉ. धीरज सिंह खाती	**153-157**

31.	समकालीन सांस्कृतिक व्यवहार में भारतीय सौंदर्य मूल्यों की प्रासंगिकता	ईश्वरी.ए	158-162
32.	दलित आलोचना का बदलता परिदृश्य	पवन कान्त, डॉ. सुरेश कुमार	163-167
33.	वर्तमान संदर्भों में हिंदी साहित्य में LGBTQ+ विमर्श	जसवीर	168-171
34.	ज्योतिष शास्त्र को आर्यभट्ट का योगदान : एक विश्लेषण	डॉ. ममता स्नेही	172-175
35.	मनीषा कुलश्रेष्ठ के कथा साहित्य में व्यक्त मूल्य विघटन	हिमांशु नागदा, डॉ विजयलक्ष्मी पोद्दार	176-179
36.	भारतीय साहित्य के संवर्द्धन एवं प्रसार में अनुवाद की भूमिका	डॉ. राजेश कुमार	180-185
37.	शिक्षण को प्रभावित करने वाले कारक और आज की शिक्षण पद्धति	Dr. Lathif Ahamed B	186-190
38.	सांस्कृतिक एवं सामाजिक चेतना के प्रसार में अनुवाद की भूमिका	लक्ष्मी कुमारी	191-196
39.	महिला उद्यमिता और विकास का अध्ययन	डॉ० राजीव कुमार सक्सेना	197-200
40.	कवि त्रिविक्रमभट्ट की भाषा शैली	डॉ० नकुल पाण्डेय	201-204
41.	वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ग्रामीण अर्थव्यवस्था के स्वरूप का अध्ययन	परम सिंह बरडे	205-209
42.	Parenting Style As A Predictor Of Child Behaviour	Ankita Verma	210-213
43.	आंचलिक संस्कृति और वाचिक परंपरा : उत्तराखण्ड के कुमाऊँ क्षेत्र के सम्बन्ध में	डॉ. हेमचन्द्र दुबे	214-216
44.	"ऋणम् कृत्वा घृतम् पिबेत् से जीवन्मुक्ति तक: डिजिटल युग में अस्तित्वगत संकट और भारतीय दर्शन का समाधान"	जीतेन्द्र कुमार मीना	217-220
45.	रामवृक्ष बेनीपुरी के रेखाचित्र 'लाल तारा' का 'चयन' की दृष्टि से शैलीवैज्ञानिक विश्लेषण	मधु कुमारी	221-224
46.	"ऑनलाइन शॉपिंग का पारावारिक बजट पर प्रभाव" (एक विश्लेषणात्मक अध्ययन)	डॉ. ज्योति सिंह	225-230
47.	"ऑनलाइन शिक्षा और बाल विकास - एक विश्लेषणात्मक अध्ययन"	डॉ. तृप्ति तिवारी	231-236

48.	भारत में लोकतन्त्र और चुनौतियाँ	डॉ० प्रमोद कुमार यादव	**237-240**
49.	'झारखण्ड के प्राथमिक विद्यालयों में मातृभाषा आधारित शिक्षण का विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं संज्ञानात्मक विकास पर प्रभावात्मक अध्ययन'	मुन्ना राम महतो, डॉ. शिल्पी राज	**241-245**
50.	बृहदारण्यकोपनिषदि प्रथमद्वितीयोऽध्याययोः दार्शनिकचिन्तनम् – एकं सामान्यम् अध्ययनम्	**SHRABANI MANNA**	**246-250**
51.	**A Critical analysis of Nishkarma karma and Arne Naess ´s EcosophyT**	**Anupa Haloi**	**251-253**
52.	प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी के प्रथम कार्यकाल के दौरान भारत-नेपाल सम्बन्ध : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	डॉ० छबिलाल	**254-261**
53.	पारिभाषिक शब्दावली : निर्माण प्रक्रिया व समस्याएँ	विष्णु सिंह जाट	**262-266**
54.	**Role of Non-Government Organisations and Self-Help Groups in Socio-Economic Development of Tribal areas in Rajasthan**	**Deepika Meena**	**267-272**
55.	गाँधीवादी दर्शन और 21 वीं सदी का युद्धोन्माद	डॉ. मो. हेदायतुल्लाह	**273-277**
56.	मरुस्थलीय पर्यावरण के संदर्भ में मारवाड़ की स्थापत्य कला	पुरुषोत्तम	**278-281**
57.	**Inclusive Growth in India: Progress, Challenges, and Future Directions**	**Dr. Yogendra Kumar**	**282-286**

संपादकीय

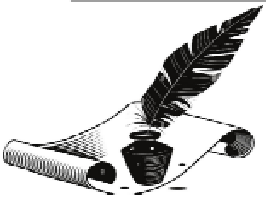

समकालीन शोध चेतना और बोहल शोध मंजूषा

शोध केवल तथ्यों का संकलन नहीं, बल्कि समाज, समय और संवेदना के बीच एक जीवंत संवाद है। **बोहल शोध मंजूषा** का यह फरवरी मासिक अंक इसी संवाद को और अधिक सशक्त बनाते हुए पाठकों एवं शोधार्थियों के समक्ष प्रस्तुत है। यह पत्रिका अपने आरंभ से ही साहित्य, समाज, संस्कृति और समकालीन विमर्श को शोध की दृष्टि से देखने का सतत प्रयास करती रही है, और यह अंक उसी परंपरा की एक सशक्त कड़ी है।

आज का समय तीव्र परिवर्तन का समय है। वैश्वीकरण, तकनीकी विकास, सामाजिक असमानताएँ, सांस्कृतिक संक्रमण और वैचारिक द्वंद्व—ये सभी तत्त्व हमारे साहित्य और शोध को गहराई से प्रभावित कर रहे हैं। ऐसे समय में शोध पत्रिकाओं की भूमिका और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है। **बोहल शोध मंजूषा** केवल लेखन का मंच नहीं, बल्कि विचारों के मंथन और बौद्धिक उत्तरदायित्व का निर्वहन करने वाला एक गंभीर प्रयास है।

फरवरी अंक में संकलित शोध आलेख विविध विषयों को समेटे हुए हैं। इनमें हिंदी साहित्य, लोकसंस्कृति, सामाजिक यथार्थ, स्त्री विमर्श, पर्यावरणीय चिंतन, इतिहासबोध तथा समकालीन समस्याओं पर आधारित अध्ययन शामिल हैं। ये आलेख न केवल अकादमिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं, बल्कि समाज के व्यापक प्रश्नों से भी संवाद करते हैं। शोधार्थियों ने संदर्भों, तर्कों और मौलिक दृष्टिकोण के माध्यम से अपने विषयों को प्रामाणिकता प्रदान की है।

यह कहना अनुचित नहीं होगा कि आज शोध का उद्देश्य केवल डिग्री प्राप्ति तक सीमित नहीं रहना चाहिए। शोध समाज के लिए उपयोगी हो, मानवीय मूल्यों को पुष्ट करे और साहित्य को जीवन से जोड़े—यह अपेक्षा हर गंभीर पाठक की होती है। **बोहल शोध मंजूषा** इस अपेक्षा को समझते हुए ऐसे शोध कार्यों को प्राथमिकता देती है जो संवेदनशील, तथ्यपरक और वैचारिक रूप से सुदृढ़ हों।

यह अंक उन सभी शोधार्थियों और विद्वानों के प्रति आभार व्यक्त करता है, जिन्होंने अपने परिश्रम, समय और ज्ञान से पत्रिका को समृद्ध किया। साथ ही समीक्षकों और संपादकीय सहयोगियों का योगदान भी उल्लेखनीय है, जिनकी सूक्ष्म दृष्टि और मार्गदर्शन से आलेखों की गुणवत्ता सुनिश्चित हो सकी।

अंत में, **बोहल शोध मंजूषा** अपने पाठकों से यह अपेक्षा रखती है कि वे इस शोध यात्रा में सहभागी बनें—पढ़ें, विचार करें और संवाद को आगे बढ़ाएँ। शोध तभी सार्थक है जब वह प्रश्नों को जन्म दे और चेतना को जाग्रत करे। हमें विश्वास है कि फरवरी अंक इस दिशा में एक सकारात्मक और विचारोत्तेजक पहल सिद्ध होगा।

– **संपादक**

बोहल शोध मंजूषा

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 11-14
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

भारतीय ज्ञान परंपरा में नाथ एवं अघोर दर्शन में चिकित्सा पद्धति का अध्ययन: पूर्वांचल के विशेष संदर्भ में

डॉ० अरुण कुमार सिंह
प्रोफेसर
इतिहास विभाग डी ए वी पीजी कॉलेज आजमगढ़

शोध सारांश
भारतीय संस्कृति में अध्यात्म और विज्ञान के मध्य कभी भी स्पष्ट विभाजक रेखा नहीं रही है। यहाँ 'पिंड' (शरीर) को ही 'ब्रह्मांड' की कुंजी माना गया है। इस अवधारणा को धरातल पर उतारने का श्रेय मुख्य रूप से शैव परंपरा से उद्भूत नाथ और अघोर संप्रदायों को जाता है। यह शोध पत्र पूर्वी उत्तर प्रदेश (पूर्वांचल) की पृष्ठभूमि में इन दोनों संप्रदायों द्वारा विकसित चिकित्सा प्रणालियों का समाजशास्त्रीय और वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। जहाँ नाथ संप्रदाय ने हठयोग और रसशास्त्र के माध्यम से शरीर को 'वज्र' बनाकर रोगों को रोकने की पद्धति विकसित की, वहीं अघोर दर्शन ने मानसिक दृढ़ता और लोक-औषधियों के माध्यम से उपचारात्मक विधियों पर जोर दिया। पूर्वांचल, जो गुरु गोरखनाथ और अघोरेश्वर कीिनाराम की कर्मभूमि रहा है, आज भी इन पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों का एक जीवंत साक्षी है। यह अध्ययन यह स्थापित करने का प्रयास करता है कि ये पद्धतियाँ केवल धार्मिक कर्मकांड नहीं, बल्कि एक सुव्यवस्थित 'जीवन विज्ञान' थीं, जिन्होंने आधुनिक चिकित्सा के अभाव में सदियों तक ग्रामीण समाज के स्वास्थ्य की रक्षा की|

शब्द कुंजी: भारतीय ज्ञान परंपरा नाथ अघोर दर्शन चिकित्सा पद्धति भारतीय दर्शन

प्रस्तावना

भारतीय ज्ञान परंपरा का मूल उद्देश्य 'आत्यन्तिक दुख निवृत्ति' रहा है। यह दुख केवल आध्यात्मिक नहीं, बल्कि शारीरिक और मानसिक भी हो सकता है। आयुर्वेद ने जहाँ 'स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणम्' का नारा दिया, वहीं समाज के हाशिए पर रहने वाले योगियों और तपस्वियों ने जंगलों और कंदराओं में रहकर मानव शरीर की क्रिया-प्रणाली पर स्वतंत्र अनुसंधान किए। उत्तर भारत, विशेषकर पूर्वांचल का क्षेत्र (गोरखपुर, वाराणसी, मिर्जापुर, गाजीपुर

आदि), मध्यकाल से ही धार्मिक और दार्शनिक क्रांतियों का केंद्र रहा है। इसी भूमि पर नाथ और अघोर संप्रदायों का पल्लवन हुआ।

सामान्यतः आधुनिक समाज इन संप्रदायों को तंत्र-मंत्र और चमत्कारिक शक्तियों तक सीमित मान लेता है, जो कि एक संकुचित दृष्टिकोण है। यदि हम इनके साहित्य और व्यावहारिक जीवन का सूक्ष्म अवलोकन करें, तो पाते हैं कि इनकी साधना का प्रथम सोपान ही 'काया-शुद्धि' है। एक रोगी शरीर साधना के योग्य नहीं हो सकता, इसलिए इन योगियों ने जड़ी-बूटियों, रसायनों और यौगिक क्रियाओं का ऐसा ताना-बाना बुना, जो कालांतर में लोक-चिकित्सा का आधार बन गया। पूर्वांचल के ग्रामीण अंचलों में आज भी जब एलोपैथी दवाएं बेअसर हो जाती हैं, तो जनमानस एक सहज विश्वास के साथ इन मठों और आश्रमों की शरण लेता है। यह शोध पत्र इन्हीं गुह्य चिकित्सा पद्धतियों के वैज्ञानिक पक्ष को उजागर करने का एक विनम्र प्रयास है।

भारतीय ज्ञान परंपरा और देह-विज्ञान

भारतीय दर्शन में शरीर को नश्वर मानते हुए भी उसे 'धर्मसाधन' कहा गया है। नाथ और अघोर दर्शन इस मामले में वैदिक परंपरा से थोड़ा हटकर हैं क्योंकि इन्होंने शरीर को केवल साधन नहीं, बल्कि 'साध्य' भी माना। इनका उद्देश्य शरीर को इतना परिपक्व और रोगमुक्त बनाना था कि वह काल (मृत्यु) को भी चुनौती दे सके। इसी विचार ने 'सिद्ध चिकित्सा' और 'रसायन शास्त्र' को जन्म दिया। पूर्वांचल की भौगोलिक स्थिति, जहाँ एक ओर विंध्य के जंगल हैं और दूसरी ओर हिमालय की तराई, ने इन साधकों को दुर्लभ वनस्पतियों और खनिजों के प्रयोग की प्रयोगशाला उपलब्ध कराई।

नाथ संप्रदाय, जिसके प्रणेता आदिनाथ शिव माने जाते हैं और जिसका विस्तार गुरु मत्स्येंद्रनाथ और गुरु गोरखनाथ ने किया, मूल रूप से 'योग' पर आधारित है। नाथ योगियों का स्पष्ट मत है कि शरीर में बहने वाली प्राण वायु और त्रिदोष (वात, पित्त, कफ) का असंतुलन ही व्याधि है।

गोरखपुर स्थित गोरखनाथ मंदिर और उसके अधीन चलने वाली परंपराओं का अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि नाथ चिकित्सा के दो प्रमुख स्तंभ हैं— हठयोग और नाड़ी विज्ञान। हठयोग केवल व्यायाम नहीं है, बल्कि यह शरीर के आंतरिक अंगों की मालिश और सफाई की एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। 'हठयोग प्रदीपिका' और 'घेरण्ड संहिता' जैसे ग्रंथों में वर्णित षट्कर्म (नेति, धोति, बस्ती, न्यौली, त्राटक और कपालभांति) वास्तव में शरीर शोधन की प्रक्रियाएं हैं। पूर्वांचल के तराई क्षेत्रों में जहाँ कफ और उदर (पेट) के रोग अधिक होते हैं, वहाँ नाथ योगियों ने धोति और न्यौली क्रियाओं के माध्यम से लोगों को स्वस्थ रहने की कला सिखाई।

इसके अतिरिक्त, नाथ संप्रदाय का सबसे बड़ा योगदान 'रसशास्त्र' में है। इसे हम प्राचीन भारत की केमिस्ट्री कह सकते हैं। नाथ सिद्धों ने पारे और गंधक के शोधन से ऐसी औषधियाँ तैयार कीं जो एंटीबायोटिक की तरह कार्य करती थीं। उन्होंने भस्म बनाने की जो विधियां विकसित कीं, वे आज भी आयुर्वेद का हिस्सा हैं। गुरु गोरखनाथ द्वारा रचित ग्रंथों में कई ऐसे रसायनों का उल्लेख मिलता है जो शरीर की कोशिकाओं को पुनर्जीवित करने की क्षमता रखते थे। पूर्वांचल के गांवों में आज भी 'कानफटा साधुओं' द्वारा दी जाने वाली भभूत या जड़ी-बूटियां इसी प्राचीन ज्ञान का अवशेष हैं।

जहाँ नाथ संप्रदाय ने शरीर क्रिया विज्ञान पर जोर दिया, वहीं अघोर संप्रदाय ने मनोविज्ञान और सामाजिक चिकित्सा पर ध्यान केंद्रित किया। 'अघोर' का शाब्दिक अर्थ है- प्रकाश की ओर ले जाना या जो कठिन और भयानक

न हो। वाराणसी, जो अघोर परंपरा का गढ़ है, वहां बाबा कीनाराम और बाद में अघोरेश्वर भगवान राम ने चिकित्सा को एक नया आयाम दिया।

अघोर चिकित्सा पद्धति का सबसे महत्वपूर्ण पहलू 'कुष्ठ निवारण' है। एक समय जब कुष्ठ को दैवीय प्रकोप माना जाता था और रोगियों को समाज से बाहर निकाल दिया जाता था, तब अघोर साधकों ने उन्हें अपने आश्रमों में शरण दी। वाराणसी का 'क्रीं-कुण्ड' इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। जनश्रुति और अनुभव यह बताते हैं कि इस कुण्ड के जल में स्नान करने और अघोरेश्वर द्वारा बताई गई औषधियों के सेवन से चर्म रोग ठीक हो जाते हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो, अघोरियों ने गंधक, नीम और अन्य कीटाणुनाशक पदार्थों के मिश्रण से ऐसे मरहम और तेल तैयार किए जो त्वचा रोगों में लाभकारी थे।

अघोर दर्शन की चिकित्सा का दूसरा पक्ष 'मनोवैज्ञानिक' है। अघोर मानता है कि भय ही मृत्यु और रोग का कारण है। वे अपनी जीवनशैली (श्मशान साधना आदि) से शिष्यों के मन से भय निकालते हैं। आधुनिक विज्ञान भी मानता है कि तनाव और भय से इम्युनिटी कम होती है। अघोर साधक 'मंत्र चिकित्सा' और 'झाड़-फूंक' का प्रयोग करते हैं। इसे हम 'साउंड थेरेपी' या 'फेथ हीलिंग' कह सकते हैं। जब रोगी को विश्वास हो जाता है कि एक शक्तिशाली साधु उसका उपचार कर रहा है, तो उसके शरीर में सकारात्मक रसायनों का स्राव होता है, जो रोग से लड़ने में मदद करता है। पूर्वांचल के गाजीपुर और चंदौली जैसे पिछड़े क्षेत्रों में, जहाँ मानसिक स्वास्थ्य सेवाएं नगण्य हैं, अघोर पीठ अवसाद और मानसिक विकारों के उपचार केंद्र के रूप में कार्य करते रहे हैं।

पूर्वांचल के जनजीवन में प्रभाव और वर्तमान स्थिति

पूर्वांचल के सामाजिक ताने-बाने से नाथ और अघोर परंपरा को अलग करके नहीं देखा जा सकता। यह क्षेत्र आर्थिक रूप से पिछड़ा रहा है, इसलिए महंगी एलोपैथी चिकित्सा यहाँ के आम आदमी की पहुँच से दूर थी। ऐसे में, गेरुआ वस्त्र धारी नाथ योगी और काले वस्त्र धारी अघोर साधक ही उनके डॉक्टर और मनोवैज्ञानिक थे।

आज भी हम देखते हैं कि पीलिया होने पर लोग अस्पताल जाने से पहले किसी स्थानीय जानकार या मंदिर में जाकर 'माला' या 'जड़ी' लेने को प्राथमिकता देते हैं। हड्डी टूटने पर आज भी गांवों में देसी लेप और बाँस की खपच्चियों का प्रयोग होता है, जो नाथ परंपरा की ही देन है। वाराणसी में अघोर पीठ ट्रस्ट द्वारा संचालित 'कुष्ठ सेवा आश्रम' ने हज़ारों रोगियों को ठीक करके समाज की मुख्यधारा में जोड़ा है। यह इस बात का प्रमाण है कि उनकी चिकित्सा पद्धति केवल अंधविश्वास नहीं, बल्कि परिणाम देने वाली थी।

हालाँकि, यह स्वीकार करना आवश्यक है कि समय के साथ इस ज्ञान परंपरा में मिलावट आई है। कुछ ढोंगी बाबाओं ने इस पवित्र ज्ञान को अंधविश्वास और ठगी का जरिया बना लिया, जिससे इस प्राचीन विज्ञान की साख को बट्टा लगा। फिर भी, जो मूल परंपराएं और अखाड़े हैं, वे आज भी निस्वार्थ भाव से सेवा कर रहे हैं।

तुलनात्मक विश्लेषण

नाथ और अघोर, दोनों ही शैव परंपरा के अंग हैं, किन्तु उनकी चिकित्सा विधियों में सूक्ष्म अंतर है। नाथ संप्रदाय 'हट' (बलपूर्वक) शरीर को साधने की बात करता है। उनकी विधियां जटिल और अनुशासनात्मक हैं— जैसे कठिन आसन और प्राणायाम। यह मुख्य रूप से 'निवारक' है— अर्थात शरीर को इतना मजबूत बनाओ कि रोग आए ही नहीं।

इसके विपरीत, अघोर संप्रदाय अधिक 'समावेशी' है। वे रोगी की दिनचर्या बदलने की जगह, उसकी मानसिकता बदलने पर जोर देते हैं। अघोर चिकित्सा में 'औषधि' से ज्यादा 'सांत्वना' और 'विश्वास' का महत्व है।

अघोरियों की चिकित्सा पद्धति में 'वाम मार्ग' के तत्व भी मिलते हैं, जहाँ वे उन वस्तुओं का भी प्रयोग औषधि के रूप में कर सकते हैं जिन्हें समाज हेय मानता है (जैसे मदिरा का शोधित प्रयोग या श्मशान की भस्म)। पूर्वांचल में नाथ पंथ का प्रभाव सामान्य गृहस्थों पर योग और आचार-विचार के रूप में अधिक है, जबकि अघोर पंथ का प्रभाव असाध्य रोगों और संकट के समय अंतिम विकल्प के रूप में देखा जाता है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में नाथ और अघोर दर्शन ने चिकित्सा के क्षेत्र में एक समानांतर और प्रभावी व्यवस्था खड़ी की थी। पूर्वांचल के संदर्भ में यह व्यवस्था केवल ऐतिहासिक तथ्य नहीं, बल्कि एक जीवंत वास्तविकता है। इन संप्रदायों ने सिखाया कि स्वास्थ्य केवल शरीर का विषय नहीं है, बल्कि यह मन, आत्मा और पर्यावरण के संतुलन का नाम है।

हठयोग द्वारा शरीर की आंतरिक शुद्धि, रसशास्त्र द्वारा औषधीय निर्माण, और अघोर दर्शन द्वारा मानसिक सबलीकरण— ये सब मिलकर एक 'समग्र चिकित्सा पद्धति' का निर्माण करते हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान पूर्वाग्रह त्याग कर इन प्राचीन पद्धतियों का शोधपरक अध्ययन करे। यदि हम नाथ योगियों के 'नाड़ी विज्ञान' और अघोरियों की 'वनस्पति चिकित्सा' को आधुनिक तकनीक के साथ जोड़ सकें, तो यह न केवल पूर्वांचल बल्कि संपूर्ण मानवता के लिए कल्याणकारी सिद्ध होगा। यह शोध पत्र यह आह्वान करता है कि हम अपनी जड़ों की ओर लौटें, लेकिन अंधविश्वास के साथ नहीं, बल्कि वैज्ञानिक अन्वेषण की दृष्टि के साथ।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. द्विवेदी, हजारी प्रसाद. (1950). *नाथ संप्रदाय*. वाराणसी: लोकभारती प्रकाशन.
2. सिंह, डॉ. रामजी. *भारतीय दर्शन और आयुर्वेद*. पटना: बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी.
3. बड़थ्वाल, पीताम्बर दत्त. (सं.). *गोरखबानी*. प्रयाग: हिंदी साहित्य सम्मेलन.
4. सिंह, अवधेश. (1998). *अघोर परंपरा: समाज और संस्कृति*. वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन.
5. मैकडोनल, कीथ. *अघोर मेडिसिन एंड हीलिंग*.
6. *कल्याण (आरोग्य अंक)*, गीता प्रेस, गोरखपुर के विभिन्न संस्करण.
7. ब्रिग्स, जी.डब्ल्यू. (1938). *गोरखनाथ एंड द कनफटा योगीज*. कोलकाता.
8. क्षेत्रीय अध्ययन: वाराणसी स्थित क्रीं-कुण्ड और गोरखपुर मंदिर में किए गए व्यक्तिगत अवलोकन पर आधारित.

arunnsingh99@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 15-18
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

दो हज़ार दस के बाद के महिला लेखकों की कहानियों में रचनात्मक लेखन और प्रवृत्तियाँ

अंजना एम
शोधार्थी,
हिंदी विभाग, कार्यवट्टम कैंपस केरल विश्वविद्यालय, तिरुवनंतपुरम

सार

दो हज़ार दस के बाद हिंदी कहानी साहित्य में महिला लेखन ने रचनात्मकता, संवेदनशीलता और सामाजिक दृष्टि के स्तर पर एक नया और व्यापक रूप ग्रहण किया है। इस कालखंड की महिला लेखकों की कहानियाँ केवल स्त्री-जीवन की समस्याओं तक सीमित न रहकर समाज के उन सभी वर्गों को स्वर प्रदान करती हैं, जो हाशिए पर स्थित हैं—जैसे वृद्ध, दलित, आदिवासी, दिव्यांग तथा आर्थिक और सामाजिक रूप से वंचित समुदाय। दलित, आदिवासी, मध्यवर्ग, वृद्ध जन और दिव्यांग जन जैसे विषयों को भी करुणा या सहानुभूति तक सीमित न रखकर आत्मसम्मान, अकेलेपन, उपेक्षा और सामाजिक असंवेदनशीलता के संदर्भ में रेखांकित किया गया है। इन कहानियों में बदलती परिस्थितियाँ—जैसे बाज़ारीकरण, उपभोक्तावाद, वैश्वीकरण और कॉरपोरेट संस्कृति—व्यक्ति और संबंधों पर गहरा प्रभाव डालती हैं। शिल्प और भाषा के स्तर पर भी 2010 के बाद की महिला कहानियाँ प्रयोगधर्मी, अनुभव-प्रधान और सहज अभिव्यक्ति से युक्त हैं।

बीज शब्द

रचनात्मक, दो हज़ार दस, महिला लेखन, कहानी

"रचनात्मक लेखन कोई भी लेखन है जो साहित्य के सामान्य पेशेवर, पत्रकारिता, अकादमिक या तकनीकी रूपों की सीमाओं से बाहर जाता है, जिसे आमतौर पर कथा शिल्प, चरित्र विकास और साहित्यिक ट्रॉप्स के उपयोग या कविता की विभिन्न परंपराओं के साथ ज़ोर देकर पहचाना जाता है। परिभाषा की ढील के कारण फीचर कहानियों जैसे लेखन को रचनात्मक लेखन माना जाना संभव है।"[1] इसमें काल्पनिक (फिक्शन) और गैर-काल्पनिक (नॉन-फिक्शन) दोनों प्रकार की रचनाओं का समावेश किया जाता है।

रचनात्मक लेखन को तकनीकी रूप से मौलिक रचना का कोई भी लेखन माना जा सकता है। इस अर्थ में रचनात्मक लेखन पारंपरिक रूप से साहित्य कहे जाने वाले साहित्य के लिए एक अधिक समकालीन और प्रक्रिया-उन्मुख नाम है, जिसमें इसकी शैलियों की विविधता भी शामिल है। "कोई भी रचना अभिव्यक्ति की अनिवार्यता से उपजती है। रचनाकार जीवन में प्राप्त अपने अनुभवों को रचना में उतारता है। 'आत्मविस्तार की इच्छा' में रचना की सामर्थ्य निहित है। 'अपनी अनुभूतियों और अनुभवों को दूसरों से बाँटने की इच्छा' किसी रचना की प्रबल प्रेरक शक्ति है। समाज से जुड़ने में इस अभिव्यक्ति की सार्थकता है। रचना अपने रचनाकार के सीमित 'मैं' को सामूहिक अस्तित्व से जोड़ती है। इसलिए उसका लक्ष्य समाज ही है। इस अर्थ में रचना करना सामाजिक गतिविधि है। सामाजिक कार्रवाई है।"[2] रचनात्मकता का एक अन्य महत्त्वपूर्ण पक्ष है—कथानक की संरचना में प्रयोगधर्मिता। इस दौर की महिला कथाकार पारंपरिक आरंभ–मध्य–अंत की रैखिक संरचना से हटकर स्मृति, फ्लैशबैक, अंतःसंवाद और प्रतीकात्मकता का सहारा लेती हैं।

चौथी लहर नारीवाद एक नारीवादी आंदोलन है जो 2010 के दशक की शुरुआत में शुरू हुआ और इसकी विशेषता महिलाओं के सशक्तिकरण, इंटरनेट उपकरणों के प्रयोग और अंतर्संबंध पर ध्यान केंद्रित करना है। चौथी लहर लैंगिक मानदंडों और समाज में महिलाओं के हाशिये पर ध्यान केन्द्रित करके अधिक लैंगिक समानता चाहती है। 2010 के बाद की महिला लेखकों ने अपनी कहानियों में सोशल मीडिया को महत्वपूर्ण स्थान दिया। सोशल मीडिया का सकारात्मक और नकारात्मक पक्ष पर आज की लेखिकाएं अवगत कराती हैं। सोशल मीडिया में महिलाओं के लिए कई चुनौतियां हैं। महिला कहानी लेखिकाओं, खासकर 2010 के बाद की लेखिकाओं ने अपनी कहानियों में महिलाओं के ऑनलाइन यौन उत्पीड़न पर विचार किया गया है। प्रज्ञा की कहानी फिडेलिटी डॉट कोम आदि उदहारण हैं।

उपभोक्तावाद पश्चिमी संस्कृति की एक विचारधारा है। समकालीन समय में उपभोक्तावाद ने मनुष्य को बेवकूफ बनाकर उसे वस्तु में तब्दील कर दिया है। उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण लोग अधिक से अधिक वस्तुओं का उपभोग करना चाहते हैं। आज हम एक ऐसी दुनिया में जी रहे हैं, जहाँ मनुष्य खुद ही एक उत्पाद बन चुका है। अमीर और गरीब दोनों वर्गों में यह प्रवृत्ति आदत बन चुकी है, और उनके लिए वस्तुओं का उपार्जन अब प्रतिष्ठा का आधार बन गया है। उदाहरण के लिए, प्रज्ञा की मन्नत टेलर्स, पिछली गली कहानी में इन पहलुओं को बारीकी से प्रस्तुत किया गया है।

2010 के बाद की महिला लेखकों ने अपनी कहानियों में वृद्धो को स्वतंत्र और आत्मनिर्भर के रूप में भी चित्रित किया है। सामाजिक परिवर्तन और वृद्धावस्था के बीच के संबंध के साथ-साथ सामाजिक मूल्यों वृद्धों के जीवन को किस तरह प्रभावित करते हैं यह भी दिखाई गया है। महिला लेखकों ने महिला वृद्धों के अनुभवों पर विशेष ध्यान दिया है। उनकी कहानियों में हमें वृद्धों के प्रति जो दृष्टिकोण है उसपर पुनर्विचार करने के लिए भी प्रेरित किया गया है। उदाहरण के लिए उर्मिला शिरीष की बांधो न नाव इस ठाँव बंधु की, नाचगान, पत्ते, गीता श्री की बाबूजी का बक्सा, प्रज्ञा की मुखौटे, कृष्णा अग्निहोत्री की संतुष्टि, झुर्रियों की पीड़ा आदि कहानियाँ।

2010 के बाद की महिला लेखकों की कहानियों में सबसे प्रमुख प्रवृत्ति है नवीनता का प्रयोग। प्राचीनकाल से लिखे जा रहे विषयों और शैलियों को आज के समय के धरातल पर रखकर नए तरीके से प्रस्तुत करने की कोशिश की जा रही है। स्त्री को केवल शोषण सहने वाली दिखाने के बजाय, इन लेखिकाओं ने उसे अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाने वाली और नई सोच को स्वीकार करने के लिए प्रेरित करने वाली पात्र के रूप में प्रस्तुत किया है। महिला सशक्तिकरण को बारीकी से उठाकर पाठकों को सोचने पर मजबूर किया गया है। "मैं" शैली और आत्मकथात्मक शैली

के साथ-साथ फ्लैशबैक शैली को भी अधिक प्राथमिकता दी गई है। भाषा का प्रयोग भी अधिक प्रयोगात्मक होता है, जिसमें हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू आदि भाषाओं का मिश्रण किया जाता है और लंबी बातों को मुहावरों और कहावतों के माध्यम से सरल एवं रोचक तरीके से प्रस्तुत किया जाता है। प्रज्ञा की अमीरखान के लमडे, उर्मिला शिरीष की ऐ देश बता तुझे क्या हुआ है, वंदना राग की सिनेमा के बहाने आदि उदाहरण हैं।

दो हज़ार दस के बाद का समय हिंदी कथा साहित्य में विशेष रूप से महिला लेखन के संदर्भ में एक निर्णायक मोड़ के रूप में देखा जा सकता है। इस कालखंड में महिला कथाकारों ने न केवल अपनी संख्या और उपस्थिति बढ़ाई, बल्कि लेखन की वैचारिक दिशा, सामाजिक सरोकारों और रचनात्मक शिल्प में भी उल्लेखनीय परिवर्तन किए। स्त्री लेखन अब केवल लैंगिक असमानता या पारिवारिक उत्पीड़न तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उसने समाज के हाशिए पर खड़े विविध वर्गों—वृद्ध, दलित, आदिवासी, दिव्यांग, आर्थिक रूप से पिछड़े और बाज़ारीकरण से प्रभावित मनुष्यों—के जीवनानुभवों को अपनी कहानियों का केंद्र बनाया। पहले जहाँ स्त्री लेखन को एक सीमित दायरे में देखा जाता था, वहीं अब महिला लेखक समाज के प्रत्येक हाशिए को अपनी संवेदना में शामिल करती हैं। दलित स्त्री, आदिवासी स्त्री, वृद्ध स्त्री या दिव्यांग स्त्री—इन सभी की स्थितियाँ अलग-अलग होते हुए भी सत्ता, व्यवस्था और उपेक्षा के साझा अनुभवों से जुड़ी हैं, और महिला कथाकार इन अंतर्संबंधों को गहरी संवेदनशीलता के साथ उद्घाटित करती हैं। "स्त्री की स्वाधीनता का एक क्षेत्र साहित्य भी है। उसमें वह आत्माभिव्यक्ति के माध्यम से अपनी अस्मिता की पहचान करती है और स्वतंत्रता की व्यंजन भी।"[3]

दलित चेतना 2010 के बाद की महिला कहानियों में एक सशक्त प्रवृत्ति के रूप में उभरती है। दलित जीवन को केवल सहानुभूति के स्तर पर नहीं, बल्कि आत्मानुभूति और यथार्थ की कठोरता के साथ प्रस्तुत किया गया है। महिला कथाकार दलित स्त्री के श्रम, अपमान, चुप्पी और प्रतिरोध को बिना किसी अलंकरण के प्रस्तुत करती हैं।

आदिवासी जीवन और संस्कृति भी 2010 के बाद की महिला कथाओं में विशेष स्थान प्राप्त करती है। आदिवासी समाज के प्रकृति-केन्द्रित जीवन, विस्थापन, जल-जंगल-ज़मीन के संघर्ष और विकास के नाम पर हो रहे शोषण को स्त्री दृष्टि से चित्रित किया गया है। महिला लेखक आदिवासी स्त्री के अनुभवों को केवल पीड़ा के रूप में नहीं, बल्कि उसकी सांस्कृतिक चेतना, सामूहिकता और प्रतिरोध की शक्ति के रूप में प्रस्तुत करती हैं।

दिव्यांगता को लेकर भी 2010 के बाद महिला लेखन में दृष्टिगत परिवर्तन देखा जा सकता है। दिव्यांग पात्रों को दया या करुणा की वस्तु के रूप में प्रस्तुत करने के बजाय उन्हें आत्मसम्मान, इच्छा, प्रेम और संघर्ष से युक्त मनुष्य के रूप में चित्रित किया गया है। महिला कथाकार यह दिखाती हैं कि दिव्यांगता व्यक्ति की नहीं, बल्कि समाज की समस्या है, जो समावेशी संरचना बनाने में असफल रहता है। परिस्थितियों का दबाव और व्यक्ति की असहायता 2010 के बाद की महिला कहानियों का एक केंद्रीय सरोकार है। आर्थिक तंगी, बेरोज़गारी, विस्थापन, महामारी, पारिवारिक जिम्मेदारियाँ और सामाजिक अपेक्षाएँ—ये सभी परिस्थितियाँ व्यक्ति के निर्णयों और जीवन की दिशा को प्रभावित करती हैं।

शिल्प और भाषा के स्तर पर 2010 के बाद की महिला कहानियों में उल्लेखनीय प्रयोगशीलता दिखाई देती है। कथानक रैखिक न होकर स्मृति, अनुभूति और आंतरिक संवाद के माध्यम से विकसित होता है। भाषा अधिक सजीव, अनुभवजन्य और संवादात्मक हो गई है। लोकभाषा, क्षेत्रीय शब्दावली और स्त्री-जीवन की सहज अभिव्यक्तियाँ कथा को प्रामाणिक बनाती हैं।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि दो हज़ार दस के बाद की महिला लेखकों की कहानियाँ हिंदी साहित्य में सामाजिक संवेदना, रचनात्मकता और वैचारिक विस्तार का सशक्त उदाहरण हैं। वृद्ध, दलित, आदिवासी, दिव्यांग, स्त्री और बाज़ारीकरण से प्रभावित मनुष्यों के अनुभवों को समेटते हुए यह लेखन न केवल स्त्री विमर्श को व्यापक बनाता है, बल्कि समकालीन समाज की जटिल सच्चाइयों को भी उद्घाटित करता है। इस प्रकार समकालीन महिला कथाकार हिंदी कथा साहित्य को अधिक मानवीय, समावेशी और यथार्थपरक दिशा प्रदान कर रही हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. रचनात्मक लेखन-विकिपीडिया
2. रचनात्मक लेखन- संपादक रमेश गौतम, माधुरी सुबोध, राजेन्द्र गौतम, प्रभात रंजन -भारतीय ज्ञानपीठ, लोदी रोड, नई दिल्ली 2008- पृष्ठ संख्या 13
3. भारतीय समाज में प्रतिरोध की परंपरा-मेनेजर पाण्डेय – वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,2013 पृष्ठ संख्या 131

anjanaakm12@gmail.com
9048668187

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 19-24
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

The Influence of Language on Memory and Identity: Exploring Bilingualism in Diasporic Communities in Uttarakhand.

Ravi Shekhar
Department of Zoology,
Dhanauri (P.G.) College, Dhanauri, Haridwar

Rakhi Baliyan
Department of Zoology,
Dhanauri (P.G.) College, Dhanauri, Haridwar

Kuldeep Singh Tandwal
Department of Education,
Harsh Vidya Mandir (P.G.) College, Raisi, Haridwar

Abstract
This study explores how bilingualism shapes memory recall and identity formation in Uttarakhand's diasporic communities. It examines the effects of bilingualism on cognitive flexibility and memory processes, specifically how memories are encoded, stored, and retrieved. The study utilizes qualitative interviews and memory recall tasks with bilingual participants who speak a native language (such as Garhwali, Kumaoni, or Hindi) and a second language (like English). Key focus areas include how language switching impacts memory clarity and emotional resonance, and whether native language recall evokes stronger emotions, a concept known as language-congruent memory. Grounded in the literature on bilingualism and cognitive flexibility, this research suggests that bilingual individuals may have refined executive control, facilitating nuanced memory retrieval. The study also considers context-dependent memory, where memories are more accessible if recalled in the encoding language. Additionally, it explores bilingualism's role in creating a flexible and layered identity, as language mediates cultural belonging and personal history. The findings aim to offer insights into how bilingualism influences memory, identity, and cultural continuity within globalized diasporic settings.

Introduction

Bilingualism has emerged as a significant field of study within cognitive science, with extensive research indicating its influence on various mental processes, including attention, memory, decision-making, and problem-solving. However, the role of bilingualism extends beyond cognitive flexibility—it plays a crucial part in shaping how individuals construct and navigate their identities. In diasporic communities, where people live between two or more

cultural and linguistic environments, bilingualism is not merely a tool for communication but also a lens through which individuals engage with their memories and sense of self. This study seeks to explore the intersection of bilingualism, memory recall, and identity formation within the diasporic communities of Uttarakhand.

Uttarakhand, a northern Indian state with a history of migration, presents a unique context for examining the cognitive and social implications of bilingualism. Many people from Uttarakhand have migrated to other parts of India or abroad, creating a diasporic community that often straddles multiple languages and cultural experiences. Native languages such as Garhwali, Kumaoni, and Hindi coexist alongside English or other languages learned through migration. In such contexts, language becomes more than a medium of communication; it is intertwined with the recall of personal memories and the formation of a hybrid identity that blends native and adopted cultural elements.

This study is grounded in the hypothesis that bilingualism enhances cognitive flexibility, which in turn shapes how memories are encoded, stored, and retrieved. According to the theory of context-dependent memory, memories are more easily retrieved when the context of recall matches the context in which the memory was originally formed. For bilingual individuals, this often manifests as language-congruent memory recall—memories are retrieved more vividly when the language of recall matches the language of the experience. This process not only influences the clarity of memory but also impacts the emotional depth with which these memories are experienced.

In addition to examining memory recall, this research explores how bilingualism affects identity formation. In diasporic communities, where individuals constantly shift between languages and cultural frameworks, identity is fluid and multifaceted. Language serves as a marker of cultural belonging and a tool for negotiating between different social environments. The choice of language can reflect an individual’s engagement with specific aspects of their identity, whether personal, cultural, or social. For example, speaking a native language may evoke stronger connections to one’s heritage, while an adopted language may signal adaptation to a new environment.

By focusing on the bilingual experiences of individuals in Uttarakhand’s diasporic communities, this study sheds light on bilingualism's cognitive, emotional, and cultural dimensions, providing new insights into the dynamic relationship between language, memory, and identity.

Literature Review

Bilingualism and Cognitive Flexibility

Bilingualism has long been associated with enhanced cognitive flexibility. According to **Bialystok (2001)**, bilingual individuals develop improved executive control, which allows them to efficiently switch between tasks and manage competing information. This cognitive flexibility may extend to memory processes, with bilingual individuals potentially encoding, storing, and retrieving memories in a more nuanced way. Cognitive advantages from bilingualism may also affect how individuals navigate emotional and autobiographical memories. Studies like that of **Kroll and De Groot (1997)** suggest that switching between languages enhances cognitive control, leading to more refined memory retrieval processes.

This cognitive flexibility is further emphasized by **Bialystok *et al.* (2004**), who argue that bilingualism strengthens executive function, especially in tasks that involve language switching and memory retrieval. Bilingual individuals, therefore, not only gain the ability to manage competing linguistic systems but also develop superior skills in managing memory networks, especially under varying linguistic and emotional contexts. Such flexibility allows bilinguals to recall specific memories more effectively when required to switch between languages, adding complexity to the cognitive processes involved.

Memory Recall and Language Context

The relationship between language and memory recall is deeply rooted in the concept of context-dependent memory. **Tulving and Thomson's (1973)** encoding specificity principle posits that memories are more easily retrieved when the context of encoding matches the context at the time of retrieval. For bilinguals, this principle often manifests in the language congruence effect—memories tend to be recalled with greater clarity when the language of recall matches the language in which the memory was formed **(Marian & Neisser, 2000).** This language-congruent recall might not only enhance the vividness of the memory but also imbue it with greater emotional depth, particularly when recalling personal or autobiographical events.

Further**, Marian and Fausey (2006**) suggest that language-specific cues play a critical role in memory retrieval for bilinguals, especially in emotional contexts. This language-congruence effect indicates that language serves not just as a medium for communication but as a scaffold for structuring memories. When the language of recall aligns with the language in which the memory was encoded, the emotional and cognitive aspects of memory are more intricately tied to the cultural and social framework of that language.

Identity Formation in Diasporic Communities

Identity in diasporic communities is constructed at the intersection of language, culture, and social experience**. Gumperz (1982)** highlights language as a crucial marker of social identity, emphasizing that bilingual individuals often adopt hybrid identities that reflect their engagement with multiple cultural worlds. In diasporic communities, language becomes a tool for both asserting cultural belonging and adapting to new environments. **Fishman (2001)** and **Pavlenko (2004)** argue that language practices in bilingual communities influence both individual identity and group dynamics. Language choice, in particular, can serve as a symbolic bridge or divide between personal and collective identities.

This hybrid identity, as noted by **Pavlenko (2004**), emerges from the way bilinguals negotiate between their native and adopted cultural environments. For diasporic individuals, this negotiation involves not only linguistic switching but also managing how they perceive and present their identity in different contexts. Language choice becomes a key indicator of social belonging and identity construction, with bilinguals often switching between languages to navigate their personal and cultural affiliations.

Emotional Dimensions of Bilingual Memory

Research by **Marian and Kaushanskaya (2007)** demonstrates that bilinguals experience emotions differently depending on the language used during memory retrieval. For example, memories recalled in a native language often evoke stronger emotional responses than those recalled in a second language. This "language effect" suggests that the emotional resonance of a memory is closely tied to the linguistic context in which it was encoded. Bilinguals may therefore experience different emotional intensities for the same memory, depending on the language of recall.

Schrauf and Rubin (2000) further support this notion by illustrating that older bilingual adults, when recalling autobiographical memories, often express a deeper emotional connection when using their first language. This implies that the language of recall carries not only cognitive significance but also an emotional weight, especially when tied to early cultural and socialization experiences. This highlights the emotional depth of bilingual memory recall and underscores how language shapes the intensity of remembered experiences.

Methodology

Participants

This study will recruit 30 bilingual individuals from diasporic communities in Uttarakhand. Participants will represent a range of linguistic backgrounds, including those who speak both

a native language (such as Garhwali, Kumaoni, or Hindi) and an adopted language (typically English or a foreign language learned through migration). Recruitment will take place through community organizations and social media, ensuring a diverse sample of participants who have significant bilingual experiences.

Data Collection

Data will be collected through a combination of semi-structured interviews and memory recall exercises. These methods will provide qualitative insights into the ways bilingual individuals experience memory and identity.

- **Semi-Structured Interviews**: Participants will discuss their experiences as bilingual individuals, focusing on how language choice has shaped their personal histories and self-perception. Each interview will last approximately 60 minutes.
- **Memory Recall Exercises**: Participants will be asked to recall three significant life events in both their native and adopted languages. This method will allow for a comparative analysis of the emotional and cognitive dimensions of memories across different languages.

Data Analysis

Thematic analysis will be employed to identify recurring patterns in the data, particularly regarding how language affects memory recall and identity formation. Interviews will be transcribed and analyzed using a coding system that categorizes themes such as emotional resonance, clarity of memory, and cultural identity. The goal of this analysis is to explore how bilingualism mediates the cognitive and emotional processes involved in memory retrieval and identity construction.

Expected Findings

Cognitive and Emotional Dimensions of Memory

Based on previous research, we expect that bilingual individuals will recall more emotionally vivid and context-rich memories when speaking in their native language. Memories recounted in a second language may exhibit a more detached or analytical tone, reflecting the cognitive distance that often accompanies second-language usage.

Identity Construction

Participants are expected to report a fluid sense of identity, shaped by the interplay between their native and adopted languages. This fluidity likely results in a layered identity, where different aspects of cultural belonging coexist. Participants may also reveal that language choice functions as a key strategy for navigating their identities, with the selection of a particular language reflecting their engagement with different cultural and social contexts.

Discussion

This study contributes to the growing body of research on bilingualism and cognitive flexibility by exploring how language choice affects memory recall and identity formation within diasporic communities, particularly in Uttarakhand. The findings are expected to extend the understanding of how bilingual individuals use language as a tool for navigating their cognitive and emotional worlds. Specifically, the research explores the interplay between linguistic context, memory retrieval, and the construction of identity—areas that have been less studied in regions like Uttarakhand with its diverse linguistic landscape. Moreover, the study offers insights into how language switching not only enhances cognitive flexibility but also influences emotional depth, particularly in autobiographical memory. By focusing on diasporic communities, adds a nuanced understanding of how cultural and linguistic dualities are maintained, negotiated, and expressed.

The implications for identity construction in diasporic settings are profound. Bilingual individuals may constantly shift between languages as they navigate multiple cultural worlds, thus creating hybrid identities. This dynamic process of identity formation highlights how

language choice is not simply a reflection of linguistic competence but an active negotiation of personal and cultural history. Furthermore, this study also emphasizes the critical role bilingual individual’s play in cultural preservation, where their language choices in storytelling and memory-sharing impact how traditions and values are passed on to future generations.

Conclusion

Bilingualism within diasporic communities presents a powerful lens for exploring the dynamic relationship between language, memory, and identity. By examining the experiences of bilingual individuals in Uttarakhand, this research sheds light on the role of language as not only a communication tool but also a medium for recalling personal histories and shaping identities. The study's findings are anticipated to underscore the complexity of bilingual memory recall, particularly how language choice can enhance the emotional and cognitive dimensions of memory. Additionally, the research will highlight the fluid nature of identity formation in bilingual individuals, emphasizing the importance of language in constructing and negotiating multiple cultural affiliations. Ultimately, the study will deepen our understanding of the role of bilingualism in shaping lived experiences, especially in diasporic contexts where language serves as a vital link between past and present. By emphasizing the intersection of cognitive processes, emotional experiences, and cultural identity, this research will contribute to a more holistic understanding of bilingualism in a globalized world.

References

1. Bialystok, E. (2001). *Bilingualism in Development: Language, Literacy, and Cognition*. Cambridge University Press.
2. Fishman, J. A. (2001). *Can Threatened Languages Be Saved? Reversing Language Shift, Revisited: A 21st Century Perspective*. Multilingual Matters.
3. Gumperz, J. J. (1982). *Discourse Strategies*. Cambridge University Press.
4. Kroll, J. F., & De Groot, A. M. B. (1997). *Tutorials in Bilingualism: Psycholinguistic Perspectives*. Lawrence Erlbaum Associates.
5. Marian, V., & Kaushanskaya, M. (2007). Language Proficiency and Emotional Memory: The Role of Language in Memory Retrieval. *Journal of Memory and Language*, 57(2), 215-225.
6. Marian, V., & Neisser, U. (2000). Language Congruence in the Bilingual Memory. *Journal of Memory and Language*, 43(3), 364-380.
7. Pavlenko, A. (2004). *Bilingual Minds: Emotional Experience, Expression, and Representation*. Multilingual Matters.
8. Tulving, E., & Thomson, D. M. (1973). Encoding Specificity and Retrieval Processes in Episodic Memory. *Psychological Review*, 80(5), 352-373.
9. Grosjean, F. (2010). *Bilingual: Life and Reality*. Harvard University Press.
10. De Fina, A. (2003). *Identity in Narrative: A Study of Immigrant Discourse*. John Benjamins Publishing.
11. Schrauf, R. W., & Rubin, D. C. (2004). *The "Language" and "Culture" in Autobiographical Memory: The Case of Bilingual Memory*. Memory & Cognition, 32(4), 511-522.
12. Wiley, T. G., & Valdés, G. (2000). *Linguistic Diversity in the United States: The Lives and Experiences of Immigrant and Indigenous Language Speakers*. Routledge.
13. Besemeres, M., & Wierzbicka, A. (2007). *Translating Lives: Living with Two Languages and Cultures*. University of Queensland Press.
14. Pavlenko, A. (2006). *Bilingual Selves*. In A. Pavlenko (Ed.), *Bilingual Minds: Emotional Experience, Expression, and Representation* (pp. 1-33). Multilingual Matters.

15. Sebastián-Gallés, N. (2010). *Bilingual Language Acquisition: Where Does the Difference Lie?* Human Development, 53(5), 245-255.
16. Baquedano-López, P., & Kattan, S. (2007). *Bilingualism and Identity*. In M. Heller (Ed.), *Bilingualism: A Social Approach* (pp. 125-144). Palgrave Macmillan.
17. Suleiman, Y. (2004). *A War of Words: Language and Conflict in the Middle East*. Cambridge University Pre
18. De Houwer, A. (2009). *An Introduction to Bilingual Development*. Multilingual Matters.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 25-29
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में राजनीतिक चेतना

देशराज
असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग युवराज दत्त महाविद्यालय लखीमपुर–खीरी

शोध सार–

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् आम भारतीय जनमानस ने अनेक अनापेक्षित स्थितियों का सामना किया, जब आजादी मिली लेकिन वह आजादी सिर्फ नाम की ही थी। आजादी से जुड़े चिर प्रतीक्षित स्वप्न अपूर्ण रह गये, आम जनता के लिए स्वाधीनता महज सत्ता–हस्तांतरण तक ही सीमित रह गयी, सत्तारुढ़ सरकार के वादे जमीनी हकीकत पर क्रियान्वित न हो सके, लोकतंत्र की असफलता, मूल्यों का पतन, भ्रष्टाचार इत्यादि ने मिलकर जनता को गहरे असंतोष से भर दिया। इन्हीं सब कारणों के फलस्वरूप स्वातंत्र्योत्तर साहित्य के स्वरूप में भी व्यापक परिवर्तन परिलक्षित होता है। सामाजिक विसंगतियों, विडम्बनाओं, त्रासदियों और नैतिक, सामाजिक, धार्मिक, पारिवारिक, व्यक्तिगत तथा राजनैतिक मूल्यों के क्षरण को इस समय के साहित्य में प्रमुखता से चित्रित किया गया है। श्रीलाल शुक्ल ऐसे साहित्यकार रहे हैं जो अपने प्रशासनिक सेवा के कारण सीधे जनता से जुड़े रहे इसलिए इनके उपन्यासों में आम जनजीवन की नब्ज़ पकड़ती है। शुक्ल जी ने तत्कालीन भारतीय समाज, सत्ता, नौकरशाही इत्यादि के जीवंत चित्र उकेरे हैं। इनकी अनूठी लेखन शैली तथा सजीव भाषा के स्पर्श से ये चित्र अत्यधिक मर्मस्पर्शी बन पड़े हैं। समसामयिक मुद्दों पर पूर्ण तटस्थता के साथ शुक्ल जी की लेखनी सक्रिय रही है। कहीं तीक्ष्ण व्यंग्य की मार्मिक धार तो कहीं एकदम सपाट बयानी के साथ राजनैतिक विद्रूपता के अनेक रंग आपके लेखन में उभरकर सामने आते हैं। 'रागदरबारी', 'विस्रामपुर का संत', 'पहला पड़ाव' तथा 'मकान' उपन्यासों के मुख्य पात्र शुक्ल जी की राजनीतिक चेतना के प्रतिनिधि पात्र हैं। ये सभी लोकतंत्रात्मक व्यवस्था की विसंगतियों पर करारी चोट करते हैं।

बीज शब्द : श्रीलाल शुक्ल, राजनीतिक आजादी, रागदरबारी, पहला पड़ाव, विस्रामपुर का संत, मकान, विसंगति, यथार्थबोध, मोहभंग, नेतागिरी, जनप्रतिनिधि, व्यंग्य, निराशा।

प्रस्तावना–

श्रीलाल शुक्ल का सम्पूर्ण साहित्य स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय जनमानस के मोहभंग से उत्पन्न निराशा, कुण्ठा, आक्रोश का जीवंत दस्तावेज है। अपनी विशिष्ट भाषा–शैली एवं नवीन कथ्य के द्वारा शुक्ल जी ने हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है; अपने आस–पास के परिवेश से कथानक और पात्र चुनकर अपनी विशेष शैली में उन्हीं को विशिष्ट अर्थवत्ता प्रदान करने में शुक्ल जी सिद्धहस्त हैं। व्यंग्य की धार से सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं नौकरशाही की विद्रूपता को नग्न यथार्थ के रूप में प्रस्तुत कर देना तथा मर्मस्थान पर चोट करना इनके साहित्य की मुख्य विशेषता है।

अपने लेखन के प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए वह कहते हैं– "लेखन मेरे लिए अपनी गहनतम संभावनाओं के अन्वेषण का माध्यम है, वह मेरे लिए मुक्ति की एक प्रक्रिया है। बंधे होने की जो

छटपटाहट मेरे लेखन की प्रेरक शक्ति है, वही मेरी रोजमर्रा की आदतों और सामाजिक प्रवृत्तियों का भी निरूपण करता है।"[1]

व्यापक जीवन अनुभवों को पैनी दृष्टि से विश्लेषित करके उत्कृष्ट कल्पना शक्ति के प्रयोग द्वारा कालजयी कृतियों एवं पात्रों की सृष्टि इनके कथा साहित्य में सर्वत्र परिलक्षित होती है।

ममता कालिया ने इनके सन्दर्भ में कहा है– "श्रीलाल जी की सबसे बड़ी खासियत मेरे नजदीक यह है कि वे अपनी रचनाओं की कथा–भूमि अपने कार्यालय के कुरुक्षेत्र में ही ढूँढ निकालते हैं। रोजमर्रा के गैर–दिलचस्प कार्य–कलापों के मध्य ही उनका साहित्य प्रश्रय व पोषण पाता है। 'रागदरबारी' व 'मकान' उपन्यास दफ्तर के दैनिक दुष्कर्मों से जनित नौकरशाही के दबंग दस्तावेज हैं।"[2]

'राजनीति' शब्द राज्य की नीतियों से सम्बन्धित है जो हमारे समाज में शासन, नीति एवं कार्यप्रणाली का नियमन करती है। 'बृहत् हिन्दी शब्दकोश' में इसका अर्थ है– "राज्य की रक्षा और शासन को दृढ़ करने का उपाय बताने वाली रीति।"[3] साहित्यकार का दायित्व होता है समाज के यथार्थ स्वरूप का चित्रण करना। तत्कालीन समाज में व्याप्त अन्तर्विरोध, विसंगति, विघटन, विचलन इत्यादि का निष्पक्ष चित्रण स्तरीय साहित्य में अपेक्षित होता है।

आज राजनीति समाज का महत्वपूर्ण अंग बन गई है इसलिए साहित्य को भी राजनीतिक चेतना ने अपने प्रभाव में ले रखा है। डॉ0 शुभलक्ष्मी राजनीतिक चेतना को स्पष्ट करते हुए लिखती हैं– "शासन सूत्र सक्षम और सत्यनिष्ठ हाथों में रहे उसमें समस्त राष्ट्रजन सहभागी हों; अनिष्टकारी अथवा विध्वंसकारी शक्तियों का प्रतिरोध होता रहे, राष्ट्र के कण–कण के प्रति सर्वमान्य का आत्मीयभाव जाग्रत हो, राष्ट्र क्षति प्रत्येक नागरिक को कष्टदायक एवं राष्ट्र समृद्धि आनन्ददायक अनुभव हो। जीवन विविध पद्धतियों के अनुगामी होते हुए भी राष्ट्र की गतिविधियों के समान स्तर के भागी बनें। ये सब बातें अंततोगत्वा राजनीतिक चेतना के अन्तर्गत आती हैं।"[4]

स्वतंत्र भारत ने लोकतांत्रिक व्यवस्था की स्थापना से लेकर अब तक एक लम्बी यात्रा तय कर ली है, विकासशील राष्ट्र विकसित राष्ट्र बनने के पथ पर अग्रसर है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व देखे गए स्वप्न एक चुनौती बनकर प्रशासन के समक्ष खड़े हैं। आम जनता आशा–निराशा के मध्य भटक रही है, ऐसे समय में भारतीय राजनीति के क्षेत्र में भी व्यापक उथल–पुथल मची हुई है। अनेक नवीन प्रवृत्तियाँ यथा– जातिवाद, क्षेत्रीयता, साम्प्रदायिकता, आरक्षण की राजनीति, गठबंधन, नैतिकता का अभाव आदि अत्यन्त गम्भीर समस्याओं के रूप में राजनीति में जड़ जमा चुकी हैं। इन्हीं सब परिवर्तनों का सूक्ष्म चित्रण श्रीलाल शुक्ल ने अपने उपन्यासों में विभिन्न सन्दर्भों में किया है।

लोकतंत्र की विफलता, दूषित चुनाव प्रक्रिया, स्वार्थपरक राजनीति, सत्ता लोलुपता, अवसरवादिता, गुटबन्दी, भाई–भतीजावाद, राजनीतिक का अपराधीकरण, धर्म आधारित राजनीति, राजनीतिक भ्रष्टाचार इत्यादि ऐसी समस्याएँ हैं जो राजनीति से इस प्रकार घुल–मिल गयी हैं कि इनको अलग कर पाना अत्यन्त कठिन प्रतीत हो रहा है। शुक्ल जी ने एक प्रशासनिक अधिकारी होने के नाते राजनीति को करीब से देखा और परखा है इसीलिए इनके उपन्यासों में इनका जिक्र स्वाभाविक रूप से हुआ है। 'रागदरबारी', 'आदमी का जहर', 'विस्रामपुर का संत', 'पहला पड़ाव' तथा 'मकान' उपन्यास में राजनीति के मुद्दे को प्रमुखता से उठाया गया है।

'रागदरबारी' व्यंग्य विधा का अद्वितीय उपन्यास है, इसमें समाज की हर एक ईकाई की विसंगति पर व्यंग्य किया गया है। 'रागदरबारी' में गाँव की राजनीति केन्द्र में है। यह उपन्यास पूर्णतः उस विद्रूपता का चित्र है जो तत्कालीन राजनीति में व्याप्त हो चुकी थी। समाज का ऐसा विकृत स्वरूप जिस पर समझ नहीं आता कि हँसा जाए या रोया जाए ऐसे में शुक्ल जी ने व्यंग्य की तीखी छुरी हाथ में उठा ली और उसके द्वारा चुन–चुनकर ऐसे प्रहार किए जिससे दबी–ढंगी सारी विकृतियाँ उजागर हो जाती हैं। ग्रामीण जीवन की सहायता और सरलता को राजनीति के विषय ने कैसे अपनी चपेट में ले लिया इसका जिवंत दस्तावेज है 'रागदरबारी।'

ग्राम पंचायत चुनाव के साथ ही गाँव के छंगामल विद्यालय इण्टर कॉलेज के प्रबन्ध समिति के मैनेजर पद के चुनाव की प्रक्रिया के माध्यम से लेखक ने राजनीति में गुण्डागर्दी, सत्ता लोलुपता, भाई–भतीजावाद, चुनाव में भ्रष्टाचार, पैसे और बाहुबल के जोर पर सत्ता हथियाना, जनका का अज्ञान एवं जागरूकता के अभाव में गलत जन–प्रतिनिधि का निर्वाचन इत्यादि समस्याओं पर प्रकाश डाला है।

राजनीति का अखाड़ा बना हुआ छंगामल इण्टर कॉलेज जहाँ पढ़ाई–लिखाई को छोड़कर अन्य सबकुछ होता है। एक ओर प्रिंसिपल और खन्ना मास्टर की ठनी रहती है तो दूसरी ओर वैद्य जी कॉलेज प्रबन्ध समिति के मैनेजर पर पर ऐन–केन–प्रकारेण कब्जा जमाकर रखते हैं।

वैद्य जी का चरित्र सफेदपोश माफिया का चरित्र है। तिकड़म, स्वार्थी, सत्तालोलुप, घाघ राजनेता का मूर्तिमत रूप हैं वैद्य जी। मुखौटेबाज राजनेताओं के प्रतिनिधि चरित्र के रूप में वैद्य जी का चित्रण करके शुक्ल जी राजनीति के क्षेत्र में व्याप्त कहानी और करनी के अन्तर को स्पष्ट करते हैं। रागदरबारी के रूप्पन बाबू राजनीति के बारे में कहते हैं– "देखो दादा यह तो पॉलिटिक्स है। इसमें बड़ा–बड़ा कमीनापन चलता है। यह तो कुछ भी नहीं हुआ।"[5]

ग्राम पंचायत चुनाव में कठपुतली प्रतिनिधि खड़ा करने तथा उसकी आड़ में शासन तंत्र की बागडोर अपने हाथ में रखकर प्रच्छन्न रूप से सत्ता पर कब्जा जमाये रखने की प्रक्रिया शिवपालगंज पंचायत चुनाव में दृष्टव्य है जहाँ वैद्य जी अपने स्थान पर अपने नौकर शनीचर को प्रतिनिधि रूप में चुनाव लड़वाते हैं और वैद्य जी की बैठक में भंग घोटने वाला शनीचर शिवपालगंज का ग्राम प्रधान निर्वाचित हो जाता है। शनीचर द्वारा वोट मांगने पर लोग कहते हैं– "जब वैद्य जी वोट की भीख मांग रहे हैं तो मना कौन कर सकता है। हमें कौन–सा वोट का अचार डालना है। ले जायें वैद्य जी ही ले जायें।"[6]

लोकतंत्र की सर्वोच्च ताकत 'मतदान' का महत्व आम जनता को पता ही नहीं है। वोट भीख में देने जैसी वस्तु बन गयी और इन्हीं वोट के जरिए सत्ता हथियाने वाले नेतागण न अपने कर्तव्य पालन में कोई रुचि रखते हैं न ही जनता के हित से उनका कुछ लेना–देना होता है। चुनाव के समय झूठे वादों का सब्जबाग दिखाकर जनता को बहलाना–फुसलाना तथा कुर्सी पर कब्जा जमाते ही रंग बदल लेना एक सफल नेता का गुण है। इसी परम्परा पर व्यंग्य करते हुए रंगनाथ कहता है– "ड्राइवर साहेब तुमरा गियर तो बिल्कुल अपने देश की हुकूमत जैसा है। उसे चाहे जितनी बार टॉप गियर में डालो, दो गज चलते ही फिसल जाता है और लौटकर अपने खाँचे में आ जाता है।"[7]

'रागदरबारी' उपन्यास का फलक अत्यन्त विस्तृत और व्यापक है। समाज में व्याप्त हर एक समस्या को इसमें उठाया गया है परन्तु पंचायत चुनाव, कोऑपरेटिव समिति, छात्र राजनीति, यूनियनगिरी इत्यादि के माध्यम से समसामयिक राजनीतिक विकृतियों को उजागर करने का जो प्रयत्न इस उपन्यास में हुआ है वह संवेदनशील पाठक की चेतना को झकझोर देता है। 'विस्रामपुर का संत' श्रीलाल शुक्ल का एक और महत्वपूर्ण उपन्यास है जो राजनीतिक परिदृश्य पर लिखा गया है, इसमें स्वाधीनता आन्दोलन के समय विनोबा भावे द्वारा चलाये गये 'भूदान–आन्दोलन' की पृष्ठभूमि को चुना है।

'विस्रामपुर का संत' भारत के राजनीतिक कुलीन वर्ग की कथा है। जयंती प्रसाद सिर्फ एक व्यक्ति नहीं वरन् एक राजनीतिक समुदाय के प्रतिनिधि हैं। श्रीलाल शुक्ल ने कुँवर जयन्ती प्रसाद को एक घाघ राजनीतिज्ञ के रूप में चित्रित किया है– "हर जटिल मानवीय त्रासदी को सुलभ मुहावरों और सैद्धान्तिक शब्दजाल में डुबो देने की जो सहज क्षमता हमारे सत्तारुढ़ राजनीतिज्ञों में आ जाती है, वह उनमें बहुत पहले आ चुकी थी। यह वही क्षमता है जिसके सहारे हम आदिवासियों को सिर्फ लोक कला के साथ, खेतिहर मजदूर को प्रजातंत्र के प्रहरी के रूप में या शोषित महिला वर्ग को भविष्य की कृतिदर्शी चेतना बनाकर देखने लगते हैं और उनकी समस्याओं से निगाह फेर लेते हैं।"[8]

इस उपन्यास के मुख्य पात्र कुँवर जयन्ती प्रसाद अस्सी वर्ष की उम्र में गवर्नर के पद पर कार्यकाल समाप्त हो जाने के पश्चात् प्रधानमंत्री द्वारा कोई नया पद न प्राप्त होने की दशा में 'भूदान आन्दोलन' के कार्यकर्ता बन जाते हैं एवं संत बनने की घोषणा करते हैं। वस्तुतः ये सारा नाटक वे जनता का ध्यान आकृष्ट करने के लिए करते हैं और अपने उद्देश्य में सफल भी होते हैं। कुँवर जयन्ती प्रसाद के चरित्र में कुशल राजनीतिज्ञ के सारे लक्षण विद्यमान हैं। एक धूर्त नेता द्वारा सत्ता का दुरूपयोग तथा सत्तालोलुपता एवं महत्वाकांक्षा की चरम परिणति इनके चरित्र में दृष्टव्य है।

जयन्ती प्रसाद के बेटे प्रोफेसर विवेक को किसी आदर्शवाद में भरोसा नहीं था, उसका राजनीति से मोहभंग हो चुका था। विवेक कहता है– "बाबू जी इन राजनीतिक जन्तुओं में सचतुच ही कोई ऐसा दिखा जिसकी हैसियत कुत्तो से बेहतर हो तो मुझे बताइयेगा।"[9]

यह बयान युवा वर्ग के मोहभंग तथा राजनीतिक निष्क्रियता की ओर संकेत करता है। शिक्षित एवं सक्षम युवा वर्ग राजनीति को घृणा और उपेक्षा की दृष्टि से देखता है। बुजुर्ग राजनेता आखिरी सांस

तक कुर्सी से चिपके रहना चाहते हैं; राजनीति के क्षेत्र की ये एक बड़ी विडम्बना है। डॉ0 मुरली प्रसाद सिंह 'विस्रामपुर का संत' को– "सही अर्थों में नयी कथा भूमि की तलाश का परिणाम मानते हैं।"[10] ये लिखते हैं– "रागदरबारी यदि स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज की भदेस–गाथा हो तो व्रिसामपुर का संत सत्ता के भद्रजनों की पतन गाथा है।"[11]

कुँवर जयन्ती प्रसाद अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षा के साथ–साथ चारित्रिक दुर्बलता के भी शिकार हैं तथा अनेक स्त्रियों के प्रति वासनात्मक दृष्टिकोण रखते हैं। यह भी राजनीति के क्षेत्र में पनपने वाली विकृति है जो समाज को प्रभावित करती है।

'विस्रामपुर का संत' एक अनुपयोगी बूढ़े राजनेता के आत्म निर्वासन की गाथा मात्र न होकर सत्ता की राजनीति की अमानवीयता की महागाथा है। सत्ता लोलुपता व्यक्तित्व ह्रास के साथ–साथ व्यक्ति को नीचता के ऐसे दलदल में धकेल देती है जहाँ से मुक्ति सम्भव नहीं। ऐसी परिस्थिति में फंसा व्यक्ति करुणा और हँसी दोनों का पात्र बन जाता है। ऐसे ही परिस्थितियों के दुष्चक्र में फंसे राजनीतिज्ञ के प्रखर व्यक्तित्व के दयनीय अंत की दास्तान है विस्रामपुर का संत।

'आदमी का जहर' उपन्यास में नगर निगम का चुनाव लड़ने वाले दो नेता जसवंत और शांति प्रकाश के माध्यम से राजनीति में व्याप्त गुण्डागर्दी पर प्रकाश डाला गया है। बाहुबल के जोर पर सत्ता हथियाना, झूठी देशभक्ति के प्रदर्शन से राजनीतिक चालें चलने की प्रवृत्ति को इसमें दर्शाया गया है। चुनाव में पैसों का लालच देकर वोट खरीदना या गुण्डागर्दी के बल पर जनमत को अपनी ओर झुकाना जैसी राजनीतिक विसंगतियाँ इस उपन्यास में व्याप्त हैं। इस चुनाव प्रक्रिया के बारे में एक पत्रकार कहता है– "लड़ रहा है और जीत भी जायेगा। ऐसे ही लोग आजकल चुनाव जीतते हैं।"[12]

उक्त कथन राजनीति के अपराधीकरण की ओर इंगित करता है। नगर कार्पोरेशन, ग्रामसभा, लोकसभा, विधानसभा हर प्रकार की चुनाव प्रक्रिया आज पक्षपातपूर्ण एवं दोषयुक्त हो गई है और जब जड़ ही दूषित हो तो वृक्ष कैसे फल–फूल पायेगा। इन्हीं सब कारणों के चलते लोकतांत्रिक व्यवस्था अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो पा रही है।

'पहला पड़ाव' का मुख्य पात्र सत्ता अप्रत्यक्ष राजनीति में सक्रिय दिशाहीन युवा वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है, वह मजदूरों के चलते जैसे अन्य सामाजिक, आर्थिक योजनाएँ सफल नहीं हो पाती हैं वैसे ही भूदान आन्दोलन भी विफल हो जाता है। श्रीलाल शुक्ल ने भूदान आन्दोलन की विफलता का चित्र इस तरह खींचा है– "इतिहास की यह कैसी विडम्बना है कि सारा आन्दोलन पूरे वृत्त का चक्कर काटकर फिर उसी बिन्दु पर आ गया है जहाँ से तेलंगाना में सशस्त्र क्रान्ति की शुरूआत हुई थी। जहाँ ग्राम दान के बावजूद विस्रामपुर के किसान फिर अपनी जोत के लिए हथियार तानकर खड़े थे।"

विषम परिस्थितियों से जूझ रहे देश में ऐश्वर्य का जीवन बिताने वाला राजनेता अंत में कितनी अतृप्ति और उदासी से भर जाता है– जयन्ती प्रसाद की यह अवस्था भौतिक सुख–सुविधा एवं सफलता की निस्सारता को दर्शाती है और अन्त में सारी परिस्थितियाँ एकदम ट्रैजिक हो उठती हैं। यहीं पर उपन्यासकार अपने उद्देश्य में सफल हो जाता है।

कुँवर जयन्ती प्रसाद जैसे राजनीतिज्ञों की महत्वाकांक्षा कि यूनियन बनाकर मजदूरों के शोषण के विरुद्ध आवाज उठाना चाहता है वहीं दूसरी ओर रघुवंश जैसा चरित्र भी है जो राजनीतिज्ञों के लिए काम करता है और सत्ता की राह में रोड़े अटकाता है। नेता मेडूराम और प्रेमवल्लभ जैसे पात्र मजदूर यूनियन के नेता के रूप में यूनियनबाजी की समस्याओं को उजागर करते हैं। उपन्यास के कवर पेज पर लिखा है– "श्रीलाल शुक्ल की कलम जिस निस्संग व्यंग्यात्मकता से समकालीन यथार्थ को परत–दर–परत उघाड़ती रही है 'पहला पड़ाव'उसे और ऊँचाई देता है।"

निष्कर्ष–

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सत्तारुढ़ सरकार ने समाज के विकास के लिए अनेक योजनाओं का निर्माण किया तथा इनके सम्यक् क्रियान्वयन का भी प्रयास किया। फलस्वरूप समाज में परिवर्तन आए जो सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार के रहे। लोकतंत्रात्मक प्रणाली में जन–प्रतिनिधियों के चुनाव से लेकर शासन में उनकी प्रतिभागिता निश्चित करने में जनता की अहम भूमिका रहती है परन्तु भ्रष्टाचार की व्यापक पहुँच आज हर एक क्षेत्र में इस कदर हो गयी है कि चुनाव प्रक्रिया से लेकर नीतियों का क्रियान्वयन, सुविधाओं का सम्यक् वितरण इत्यादि सभी इसकी चपेट में आ गए हैं। सरकार की योजनएँ जनता तक पहुँचाने का माध्यम बनने वाले जनप्रतिनिधि सिर्फ अपना हित साधने में मशगूल

हैं। नेताओं द्वारा पद, पैसे एवं शक्ति के दुरूपयोग से यह स्थिति उत्पन्न हो गयी कि सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था आज कटघरे में खड़ी हो गयी तथा लोकतंत्र के अस्तित्व को ही खतरा उत्पन्न हो गया।

साहित्य समाज का दर्पण होने के साथ–साथ समय की आँख भी है। स्तरीय साहित्य में तत्कालीन परिवेश की विसंगतियों को उजागर करने के साथ ही इन समस्याओं के समाधान हेतु समुचित विकल्प प्रदान करना भी साहित्यकार का उत्तरदायित्व है।

सन्दर्भ ग्रन्थ–

1. सारिका, अगस्त 1975, गर्दिश के दिन, लेखक श्रीलाल शुक्ल, पृ0 76
2. श्रीलाल शुक्ल, मेरे साक्षात्कार, पृ 014
3. सम्पादक कालिका प्रसाद, राजवल्लभ सहाय, मुकुन्दी लाल श्रीवास्तव, बृहत् हिन्दी शब्दकोश, पृ0 1095
4. शोभा राणे, रघुवीर सहाय की कविताओं में राजनीतिक चेतना, चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2004, पृ0 35
5. श्रीलाल शुक्ल, रागदरबारी, पृ0 145
6. वही, पृ0 196
7. वही, पृ0 6
8. शम्भूनाथ, रागदरबारी : मनुष्य की राजनीति में वापसी एक स्वप्न है, पृ0 168
9. श्रीलाल शुक्ल, विस्रामपुर का संत, पृ0 216
10. श्रीलाल शुक्ल, विस्रामपुर का संत, पृ0 90
11. श्रीलाल शुक्ल, आदमी का जहर, पृ0 16
12. श्रीलाल शुक्ल, पहला पड़ा, कवर पृष्ठ

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 30-34
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

स्मार्ट क्लास की वर्तमान शिक्षण में उपयोगिता एवं महत्व

राजेन्द्र सिंह झाला
शोधकर्ता,
शोध केंद्रः-शिक्षा अध्ययनशाला, सम्राट विक्रमादित्य विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
डा० प्रियांशी पारेख
शोध निर्देशिका,
सहा0 प्राध्यापक, लोकमान्य तिलक शिक्षा महाविद्यालय उज्जैन (म.प्र.)

1 शिक्षण की अवधारणाः-

शिक्षण एक व्यापक प्रक्रिया है इसमें शिक्षक, छात्र और पाठ्यक्रम मिलकर ज्ञान, कौशल और मूल्यो का हस्तांतरण करते हैं। शिक्षण का लक्ष्य विद्यार्थी के व्यवहार और क्षमताओ में सकारात्मक सामाजिक रूप से वांछनीय परिवर्तन लाना है यह केवल जानकारी तक सीमित नही है बल्कि सीखने को प्रेरित करके सुविधा प्रदान करने की एक कला और विज्ञान है।

जॉन डिवी के अनुसार, “शिक्षण त्रिध्रुवीय प्रक्रिया है जिसमें शिक्षक, शिक्षार्थी और पाठ्यक्रम के बीच अन्तः क्रिया होती है।“

शिक्षण के दो दृष्टिकोण है।

1 पारंपरिकः- यह दृष्टिकोण शिक्षक केन्द्रित है इसमें शिक्षक सक्रिय और छात्र निष्क्रिय होते हैं।

2 आधुनिकः- यह छात्र केन्द्रित है जिसमें विद्यार्थी सक्रिय और शिक्षक मार्गदर्शक की भूमिका में रहता हैं।

शिक्षण के मुख्य पहलु निम्न हैः-

1 ज्ञान का संचारः-

शिक्षक से शिक्षार्थी तक कौशल और जानकारी पहुँचाने की प्रक्रिया को ज्ञान का संचार कहते है।

2 सीखने से गहरा संबंधः-

शिक्षण का उद्देश्य छात्र द्वारा ज्ञान को आत्मसात करना और सीखना होता है, यह दोनों एक साथ चलने वाली प्रक्रिया है।

3 व्यवहार में परिवर्तनः-

शिक्षण के द्वारा छात्रों के व्यवहार, दृष्टिकोण और क्षमताओ में वांछनीय परिवर्तन लाना है।

4 एक प्रक्रियाः-

यह एक गतिशील, जटिल और व्यवस्थित प्रक्रिया है, इसमें शिक्षक, शिक्षार्थी और पाठ्यक्रम का वातावरण शामिल होता है।

5 कला और विज्ञानः-

शिक्षण विज्ञान के सिद्धान्तों पर आधारित है और कला की तरह व्यक्तिगत कौशल और रचनात्मक होती है। संक्षेप में शिक्षण पढ़ना ही नही है, बल्कि ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए ज्ञान, कौशल और मूल्यों को विकसित करती है, जिससे वह समाज के प्रति जिम्मेदार बन सके।

2. **स्मार्ट क्लास की अवधारणाः-**

स्मार्ट क्लास शिक्षण तकनीक का नवीनतम प्रारूप है। इसमें डिजिटल उपकरणों और प्रौद्योगिकी (जैसे स्मार्ट बोर्ड, प्रोजेक्टर, कम्प्यूटर) का कक्षा-कक्ष में उपयोग करके शिक्षण को रोचक तथा प्रभावी बनाते हैं। आज के समय में इसका विद्यालय में विशेष महत्व है। यह शिक्षण को अधिक आकर्षक, इंटरैक्टिव और प्रभावी बनाता है। इसमें छात्र वीडियो, एनिमेशन और ऑनलाइन संसाधनो के माध्यम से जटिल विषयों को आसानी से समझते हैं। तथा सक्रिय रूप से सीखते हैं। इससे शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ती है, छात्रो की भागीदारी बढ़ती है तथा किसी भी विषय को सिखाने में शिक्षको को मदद मिलती है।

यह एक ऐसी तकनीक है। जिसमें छात्र पढाई से ऊबते नहीं है। इसमें छात्रों की सभी ज्ञानेन्द्रियाँ सक्रिय रहती है। जिसमें उनका सीखा हुआ ज्ञान स्थाई हो जाता है।

स्मार्ट क्लास के माध्यम से अध्यापक विद्यार्थियों को विभिन्न प्रकार की सामग्री प्रदान करते हैं। यह ऐसा लर्निंग मैनेजमेंट सिस्टम है जो कि पाठ्य पुस्तकों को डिजिटल रूप में प्रस्तुत करता है। स्मार्ट क्लास शिक्षण प्रणाली में पारम्परिक शिक्षा व्यवस्था की तरह विद्यार्थियों पर दबाव नही रहता है। पारम्परिक शिक्षा व्यवस्था में सीखा हुआ ज्ञान समय के साथ विद्यार्थी के दिमाग से निकल जाता है। जबकि इसमें विद्यार्थी अपनी गति से पढ़ाई करता है। वह रिकार्ड किये गये व्याख्यानों को बार-बार देखता है। इसमें न समय तथा न ही स्थान की बाध्यता होती है। इसमें शिक्षक पाठ्यक्रम के अलावा भी मनोरंजन के लिए और ज्ञानवर्धक बातों को सम्मिलित करता है।

स्मार्ट क्लास का एक यह भी सकारात्मक पहलू है कि इसमें छात्रो को अपनी शंकाओ को दूर करने के लिए अगले दिन का इंतजार नही करना पडता है उनकी शंकाओ का समाधान उसी समय हो जाता है।

स्मार्ट क्लास के मुख्य पहलु

1 डिजिटल उपकरणः-

इसमें इटरैक्टिव व्हाइटबोर्ड (स्मार्ट बोर्ड), प्रोजेक्टर, कम्प्यूटर और ऑडियो-विजुअल उपकरण शामिल है।

2 मल्टीमीडिया का उपयोगः-

शिक्षक चित्रों, नक्शों, एनिमेशन और वीडियो के माध्यम से पढ़ाता है। जिससे सीखना आसान और मजेदार होता है।

3 इंटरैक्टिव लर्निंगः-

इस प्रक्रिया के तहत छात्रों को केवल सुनने के बजाय सीखने की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

4 बेहतर समझः-

स्मार्ट बोर्ड तकनीकी में दृश्य और सवांदात्मक तरीके से समझने से छात्र अवधारणाओं को बेहतर ढंग से याद रखते हैं और अपने दैनिक जीवन में इसे उतारते हैं।

5 शिक्षक के लिए सुविधाः-

यह तकनीक शिक्षक के लिए भी सुविधाजनक है। इसमें बोर्ड पर चित्र बनाने या लिखने में समय की बर्बादी नही होती है। शिक्षक का ध्यान छात्रो के बीच अन्तः क्रिया में ज्यादा होता है तथा समझाने पर ज्यादा ध्यान दे पाते हैं।

स्मार्ट क्लास में स्मार्ट बोर्ड कैसे काम करता हैः-

स्मार्ट बोर्ड एक डिजिटल व्हाइट बोर्ड है। जो कम्प्यूटर और प्रोजेक्टर से जुडा हुआ है। इसमें अध्यापक अपनी उंगलियो या स्टाइलस (पेन) से टच करके स्क्रीन पर लिख, ड्रा और कंट्रोल करते है। यह टच और जेस्चर पहचान तकनीक का उपयोग करता है, जिसमें अध्यापक डिजिटल कंटेट को इंटरैक्टिव तरीके से देख और मैनेज करते है और सेव भी करते है।

इसमें निम्न प्रक्रिया होती है।

1 कनेक्शनः-

स्मार्ट बोर्ड को कम्प्यूटर और प्रोजेक्टर के साथ जोडते हैं।

2 प्रोजेक्शनः-

कम्प्यूटर पर जो कुछ भी चलता है (जैसे प्रेजेंटेशन, वीडियो, वेबसाइट) वह प्रोजेक्टर स्क्रीन पर दिखता हैं।

3 टच टेक्नोलॉजीः-

बोर्ड की सतह टच-सेंसिटिव होती है जब शिक्षक अपनी उंगली या स्टाइलस से स्क्रीन को छूते हैं तो यह इनपुट को पहचानता है।

4 इंटरैक्शनः-

इसमें माउस या की-बोर्ड के बजाय सीधे स्क्रीन पर लिखकर, मिटाकर, खींचकर या क्लिक करके काम करते हैं।

5 सॉफ्टवेयरः-

इसमें विशेष सॉफ्टवेयर होता है जो हमारे नोट्स सेव करके, मिटाने और डिजिटल संसाधनो (जैसे वीडियो, वेबसाइट) तक पहुँचने में हमारी मदद करता है जिससे हम कक्षा में सामग्री को बेहतर तरीके से दिखा सकते हैं।

6 सेविंगः-

अध्यापक द्वारा लिखे गए नोट्स और एनोवेशन को क्लाउड में सेव किया जा सकता है। ताकि बाद में उनका उपयोग किया जा सकें।

3 **स्मार्ट क्लास की उपयोगिताः-**

आज के समय में शिक्षण कार्य में स्मार्ट क्लास की उपयोगिता बहुत अधिक है इसमें दृश्य-श्रव्य माध्यमों से पढ़ाई को रोचक और प्रभावी बनाया जाता हैं। इसमें कठिन विषयों को आसानी से समझ पाते हैं। कम समय में ज्यादा सिखाया जाता हैं। इससे छात्रो में रचनात्मक सोच और तकनीकी कौशल विकसित होता हैं।

स्मार्ट क्लास की मुख्य उपयोगिता निम्न हैः-

1 बेहतर समझः-

चित्रों, विडियो और एनिमेशन से अमूर्त अवधारणाओं को समझना आसान हो जाता है इससे सीखने की प्रक्रिया मजबूत होती हैं।

2 रूचिकर और आकर्षकः-

स्मार्ट क्लास में पांरपरिक तरीको की तुलना में सीखना ज्यादा मजेदार और आकर्षक होता है। इसमें छात्रो की एकाग्रता बढ़ती है।

3 समय की बचतः-

इसमें शिक्षक को बार-बार लिखने की जरूरत नही पढ़ती हैं। इस कारण शिक्षक को पढ़ाने के लिए ज्यादा समय मिलता है और छात्र अपनी गति से सीख पाते हैं।

4 इंटरैक्टिव लर्निंगः-

इसमें छात्र सक्रिय रूप से सीखते है, वह स्क्रीन पर सीधे सवालो के जवाब दे सकते है। जिससे उनकी भागीदारी बढ़ती है।

5 तकनीकी कौशल का विकासः-

छात्रो को डिजिटल उपकरणो के साथ काम करना सीखाया जा रहा है, जो भविष्य के लिए जरूरी हैं।

6 संसाधनों तक पहुंचः-

इसमें इंटरनेट के माध्यम से अतिरिक्त अध्ययन सामग्री और जानकारी तुरंत उपलब्ध हो जाती हैं।

7 स्वगति से सीखनाः-

इसका सबसे बडा लाभ विद्यार्थियो का स्वगति से सीखना हैं। छात्र वीडियो को रोककर या दोहराकर अपनी समझ के अनुसार सीख सकते हैं। जिससे वे आत्मनिर्भर बनते हैं।

संक्षेप में स्मार्ट क्लास शिक्षा को अधिक गतिशील प्रभावी और भविष्योन्मुखी बना रही है। यह विद्यार्थियों को आधुनिक युग के लिए तैयार कर रही है।

4 **स्मार्ट क्लास का महत्वः-**

स्मार्ट क्लास शिक्षा को आकर्षक और प्रभावी बनाता है। इसमें छात्र मुश्किल विषयों को आसानी से समझते है। यह विद्यार्थियो को भविष्य की डिजिटल दुनिया के लिए तैयार करती है। यह पारंपरिक उबाऊ तरीको की जगह लेकर शिक्षकों को पढ़ाने का बेहतर तरीका देती है।

स्मार्ट क्लास का निम्न महत्व हैः-

1 21वीं सदी का कौशलः-

स्मार्ट क्लास 21वीं सदी का कौशल है, यह छात्रों में आलोचनात्मक सोच, समस्या समाधान और डिजिटल साक्षरता जैसे जरूरी कौशल विकसित करती है। यह विद्यार्थियो के भविष्य के लिए महत्वपूर्ण है।

2 शिक्षको के लिए सहायकः-

यह अध्यापको को सिर्फ किताब तक सीमित न रखकर उन्हें जानकारी का रचनात्मक मंच प्रस्तुत करती हैं।

3 कागज की बचत और पर्यावरणः-

डिजिटल सामग्री तथा डिवाइस के उपयोग से कागज की बचत होती हैं। जो कि पर्यावरण के लिए अच्छा हैं।

4 व्यक्तिगत शिक्षाः-

इसमें शिक्षक हर छात्र की जरूरत के हिसाब से शिक्षण विधियो को अनुकूलित कर सकता हैं। जिसमे विद्यार्थी अपनी गति से सीख सकते हैं।

5 भविष्य के लिए तैयारीः-

स्मार्ट क्लास में तकनीक आधारित शिक्षा छात्रो को भविष्य की डिजिटल और रोजगार की जरूरतो के लिए तैयारी करती हैं।

- **निष्कर्षः-**

स्मार्ट क्लास की शिक्षण में उपयोगिता बहुत अधिक है। इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि स्मार्ट क्लास के द्वारा शिक्षण से शैक्षिक प्रदर्शन में वृद्धि होती है समझ में वृद्धि होती है, सीखने की क्षमता बेहतर होती है। विद्यार्थियो में सृजनात्मकता का विकास होता है। उनका पढ़ाई के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण होता है, सीखा हुआ ज्ञान स्थाई होता है, शिक्षक के लिए शिक्षण कार्य आसान होता है, वह किसी भी मुश्किल प्रकरण को आसानी से समझा सकते है कुल मिलाकर स्मार्ट क्लास शिक्षक, शिक्षार्थी एवं शिक्षण की त्रिधुरविय प्रक्रिया को ओर मजबूत करती है।

- **संदर्भ ग्रन्थ सूचीः-**

1 शर्मा, प्रिया (2023)- स्मार्ट क्लास रूम्सः- ग्रामीण भारत में प्रभाव, भारतीय शिक्षा पत्रिका, 15 (2) 45-48

2 सिंह, अवधेश कुमार (2019)- डिजिटल युग में शिक्षाः नई दिल्लीः शिक्षा प्रकाशन

3 चाचडा इन्दरप्रीत कौर (2015)- स्मार्ट कक्षा शिक्षण एवं परंपरागत कक्षा शिक्षण पर सामाजिक विज्ञान का शैक्षिक उपलब्धि पर अध्ययन

4 एन. सी. ई. आर. टी. (2009)- शिक्षा तथा सूचना तकनीकी आमेगा पब्लिकेशन नई दिल्ली

5 शर्मा बी. डी. (2009)- शिक्षा तथा सूचना तकनीकी आमेगा पब्लिकेशन नई दिल्ली शोध

पूर्ण डाक का पताः- चौहान स्कूल के सामने, माताजी मंदिर के पास, शिवपुरा, कोटा (राज.)- 324010

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 35-39
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और हिंदी भाषा की उपयोगिता

अतिशय वर्मा
विभाग - हिंदी (शोधार्थी),
डॉ. अशोक कुमार
शोध निर्देशक,
हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय धर्मशाला

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 स्वतंत्र भारत की तिसरी शिक्षा नीति है इससे पूर्व 1968 एवं 1986 (यथा संशोधित 1992) में दो शिक्षा नीतियां लागू हो चुकी हैं। यह नीति हिंदी को न केवल साहित्यिक भाषा तक सीमित रखती है अपितु हिंदी को ज्ञान-विज्ञान,शोध, प्रौद्योगिकी और रोज़गार सम्मत भाषा बनाने का मार्ग भी प्रशस्त करती है। इस नीति के अनुसार शिक्षा का मूल उद्देश्य सूचनाओं और तथ्यों का भंडारण नहीं अपितु भारत के प्राचीन गौरवशाली संस्कृति एवं ज्ञान परंपरा को संरक्षित एवं आत्मसात करना भी है। और यह नीति इस परंपरा को भारतीय मातृभाषाओं एवं हिंदी के माध्यम से पुनर्स्थापित करने का प्रयत्न करती है। भारतीय संस्कृति में शिक्षा का उद्देश्य न केवल व्यावहारिक ज्ञान और जीविकोपार्जन तक सीमित रहा है अपितु आध्यात्मिकता के मार्ग पर चलकर आत्मचेतनता के माध्यम से "अप्प दीपो भवः" के भाव को ग्रहण करना इसका ध्येय है। शिक्षा बंधनों से मुक्ति और अमरत्व का मार्ग प्रशस्त करता है। हमारे उपनिषद में लिखा गया है "विद्या विन्दतेमृतम " (केनोपनिषद) अर्थात विद्या से अमरत्व प्राप्त होता है वहीं श्रीमद् भागवत गीता में "सा विद्या या विमुक्तये " कहकर विद्या को अज्ञान के बंधनों से मुक्ति का मार्ग बताया गया है। इस नीति के अनुसार **"प्राचीन और सनातन भारतीय ज्ञान और विचार की समृद्ध परंपरा के आलोक में यह नीति तैयार की गयी है। ज्ञान, प्रज्ञा और सत्य की खोज को भारतीय विचार परंपरा और दर्शन में सदा सवोच्च मानवीय लक्ष्य माना गया है।"**[1] राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 शिक्षा के इन्हें प्रतिमानों को आधार बनाकर भारतीयता के दृष्टिकोण को वर्तमान समय में आधुनिक सन्दर्भों में पुनः स्थापित करने का प्रयत्न करती है। इसीलिए यह शिक्षा नीति हिंदी एवं क्षेत्रीय मातृभाषाओं के महत्व को स्वीकार करते हुए बच्चों के संज्ञानात्मक विकास हेतु उनकी प्रारंभिक शिक्षा का माध्यम मातृभाषाओं को ही सुनिश्चित करती है।

1947 में भारत को ब्रिटिश दासतां से मुक्ति मिलने के तदोपरांत 1948 में विश्व विद्यालय शिक्षा आयोग (राधा कृष्णन आयोग) का गठन किया गया जिसने राष्ट्र के बुनियादी ढांचे को ध्यान में रखते हुए शिक्षा के उद्देश्यों पर कुछ अनुशंसाएं दी जो भारतीय संस्कृति और ज्ञान परंपरा के समावेशिता को निर्धारित करती है आयोग के अनुसार भारतीय शिक्षा का एक प्रमुख ध्येय **"प्राचीन भारत की महान संस्कृति को न सिर्फ संरक्षित रखना बल्कि उस बौद्धिक तथा नैतिक पैतृक संपत्ति को तरूणों तक भेजना है एवं वसुधैव कुटुंबकम के प्राचीन भारतीय आदर्श के अनुसार विद्यार्थियों में विश्व बंधुत्व का विकास करना है।"**[2] राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारतीयता की उस अभूतपूर्व गौरवशाली सांस्कृतिक अस्मिता को भारतीय शिक्षा प्रणाली के केंद्र में रखकर गुणवत्तापूर्ण प्रशिक्षण प्रदान करने का कार्य करती है जो भारतीय ज्ञान परंपरा से प्रेरित, बहुभाषिक शिक्षा प्रणाली और समावेशी शिक्षा व्यवहारों पर आधारित होगा जिसमें हिंदी भाषा की भूमिका एक संपर्क एवं राष्ट्रीय भाषा के तौर पर केंद्रीय एवं सृजनात्मक होगी।

हिंदी भाषा और शिक्षा का भारतीयकरण :

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 वर्तमान शिक्षा पद्धति को भारतीयता के अवधारणा से जोड़कर देखने का प्रयास करती है। जिसमें वेद, उपनिषद् भागवत गीता, पुराण, रामायण, महाभारत जैसे महाकाव्य, न्याय,दर्शन, आयुर्वेद, लोक गाथाएं, एवं संस्कृति जैसे अनेकों विषयों का अध्ययन अध्यापन का कार्य प्रारंभ होगा। जिससे विद्यार्थियों का नैतिक एवं आत्मिक विकास संभव हो सकेगा। शिक्षा का यह प्रारूप वर्तमान शिक्षा नीति को भारत की राष्ट्रीय शिक्षा धारा से इसे जोड़ता है। तथा यह सुनिश्चित करता है कि हिंदी एवं क्षेत्रीय भारतीय भाषाओं के माध्यम से भारतीय परंपरा में निहित ज्ञान के अथाह सागर यथा योग, आयुर्वेद, गणित, खगोलशास्त्र, नाट्यशास्त्र, जैसे आदि अन्य विषयों का इस नीति के माध्यम से पाठ्यक्रम के रूप में सभी के लिए अनिवार्य कर दिया जाए। और हिंदी भाषा को भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त हो जो अन्य राज्यों एवं क्षेत्रीय भाषाओं के साथ राष्ट्रीय एकता एवं सांस्कृतिक समन्वय का भूमिका निभा सके। प्रोफेसर प्रोमिला अपनी पुस्तक शिक्षा के सिद्धांत में लिखती हैं **"भारतीयकरण से तात्पर्य सरकारीकरण से नहीं बल्कि उसका अभिप्राय राष्ट्रीय उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न करना, देश की सांस्कृतिक विरासत का ज्ञान तथा राष्ट्रध्वज, राष्ट्र भाषा, राष्ट्र के महान पुरुष, राष्ट्र गीत, एवं राष्ट्रीय मान्यताओं के अति प्रेम एवं आदर उत्पन्न करना है।"3** भारतीयता की यह अवधारणा राष्ट्रीय शिक्षा नीति को संपूर्णता प्रदान कर उसके समस्त आयामों पर विचार-विमर्श करने की दृष्टि प्रदान करता है। यह नीति ज्ञान विज्ञान, मूल्य, परंपरा, भारत की सामाजिक सांस्कृतिक समन्वयवादी चेतना, योग, ध्यान और आध्यात्मिकता को साथ लेकर चलने का प्रयत्न करती है। वैज्ञानिकता और भौतिकता की अंधी दौड़ को न स्वीकार करते हुए यह नीति भौतिक प्रगति और संस्कृति व पर्यावरणीय विमर्शों के मध्य संतुलन स्थापित कर यह नीति सतत विकास के मार्ग का प्रशिक्षण प्रदान करता है।

बहुभाषिकता और हिंदी भाषा :

भारत एक बहुभाषिक देश है हजारों भाषाएं, बोलियां एवं उपबोलियां बोली जाती हैं, परन्तु हिंदी एक मात्र ऐसी भाषा है जो संपर्क भाषा के रूप में पूरे भारत वर्ष को एक सूत्र में पिरोने का कार्य करती है, भाषाई विविधता के इसी पहलू को संज्ञान रखते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने त्रि-भाषा सूत्र को और भी अधिक प्रभाशाली रूप से लागू किया है ,जिसमें विद्यार्थियों को तीन भाषाएं सीखना अनिवार्य होगा, और यह निर्णय केंद्र सरकार ने राज्यों के विवेक पर छोड़ दिया है, जिसमें राज्य सरकारें भाषाई स्तर पर भारत के किसी भी दो मूल भारतीय भाषा एवं एक विदेशी भाषा के चुनाव

हेतु नीति बना सकती हैं। भारत के बहुभाषिक विविधता के इसी स्वरूप के कारण कभी कभी भाषा के स्तर पर विभिन्न समाजों में भाषाई संघर्ष भी देखने को मिलता है भाषा कोई भी हो अपने स्वरूप में पूर्ण और सम्पन्न होती है कोई भी भाषा किसी अन्य भाषा से न श्रेष्ठ होती है और न ही निकृष्ट होती है किंतु यदि किसी एक भाषा को राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय भाषा के तौर पर भारत का प्रतिनिधि भाषा के रूप में चयन किया जाए तो हिंदी भाषा भौगोलिक विस्तार, बोलने वालों की संख्या और अन्तर्राष्ट्रीय पहुंच के कारण हिंदी प्रतिनिधि भाषा के रूप में सर्वाधिक उपयुक्त होगी। डॉ. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव अपनी पुस्तक 'भाषाई अस्मिता और हिंदी ' में लिखते हैं – **"अलगाव सिद्धांत हर भाषाई समाज की जातीय प्रमाणिकता और सांस्कृतिक रूढ़ियों को उजागर कर एक ऐसी स्वतंत्र इयत्ता प्रदान करने की ओर उसके सदस्यों को प्रेरित करता है जो वृहत्तर संदर्भ में एकीकरण के सिद्धांत को नकारने के लिए उद्धत हो उठती हैं हर भाषा न केवल इस दृष्टि के अनुसार स्वतंत्र और स्वनिष्ठ है वरन् हर दूसरी भाषा से अधिक समृद्ध और सुसंस्कृत है।"[4]**

पूर्वकालिक समय से ही भारत पर भाषाई एकरूपता थोपे जाने का कार्य चलता रहा है। वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद, एवं व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के विकास ने भारतीय संस्कृति के सामाजिक संरचना में कतिपय बदलाव किए। जिसका परिणाम यह हुआ कि तत्कालीन शिक्षा प्रणाली ने हिंदी के विकसित एवं पल्लवित होने की संभावना को अत्यंत क्षीण बना दिया। यह कोई नई प्रक्रिया नहीं है उपनिवेशीकरण के दौरान मैकाले के ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली ने भारतीय भाषाओं एवं हिंदी में शोध एवं नवाचार की संभावनाओं को खत्म कर अंग्रेजी को अभिजात्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया। तभी से हमारी मातृभाषाएं गर्त में जा रहीं हैं। वर्ष 1961 में भारत में कुल भाषाओं की संख्या लगभग 1652 थी। लेकिन 9171 में यह घटकर मात्र 808 रह गई। भारतीय लोकभाषा विभाग ने 2013 में भाषा संबंधी एक सर्वेक्षण किया जिसमें उन्होंने पाया कि मात्र पिछले 50 वर्षों में भारत से 220 भाषाएं लुप्त हो गई और 197 भाषाएं लुप्त होने के कगार पर खड़ी हैं। जो अत्यंत ही विचारणीय विषय है। परंपरागत सामाजिक बसावट में अतिक्रमण और पूंजीवादी व्यवस्था की होड़ ने रोजगार के प्रारूप को परिवर्तित कर मातृभाषाओं को पतन की अग्रसर किया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इन समस्याओं को उद्घाटित कर इनके समाधान पर विशेष बल देता है। डॉक्टर किरण बाला इस संदर्भ में अपने आलेख में लिखती हैं - **"मैकाले के शिक्षा पद्धति में भारतीय सभ्यता, संस्कृति और नैतिक मूल्यों से दूरी रखी गई थी। इतना अवश्य है कि इस शिक्षा नीति ने सबके लिए शिक्षा के द्वार खोले व तार्किकता को महत्व दिया गया है इसमें ज्ञान विज्ञान, भूगोल, अभियांत्रिकी, चिकित्सा, प्रबंधन और अन्य आधुनिक विधाएं शामिल हैं।"[5]**

मातृभाषाओं में तकनीकी व रोजगार की समस्या :

भूमंडलीकरण और तकनीकी के इस दौर में मातृभाषाओं के समक्ष कई नई चुनौतियां खड़ी हैं। इसमें कोई दो राय नहीं है कि मसीनीकृत भाषा आज सर्वत्र ग्राह्य और मांगपूर्ण है। ऑनलाइन युग में अंतर्राष्ट्रीय भाषाओं विशेषकर अंग्रेजी का बोलबाला है। शोध, अनुसंधान, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में इन्हीं भाषाओं को सबसे ज्यादा महत्व दी जा रही है। नौकरी की भाषा भी मातृभाषाओं से प्रतिस्थापित होकर अंग्रेजी हो चुकी है। यदि नौकरी संबंधी कौशल का विकास हिंदी और अपनी मातृभाषाओं में किया जाय तो हमारे स्वदेशी भाषाओं के लिए भविष्य की राह आसान होगी। वैज्ञानिकों ने भी ये पुष्टि की है कि संस्कृत भाषा कंप्यूटरकृत भाषाओं के लिए (विशेषकर कोडिंग के लिए) सबसे उपयुक्त भाषा है।

क्योंकि संस्कृत भाषा संधि और सामासिक गुणों के माध्यम से ,लंबे-लंबे वाक्यों एवं उद्धरणों को मूल भाव के साथ सीमित शब्दों का प्रयोग कर सूत्र शैली में अभिव्यक्त करने की क्षमता रखती है।

हिंदी और मातृभाषाओं में मौलिक चिंतन और रचनात्मकता :

मौलिक चिंतन और रचनात्मक लेखन अधिकांशतः मातृभाषा में ही संभव हो पाता है। क्योंकि प्रायः कोई भी विचार, सृजनशीलता प्राथमिक तौर पर अपने मातृभाषा में ही आते हैं। अमूर्त चिंतन और गूढ़ विचारों को हम अपनी मातृभाषा में सरलता से समझ और अभिव्यक्त कर पाते हैं। यही कारण है कि लोकभाषाओं में रचित साहित्य या कोई सिनेमा जनभाषा से जुड़े होने के कारण सामान्यतः लोगों से सुर्खियां और प्रसंसा बटोर लेता है। दरसल द्वितीयक रूप से अर्जित भाषाओं में कल्पना करना और उन कल्पनाओं को लिपिबद्ध करना मातृभाषाओं की तुलना में अधिक कठिन होता है। जन-जन से जुड़ी होने के कारण मातृभाषाएं लोकजन में अपनत्व की भावना पैदा करती हैं। मातृभाषाएं परंपरा के रुप में मिली वह अमूल्य निधि और धरोहर है जिसका कोई दूसरा वैकल्पिक साधन नहीं है। इसीलिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति वर्तमान समय में हिंदी एवं मातृभाषाओं में अधिगम पर विषेश ध्यान देता है। चूंकि विद्यार्थियों का मौलिक चिंतन-मनन इत्यादि सभी कार्य व्यवस्थित ढंग से अपनी मातृभाषा में ही संभव हो पाता है। इसीलिए भारत सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 में ये प्रावधान किया है कि बच्चों की प्राथमिक शिक्षा उनकी मातृभाषा में ही दी जाय। जिससे उनका सर्वांगीण विकास हो सके। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के दस्तावेज़ में यह उल्लेखित है कि – **"जहां तक संभव हो, कम से कम ग्रेड 5 तक लेकिन बेहतर यह होगा कि यह ग्रेड 8 और उससे आगे तक भी हो, शिक्षा का माध्यम घर की भाषा/ मातृभाषा/ स्थानीय भाषा/क्षेत्रीय भाषा होगी।"**[6] शिक्षा प्रणाली में भी अब भारतीय भाषाओं को प्राथमिकता दी जाएगी। तकनीकी, चिकित्सा वाणिज्य, इंजीनियरिंग जैसे इत्यादि विषयों का भारतीय भाषाओं में रूपांतरण प्रारंभ हो गया है। और उद्देश्य यह है कि अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली को भारतीय भाषाओं से प्रतिस्थापित करें। शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति में मातृभाषा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसलिए हिंदी और भारतीय भाषाओं को अधिगम व शिक्षण के भाषा के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। साथ ही तकनीकी शिक्षा, इन्टरनेट की भाषा को भी मातृभाषाओं में विकसित करना होगा। इसके लिए हमे मातृभाषाओं में रोजगार के अवसर सृजित करने होंगे। हाल ही में केंद्र और राज्य सरकारों के संयुक्त प्रयास से इंजीनियरिंग, चिकित्सा और प्रबंधन के कुछ विश्वविद्यालय संपूर्णतः हिंदी भाषा में प्रारंभ किए गए हैं। यह मातृभाषाओं के गौरव में छोटे पहल की शुरुवात है जिसे हमें व्यापक स्तर पर समूचे भारत में लागू करने की आवश्यकता है। शिक्षण के दौरान शिक्षकों या विद्यार्थियों को मातृभाषा अथवा स्थानीय भाषाओं में संवाद स्थापित करते वक्त हीन भावना से ग्रसित न होकर उनके प्रति सम्मान का भाव होना चाहिए। मातृभाषाओं के उत्थान के लिए कवि भारतेंदु हरिश्चंद्र जी कहते हैं।

निज भाषा उन्नत अहै,सब उन्नति को मूल
पै निज भाषा ज्ञान बिनु, मिटय न हिय के शूल।

हरिश्चंद्र जी की ये पंक्तियां वर्तमान समय के परिप्रेक्ष्य में अत्यंत ही प्रासंगिक सिद्ध होते हैं। क्योंकि आज की तरह मातृभाषाओं पर संकट पूर्व में सर्वथा कभी न था। भारतीय भाषाओं के इस दुर्गति पर विचार करते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इनके संरक्षण एवं प्रचार प्रसार पर अधिक बल देता है। इस नीति के क्लॉज 22.5 में यह उल्लेखित है कि – **" दुर्भाग्य से भारतीय भाषाओं को समुचित ध्यान और देखभाल नहीं मिल पाई जिसके तहत देश ने विगत 50 वर्षों में 220 भाषाओं को खो दिया यूनेस्को ने 197 भारतीय भाषाओं को लुप्तप्राय घोषित किया है विभिन्न**

भाषाएं विलुप्त होने के कगार पर हैं विशेषतः वे भाषाएं जिनकी लिपि नहीं हैं। जब किसी समुदाय या जनजाति के, उस भाषा को बोलने वाले वरिष्ठ सदस्य की मृत्यु होती है तो, वह भाषा भी उनके साथ समाप्त हो जाती है।"[7] उम्मीद है यह नीति भारतीय भाषाओं को संरक्षण प्रदान करते हुए अपने मानकों पर खरा उतरेगी और उन सभी भाषाओं को वो सम्मान दिलाने में सक्षम होगी जिसके वे हकदार हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 , शिक्षा मंत्रालय , भारत सरकार, पृष्ठ संख्या-4
2. डॉ. शरतेंदु किसलय और डॉ. गोविंद मिश्र, भारत में शिक्षा का विकास, पृष्ठ संख्या,81 डिस्कवरी पब्लिशिंग ाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण,2006
3. प्रोमिला, शिक्षा के सिद्धांत, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2015, पृष्ठ संख्या,59
4. डॉ. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव, भाषाई अस्मिता और हिंदी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2016, पृष्ठ संख्या,91
5. नेशनल एजुकेशन पॉलिसी 2020, पर्सपेक्टिव एंड प्रास्पेक्टस, प्रकाशन, पैसिफिक बुक इंटरनेशनल, संस्करण 2024, आलेख, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य- किरण बाला, पृष्ठ संख्या, 283
6. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 , शिक्षा मंत्रालय , भारत सरकार, पृष्ठ संख्या-19
7. वहीं, पृष्ठ संख्या – 87

मोबाइल नंबर - 7052641887

ई-मेल - atishay1887@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 40-45
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

संत कबीर के साहित्य में सन्निहित: आदर्श राष्ट्रीयता का दर्पण

अभय कुमार 'अमर'
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
भूपेन्द्र ना. मंडल विश्वविद्यालय लालूनगर, मधेपुरा, बिहार

शोध-सार : भारतीय सन्त-परम्परा के सर्वाधिक प्रभावशाली चिन्तकों में संत कबीर का स्थान अग्रगण्य है, जिनका सम्पूर्ण साहित्य सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना से सम्पोषित आदर्श मानवता का विराट दस्तावेज है। शाश्वत-सत्य के निभ्रांन्त-द्रष्टा और अनुभूत-सत्य के निर्भीक उपदेष्टा संत कबीर के व्यक्तित्व की मौलिक पहचान है। सन्त कबीर प्रदत्त चिन्तन-राशि भक्तिकाल की आध्यात्मिक चेतना ही नहीं बल्कि सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना को ऊर्जान्वित करके समानता और समरसता से परिपूर्ण राष्ट्रीय दृष्टि प्रस्तुत करती है, जो एक आदर्श राष्ट्र की संकल्पना को सार्थक आधार प्रदान करती है। प्रस्तुत शोध-आलेख में संत कबीर के साहित्यिक-चिन्तन-राशि को आदर्श राष्ट्रीयता के दर्पण के रूप में विश्लेषित किया गया है, जहां राष्ट्रीयता का अर्थ किसी विशेष राजनीतिक राष्ट्रवाद से नहीं, बल्कि नैतिकता, समानता, मानवता ओर समतामूलक समाज की सामूहिक चेतना से है, जो किसी आदर्श राष्ट्र के मूलभूत चरित्र की आधारशिला है। सन्त कबीर का साहित्य सामाजिक समता, पंथ-निरपेक्षिता, श्रम-सम्मान, मानवीय-बंधुत्व और सत्य-अहिंसा, दया-प्रेम जैसे तत्वों को केन्द्र में रखकर आदर्श राष्ट्र की परिकल्पना को रूपायित करता है। वास्तव में सन्त कबीर का चिन्तन आदर्श राष्ट्रीयता का दर्पण है, जिसके आलोक में भारतीय संविधान सार्वभौमिक मूल्यों-समानता स्वतंत्रता, मानव-बंधुत्व-की पूर्वपीठिका के रूप में कार्य करता हुआ परिलक्षित होता है।

बीज शब्द - आदर्श-राष्ट्रीयता, शाश्वत-सत्य, अनुभूत-सत्य, चिन्तन-राशि, मूलभूत-चरित्र, श्रम-सम्मान, मानवीय-बंधुत्व, सार्वभौमिक-मूल्य आदि।

मूल आलेख - सन्त कबीर मध्यकालीन भारतीय भक्ति-आन्दोलन के ऐसे युगद्रष्टा व युगस्रष्टा चिन्तक हैं, जिनके साहित्य में सामाजिक समरसता, मानवीय एकता और आध्यात्मिक समानता की स्पष्ट अभिव्यक्ति परिलक्षित होती है। उनके काव्य में ऐसे सामाजिक एवं सांस्कृतिक मानवीय-मूल्य सन्निहित है, जो आदर्श राष्ट्रीय अवधारणा के मूलभूत तत्त्वों से मेल खाते है। भारतीय सन्त-परम्परा के चिन्तकों ने 'आदर्श राष्ट्र' का अभिप्राय केवल राजनीतिक और भौगोलिक संदर्भो में नहीं, बल्कि मनुष्य की चेतना, संस्कृति, सामाजिक, समतापूर्ण व्यवहार और आध्यात्मिक-नैतिकता का सामूहिक प्रतिफल माना है। सन्त कबीर संत परम्परा के शीर्षतम विचारक हैं, जिनके साहित्य में आदर्श राष्ट्र के नैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक-सभी आयामों के गहन संकेत सन्निहित है। सन्त कबीर का चिंतन आदर्श राष्ट्र की आधुनिक परिभाषाओं, राजनीतिक सिद्धान्तों, और समाज शास्त्रीय

मानदंडों का विवेचन करते हुए मानवीय मूल्यों से जोड़ता है। उनके द्वारा प्रतिपादित विचार समस्त भेदभाव उन्मूलक, सत्यनिष्ठा, श्रम-सम्मान, पारस्परिक-प्रेम, अहिंसा, धार्मिक समन्वय और नैतिक अनुशासन आदि आदर्श राष्ट्र निर्माण के लिए आज भी उतना ही प्रासंगिक है, जितना उनके समय में था।

राष्ट्र, राज्य और समाज ये तीनों मानवीय संगठन के मूलभूत स्तंभ हैं। परन्तु इन तीनों में सबसे जटिल और बहुआयामी शब्द 'राष्ट्र' है। राज्य एक राजनीतिक संरचना है, समाज व्यक्तियों का संगठित समूह है, जबकि राष्ट्र इन दोनों का एक भावनात्मक और सांस्कृतिक उत्कर्ष है। राष्ट्र-चेतना का उद्भव अचानक नहीं हुआ, यह हजारों वर्ष की सांस्कृतिक यात्रा, सामाजिक-राजनीतिक संघर्ष, भाषा निर्माण, आर्थिक गतिविधि आदि के संवेदनशील प्रश्नाकुलता के सार-समन्वय का परिणाम है। मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ राष्ट्र और राष्ट्रीयता की अवधारणा भी परिवर्तित होती रही है। प्रारंभिक काल में यह अवधारणा भूमि, जाति और सत्ता तक सीमित थी, परन्तु आधुनिक और उत्तर आधुनिक युग में राष्ट्रीयता का स्वरूप अत्यन्त बहुआयामी हो गया है। आज राष्ट्रीयता मात्र राजनीतिक और भौगोलिक पहचान तक सीमित न रहकर, यह सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, सांस्कृतिक और अध्यात्मिक मूल्यों से जुड़ा एक सामूहिक भाव है। जब हम 'आदर्श राष्ट्रीयता' की बात करते हैं, तब यह बात स्वभाविक रूप से सामने आती है कि राष्ट्रीयता का आदर्श रूप, केवल राष्ट्र के हित तक सीमित न होकर समस्त मानवता के कल्याण से जुड़ा होना चाहिए। आदर्श राष्ट्रीयता किसी भी प्रकार की संकीर्णता, भेदभाव, हिंसक राष्ट्रवाद, उग्रवाद या जातीय-धार्मिक वर्चस्ववाद का समर्थन नहीं करती। इसके बजाय यह एक ऐसे राष्ट्र की परिकल्पना करती है जो स्वयं विकसित हो और साथ ही वैश्विक सुरक्षा व शांति में योगदान करे।

सन्त कबीर का उदय मध्ययुग के ऐसे संक्रमण काल में हुआ, जिस समय मानव धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामप्रदायिक एवं सांस्कृतिक त्रासदी की आग में झूलस रहे थे। वे अपने समय के पारस्परिक वैमनस्यता से संक्रमित वातावरण को गहराई से देखे-परखे और अपने आत्मनुभूत चिंतन से उस त्रासदी से मुक्ति का समाधान भी दिखाये। उनका साहित्य-चिन्तन केवल भक्ति या अध्यात्म तक सीमित नहीं है, बल्कि वह सामाजिक सुधार, मनुष्य की समानता, लोकहित, नैतिकता, न्याय, सह-अस्तित्व और सार्वभौमिक-मानववाद को आधार बनाकर आदर्श राष्ट्र की एक सक्षम दृष्टि प्रस्तुत करता है। वर्तमान युग में जब राष्ट्रवाद के नाम पर सामाजिक तनाव, साम्प्रदायिक विभाजन, मानव-असमानता और वैश्विक संघर्ष बढ़ते हुए दिखाई देते है, तब सन्त कबीर की दृष्टि हमें एक वैकल्पिक और संवेदनशील-मानवीय आदर्श राष्ट्र-चिन्तन की व्यापक अवधारणा का आधार देती है। संत कबीर के इसी कालातीत दृष्टि और सार्वभौमिक चिंतन के विशिष्ट अवदान के कारण प्रबुद्धजनों ने स्वीकार किया कि, ''हिन्दी साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्त्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ। मस्ती, फक्कड़ाना स्वभाव, और सबकुछ को झाड़-फटकार कर चल देने वाले तेज ने कबीर को हिन्दी साहित्य का अद्वितीय व्यक्ति बना दिया है।''[1] ''कबीर ने साहित्य के लिए साहित्य नहीं लिखा। मस्तमौला राम को साहित्य से क्या मतलब? पर उनका उच्छल आवेग, मानवीय संवेदना, गहरों जीवन बोध उनके 'कहन' को साहित्य बना देते हैं। वास्तविकता तो यह है कि वे एक लड़ाई लड़ रहे थे- अपने लिए नहीं, दीन जनों के लिए।.... कबीर पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों, जातियों, वर्णों को नकारकर ऐसे समाज की स्थापना का प्रयास किया जिसमें धर्म, सम्प्रदाय, ऊंच-नीच के भेदभाव के लिए कोई किसी से छोटा-बड़ा नहीं है। पीड़ित, शोषित, अपमानित जनसमाज के दुख से जितना सरोकार कबीर का है उतना भक्तिकाल के किसी अन्य कवि का नहीं। उनका गैर समझौतावादी व्यक्तित्व अलग से चमकता है।''[2] मानव सभ्यता के विकास में साहित्य एक अन्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। साहित्य केवल भावनाओं का संकलन नहीं, बल्कि समाज के राजनीतिक, आर्थिक, नैतिक और सांस्कृतिक यथार्थ का प्रतिबिम्ब भी है। इसलिए साहित्य को प्रायः समाज का दर्पण कहा जाता है। दर्पण वह वस्तु है जिसमें व्यक्ति अपना वास्तविक स्वरूप देख सकता है। उसी प्रकार साहित्य भी तत्कालीन युग, वर्ग, जाति, समुदाय और राष्ट्र जन-जीवन की

वास्तविकताओं को शब्दों में उकेर कर प्रतिध्वनित करता है। ''जब कि प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।''[3] ''हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा! जिसमें, सच्चा चिन्तन हो, स्वधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाईयों का प्रकाश हो जो हममें गति और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं, क्योंकि और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।'' साहित्य का उद्येश्य)... साहित्य में प्रभाव उत्पन्न करने के लिए यह आवश्यक है कि वह जीवन की सच्चाइयों का दर्पण हो।''[4] ''सबसे पहले हम उस साहित्य का मूल्य निर्धारित करते है।, जो शोषक वर्गों के विरूद्ध श्रमिक जनता के हितों को प्रतिबिम्बित करता है।... साहित्य मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन से संबद्ध है। आर्थिक जीवन के अलावा मनुष्य एक प्राणी के रूप में भी अपना जीवन बिताता है। साहित्य में उसकी बहुत सी आदिम भावनाये प्रतिफलित होती है, जो उसे प्राणी मात्र से जोड़ती है। इस बात को बार-बार कहने में कोई हानि नहीं है कि साहित्य विचारधारा मात्र नहीं है उसमें मनुष्य का इन्द्रिय-बोध, उसकी भावनायें, आंतरिक प्रेरणायें भी व्यंजित होती है। साहित्य का यह पक्ष अपेक्षाकृत स्थायी होता है।''[5] साहित्य का उद्गम मानव जीवन से है। समाज के बिना साहित्य का अस्तित्व संभव नहीं है। एक रचनाकार जब कुछ रचना करता है तो वह उपने विचारों के साथ-साथ उपने समय की परिस्थितियों विडम्बनाओं और आकाक्षाओं को भी शब्द देता है। इसलिए साहित्य समाज का दर्पण है- यह कथन केबल आलंकारिक नहीं, बल्कि वास्तविक है। साहित्य मानव जीवन की अनुभूतियों, परिस्थितियों और संघषों का जीवन्त दस्तावेज होता है। इसमें इतिहास संस्कृति, राजनीति, धर्म, अथव्यवस्था, भावनाएं और चिन्तन सभी प्रतिफलित होतो हैं। इसलिए साहित्य सिर्फ समाज का दर्पण ही नहीं एक सच्चा मार्गदर्शक भी है। साहित्य एक ऐसी प्रकाश-धारा है जो समाज के अंधकार का अजागर करती है और नए मार्ग का संकेत देती है। ''सामाजिक शक्ति या सजीवता, सामाजिक अशक्ति किया निर्जीवता और सामाजिक सभ्यता तथा असभ्यता का निर्णायक एकमात्र साहित्य ही है। ... शरीर का खाद्य भोजनीय पदार्थ है और मस्तिष्क का खाद्य साहित्य। अतएव यदि हम अपने मस्तिष्क को निष्क्रिय और कालान्तर में निर्जीव सा नहीं कर डालना चाहते हैं तो हमें साहित्य का सतत सेवन करना चाहिए और उसमें नवीनता तथा पौष्टिकता लाने के लिए उसका उत्पादन भी करते जाना चाहिए। ... मस्तिष्क का बलवान और शक्तिसम्पन्न होना अच्छे ही साहित्य पर निर्भर है।''[6] डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी कहा है सचमुच ''साहित्य समाज के अन्तर्विरोधें का उद्धाटन कर समाज को नए स्वरूप की और ले जाता है।'' प्रसिद्ध अंगेजी विद्वान आलोचक जॉनसान कथन है- ''**literature is a mirror of life** अर्थात् - साहित्य जीवन का सच्चा दर्पण है।''

सन्त कबीर भारतीय साहित्य दर्शन और सामाजिक चेतना के ऐसे युगप्रवर्तक व्यक्तित्व हैं, जिन्होंने अपने समय के धार्मिक-सामाजिक विघटन, असमानता और मानवीय-मूल्यहीनता के विरूद्ध सशक्त स्वर उठाया। उनका साहित्य-चिन्तन किसी विशेष पंथ-सम्प्रदाय के सकीर्ण संरचना तक सीमित न होकर वैश्विक समरसता युक्त मानव-समाज की परिकल्पना प्रस्तुत करती है। सन्त कबीर की दृष्टि में 'राष्ट्र' कोई राजनीतिक ईकाई अथावा भौगोलिक सीमा नहीं, बल्कि मानव एकता, समानता नैतिकता, सहज धर्मं, करूणा, विवेक और श्रमनिष्ठा आदि मानवीय गुणों पर आधारित एक जीवन्त सामाजिक संवेदनशीलता का ताना-बाना है। उनकी वाणी में निहित सामजिक-नैतिक दृष्टिकोण, समन्वयवादी विचार, समतावादी दर्शन, धार्मिक उदारता, समस्त भेदभाव-उन्मूलन और मानव-कल्याण के सूत्रों के आधार पर यह मानना बिल्कुल उचित है कि सन्त कबीर का सम्पूर्ण साहित्य मानव-कल्याण केन्द्रित आदर्श राष्ट्र-दृष्टि का संवाहक और आधुनिक आदर्श-राष्ट्रीयता का दर्पण है। ''कबीर साहित्य के अध्ययन, मनन, चिन्तन, आलोचना और साहित्यालोचना के बाद अब मैं इस निष्कर्ष पर पहुचा हूं कि वे सिर्फ सन्त नहीं बल्कि एक बहुत बड़े युगद्रष्टा साहित्यकार थे। उनके साहित्य में भारतीय जीवन-दर्शन का मूल समाया है।''[7] सन्त कबीर के समय का भारतीय समाज अनेकानेक संक्रमण के विद्रूपताओं से त्रसित था- जिसमें साम्प्रदायिक विद्वेष, जातिगत भेदभाव

की कठोरता, धार्मिक संघर्ष, राजनीतिक विखंडन, आर्थिक विषमता, स्त्री वंचना, शोषण-दमन, अन्याय-उत्पीड़न आदि अपनी चरम अवस्था में थे। ''कबीर इस विश्रृंखला को न देख सके। अतः इन सबको मयार्दित कर एक सात्विक स्वतंत्र विचारधारा को जन्म दिया। यदि उस युग में कबीर की सदाचरण प्रधान धारा का प्रर्वत्तन न हुआ होता तो आचरण की दृष्टि से भारत की न मालूम क्या स्थिति होती।... मध्ययुग में कबीर ने भारत का जितना उपकार किया था, उतना आजतक कोई विचारक नहीं कर सका।''[8] ''मध्ययुग के कवियों में कबीर के सिवा किसी में युगीन सामाजिक चेतना नहीं थी। ..... कबीर ने जीवन को आर-पार देखा था। समाज व्यवस्था के पाखण्ड और अन्तविरोधों को समझा था और उसपर तिलमिला देने वाली चोट की थी। वह हिन्दू मुस्लिम, ब्राह्मण-शूद्र के भेद का शत्रु था। वह केवल कबीर था जो आज भी 'मार्डन' है और भारतीय समाज का सच्चचा प्रतिनिधि कवि हैं।''[9]

सन्त कबीर के साहित्य का सम्यक् अध्ययन करने पर उसमें सन्निहित आदर्श राष्ट्रीयता की अवधारणा दर्पणवत स्पष्ट हो जाती है। स्पष्टतः सन्त कबीर के अवधारणानुसार आदर्श राष्ट्र वह है जिसमें सभी नागरिक वर्ग-वर्ण की सकीर्णता, साम्प्रदायिक कटुता, ऊंच-नीच, छूत-अछूत की घृणित मानकिसता और समस्त भेदभाव-जनित पारस्परिक वैमनस्यता से सर्वथा मुक्त होकर समानता, समरसता, और समग्र न्याय का अनुभव करे। जहां सामाजिक-आर्थिक समानता के साथ शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा आदि में सब की सहभागिता संतुलित रहे। जहां मानव गरिमा की रक्षा, योग्यता की समान महत्ता,पंथ-निरपेक्ष धर्म, सांस्कृतिक समन्वयकारी व्यवस्था, साम्प्रदायिक सौहार्द, समस्त भाषा का सम्मान, वैज्ञानिक चिन्तन, विवेक आधरित समाज तथा नैतिक जीवन-मूल्यों का अनुसरण हो। इन समस्त अवधारणाओं का तथ्यात्मक सिंहावलोकन हम सन्त कबीर के साहित्यिक सूत्रों में कर सकते हैं। जैसे वे मानवीय गरिमा स्थापित करते हुए कहते है -

हंसा तुं तो सबल था, हलुकी अपनी चाल।
रंग कुरंगे रंगिया, ते किया और लगवार।।[10]

वे जातीय उन्मूलन का सूत्र देते हुए कहते हैं-

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजै ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।।[11]

वे साम्प्रदायिक सद्भावना का सूत्र देते हुए कहते हैं-

हिन्दू कहे मोहि राम पियारा, तुरूक कहे रहिमाना।
आपस में दोउ लड़ि-लड़ि मुये, मरम न काहू जाना।।
वही महादेव, वही मुहम्मद, ब्रह्मा आदम कहिये।
को हिन्दू को तुरूक कहावे, एक जिमि पर रहिये।।[12]

वे छुआछूत की धारणा को खारिज करते हुए कहते है-

एके त्वचा हाड़ मल मूत्रा, एक रूधिर एक गुदा।
एक बुन्द से सृष्टि रचि है, को ब्राह्मण को शूद्रा।।[13]

वे साम्प्रदायिक सद्भाव का सूत्र देते हुए कहते हैं-

पुरब दिशा हरि को बासा, पश्चिम अल्लह मुकामा।
दिल में खोज दिलही मा खोज, इहै करीमा रामा।।[14]
मन्दिर तोड़ो, मस्जिद तोड़ो, तो कुछ नहीं मुजायका है।
पर किसी का दिल मत तोड़ो, यह घर खास खुदा का है।।

वे आर्थिक समानता को सूत्र देते हुए कहते हैं-

सांई इतना दीजिये, जामें कुटुम्ब समाय।

मै भी भूखा न रहुं, साधु न भूखा जाय।।[15]

वे पारस्परिक प्रेम के महत्व को प्रस्थापित करने वाला सूत्र देते हुए कहते है-

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।।[16]

वे मानव-सेवा को सर्वोपरि धर्म बताते हुए कहते हैं-

कबीर जेते आतमा, तेते शालिग्राम।
बोलनहारा पूजिये, पाहन सो क्या काम ।।
तो तु आया जगत में, तो ऐसा करि लेय।
कर साहेब को बन्दगी, भूखे को कछु देय ।।[17]

शोषण दमन मुक्त समाज का सूत्र देते हुए वे कहते हैं-

निर्बल को न सताइये, वाकी मोटी हाय।
बिना जीभ के स्वांस से, लोह भस्म हो जाय।।
माटी कहे कुम्हार से, तुं क्या रौंदे मोह।
एक दिन ऐसा आयेगा, मैं रौदुंगा तोय।।[18]

वे राग-द्वेष से मुक्त सम्पूर्ण मानवता की कल्याण-कामना का मंत्र देते हुए कहते हैं-

कबीर खड़ा बाजार में, मांगे सबकी खैर।
न काहू से दोस्ती, न काहू से बैर।।[19]

सन्त कबीर के साहित्य-चिन्तन में वर्णित वर्णभिमान रहित मानवता साम्प्रदायिकता रहित शाश्वत धर्म, आपसी वैमनस्यता रहित पारस्परिक प्रेम, संकीर्ण मानसिकताजन्य विषमता रहित समानता और समरसता से परिपूर्ण सदभाव तथा सबके स्वास्थ्य, सम्मान, सुरक्षा और शान्ति की मंगलकामना आदि के भावात्मक सूत्र ही वास्तव में आदर्श राष्ट्रीयता का मूलाधार और दर्पण है। उनके साहित्य में समाहित आदर्श राष्ट्रीयता के दर्पण के आलोक में हीं भारतवर्ष के प्रायः राष्ट्रनायकों ने भारतवर्ष को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक स्तर से एक आदर्श राष्ट्र के रूप में प्रस्थापित करने का प्रयत्न किया है। इसलिए भारतवर्ष का संविधान भी सन्त कबीर के आदर्श राष्ट्र के अवधारणाओं का प्रतिरूप प्रतीत होता है। तभी तो सन्त कबीर के साहित्य-चिंतन में समाहित आदर्श राष्ट्र के अवधारणा की झलक भारतीय संविधान के उद्येशिका में परिलक्षित होती है - ''हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व-संपन्न, सामजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिको कोः समाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज 26 जनवरी 1949 ई. को एतदद्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मर्पित करते है।''

संत कबीर के चिन्तन-दर्शन में वर्णित आदर्श राष्ट्रीयता की अवधारणा से प्रभावित भारतीय संविधान के प्रस्तावना और प्रारूप को देखकर ही महाराष्ट्र के प्रसिद्ध प्रखर प्रवक्ता डॉ. वेदप्रकाश मिश्र ने नागपुर में कबीर विचारगोष्ठी के भाषण में कहा था- ''संविधान की इक्वैलिटी कबीर के सपनों की इक्वैलिटी है, संविधान का जस्टिस कबीर के जेहन का जस्टिस है। संविधान की लिबर्टी कबीर के कन्टेम्पलेटेड लिबर्टी है और संविधान की फ्रैटर्निटी कबीर के साहित्य के अन्दर बसने वाली फ्रैटर्निटी है। कबीर का साहित्य संविधान की लिबर्टी का प्रारूप है। कबीर की सोच संविधान की इक्वैलिटी का सपना है। कबीर का चिन्तन फ्रेटर्निटी का परिवाहक है और कबीर के सुन्दर

सपनों के भारत का परिदृश्य जस्टिस ए लिबर्टी का आगार है। यह इस देश के संविधान के अन्तर्गत बसने वाला कबीर है। कबीर में संविधान है और सविधान में कबीर है।''[20]

निष्कर्ष - सन्त कबीर के साहित्य में वर्णित राष्ट्र राजनीतिक एवं भौगोलिक समीओं से परे एक मानवधर्मी राष्ट्र है, जो प्रेम पर आधारित है, समता पर टिका है, सत्य और न्याय को धर्म मानता है, श्रम को सम्मान देता है तथा समस्त भेदभाव से रहित मनुष्यता को सर्वापरि मानता है। जब विश्व-समुदाय जाति धर्म, भाषा क्षेत्र वर्ग आदि के आधार पर संघर्षरत और विभाजित हो रही है, तब कबीर का ढाई आखर प्रेम का पाठ पढ़ाने वाला संदेश सम्पूर्ण मानव-समाज को एक सूत्र में बांध सकता है। सन्त कबीर के साहित्य में समाहित आदर्श राष्ट्रीयता की अवधारणा आधुनिक भारत सहित किसी भी देश के लिए नैतिक, सामजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और मानवीय गरिमा की सर्वोच्च शिखर पर प्रतिष्ठित करने के साथ-साथ सभ्य समाज और आदर्श राष्ट्र निर्माण की भूमिका का पथ प्रशस्त करता है। एतदर्थ समग्र अध्ययन एवं गहन अन्वेषण के उपरान्त स्पष्ट होता है कि सन्त कबीर का साहित्यः आदर्श राष्ट्रीयता का दर्पण है।

संदर्भ-सूची :

1. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, कबीर, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, मुंबई, संस्करण-1942 पृष्ठ-217
2. सिंह, डॉ. बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- 2022, पृष्ठ-88-91
3. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, श्री प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2019, पृष्ठ-15
4. मुन्सी, प्रेमचन्द, प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम सम्मेलन में दिया वक्तव्य- साहित्य का उद्येश्य से उद्धृत, 1936
5. शर्मा, डॉ., रामविलास, परम्परा और मूल्यांकन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- 2016, पृष्ठ-5
6. द्विवेदी, आचार्य महावीर प्रसाद, साहित्य की महत्ता, सरस्वती पत्रिका, संस्करण-1914
7. द्विवेदी, डॉ., हजारी प्रसाद, धर्मयुग, 27 मई से 2 जून, संस्करण- 1979ए पृष्ठ- 29
8. त्रिगुणायत, डॉ. गोविन्द, कबीर विचारधारा, साहित्य निकेतन, कानपुर, संस्करण-1953 पृ. - 4
9. परसाई, हरिशंकर, वैष्णव की फिसलन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- दसवां 2019
10. बीजक, कबीर पारख संस्थान, प्रयागराज, साखी- 15 संस्करण-2008, पृष्ठ-128
11. वही, साखी-15 पृष्ठ-12
12. बीजक, कबीर पारख संस्थान, प्रयागराज, शब्द - 4 संस्करण-2008, पृष्ठ-49
13. बीजक, कबीर पारख संस्थान, प्रयागराज, शब्द - 30 संस्करण-2008, पृष्ठ-62
14. बीजक, कबीर पारख संस्थान, प्रयागराज, शब्द - 97 संस्करण-2008, पृष्ठ-90
15. साखी ग्रंथ, कबीर पारख संस्थान, प्रयागराज, संस्करण-2008, पृष्ठ-47
16. वही
17. वही,
18. वही,
19. वही,
20. वही,
21. कबीर पारख संस्थान, इलाहाबाद, से प्रकाशित- पारख प्रकाश, जुलाई-2005, पृ.-58

santabhaysahebje@gmail.com

मो. 9430497678

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 46-50
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

सामाजिक चेतना के संदर्भ में पंडित दीन दयाल उपाध्याय और अटल बिहारी बाजपेयी के साहित्य की प्रासंगिकता

रितु शर्मा
शोध छात्रा ,
प्रोफेसर इंद्र सिंह ठाकुर
शोध निदेशक,
दीन दयाल उपाध्याय केंद्र
डॉ अशोक कुमार
सह निदेशक,
(हिंदी विभाग) हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय,धर्मशाला

भारत की सनातन संस्कृति में पंडित दीनदयाल उपाध्याय और अटल बिहारी वाजपेयी भारतीय चिंतन के वह स्तंभ है, जिनका साहित्य केवल ऐतिहासिक या राजनीतिक दस्तावेज नहीं अपितु सनातन संस्कृति की गहरी समझ, सामाजिक चेतना, सत्य के प्रबल पक्षधर, शाश्वत मूल्यों का संरक्षण और मानवीय मूल्यों की सशक्त अभिव्यक्ति है। जिन्होंने अपने वैचारिक क्रांति से भारतीय जनमानस की आत्मा को पहचाना और उनकी पीड़ा को समझा और मानवता के उत्थान में जो प्रशंसनीय कार्य किया उसके लिए आने वाले पीढ़ी सदैव ऋणी रहेगी। चेतना वह तत्व है जो मानव को पशु से भिन्न उचित = अनुचित, अच्छाई बुराई व किसी भी परिस्थिति की अनुकूलता और प्रतिकूलता के बारे में जानकारी उपलब्ध कराता है।"चेतन निष्प्राण मृतप्राय और शून्य में जिजीविषा की विद्युत तरंगों को संचार करके मानव जाति के लिए सुख और आह्लाद का कारण बनती है। चेतना अपने समग्र रूप में सत्य, शिव, सुंदर की विपुल और कल्याणकारी मानसिकता की खोज में आतुर भाव से आकंठ निमग्न रहती है। मन और आत्मा की गुत्थियों और गांठों को सुलझाने और खोलने का कार्य चेतन करती है। जीवन के प्रति आस्था, उन्नति के लिए आकांक्षा, गंतव्य के निर्धारण की क्षमता, संकल्प की संपूर्ति के लिए संघर्षशील दृष्टिकोण का निर्माण केवल चेतना शक्ति द्वारा ही संभव है।"1 साहित्य जगत एवं राजनीति में अटल बिहारी वाजपेयी और दीनदयाल उपाध्याय केवल नाम नहीं ऋषि तुल्य नेता ही नहीं भारतीय परंपरा के प्रतीक थे जिन्होंने पूरे विश्व में हिंदी भाषा को प्रतिष्ठित कर सनातन संस्कृति को गौरवान्वित किया।यह युग पुरुष अभिव्यक्ति के धनी,आदर्श नेता संपूर्ण भारतवासियों के लिए प्रेरणा का प्रतीक थे।वे राजनीतिज्ञ के साथ साथ दार्शनिक और संवेदनशील चिंतक भी थे। उनके मनुष्य जीवन

की समग्रता का मूल्यांकन उनके दार्शनिक और चिंतन धारा को परिपूर्ण बनता है। लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति आस्था रखते हुए यह लोकतंत्र के आदर्श एवं मर्यादाओं के प्रति सदैव सचेत रहे हैं। लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में पक्ष हो या विपक्ष किसी से भी कोई द्वेष न रखते हुए दोनों युग पुरुष आम व्यक्ति के विचारधारा का सम्मान करते थे। उनके घात प्रतिघात विचारों से संवेदनशील जनमानस की चेतना सदैव प्रभावित होती रही है।" सामाजिक अस्तित्व, अंतर विरोध,असंगतिया,विसंगतियां, प्रबुद्ध संवेदनशील बुद्धिजीवी की मानसिकता को निरंतर कचोटती तथा कुरेदती हैं। ऐसे परिवेश से रचनाकार की चेतना निरंतर परिवर्तित ,विकसित तथा प्रबुद्ध होती जाती है। वह अपनी सचेत दृष्टि से ऐसे अंतरविरोधी परिवेश के प्रति अपनी प्रतिक्रिया देता है, जिसके मूल में उसकी सपाट एवं संश्लेषित अंतर दृष्टि ही उसकी चेतना कहलाती है।।"2 दोनों ही चिंतकों के साहित्य में चेतना किसी वैचारिक रूप में नहीं अपितु जीवन के अनुभव, सांस्कृतिक विरासत, ज्ञान और भक्ति,अनुभूति और अभिव्यक्ति, शांति और क्रांति के समन्वय से विकसित हुई है। उनके लेखन का केंद्र जीवंत संघर्षरत शाश्वत मूल्यों को आत्मसात करता हुआ वह मानव है जिनकी सामाजिक चेतना पाठकों को यह विश्वास दिलाता है कि समाज केवल व्यक्तियों का समूह नहीं,अपितु वे जीवंत इकाई है जिसकी अपनी परंपरा और सांस्कृतिक चेतना होती है। वे मानते थे की विकास केवल आर्थिक समृद्धि का नाम नहीं अपितु समाज के सभी वर्गों को सम्मानजनक जीवन प्राप्त न हो तब तक वह समृद्धि सार्थक नहीं होता है। उनका सामाजिक चिंतन शोषण और वंचित वर्गों की आवाज बनकर सामने आता है, जो सामाजिक समरसता और समानता पर बल देता है। उनके अनुसार समाज सचेत व्यक्तियों का वह समूह है जो पारस्परिक विचार विमर्श के माध्यम से एक दूसरे से जुड़ा होता है।केवल भीड़ के रूप में एकत्रित रहना ही समाज नहीं अपितु समाज वह व्यवस्थित समूह है जिसकी जितनी भी गतिविधियां है वह व्यक्तियों के पारस्परिक संबंधों पर आश्रित है,जिसमें सभी वर्ग के लोग परस्पर सामूहिक कार्य करने के साथ नैतिक मूल्यों को आत्मसात करते हुए मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करने का प्रयास करते हैं। सामाजिक चेतना एक तरह का युग बोध है। "किसी साहित्यकार की सामाजिक चेतना संक्षिप्त में वह युग चेतना भी है जिसमें वर्ग चेतना, जातिगत चेतना, सांप्रदायिक चेतना या क्षेत्रीय चेतना किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती है। जो कि साहित्य के सैद्धांतिक पहलुओं, विषयगत विचारधाराओं तथा संरचनात्मक प्रकरणों की केंद्रीय बुनियाद सिद्ध होती है। चेतना रचनाकार के चिंतन बोध अनुभव संपन्न की प्रतिक्रियात्मक सूक्ष्म पारदर्शी अंतर दृष्टि है, जो वैयक्तिक,सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनैतिक संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में उद्घाटित योग बोध संपृक्त बहुआयामी परतों को यथार्थपरक कलात्मक ढंग से संश्लिष्ट रूपों में आत्मसात किए हुए हैं। चेतना विहीन सृजनात्मक लेखन न तो स्थाई भाव मूल्यों का संस्थापक हो सकता है न ही कालजयी रचना धर्म।"3 पंडित दीनदयाल उपाध्याय के लेखन में सामाजिक चेतना का एक प्रमुख पक्ष सांस्कृतिक राष्ट्र बोध है। वह संस्कृति को संपूर्ण समाज की आत्मा मानते हुए प्रायः कहते थे कि जब मानव समाज अपनी सांस्कृतिक जड़ों से दूर हो जाता है तब सामाजिक विघटन प्रारंभ हो जाता है। वह भौतिक समृद्धि और वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास के विरोधी नहीं थे अपितु विकास के साथ भारतीय समाज को सनातन सांस्कृतिक मूल्यों के अनुरूप ढालने के पक्षधर थे। उन के लेखन में मानव चरित्र के निर्माण में शिक्षा की भूमिका महत्वपूर्ण थी। वह ऐसी शिक्षा व्यवस्था चाहते थे जो रोजगारपरक न होकर सामाजिक दायित्व और राष्ट्रीय चेतना के विकास में सहयोग दे सके, यह तभी संभव हो सकता है जब देश का प्रत्येक जनमानस नैतिक रूप से जागृत हो। संवेदनशील साहित्यकार एवं अटल बिहारी वाजपेयी का अधिकतर साहित्य काव्यात्मक है परंतु उसमें सामाजिक चेतना उतनी ही प्रासंगिक है जितने दीनदयाल उपाध्याय उपाध्याय के लेखन में। वह एक संवेदनशील कवि, विचारशील पत्रकार और ऐसे राजनीतिज्ञ थे जिनकी कविता और गद्य दोनों में समाज के प्रति मानवीय संवेदना झलकती थी।उनकी कविताओं में सामाजिक चेतना अनेक स्तरों पर अभिव्यक्त होती है।वह मानव जीवन के निराशा, हताशा, अवसाद ,तनाव आदि विभिन्न समस्याओं को स्वीकार तो करते थे परंतु उस अंधकार में डूबने की बजाय नागरिकों को संघर्ष करने की प्रेरणा देते हुए नवचेतना का संचार भी करते थे। यह चेतना पाठकों

को भीतर तक छूता है। उनकी कविताओं में राष्ट्र केवल एक राजनीतिक इकाई नहीं अपितु भावनात्मक और सांस्कृतिक अनुभव के रूप में उपस्थित रहता है।"कदम मिलाकर चलना होगा" नामक कविता में लिखते हैं
" बाधाएं आती हैं आएं, घिरें प्रलय की घोर घटाएं, पांवों के नीचे अंगारे सर पर बरसें यदि ज्वालाएं,
निज हाथों से हंसते-हंसते आग लगाकर जलना होगा।
कदम मिलाकर चलना होगा। हास्य= रुदन में ,तूफानों में
अमर असंख्यक बलिदानों में, उद्यानों में, वीरानों में, अपमानों में, सम्मानों में, उन्नत मस्तक, उभरा सीना,
पीड़ाओं में पलना होगा, कदम मिलाकर चलना होगा।
उजियारे में, अंधकार में ,कल कछार में ,बीच धार में ,घोर घृणा में , पूत प्यार में, क्षणिक जीत में, दीर्घ हार में ,जीवन के शत शत आकर्षक, अरमानों को दलना होगा ,कदम मिलाकर चलना होगा।"4

मानवतावाद के प्रबल पुरोधा, राष्ट्रीय चेतना के उद्घोषक, संवेदनशील साहित्यकार, ओजस्वी कवि वाजपेयी जी ने अपना जीवन मानव मूल्यों के उत्थान और राष्ट्रीय की उन्नति हेतु संघर्ष को मानवता के प्रति समर्पित कर दिया। उन्होंने सफलता का मूल आधार संघर्ष को माना ताकि आने वाली पीढ़ी एक जीवंत जीवन को राष्ट्रीय उत्थान हेतु और मूल्यों के प्रति समर्पित कर सकें। देश में राजनीतिक उठा पटक और कूटनीति छल प्रपंच के क्षणों में भी कुछ समय निकालकर अटल बिहारी वाजपेयी ने विविध विषयों पर कविताओं का सृजन करके एक संवेदनशील साहित्यकार होने का परिचय दिया। उनकी कविताओं में सामाजिक चेतना के साथ हिंसा और करुणा,युद्ध और शांति,सत्ता और संवेदना जैसे विविध विषयों का चित्रण करते हुए यह भी स्वीकार करते हैं कि देश की सुरक्षा के लिए युद्ध को आवश्यक मानते हुए देश के नागरिकों को उस के दुष्परिणामों के प्रति सचेत करते हैं।" मेरी इक्यावन कविताएं" संग्रह में "पहचान"कविता के माध्यम से मानवता का स्वर ,नैतिकता, प्रकृति प्रेम, राष्ट्रवाद की अवधारणा, सनातन संस्कृति के प्रति आस्था, पड़ोसी देशों के साथ मधुर संबंध,आशा निराशा के मनोभाव के बारे में वर्णन करते हुए कहते हैं कि मानव की पहचान उसकी संपत्ति, जाति, धर्म ,पद ,प्रतिष्ठा,ताकत से नहीं अपितु उसके हृदय की विनम्रता, कोमलता और संवेदनशीलता से होती है। क्योंकि हृदय से जीने वाले लोग मानव को जोड़ने का कार्य करते हैं। मानव की पहचान के संदर्भ में लिखते हैं =
आदमी सिर्फ आदमी होता है। पता नहीं इस सीधे, सपाट सत्य को दुनिया क्यों नहीं जानती? और अगर जानती है, तो मन से क्यों नहीं मानती?
इसमें फर्क नहीं पड़ता कि आदमी कहां खड़ा है ?
पथ पर यह रथ पर?
तीर पर या प्राचीर पर?
****
आदमी की पहचान ,
उसके धन या आसान से नहीं होती,

उसके मन से होती है। मन की फकीरी पर कुबेर की संपदा भी रोती है।"5 इस प्रकार जब व्यक्ति की पीड़ा समष्टिगत वेदना की भाव भूमि पर पहुंचकर व्यक्तित्व को त्याग कर देती है, तब मानवता का रूप धारण करती है। सार रूप में परहित को प्राप्त प्राथमिकता देने वाली विचारधारा है मानवता का परिचायक है, जिसका पद, प्रतिष्ठा,ताकत, धन संपत्ति से कोई सरोकार नहीं होता ।वाजपेयी की कविताओं का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि उनके हृदय में मानव मात्र के प्रति दया,करुणा, प्रेम,परहित,पूरे विश्व के प्रति मानवता का भाव सतत रूप से देखने को मिलता है। संयुक्त राष्ट्र संघ की 35 वें अधिवेशन में विश्व रंगमंच के समक्ष कहते हैं=सभी मनुष्य समृद्ध हो,
सभी वनस्पतियों और जीव जंतु जो सभी प्राणियों के जीवन की आशा हैं, फले फूले,

सभी मनुष्य में सद्भावना हो,

सभी पशुओं में परस्पर प्रेम हो, हर तरफ शांति, शांति और शांति ही रहे। 6 आज का वातावरण सामाजिक असंवेदनशीलता, राजनीतिक पतन, भ्रष्टाचार,भाई भतीजा आदि असंख्य समस्याओं से मानवता दम तोड़ रही है। इसका दमन करने के लिए साहस और मूल्यों के प्रति निष्ठावान होने की आवश्यकता होती है। एक साहित्यकार होने के नाते उन्होंने जनमानस में जो चेतना का संचार कर के समाज के प्रति अपने दायित्व का सही अर्थों में निर्वहन किया। यदि पंडित दीनदयाल उपाध्याय और वाजपेयी के साहित्य का मूल्यांकन करें तो स्पष्ट होता है कि दोनों की सामाजिक चेतना का आधार समान है लेकिन अभिव्यक्ति भिन्न है। पंडित दीनदयाल का लेखन अधिक सैद्धांतिक और वैचारिक है ,तो अटल बिहारी वाजपेयी का साहित्य भावात्मक और काव्यात्मक है। परंतु सामाजिक चेतना का संचार, समाज में नैतिक मूल्यों को प्रतिष्ठित करना ,सांस्कृतिक और मानवीयता का उत्थान दोनों का ही प्रमुख लक्ष्य रहा है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय के संदर्भ में अटल बिहारी वाजपेई ने कहा था " राजनीति उनके लिए साधन थी, साध्य नहीं। यह मार्ग था, मंजिल नहीं। वे राजनीति का अध्यात्मीकरण करना चाहते थे। वे भारत के उज्जवल अतीत से प्रेरणा लेते थे तथा उज्ज्वलतर भविष्य का निर्माण करना चाहते थे।उनकी आस्थाएं सदियों पुराने अक्षय राष्ट्रीय जीवन की जड़ों से रस ग्रहण करती थीं, किंतु वे रूढ़िवादी नहीं थे। भविष्य के निर्माण के लिए वे भारत को समृद्धशाली आधुनिक राष्ट्रीय बनाने की कल्पना लेकर चले थे।"7 दीनदयाल उपाध्याय व्यक्ति को समाज से अलग न देखकर उसे समाज का अभिन्न अंग मानते थे। वहीं वाजपेयी व्यक्ति की संवेदना को समाज के अनुभव से जोड़ते थे।उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से सामाजिक चेतना का वह रूप प्रस्तुत किया जिसमें न व्यक्ति की उपेक्षा हुई और न ही समाज की। इन दोनों का साहित्य भारतीय सामाजिक चेतना की वह पूरक धाराएं हैं जिन्होंने अपने विचार और दर्शन के माध्यम से समाज को नई दिशा दी जो आज भी समस्त जनमानस के लिए अनुकरणीय है। वह एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे जिसमें सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, नैतिकता, शाश्वत मूल्यों का संरक्षण, सत्य की स्थापना को राष्ट्रहित और मानवता के लिए अपरिहार्य मानते हैं। दीनदयाल जी का मनुष्य जीवन की समग्रता का मूल्यांकन उनके चिंतन धारा को परिपूर्ण बनता है।मानव की मूल प्रेरणाएं धर्म, काम ,अर्थ,मोक्ष, मनुष्य जीवन की परिपूर्णता के आधार और व्यष्टि से समष्टि ,सृष्टि से परमेष्ठि सभी के पारस्परिक संबंधों की श्रृंखला चिंतन के प्रमुख सूत्र रहे हैं।"दीनदयाल उपाध्याय का वैचारिक अधिष्ठान सामाजिक व सांस्कृतिक था। इस सामाजिक सांस्कृतिक दृष्टि के प्रकाश में उन्होंने राजनीतिक व आर्थिक विषयों का विवेचन किया। राजनीतिक जीवन के अलावा सामाजिक जीवन, जिसमें परिवार, विवाह, स्त्री पुरुष संबंध, जाति पंथ व लोकाचार आदि विषय आते हैं, पर उपाध्याय ने ज्यादा बोला या लिखा नहीं है। वे जिस सामाजिक चेतना की बात करते थे वह मुख्यतः समाज की राजनीतिक =सांस्कृतिक चेतना थी।"8 इस प्रकार पंडित दीनदयाल उपाध्याय और अटल बिहारी वाजपेई की सामाजिक चेतना का मूलाधार मानव था।वह मानव को केवल सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक नागरिक के रूप में नहीं अपितु एक सांस्कृतिक ,आध्यात्मिक और नैतिक सत्ता के रूप में देखते थे। उन का प्रसिद्ध सिद्धांत भारतीय सामाजिक मानवतावाद भारतीय सामाजिक चिंतन में एक अविस्मरणीय योगदान माना जाता है। उनके अनुसार सामाजिक उत्थान केवल उत्पादन बढ़ाना या संपत्ति संग्रह करना नहीं मनुष्य के शरीर,मन,बुद्धि,आत्मा के चारों आयामों का संतुलित विकास है। उनके अनुसार व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में"व्यक्ति शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का समुच्चय है।व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में चारों का ध्यान रखना होगा। चारों के भूख मिटाए बिना व्यक्ति न तो सुख का अनुभव और न अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है। भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार की उन्नति आवश्यक है। आजीविका के साधन, शांति, ज्ञान एवं तादात्म्य भाव से यह भूखें मिटती हैं। सर्वांगीण विकास की कामना ही व्यक्ति को समाज हित में कार्य की प्रेरणा देती है।"9 अटल बिहारी वाजपेयी की सामाजिक चेतना दीनदयाल उपाध्याय की वैचारिक विरासत से प्रेरित होते हुए व्यवहारिक राजनीति और लोकतांत्रिक शासन के धरातल पर विकसित हुई।किसी भी

साहित्यकार का कृतित्व व्यक्ति और समाज दोनों का दर्पण होता है और यथार्थ चित्रण ही लेखक के साहित्य को प्रासंगिक और लोकप्रिय बनाता है। अटल बिहारी वाजपेयी और दीन दयाल उपाध्याय के साहित्य का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि उन की रचना में पाठकों को बांधने की अद्भुत क्षमता है। वर्तमान समय में समाज को ऐसे साहित्यकार की आवश्यकता है, जो भविष्य निर्माण की चिंता करते हुए आम नागरिकों में सच्चे कर्तव्य बोध जगाए। वही साहित्यकार श्रेष्ठ होता है जो अपनी रचनात्मक दृष्टि से आम जनमानस में सामाजिक चेतना का संचार करें।" साहित्य का मानव जीवन के साथ चिरंतन संबंध होता है। सामाजिक प्राणी होने के कारण क्रियाकलापों में ही नहीं, विचारों में भी वह सामाजिक बना रहता है। समाज के किसी वर्ग से साहित्यकार का घनिष्ठ संबंध रहता है। वह परिवेश रचनाकार की मनोवृति और उसके द्वारा साहित्यिक चेतना को प्रभावित करती है। साहित्य अपने व्यक्त या मूर्त रूप में रचना अथवा कृति है, किंतु अव्यक्त रूप में कृति के पीछे कृतिकर का व्यक्तित्व और कृतिकर के व्यक्तित्व के पीछे उसका सामाजिक परिवेश रहता है। अतः साहित्य का एक छोर सामाजिक परिवेश के साथ अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है।"10

इस प्रकार भारतीय राजनीति और साहित्य में अटल बिहारी वाजपेयी और पंडित दीनदयाल उपाध्याय ऐसे विशिष्ट चरित्र है जो अपने साहित्य में अभिव्यक्त सामाजिक चेतना तथा मानवता का पक्ष रखते हुए चिंतन के उस विरासत को अवलोकित करते हैं जो आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिक हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि इनका साहित्य मानवता की अपार संभावनाओं को लिए हुए हैं जो विभिन्न पहलुओं तथा आयामों को ध्यान में रखते हुए आज के वैज्ञानिक एवं भौतिकवादी युग में मानवीय चेतना की संभावनाओं को पुनः प्रतिष्ठित किया जा सकता है

संदर्भ सूची

1. डॉ देवराज पथिक, नई कविता में राष्ट्रीय चेतना,कादंबरी प्रकाशन,नई दिल्ली,संस्करण 1985,पृष्ठ 23
2. राकेश कुमार,धूमिल की काव्य चेतना विविध आयाम,ज्योति प्रकाशन पटियाला,संस्करण 1986, पृष्ठ 9
3. डॉ राजिंदर पाल जिंदल,सामाजिक चेतना तथा बच्चन काव्य,यूनिस्टार प्रकाशन,चंडीगढ़,संस्करण 2009, पृष्ठ 19=20
4. डॉ इंद्र सिंह ठाकुर (संपादक),भारतरत्न अटल बिहारी वाजपेयी जीवंत व्यक्तित्व एवं अटल चिंतन,सचिव हिमाचल कला एवं संस्कृति भाषा अकादमी शिमला,संस्करण 2019,पृष्ठ 372
5. डॉ इंद्र सिंह ठाकुर (संपादक)भारत रत्न अटल बिहारी वाजपेयी जीवंत व्यक्तित्व एवं अटल चिंतन, सचिव हिमाचल प्रदेश कला एवं संस्कृति भाषा अकादमी, शिमला, संस्करण 2019,पृष्ठ475=476
6. चंद्रिका प्रसाद शर्मा(संपादक)कवि और राजनेता अटल बिहारी वाजपेयी,किताब घर प्रकाशन ,दिल्ली,संस्करण 1999,पृष्ठ 404
7. अमरजीत सिंह (संपादक) एकात्म मानववाद के प्रणेता दीनदयाल उपाध्याय, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली,संस्करण 2018, पृष्ठ 78
8. डॉ महेश चंद्र,पंडित दीनदयाल उपाध्याय कर्तृत्व एवं विचार,प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली,संस्करण 2024,पृष्ठ 272
9. दीन दयाल उपाध्याय,एकात्म मानववाद तत्व मीमांसा, सिद्धांत, विवेचन, प्रभात प्रकाशन,नई दिल्ली,संस्करण 2024,पृष्ठ 48
10. डॉ सोफिया मैथ्यू,स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में सामाजिक चेतना,सूर्य भारती प्रकाशन,नई दिल्ली,संस्करण 1996,पृष्ठ 19

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 51-55
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

शारीरिक शिक्षा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एक नजर में

मदन मोहन मिश्रा
शोधार्थी (शारीरिक शिक्षा),
सोना देवी विश्वविद्यालय घाटशिला,पूर्वी सिंहभूम

सारांश
इक्कीसवीं सदी की शिक्षा व्यवस्था तीव्र सामाजिक, आर्थिक और तकनीकी परिवर्तनों के दौर से गुजर रही है। ऐसे समय में शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान हस्तांतरण तक सीमित नहीं रह गया है, बल्कि मानव के सर्वांगीण विकास को सुनिश्चित करना उसका केंद्रीय लक्ष्य बन गया है। इसी परिप्रेक्ष्य में भारत सरकार द्वारा घोषित **"राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020"** एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ के रूप में उभरती है, जो शिक्षा को समग्र, समावेशी और जीवनोपयोगी बनाने का प्रयास करती है। इस नीति में शारीरिक शिक्षा को एक अनिवार्य और मूलभूत शैक्षिक घटक के रूप में स्वीकार किया गया है।

बीज शब्द- शारीरिक शिक्षा, शिक्षा नीति, समावेशी, ज्ञानात्मक अधिगम, शिक्षा दर्शन I

विश्लेषण

शारीरिक शिक्षा को लंबे समय तक शिक्षा व्यवस्था में एक सहायक या गौण विषय के रूप में देखा जाता रहा है। किंतु बदलती जीवनशैली, बढ़ते मानसिक तनाव और स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं ने यह स्पष्ट कर दिया है कि बिना शारीरिक सुदृढ़ता के बौद्धिक एवं नैतिक विकास संभव नहीं है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इसी यथार्थ को स्वीकार करते हुए शारीरिक शिक्षा को मुख्यधारा की शिक्षा से जोड़ती है। प्रस्तुत अध्ययन में शारीरिक शिक्षा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अंतर्संबंधों का गहन एवं अकादमिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

इसके अतिरिक्त, वैश्विक स्तर पर शिक्षा संबंधी विमर्श यह संकेत देता है कि शारीरिक निष्क्रियता आधुनिक समाज की एक गंभीर समस्या बन चुकी है। विद्यार्थियों में बढ़ती जीवनशैली संबंधी बीमारियाँ, मोटापा तथा मानसिक थकान इस तथ्य को पुष्ट करती हैं कि शिक्षा व्यवस्था को अब केवल कक्षा-केंद्रित दृष्टिकोण से आगे बढ़ना होगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए शिक्षा को जीवन से जोड़ने का प्रयास करती है, जहाँ शारीरिक शिक्षा ज्ञानात्मक अधिगम की आधारशिला के रूप में उभरती है। इस प्रकार नीति शारीरिक शिक्षा को मात्र सह-पाठ्य गतिविधि न मानकर, शिक्षा के मूल उद्देश्य से जोड़ती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का दार्शनिक आधार

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का आधार भारतीय शिक्षा दर्शन और वैश्विक शैक्षिक चिंतन दोनों से प्रेरित है। यह नीति शिक्षा को मानव के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और नैतिक विकास की समग्र प्रक्रिया के रूप में देखती है। नीति का यह दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि शिक्षा केवल परीक्षा-केन्द्रित नहीं, बल्कि जीवन-केन्द्रित होनी चाहिए।

नीति के अनुसार स्वस्थ शरीर और संतुलित मन के बिना गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की कल्पना अधूरी है। यही कारण है कि नीति में खेल, योग, फिटनेस, कला और शारीरिक गतिविधियों को शैक्षिक संरचना का अभिन्न अंग माना गया है। यह दृष्टिकोण उस पारंपरिक सोच से भिन्न है, जिसमें शारीरिक शिक्षा को केवल समयपूरक गतिविधि माना जाता था।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का दार्शनिक दृष्टिकोण भारतीय चिंतन परंपरा के उस सिद्धांत से मेल खाता है, जिसमें शरीर और मन को अविभाज्य माना गया है। उपनिषदों और प्राचीन भारतीय ग्रंथों में भी यह स्वीकार किया गया है कि स्वस्थ शरीर ही स्वस्थ बुद्धि का आधार है। इसी विचार को आधुनिक शैक्षिक संदर्भ में पुनः स्थापित करते हुए नीति 2020 शारीरिक शिक्षा को शैक्षिक दर्शन का एक अनिवार्य घटक घोषित करती है। यह दृष्टिकोण शिक्षा को केवल ज्ञान-संचय न बनाकर व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करता है।

शारीरिक शिक्षा की अवधारणा: राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 शारीरिक शिक्षा को केवल खेल गतिविधियों तक सीमित नहीं रखती, बल्कि इसे स्वास्थ्य, अनुशासन, चरित्र निर्माण और सामाजिक विकास से जोड़कर देखती है। नीति में यह स्वीकार किया गया है कि शारीरिक शिक्षा छात्रों को न केवल स्वस्थ बनाती है, बल्कि उनमें जीवन कौशलों का विकास भी करती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुसार शारीरिक शिक्षा अनुभवात्मक अधिगम का एक प्रभावी माध्यम है। इसके माध्यम से छात्र अनुशासन, सहयोग, नेतृत्व, आत्म-नियंत्रण और सहिष्णुता जैसे गुणों को व्यवहारिक रूप में सीखते हैं। यह अधिगम पुस्तकीय ज्ञान की तुलना में अधिक स्थायी और प्रभावी होता है।

शारीरिक शिक्षा की अवधारणा को राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में व्यापक सामाजिक संदर्भों से भी जोड़ा गया है। इसमें यह स्पष्ट किया गया है कि शारीरिक शिक्षा छात्रों को केवल व्यक्तिगत स्तर पर ही नहीं, बल्कि सामूहिक और सामाजिक स्तर पर भी विकसित करती है। खेल एवं शारीरिक गतिविधियों के माध्यम से छात्रों में सामाजिक सहभागिता, सहयोगात्मक भावना तथा नैतिक अनुशासन का विकास होता है। इस प्रकार शारीरिक शिक्षा शिक्षा प्रणाली में सामाजिक मूल्यों के संवर्धन का भी एक सशक्त माध्यम बनती है।

योग और पारंपरिक भारतीय शारीरिक अभ्यासों की भूमिका

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में योग एवं पारंपरिक भारतीय शारीरिक अभ्यासों को विशेष महत्व दिया गया है। यह पहल न केवल स्वास्थ्य संवर्धन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि भारतीय ज्ञान परंपरा को आधुनिक शिक्षा प्रणाली से जोड़ने का प्रयास भी है।

योग को राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शारीरिक और मानसिक संतुलन का प्रभावी साधन माना गया है। महाविद्यालयीन छात्रों के संदर्भ में योग तनाव प्रबंधन, एकाग्रता, वृद्धि और आत्म-अनुशासन के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके अतिरिक्त, पारंपरिक खेल और शारीरिक अभ्यास सांस्कृतिक पहचान को सुदृढ़ करने में भी सहायक होते हैं।

बहुविषयक शिक्षा और शारीरिक शिक्षा

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 बहुविषयक शिक्षा पर विशेष बल देती है। इस दृष्टिकोण के अंतर्गत शारीरिक शिक्षा को विज्ञान, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र और स्वास्थ्य अध्ययन जैसे विषयों से जोड़कर देखा जा सकता है। इससे शारीरिक शिक्षा एक व्यावहारिक गतिविधि से आगे बढ़कर एक अकादमिक एवं शोधोन्मुख विषय के रूप में स्थापित होती है।

उदाहरणस्वरूप, खेल मनोविज्ञान के माध्यम से छात्रों के मानसिक व्यवहार का अध्ययन, खेल विज्ञान के माध्यम से शारीरिक क्रियाओं का विश्लेषण तथा स्वास्थ्य शिक्षा के माध्यम से जीवनशैली संबंधी मुद्दों पर शोध संभव हो पाता है। यह दृष्टिकोण शारीरिक शिक्षा के शैक्षिक महत्व को और अधिक सुदृढ़ करता है।

बहुविषयक शिक्षा के संदर्भ में शारीरिक शिक्षा का महत्व इस तथ्य में निहित है कि यह सैद्धांतिक ज्ञान को व्यवहारिक अनुभव से जोड़ती है। जब शारीरिक शिक्षा को विज्ञान, मनोविज्ञान और स्वास्थ्य अध्ययन से जोड़ा जाता है, तब यह एक स्वतंत्र अकादमिक अनुशासन के रूप में विकसित होती है। इससे शारीरिक शिक्षा में शोध की संभावनाएँ भी विस्तृत होती हैं, जो उच्च शिक्षा संस्थानों में इसके अकादमिक स्वरूप को सुदृढ़ बनाती हैं।

शारीरिक शिक्षा और जीवन कौशल विकास

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 जीवन कौशल आधारित शिक्षा पर बल देती है। शारीरिक शिक्षा इस उद्देश्य की पूर्ति में एक सशक्त माध्यम है। खेल और शारीरिक गतिविधियाँ छात्रों को निर्णय-निर्माण, समस्या-समाधान, टीमवर्क और नेतृत्व जैसे कौशल विकसित करने का अवसर प्रदान करती हैं।

महाविद्यालयीन स्तर पर ये कौशल विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाते हैं, क्योंकि यही कौशल आगे चलकर व्यावसायिक और सामाजिक जीवन में सफलता का आधार बनते हैं। इस प्रकार शारीरिक शिक्षा नीति 2020 के जीवनोपयोगी शिक्षा के लक्ष्य के अनुरूप कार्य करती है।

जीवन कौशल विकास के संदर्भ में शारीरिक शिक्षा छात्रों को वास्तविक जीवन की परिस्थितियों से जूझने के लिए तैयार करती है। खेल गतिविधियों में हार और जीत दोनों का अनुभव छात्रों में सहनशीलता और आत्म-विश्लेषण की क्षमता विकसित करता है। नीति 2020 का यह दृष्टिकोण स्पष्ट करता है कि शारीरिक शिक्षा केवल तात्कालिक आनंद का माध्यम नहीं, बल्कि दीर्घकालिक व्यक्तित्व विकास का आधार है।

समावेशिता और समान अवसर

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 शिक्षा में समावेशिता और समान अवसरों पर विशेष बल देती है। शारीरिक शिक्षा इस संदर्भ में एक प्रभावी साधन के रूप में उभरती है। खेल और शारीरिक गतिविधियाँ जाति, वर्ग, लिंग और सामाजिक पृष्ठभूमि के भेदभाव को कम करने में सहायक होती हैं।

नीति के अनुसार सभी छात्रों को शारीरिक गतिविधियों में सहभागिता का समान अवसर मिलना चाहिए। इससे न केवल सामाजिक समानता को बढ़ावा मिलता है, बल्कि छात्रों में पारस्परिक सम्मान और सहयोग की भावना भी विकसित होती है।

शारीरिक शिक्षा के माध्यम से समावेशी शिक्षा का उद्देश्य अधिक प्रभावी ढंग से प्राप्त किया जा सकता है, क्योंकि खेल और शारीरिक गतिविधियाँ प्राकृतिक रूप से सहभागिता पर आधारित होती हैं। नीति 2020 यह संकेत देती है कि जब सभी छात्रों को समान अवसर प्रदान किए जाते हैं, तब सामाजिक भेदभाव स्वतः कम होता है। इस प्रकार शारीरिक शिक्षा सामाजिक समरसता को बढ़ावा देने का एक व्यवहारिक साधन बन जाती है।

शारीरिक शिक्षा और स्वस्थ नागरिक निर्माण

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का अंतिम उद्देश्य एक ऐसे नागरिक का निर्माण करना है जो शारीरिक रूप से स्वस्थ, मानसिक रूप से संतुलित और सामाजिक रूप से उत्तरदायी हो। शारीरिक शिक्षा इस उद्देश्य की प्राप्ति में केंद्रीय भूमिका निभाती है।

स्वस्थ नागरिक न केवल स्वयं के जीवन को बेहतर बनाते हैं, बल्कि समाज और राष्ट्र के विकास में भी योगदान देते हैं। इस दृष्टि से शारीरिक शिक्षा को राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया से भी जोड़ा जा सकता है।

आलोचनात्मक विवेचन

यद्यपि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में शारीरिक शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है, फिर भी इसके प्रभावी क्रियान्वयन में अनेक चुनौतियाँ विद्यमान हैं। प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी, आधारभूत संरचना का अभाव और शारीरिक शिक्षा को अब भी गौण मानने की मानसिकता जैसी समस्याएँ इसके मार्ग में बाधक बन सकती हैं।

अतः यह आवश्यक है कि नीति के उद्देश्यों को केवल दस्तावेज़ों तक सीमित न रखकर, व्यवहारिक स्तर पर लागू किया जाए। इसके लिए शिक्षण संस्थानों, शिक्षकों और नीति-निर्माताओं के बीच समन्वय आवश्यक है।

यद्यपि नीति 2020 में शारीरिक शिक्षा को वैचारिक स्तर पर पर्याप्त महत्व दिया गया है, तथापि इसके क्रियान्वयन में संस्थागत इच्छाशक्ति की भूमिका निर्णायक होगी। यदि शारीरिक शिक्षा को परीक्षा-केंद्रित शिक्षा प्रणाली में पर्याप्त स्थान नहीं मिला, तो नीति के उद्देश्य सीमित रह सकते हैं। अतः आवश्यक है कि नीति के प्रावधानों को व्यवहारिक योजनाओं और संसाधनों के माध्यम से सशक्त किया जाए।

उपसंहार

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि शारीरिक शिक्षा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के बीच गहरा और सार्थक संबंध है। नीति 2020 शारीरिक शिक्षा को शिक्षा के केंद्र में स्थापित करने का प्रयास करती है और इसे मानव के सर्वांगीण विकास का अनिवार्य घटक मानती है। शारीरिक शिक्षा न केवल स्वास्थ्य संवर्धन का माध्यम है, बल्कि यह जीवन कौशल, नैतिक मूल्य और सामाजिक उत्तरदायित्व के विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

यदि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रावधानों को प्रभावी रूप से लागू किया जाए, तो शारीरिक शिक्षा भारतीय शिक्षा प्रणाली को अधिक संतुलित, व्यावहारिक और जीवनोपयोगी बनाने में निर्णायक भूमिका निभा सकती है। इस प्रकार शारीरिक शिक्षा न केवल व्यक्तिगत विकास, बल्कि राष्ट्रीय विकास की प्रक्रिया का भी एक महत्वपूर्ण आधार बन सकती है।

सन्दर्भ:

1. संगीत बी. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020. अकादमिक गुरु पब्लिशिंग हाउस; 2024 मई 1.
2. विश्व स्वास्थ्य संगठन। स्कूलों में शारीरिक गतिविधि को बढ़ावा देना: स्वास्थ्य-प्रवर्तक स्कूल का एक महत्वपूर्ण तत्व। विश्व स्वास्थ्य संगठन; 2007।
3. कामत एम.एस., दा सिल्वा एस.वी. भारत में समावेशी शारीरिक शिक्षा का कार्यान्वयन: सामाजिक-कानूनी मुद्दे और चिंताएँ। सतत विकास;974:0066।

4. त्रिपाठी आर.सी. भारत में स्वदेशी खेलों का पुनरुद्धार: बच्चों के सामाजिक और चारित्रिक विकास को बढ़ावा देने पर उनके प्रभाव का परीक्षण। स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा में पाठ्यक्रम अध्ययन। 2024 सितंबर 12:1-2।
5. चेल्लादुरई पी. खेल और शारीरिक गतिविधि के लिए संगठनों का प्रबंधन: एक प्रणाली परिप्रेक्ष्य। रूटलेज; 2014 अप्रैल 15।
6. गुप्ता बी.एल., चौबे ए.के. उच्च शिक्षा संस्थान-एनईपी 2020 के संदर्भ में स्वायत्तता प्राप्त करने और बनाए रखने के लिए कुछ दिशानिर्देश। उच्च शिक्षा। 2021 जनवरी;9(1)।
7. श्रीवास्तव एस, तिवारी एच. छात्रों के कल्याण और शैक्षणिक सफलता पर शारीरिक शिक्षा और खेल का प्रभाव। थिंक इंडिया जर्नल। 2019 नवंबर 6;22(8):372-6.
8. कुमार आर. एक स्वस्थ राष्ट्र का निर्माण: ओलंपिक खेलों और भारतीय शिक्षा प्रणाली पर एक श्वेत पत्र। जर्नल ऑफ फैमिली मेडिसिन एंड प्राइमरी केयर। 2024 अगस्त 1;13(8):2805-18।

E.mail: madanmohanmishra71@gmail.com
Mobile- 9123114925

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 56-58
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

आरण्यक ग्रन्थों में प्राप्त यज्ञ विधान एवं उसका मीमांसा दर्शन पर प्रभाव

अभिषेक बडगोत्रा
शोध छात्र,.
डॉ० विद्याधर सिंह
शोध निर्देशक,
सह आचार्य ,
संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय जम्मू–180001

भारतीय संस्कृति को जानने के लिए वैदिक साहित्य बहुत आवश्यक है क्योंकि वैदिक साहित्य को भारतीय चिन्तन परम्परा की आधारशिला माना गया है। वेदों का विभाजन चार भागों में किया गया संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् संहिता में मन्त्र है। ब्राह्मण ग्रन्थों में मन्त्रों के व्याख्यान हैं। इन ग्रन्थों में मन्त्रों की विभिन्न दृष्टियों से व्याख्या की गयी है तथा याज्ञिक दृष्टि से उनका विनियोग बताया गया है।

आरण्यक ग्रन्थें को ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों को जोड़ने वाली कड़ी अथवा सूत्र कहा जाता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में याज्ञिक विधिविधान हैं वहीं उपनिषदों में आत्मा और ब्रह्म का दार्शनिक महत्व बताया गया है। इन दोनों के बीच आरण्यक ग्रन्थ आते हैं जो कर्म और ज्ञान के बीच सेतु का कार्य करतें हैं। आरण्यक ग्रन्थों में यज्ञ की अवधारधा का स्परूप अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि इन ग्रन्थों में यज्ञ बाह्य कर्मकाण्ड से हटकर आन्तरिक साधना और आध्यात्मिक चिन्तन का रूप ग्रहण करता है। आरण्यक शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है

अरण्ये भवम् आरण्यकम्

अरण्य में होने वाला अर्थात् जिसे वन में अध्ययन, अध्यापन किया जाए उसे आरण्यक कहा जाता है। आरण्यक के बारे में तैत्तिरीय आरण्यक के भाष्य में आचार्य सायण भी वही भाव व्यक्त करते हैं कि अरण्य में इसका पठन पाठन हुइा है इस कारण इसे आरण्यक कहा गया है।

अरण्याध्ययनादेतद् आरण्यकमितीर्यते।
अरण्ये तदधीयीतेत्येवं वाक्यं प्रवक्ष्यते।।[1]

आरण्यक ग्रन्थों में यज्ञ प्रक्रिया के दार्शनिक पक्ष का विवेचन है। इनमें यज्ञों के गूढ़ भावार्थ को स्पष्ट किया है। आरण्यक ग्रन्थों में यज्ञों के आध्यात्मिक और दार्शनिक पक्ष का विवेचन प्राप्त होता है। आरण्यक ग्रन्थों का मुख्य उद्देश्य यज्ञ को पूर्णतः त्यागना नहीं बल्कि उसे सूक्ष्म, आन्तरिक और प्रतीकात्मक स्तर पर समझना है। आरण्यक ग्रन्थों की मुख्य विशेषता यह है कि यह यज्ञों के आन्तरिकी कारण है। आरण्यक प्राण ही यज्ञ है ऐसा मानते है इन ग्रन्थों में पञ्च महा यज्ञों के बारे में भी वर्णन मिलता है।

तैतिरीय आरण्यक में स्वाध्याय को भी यज्ञ माना है जो दो प्रकार का है प्रसृत तथा अप्रसृत। आरण्यक ग्रन्थों में यज्ञ को केवल देवताओं को प्रसन्न करने के लिए साधन न मानकर ब्राह्मण्डीय व्यवस्था

से जोड़कर देखा गया है। आरण्यक ग्रन्थों में यज्ञ को धर्म का आधार माना गया है। यज्ञ को मानव और देवताओं को जोड़ने वाला सेतु कहा गया है। आरण्यक ग्रन्थों में प्राण को ही यज्ञ माना है। **प्राणों ह वै यज्ञः।**[2] आरण्यक ग्रन्थों में श्वास तथा प्रश्वास को यज्ञ रूपी आहुति माना है। **अयं वै पुरूषों यज्ञः।**[3] यह पुरुष ही यज्ञ है। यहाँ पर पुरुष का अर्थ केवल शरीर नहीं बल्कि चेतन आत्मतत्व है। आरण्यकों में यज्ञ विधान धीरे–धीरे आत्मा और ब्रह्म की उपासना में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार आरण्यक यज्ञ विधान, उपनिषदिक ब्रह्मविद्या का आधार बनता है।[4]

भारतीय दर्शन की आस्तिक परम्परा में मीमांसा दर्शन का स्थान विशिष्ट तथा महत्वपूर्ण है। मीमांसा शब्द का अर्थ है विचार करना। यह दर्शन वेदों के कर्मकाण्यीय भाग की व्याख्या करता है। मीमांसा दर्शन के प्रवर्तक महर्षि जैमिनी है। इस दर्शन का मूल आधार मीमांसा सूत्र है। यह दो प्रकार का है पूर्वमीमांसा तथा उत्तरमीमांसा। उत्तरमीमांसा को वेदान्त दर्शन भी कहा जाता है। यह दर्शन मुख्यता वेद तथा धर्म से सम्बन्धित है। इसके अनुसार धर्म का लक्षण है। "चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः"[5] वेद की विधि से प्रतिपादित कर्म ही धर्म है। यह यज्ञ विधान को धर्म का मूल आधार माना गया है।

मीमांसा दर्शन में मुख्यता वैदिक वाक्यों पर विचार किया है। इस शास्त्र के बिना वैदिक वाक्यों का विचार करना असम्भव है। विधिवाक्य किस प्रकार का है तथा अर्थवाद वाक्य किस प्रकार का होता है यह जानना मीमांसा दर्शन के बिना असम्भव है। आत्मानमुपासीत परमेश्वर की उपासना करनी चाहिए यह विधिवाक्य है। मीमांसा शास्त्र स्वर्ग को कोई स्थान विशेष नहीं मानता।

मीमांसा के प्रसिद्ध भाष्यकार शाबर स्वामी स्वर्ग का खण्डन करते हुए अपने भाष्य में लिखते है–

स्वर्ग शब्दो लोके प्रसिद्धो न तु अनुमानत् गम्यते।[6]

वे स्वर्ग को स्थान विशेष न मानकर प्रीति को ही स्वर्ग मानते हैं और वह प्रीति परमात्मा का ही प्रेम है मीमांसा दर्शन धर्म युक्त दर्शन है इसके अनुसार यज्ञ ही धर्म है इस दर्शन में याग किस प्रकार किया जाए तथा उसमें क्या–क्या आवश्यक है यह सब बताया है।

मीमांसा दर्शन में यज्ञों का उपयोग धर्म पालन, कर्मफल प्राप्ति प्राप्ति के लिए किया जाता है। इसके के अनुसार यज्ञ बाह्य कर्मकाण्ड पर निर्धारित है इन यज्ञों के द्वारा कर्मफल, धन ऐश्वर्य, सामाजिक धर्म की प्राप्ति के लिए किया जाता है। यह दर्शन मानता है कि कर्म को विधिपूर्वक करना ही धर्म और सुख का साधन है।

आरण्यक ग्रन्थों में यज्ञ आत्मज्ञान, ब्रह्म बोध, ध्यान और आंतरिक शुद्धि के लिए है। इनमें यज्ञों को आंतरिक साधना, मंत्र और तात्विक चिंतन के लिए बताया गया है। इन ग्रन्थों में यज्ञ प्रतीकात्मक है तथा इन ग्रन्थों में यज्ञों का आन्तरिककरण किया है। आरण्यक ग्रन्थों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि यज्ञ सिर्फ कुण्ड, अग्नि, आहुति तक सीमित नहीं है। यज्ञ को मन की शुद्धि ध्यान, प्राण नियंत्रण आदि प्रत्येक कर्म के रूप में देखा गया है। आरण्यक यज्ञ का मन, ध्यान तथा प्राण नियंत्रण से सम्बन्ध मीमांसा के केवल बाह्य कर्म के विचार को अंतर्मुखी आयाम प्रदान करता है। जहाँ मीमांसा यज्ञ को कर्म करके फल प्राप्ति के रूप में देखता है वही आरण्यक का ध्यान यज्ञ को ज्ञान प्राप्ति और आत्म उत्थान से जोड़ता है। आरयण्क में प्राप्त यज्ञ विधान ने यज्ञ को केवल बाह्य अनुष्ठानात्मक कर्म के ऊपर उठाकर मानसिक, ध्यानात्मक और दार्शनिक रूप दिया। आरण्यक यज्ञ अध्ययन से मीमांसा यज्ञ का दूसरा केवल कर्मफल से आत्मज्ञानतक फैलता दिखता है। आरण्यक ग्रन्थों में यज्ञों के विधान का प्रभाव मीमांसा दर्शन पर यह पड़ा कि जो मीमांसा दर्शन में केवल कर्मकाण्ड सम्बन्धित यज्ञ थे वे ब्रह्म ज्ञान से भी सम्बिन्धित हो गये।

मीमांसा दर्शन में बताये गये यज्ञ के जो नियम अथवा पदार्थ है उन्हें केवल गृहस्थ वाला ही कर सकता था क्योंकि इनके अनुसार हवि, कुण्ड, वेदी आदि के बिना यज्ञ नहीं हो सकता परन्तु आरण्यक ग्रन्थों का इस पर यह प्रभाव भी पड़ा कि मीमांसा दर्शन में जो विधि अर्थवाद, निषेध का उपयोग होता है। उनका उपयोग आरण्यक ग्रन्थों में मीमांसा दर्शन में वाक्य विभाजन का मूल विधि और अर्थवाद है जो कि आरण्यक ग्रन्थों में यज्ञ विधानों के साथ प्रतीकात्मक आख्यानों द्वारा स्पष्ट है।

आरण्यकों के अनुसार यह धारणा है कि यज्ञ का फल देवताओं की इच्छा पर नहीं बल्कि कर्म पर निर्भर करता है। यही सिद्धान्त मीमांसा के 'अपूर्व' सिद्धान्त में परिपक्व होता है कि यज्ञ से उत्पन्न अदृश्य शक्ति फल प्रदान करती है।[7] आरण्यक ग्रन्थों में यज्ञ विधि प्रदान है देवता नहीं। यह परिवर्तन मीमांसा दर्शन के अदेववादी दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है।[8] यद्यपि मीमांसा कर्मप्रधान है फिर भी आरण्यक यज्ञों में निहित तत्वों को उसने कर्म की सहायक शक्ति के रूप में स्वीकार किया है।[9] मीमांसा सूत्रों और शाबर

भाष्य में ब्राह्मण व आरण्यक अंशों का प्रयोग यह दर्शाता है कि मीमांसा ने आरण्यक यज्ञों को व्याख्यात्मक आधार प्रदान किया।[10]

मीमांसा ने आरण्यक यज्ञों को स्वीकार किया किन्तु उपनिषदों के ज्ञान मार्ग को स्वतंत्र मोक्ष साधन नहीं माना। इससे आरण्यक यज्ञ कर्मकाण्ड की सीमा में ही प्रतिष्ठित रहे।[11]

संदर्भ सूची

1. तैति० आर० भाष्य श्लोक 6
2. ऐ० आ० 2.2.4
3. ऐ० आ० 1.1.1
4. तैति० आर०
5. मीमांसा सूत्र 1.1.2
6. शा० भा० 6/1/1
7. कुमारिलभट्ट श्लोक वार्तिक अपूर्वाधिकार
8. राधाकृष्ण, Indian Philosophy
9. कुमारिलभट्ट तन्त्रवार्तिक
10. शाबर भाष्य, ब्राह्मण आरण्यक उद्धरण
11. प्रभाकर मिश्र बृहती

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 59-62
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

विद्यालयों में बढ़ता शैक्षणिक दबाव : कारण, प्रभाव एवं समाधान

डॉ० सुकन्या चल्ला
ए पी टी डब्लू आर एस गर्ल्स, करेडु, प्रकाशम ज़िला।

सारांश :
प्रस्तुत शोध-पत्र विद्यालयों में बढ़ते शैक्षणिक दबाव (Academic Stress) की समस्या का गहन एवं समालोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में अत्यधिक पाठ्यक्रम भार, परीक्षा एवं अंक-केंद्रित मूल्यांकन व्यवस्था, प्रतिस्पर्धात्मक शैक्षणिक वातावरण, अभिभावकों की उच्च अपेक्षाएँ तथा शिक्षकों पर बढ़ता प्रशासनिक दबाव—इन सभी कारकों के कारण विद्यालयी छात्रों में मानसिक तनाव निरंतर बढ़ रहा है। यह तनाव न केवल छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि को प्रभावित करता है, बल्कि उनके मानसिक स्वास्थ्य, भावनात्मक संतुलन, सामाजिक व्यवहार तथा व्यक्तित्व विकास पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालता है।
यह लेख वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है तथा द्वितीयक स्रोतों के माध्यम से संकलित साहित्य का उपयोग करता है। इसमें शैक्षणिक दबाव की अवधारणा, उसके कारणों, प्रभावों तथा समाधानात्मक उपायों को क्रमबद्ध एवं शोध-पत्र शैली में प्रस्तुत किया गया है। लेख को UGC एवं ISSN जर्नल मानकों के अनुरूप तैयार किया गया है, जिससे यह उच्च शिक्षा, शिक्षक-प्रशिक्षण एवं शैक्षिक अनुसंधान के क्षेत्र में उपयोगी सिद्ध हो सके।

1. भूमिका :

शिक्षा को किसी भी समाज के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास का आधार माना जाता है। विद्यालयी शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास—बौद्धिक, भावनात्मक, नैतिक एवं सामाजिक—को सुनिश्चित करना होता है। किंतु समकालीन शैक्षिक परिदृश्य में विद्यालयी शिक्षा का स्वरूप तीव्र प्रतिस्पर्धा, परिणाम-केंद्रित मूल्यांकन एवं प्रदर्शन-आधारित सफलता की अवधारणा से प्रभावित हो गया है।

आज विद्यालयी छात्र निरंतर परीक्षाओं, गृहकार्य, परियोजनाओं, आंतरिक मूल्यांकन, सह-पाठ्यक्रम गतिविधियों तथा अभिभावकीय अपेक्षाओं के दबाव में जीवन व्यतीत कर रहा है। अंक, ग्रेड और रैंक को ही सफलता का मुख्य मापदंड मान लिया गया है। इस प्रवृत्ति ने शिक्षा को आनंददायक एवं अनुभवात्मक प्रक्रिया के स्थान पर

तनावपूर्ण दायित्व में परिवर्तित कर दिया है। परिणामस्वरूप विद्यालयों में शैक्षणिक दबाव एक सामान्य किंतु गंभीर समस्या के रूप में उभरकर सामने आया है।

शैक्षणिक दबाव यदि सीमित स्तर पर हो तो यह विद्यार्थियों को प्रेरित कर सकता है, किंतु जब यह उनकी मानसिक एवं भावनात्मक सहनशीलता से अधिक हो जाता है, तब यह चिंता, अवसाद, आत्मविश्वास की कमी तथा शैक्षणिक विमुखता का कारण बनता है। अतः विद्यालयों में बढ़ते शैक्षणिक दबाव का वैज्ञानिक एवं अकादमिक अध्ययन अत्यंत आवश्यक हो जाता है।

2. शैक्षणिक दबाव की अवधारणा :

शैक्षणिक दबाव से आशय उस मानसिक, भावनात्मक एवं शारीरिक तनाव से है, जिसे विद्यार्थी शैक्षणिक अपेक्षाओं, परीक्षा प्रदर्शन, समय-सीमा, प्रतिस्पर्धा तथा असफलता के भय के कारण अनुभव करता है। जब विद्यार्थी यह महसूस करता है कि उससे अपेक्षित शैक्षणिक मांगें उसकी क्षमताओं, समय एवं संसाधनों से अधिक हैं, तब शैक्षणिक दबाव उत्पन्न होता है।

शैक्षणिक दबाव बहुआयामी होता है, जिसमें संज्ञानात्मक (एकाग्रता में कमी, स्मरण शक्ति पर प्रभाव), भावनात्मक (चिंता, भय, हताशा), व्यवहारात्मक (आक्रामकता, सामाजिक अलगाव) तथा शारीरिक (थकान, अनिद्रा, सिरदर्द) पक्ष सम्मिलित होते हैं। यह दबाव यदि दीर्घकाल तक बना रहे, तो विद्यार्थियों के संपूर्ण व्यक्तित्व विकास को प्रभावित कर सकता है।

3. विद्यालयों में बढ़ते शैक्षणिक दबाव के प्रमुख कारण :

3.1 परीक्षा-केंद्रित शिक्षा प्रणाली :

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में परीक्षाएँ एवं अंक विद्यार्थियों की योग्यता और क्षमता के मुख्य मापदंड बन गए हैं। बार-बार की परीक्षाएँ, बोर्ड परीक्षाओं का भय तथा परिणामों पर अत्यधिक जोर विद्यार्थियों में निरंतर तनाव उत्पन्न करता है।

3.2 अत्यधिक पाठ्यक्रम भार :

विद्यालयी पाठ्यक्रम प्रायः अत्यधिक विस्तृत एवं सैद्धांतिक होता है। सीमित समय में अधिक विषयवस्तु को याद करने की अपेक्षा विद्यार्थियों पर मानसिक दबाव बढ़ाती है।

3.3 प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण :

उच्च शिक्षा एवं रोजगार के सीमित अवसरों के कारण विद्यालयों में प्रतिस्पर्धा तीव्र हो गई है। रैंकिंग, तुलना एवं श्रेष्ठता की भावना विद्यार्थियों में असफलता का भय उत्पन्न करती है।

3.4 अभिभावकों की उच्च अपेक्षाएँ :

अनेक अभिभावक बच्चों की रुचि एवं क्षमता को समझे बिना उनसे अत्यधिक शैक्षणिक अपेक्षाएँ रखते हैं। निरंतर दबाव एवं तुलना विद्यार्थियों के आत्मविश्वास को कमजोर करती है।

3.5 शिक्षण विधियों की सीमाएँ :

परंपरागत शिक्षक-केंद्रित शिक्षण विधियाँ विद्यार्थियों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं, सीखने की गति एवं रुचियों की उपेक्षा करती हैं, जिससे सीखने में भय एवं अरुचि उत्पन्न होती है।

3.6 समय प्रबंधन की समस्या :

विद्यालय, गृहकार्य, ट्यूशन, परीक्षाएँ एवं सह-पाठ्यक्रम गतिविधियों के बीच संतुलन न बना पाना भी शैक्षणिक दबाव का एक महत्वपूर्ण कारण है।

4. शैक्षणिक दबाव के प्रभाव :

4.1 मानसिक प्रभाव :

अत्यधिक शैक्षणिक दबाव से चिंता, अवसाद, चिड़चिड़ापन, आत्मविश्वास की कमी तथा भावनात्मक असंतुलन जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।

4.2 शारीरिक प्रभाव :

नींद की कमी, सिरदर्द, थकान, भूख में कमी तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता में गिरावट शैक्षणिक दबाव के सामान्य परिणाम हैं।

4.3 शैक्षणिक प्रभाव :

तनावग्रस्त विद्यार्थी एकाग्रता एवं स्मरण शक्ति में कमी अनुभव करते हैं, जिससे शैक्षणिक उपलब्धि प्रभावित होती है।

4.4 सामाजिक एवं व्यवहारात्मक प्रभाव :

लगातार दबाव के कारण कुछ विद्यार्थियों में सामाजिक अलगाव, आक्रामकता तथा विद्यालय से विमुखता देखी जाती है।

5. शैक्षणिक दबाव कम करने में विद्यालय एवं शिक्षकों की भूमिका :

विद्यालयों एवं शिक्षकों की भूमिका शैक्षणिक दबाव को कम करने में अत्यंत महत्वपूर्ण है। सहयोगात्मक शिक्षक-छात्र संबंध, लचीली शिक्षण रणनीतियाँ तथा सकारात्मक कक्षा वातावरण विद्यार्थियों के तनाव को कम कर सकते हैं।

6. शैक्षणिक दबाव कम करने हेतु उपाय :

6.1 मूल्यांकन प्रणाली में सुधार :

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन, परियोजना कार्य एवं कौशल आधारित आकलन को महत्व दिया जाना चाहिए।

6.2 पाठ्यक्रम का युक्तिकरण :

पाठ्यक्रम को आयु-उपयुक्त, संतुलित एवं जीवनोपयोगी बनाया जाना चाहिए।

6.3 परामर्श एवं मार्गदर्शन सेवाएँ :

विद्यालयों में प्रशिक्षित परामर्शदाताओं की नियुक्ति से विद्यार्थियों को मानसिक सहयोग प्राप्त हो सकता है।

6.4 अभिभावकों की जागरूकता :

अभिभावकों को बच्चों के प्रयासों को प्रोत्साहित करना चाहिए, न कि केवल परिणामों पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए।

6.5 जीवन कौशल शिक्षा :

योग, ध्यान, समय प्रबंधन एवं तनाव प्रबंधन को विद्यालयी शिक्षा का अभिन्न अंग बनाया जाना चाहिए।

7. नीति परिप्रेक्ष्य :

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) में पाठ्यक्रम भार कम करने, समग्र विकास तथा छात्र कल्याण पर विशेष बल दिया गया है। इसके प्रभावी क्रियान्वयन से विद्यालयों में शैक्षणिक दबाव को कम किया जा सकता है।

8. निष्कर्ष :

विद्यालयों में बढ़ता शैक्षणिक दबाव एक बहुआयामी शैक्षणिक समस्या है। इसका समाधान केवल परीक्षा सुधार तक सीमित नहीं है, बल्कि संपूर्ण शिक्षा प्रणाली में छात्र-केंद्रित, संवेदनशील एवं मानवीय दृष्टिकोण अपनाने से ही संभव है। संतुलित पाठ्यक्रम, सहयोगात्मक शिक्षण, सहायक मूल्यांकन प्रणाली, संवेदनशील शिक्षक एवं जागरूक अभिभावक मिलकर ही विद्यार्थियों के लिए तनावमुक्त एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित कर सकते हैं।

संदर्भ (References) :

- शर्मा, आर. (2020). *शैक्षिक मनोविज्ञान*. नई दिल्ली : रावत पब्लिकेशन्स.
- कुमार, ए. (2019). *बाल मनोविज्ञान एवं शिक्षा*. नई दिल्ली : एपीएच पब्लिशिंग.
- भारत सरकार (2020). *राष्ट्रीय शिक्षा नीति*.
- NCERT (2021). *विद्यालयी छात्रों का मानसिक स्वास्थ्य*.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 63-65
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

महाकवि तोषनिधि कन्नौजी भाषा के प्रथम कवि : एक अनुशीलन

डॉ रघुनंदन प्रसाद दीक्षित (प्रखर)
पूर्व सहायक अनुदेशक,
27,शांतिदाता सदन नेकपुर चौरासी, फतेहगढ़
जनपद–फर्रुखाबाद (उत्तर प्रदेश) पिन– 209601

प्रस्तावना

कन्नौजी भाषा एक महत्वपूर्ण भाषा है, जो उत्तर प्रदेश के कन्नौज क्षेत्र में बोली जाती है। इस भाषा में कई महत्वपूर्ण कवियों ने अपनी रचनाएँ लिखी हैं, जिनमें महाकवि तोषनिधि का नाम प्रमुख है। इस शोध आलेख में, हम महाकवि तोषनिधि को कन्नौजी भाषा के प्रथम कवि के रूप में स्थापित करने का प्रयास करेंगे।तोष नामधारी दो कवि हुए हैं – तोषनिधि और तोषमणि।

तोषमणि

जैसा कि कवि के आत्मकथन ''शुक्ल चतुर्भुज को सुत तोष, बसै सिंगरौर जहाँ रिषि थानो। दच्छिन देव नदी निकटै दस कोस प्रयागहि पूरब मानौ'' से प्रकट है कि वे प्रयाग से पूर्व दस कोस दूर गंगा तट पर स्थित सिंगरौर (श्रृंगवेरपुर) गाँव के निवासी चतुर्भुज शुक्ल के लड़के थे। यह सिंगरौर वही है जिसका जिक्र रामायण में आया है और जो ऋषि श्रृंगी की तपोभूमि भी रहा।

महाकवि तोषनिधि का जीवन परिचय तथा रचनाएँ

जीवन परिचय

महाकवि तोषनिधि का जन्म फर्रुखाबाद के कंपिला (जिला फर्रुखाबाद) के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण ताराचंद अवस्थी के पुत्र थे।महाकवि तोषनिधि का अवतरण काल संवत् 1798 है। मिश्रबंधुओं के अनुसार गिरधरलाल इनका पुत्र था। शिवनंदन अवस्थी, जो इनके वंशज थे, अभी कुछ वर्षों पूर्व तक कंपिला में रहते थे।

यह महाकवि भूषण के समकालीन कवि थे। भूषण की जन्मभूमि कन्नौज थी।

कृतीत्व

दिग्विजयभूषण' की भूमिका में डॉव भगवतीप्रसाद सिंह ने तोषनिधि की व्यंग्यशतक, रतिमंजरी और नखशिख संज्ञक तीन और मिश्रबंधुओं ने श्विनोदश में रसराज, कामधेनु भइयालाल पचीसी, कमलापति चालीसा, दीनव्यंग्यशतक, और महाभारत छप्पनी नामक छह कृतियों का उल्लेख किया है। श्मिश्रबंधु विनोदश, में कवि का जन्मकाल संवत् 1830 और काव्यकाल संवत् 1794 है, अतरू कवि का कविताकाल भी इसी के थोड़ा इधर उधर माना जा सकता है।

उनकी रचनाएँ कन्नौजी भाषा में हैं। उनकी प्रमुख रचनाएँ सुधानिधि, नखशिख और विनय शतक हैं। इन रचनाओं में उन्होंने जीवन के विभिन्न पहलुओं का वर्णन किया है, जैसे कि नैतिकता, आध्यात्मिकता और सामाजिक मुद्दे।

कन्नौजी भाषा की विशेषताएँ

तोषमणि ने प्रसिद्ध रीतिग्रंथ श्सुधानिधिश की रचना संवत् 1691 आषाढ़ पूर्णिमा गुरुवार को की। इसके महत्व का अनुमान इसलिये भी लगाया जा सकता है कि केशवदास के पश्चात समस्त रसों का इतना सुंदर वर्णन करनेवाला कोई दूसरा ग्रंथ नहीं है। श्सुधानिधिश की संवत् 1948 की एक प्रति अयोध्यानरेश के पुस्तकालय में देखी गई है। ग्रंथ में कुल 183 पृष्ठ और 560 नाना छंद हैं। इसके मुख्य प्रतिपाद्य विषय हैं – नौरस, भाव, भावोदय, भावशांति, भावशबलता, रसाभास, रसदोष, वृत्ति, नायिकाभेद, सखा–सखी–भेद और हाव आदि। श्विनयशतकश और श्नखशिखश कवि की दो अन्य कृतियाँ भी खोज में मिली हैं।

कन्नौजी भाषा में कई विशेषताएँ हैं, जो इसे अन्य भाषाओं से अलग बनाती हैं। इस भाषा में कई शब्द और वाक्य रचनाएँ हैं, जो कन्नौज क्षेत्र की संस्कृति और परंपराओं को दर्शाती हैं। महाकवि तोषनिधि की रचनाएँ कन्नौजी भाषा की इन विशेषताओं को दर्शाती हैं।

तोषनिधि की शैली

महाकवि तोषनिधि की शैली में सरसता और माधुर्य की प्रधानता है। उनकी रचनाओं में अनुप्रास, यमक और श्लेष अलंकार का प्रयोग हुआ है। उनकी शैली कन्नौजी भाषा की विशेषताओं को दर्शाती है और पाठकों को आकर्षित करती है।

रस

महाकवि तोषनिधि की रचनाओं में कई रसों का वर्णन है, जैसे कि शृंगार रस, वात्सल्य रस और भक्ति रस। उनकी रचनाओं में रसों का सुंदर मिश्रण है, जो पाठकों को आनंदित करता है।

छंद

महाकवि तोषनिधि की रचनाओं में कई छंदों का प्रयोग हुआ है, जैसे कि दोहा, सोरठा और कवित्त। उनकी रचनाओं में छंदों का सुंदर प्रयोग है, जो पाठकों को आकर्षित करता है।

स्फुट रचनाएँ

महाकवि तोषनिधि की कुछ स्फुट रचनाएँ इस प्रकार हैं:

1. ''सुंदर सखी सँग खेलन जइबे। बागन में बिहारी लाल लला, मोहन मुरली बजइबे।।''
2. ''मोहन मोरे मन कय मोह लइबे। सुंदर सूरत देख के, मैं तो बस में न रहिबे।।''
3. ''प्रभु जी की भक्ति करिबे, यही है जीवन कय सार। मन कय शांति मिलिहै, और हृदय में प्यार।।''
4. ''नदिया के तट पर, बंशी की धुन सुनइबे। मोहन की मुरली की धुन, मेरे मन कय भइबे।।''
5. ''सावन की बूंदें, धरती पर गिरइबे। हरियाली छइबे, और फूल खिलइबे।।''
6. ''मोहन की मुस्कान, मेरे मन कय मोह लइबे। उनकी आँखों की गहराई, मुझे अपनी ओर खींचइबे।।''
7. ''प्रेम की धारा, हृदय में बहइबे। मन कय शांति मिलइबे, और आत्मा कय तृप्ति मिलइबे।।''
8. ''वृंदावन की गलियाँ, मोहन के चरणन की धूल से पवित्र हैं। उनकी बंशी की धुन, मेरे मन कय आनंदित करइबे।।''
9. ''प्रभु जी की कृपा से, सब कुछ संभव है। उनकी दया से, मेरे मन कय शांति मिलइबे।।''
10. ''जीवन की यात्रा में, प्रेम कय साथी बनइबे। मन कय शांति मिलइबे, और आत्मा कय तृप्ति मिलइबे।।''

निष्कर्ष

महाकवि तोषनिधि कन्नौजी भाषा के प्रथम कवि थे, यह बात उनके जीवन और रचनाओं से स्पष्ट होती है। उनकी रचनाएँ कन्नौजी भाषा की विशेषताओं को दर्शाती हैं और उनकी शैली में सरसता

और माधुर्य की प्रधानता है। इस शोध आलेख में, हमने महाकवि तोषनिधि को कन्नौजी भाषा के प्रथम कवि के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया है।

प्रमाण

महाकवि तोषनिधि को कन्नौजी भाषा के प्रथम कवि के रूप में स्थापित करने के लिए, निम्नलिखित प्रमाणों का उपयोग किया जा सकता हैरू

– उनकी रचनाएँ कन्नौजी भाषा में हैं।

– उनकी शैली में सरसता और माधुर्य की प्रधानता है।

– उनकी रचनाओं में अनुप्रास, यमक और श्लेष अलंकार का प्रयोग हुआ है।

– उनकी शैली कन्नौजी भाषा की विशेषताओं को दर्शाती है।

तोषमणि में कवित्व एवं आचार्यत्व का अच्छा संयोग मिलता है किंतु उनका कवित्वपक्ष जितना प्रौढ़ और पुष्ट है उतना रीति–काव्य–विवेचन नहीं। अपनी सारी खूबियों के साथ कवि–अपेक्षित सरसता और काव्यनिपुणता उसमें विद्यमान है। सघन होने पर भी कवि का भावविधान कहीं फँसता और अटकता नहीं है। हाँ, कहीं कहीं मिल जानेवाली ऊहात्मक अत्युक्तियाँ मजा किरकिरा कर देती हैं। भाषा, भाव, अलंकार तथा अभिव्यंजनाकौशल के प्रायरू सभी तत्वों से उसकी कविता अपूर्ण है। सहृदयसंवेद्य सरसता और हृदयहारी उक्तिचमत्कार रसखान की याद दिलाता है। कवि की ब्रजभाषा में स्वाभाविक प्रवाह और प्रांचलता के साथ आलंकारिक सौंदर्य सहज रूप में आया है।

इन प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि महाकवि तोषनिधि कन्नौजी भाषा के प्रथम कवि थे।

संदर्भ ग्रंथ ––

1. हिंदी साहित्य का इतिहास रू पंव रामचंद्र शुक्लय दिग्विजयभूषण रू संपादक, डाव भगवतीप्रसाद सिंहय मिश्रबंधु, विनोद (भाग दो)य मिश्रबंधु, हिंदी साहित्य कोश (भाग 2) संव – धीरेंद्र वर्मा आदि, हिंदी काव्यशास्र का इतिहास रू डाव भगीरथ मिश्रय हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास (षष्ठ भाग), संपादक – डाव नगेंद्र।
2. तोषनिधि, महाकवि. सुधानिधि.
3. तोषनिधि, महाकवि. नखशिख.
4. तोषनिधि, महाकवि. विनय शतक.

आगे के अध्ययन के लिए सुझाव

महाकवि तोषनिधि की रचनाओं और कन्नौजी भाषा के बारे में आगे के अध्ययन के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं

– महाकवि तोषनिधि की रचनाओं का विस्तृत विश्लेषण करना।

– कन्नौजी भाषा की विशेषताओं और उसके इतिहास का अध्ययन करना।

– महाकवि तोषनिधि की रचनाओं का अन्य कवियों की रचनाओं से तुलना करना।

इन सुझावों से कन्नौजी भाषा और महाकवि तोषनिधि की रचनाओं के बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

संपर्क –9044393981

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 66-71
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

ਕੈਨੇਡੀਅਨ ਨਾਟਕਕਾਰਾਂ ਦੇ ਨਾਟਕਾਂ ਦੇ ਮਰਦ ਪਾਤਰਾਂ ਦਾ ਮਨੋਵਿਸ਼ਲੇਸ਼ਣਾਤਮਕ ਅਧਿਐਨ
(ਕੁਲਵਿੰਦਰ ਖਹਿਰਾ ਅਤੇ ਸੁਰਜੀਤ ਕਲਸੀ ਦੇ ਨਾਟਕ ਦੇ ਸੰਦਰਭ ਵਿਚ)

ਪੁਸ਼ਵਿੰਦਰ ਕੌਰ
ਖੋਜਾਰਥੀ
ਗੁਰੂ ਕਾਸ਼ੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ ਤਲਵੰਡੀ ਸਾਬੋ
ਡਾ. ਗੁਰਪ੍ਰੀਤ ਕੌਰ
ਐਸੋਸੀਏਟ ਪ੍ਰੋਫੈਸਰ
ਗੁਰੂ ਕਾਸ਼ੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ ਤਲਵੰਡੀ ਸਾਬੋ

ਖੋਜ-ਪੱਤਰ ਦਾ ਸਾਰ- ਸਮਾਜ ਤੇ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਦਾ ਗਹਿਰਾ ਰਿਸ਼ਤਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਸਮਾਜ ਰਾਹੀਂ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਦੀ ਸਿਰਜਣਾ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਹਰੇਕ ਮਨੁੱਖੀ ਸਮਾਜ ਦੇ ਕੁਝ ਸਾਂਝੇ ਲੱਛਣ ਹੁੰਦੇ ਹਨ। ਪੈਦਾਵਾਰ ਦੇ ਸਾਧਨ, ਸਮਾਜਿਕ ਰਿਸ਼ਤੇ ਅਤੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਸੰਸਾਰਕ ਪ੍ਰਗਟਾਉ। ਮਨੁੱਖੀ ਸਮਾਜ ਦੇ ਹਰ ਇਤਿਹਾਸਕ ਪੜਾਅ ਵਿੱਚ ਇੱਕੋ ਜਿਹੇ ਪਦਾਰਥਕ ਪੈਦਾਵਾਰ ਦੇ ਸਾਧਨ ਸਨ। ਇਹ ਸਾਧਨ ਕਿਵੇਂ ਪੈਦਾ ਹੋਏ? ਇਨ੍ਹਾਂ ਪੈਦਾਵਾਰ ਦੇ ਸਮਿਆਂ ਨਾਲ ਮਨੁੱਖ ਦਾ ਕੀ ਸੰਬੰਧ ਰਿਹਾ ਹੈ? ਅਤੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਸੰਬੰਧਾਂ ਨੇ ਮਨੁੱਖੀ ਸਮਾਜ ਨੂੰ ਕਿਹੋ ਜਿਹਾ ਰੂਪ ਦਿੱਤਾ ਹੈ ? ਮਨੁੱਖ ਦਾ ਇਤਿਹਾਸ ਇੱਕ ਵੇਲੇ ਕੁਦਰਤੀ ਅਤੇ ਸਮਾਜਿਕ ਦੋਵੇਂ ਹੈ, ਜੋ ਸਥਿਤੀਆਂ ਅਤੇ ਸੰਬੰਧ ਇਸ ਨੂੰ ਜਨਮ ਦਿੰਦੇ ਹਨ, ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਮੂਲ ਵਿੱਚ ਦੋਹਰਾ ਉਤਪਾਦਨ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਕਿਰਤ ਰਾਹੀਂ ਪਦਾਰਥਕ ਚੀਜ਼ਾਂ ਦਾ ਉਤਪਾਦਨ ਅਤੇ ਪ੍ਰਜਣਨ ਰਾਹੀਂ ਮਨੁੱਖੀ ਜੀਵਨ ਦਾ ਉਤਪਾਦਨ, ਮਨੁੱਖੀ ਸੁਭਾਅ ਦੇ ਕੁਦਰਤੀ ਅਤੇ ਸਮਾਜਿਕ ਦੋਵੇਂ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੇ ਬੰਧੇਜਾਂ ਨਾਲ ਜੁੜਿਆ ਹਇਆ ਹੈ। ਮਨੁੱਖੀ ਸੰਬੰਧਾਂ ਨੂੰ ਸੱਭਿਆਚਾਰਕ ਸੰਦਰਭ ਵਿੱਚ ਵਾਚਣ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਇਹ ਜਾਣਨਾ ਜ਼ਰੂਰੀ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਕਿ ਮਨੁੱਖੀ ਸਮਾਜ ਦੇ ਵੱਖੋ-ਵੱਖਰੇ ਇਤਿਹਾਸਕ ਪੜਾਵਾਂ

ਦੌਰਾਨ ਪਦਾਰਥਕ ਪੈਦਾਵਾਰ ਅਤੇ ਉਸ ਨਾਲ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਸੰਬੰਧਾਂ ਦੇ ਰੂਪ ਤੇ ਸੁਭਾਅ ਕਿਹੋ ਜਿਹੇ ਸਨ ਅਤੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਵਿੱਚ ਵਿਕਾਸ ਦਾ ਅਮਲ ਕਿਹੋ ਜਿਹਾ ਸੀ।

ਖੋਜ-ਪੱਤਰ ਦੇ ਕੀਵਰਡਸ- ਕੈਨੇਡਾ, ਨਾਟਕਕਾਰ, ਮਰਦ, ਪਾਤਰ, ਮਨੋਵਿਸ਼ਲੇਸ਼ਣਾਤਮਕ ਅਤੇ ਪਰਵਾਸ।

ਹੱਥਲੇ ਖੋਜ-ਪੱਤਰ ਵਿਚ ਕੈਨੇਡੀਅਨ ਨਾਟਕ ਦੇ ਹਵਾਲੇ ਨਾਲ ਮਰਦ ਪਾਤਰਾਂ ਦੇ ਮਨੋ ਵਿਸ਼ਲੇਸ਼ਣ ਪੱਖ ਨੂੰ ਉਭਾਰਨ ਦਾ ਯਤਨ ਕੀਤਾ ਜਾਵੇਗਾ। ਮਰਦ ਪ੍ਰਧਾਨ ਸਮਾਜ ਵਿਚ ਮਰਦ ਪਰਿਵਾਰ ਅਤੇ ਸਮਾਜ ਦਾ ਉਹ ਬਿੰਦੂ ਹੈ ਜਿਸਦੇ ਹੁਕਮ ਨਾਲ ਸਮਾਜ ਦੀਆਂ ਸਮੁੱਚੀਆਂ ਗਤੀਵਿਧੀਆਂ ਕ੍ਰਿਆਸ਼ੀਲ ਹੁੰਦੀਆਂ ਹਨ। ਮਰਦ ਆਪਣੀ ਸੱਤਾ, ਤਾਕਤ ਅਤੇ ਮਲਕੀਅਤ ਕਾਰਨ ਉੱਤਮ ਹੈ। ਪਰਵਾਸੀ ਪੰਜਾਬੀ ਸਮਾਜ ਆਪਣੀਆਂ ਕਦਰਾਂ ਕੀਮਤਾਂ ਨਾਲ ਹੀ ਪਰਵਾਸ ਕਰਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਪਾਲਣਾ ਨਾਲ ਹੀ ਆਪਣਾ ਜੀਵਨ ਬਤੀਤ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਪਰ ਕੈਨੇਡਾ ਵਿਚ ਪਰਵਾਸ ਧਾਰਨ ਕਰਨ ਉਪਰੰਤ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਅਨੇਕਾਂ ਸਮੱਸਿਆਵਾਂ, ਚੁਣੌਤੀਆਂ ਅਤੇ ਸੰਭਾਵਨਾਵਾਂ ਭਰਪੂਰ ਪ੍ਰਸਥਿਤੀਆਂ ਦਾ ਸਾਹਮਣਾ ਕਰਨਾ ਪੈਂਦਾ ਹੈ। ਰੁਜ਼ਗਾਰ ਯਾਫਤਾ ਮਰਦ ਬਾਹਰੀ ਕੰਮਾਂ ਕਾਰਜਾਂ ਨਾਲ ਜੁੜਿਆ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਉਸਨੂੰ ਬਾਕੀਆਂ (ਔਰਤਾਂ, ਬਜ਼ੁਰਗਾਂ ਤੇ ਬੱਚਿਆਂ) ਨਾਲੋਂ ਹਰੇਕ ਖ਼ੇਤਰ ਦਾ ਅਨੁਭਵ ਜ਼ਿਆਦਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਕੈਨੇਡੀਅਨ ਨਾਟਕ ਵਿਚ ਪੇਸ਼ ਮਰਦ ਦੇ ਮਨੋਵਿਗਿਆਨ ਨੂੰ ਸਮਝਣ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਮਰਦ ਸ਼ਬਦ ਦੀ ਪਰਿਭਾਸ਼ਾ ਅਤੇ ਅਰਥ ਸਮਝਣਾ ਜ਼ਰੂਰੀ ਹੈ। ਭਾਈ ਕਾਨ੍ਹ ਸਿੰਘ ਨਾਭਾ ਅਨੁਸਾਰ,

> ਮਰਦ - ਸੰਗਜ- ਆਦਮੀ, ਮਨੁੱਖ। ੨. ਵਿ- ਦਿਲੇਰ.ਬਹਾਦੁਰ. "ਹੋਰ ਕੀ ਉਠਸੀ ਮਰਦ ਕਾ ਚੇਲਾ"(ਤਿਲੰ ਮ:੧)
>
> ੩. ਸੰ. ਮਦੰ. ਸੰਗਯਾ - ਸਖ਼ਤ ਦਬਾਉ।
>
> ੪. ਸਖ਼ਤੀ ਨਾਲ ਮਸਲਣ ਦੀ ਕ੍ਰਿਯਾ. ਰਗੜ."ਪੀਵਤ ਮਰਦ ਨ ਲਾਗ"1

ਸਮਾਜ ਵਿਚ ਮਰਦ ਦੇ ਚਾਰ ਰੂਪ (ਪਿਤਾ, ਭਰਾ, ਪਤੀ ਤੇ ਪੁੱਤਰ) ਵਧੇਰੇ ਮਾਨਯ ਤੇ ਪ੍ਰਚਲਿਤ ਹਨ। ਮਰਦ ਪ੍ਰਧਾਨ ਸਮਾਜ ਵਿਚ ਇਹ ਚਾਰੇ ਮਰਦ ਰੂਪ ਸਮੁੱਚੇ ਪ੍ਰਬੰਧ ਨੂੰ ਕੰਟਰੋਲ ਕਰਦੇ ਹਨ। ਦੂਜੇ ਸ਼ਬਦਾਂ ਵਿਚ ਇਨ੍ਹਾਂ ਚਾਰ ਰੂਪਾਂ ਦੀ ਸੱਤਾ ਅਤੇ ਤਾਕਤ ਹੋਣ ਕਾਰਨ ਇਹ ਹੋਰਨਾਂ ਅੰਗਾਂ/ਤੱਤਾਂ ਨੂੰ ਆਪਣੇ ਅਧੀਨ ਬਣਾ ਕੇ ਰੱਖਦੇ ਹਨ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੀ ਸੱਤਾਧਾਰੀ ਪਹੁੰਚ ਕਾਰਨ ਮਰਦਾਵੀਂ ਨੂੰ ਪਿੱਤਰ ਸੱਤਾ ਸੱਤਾ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਵੀ ਪ੍ਰਭਾਸ਼ਿਤ ਕੀਤਾ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਲਈ ਕੈਨੇਡੀਅਨ ਪੰਜਾਬੀ ਨਾਟਕ ਵਿਚ ਮਰਦ ਪਾਤਰ ਦੀ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਨੂੰ ਪਿੱਤਰ ਸੱਤਾ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਹੀ ਸਮਝਣਾ ਵਾਜਿਬ ਹੈ। ਪਿਤਰ ਸੱਤਾ ਇੱਕ ਇਤਿਹਾਸਕ-ਸਮਾਜਿਕ ਵਰਤਾਰਾ ਹੈ। ਹਜ਼ਾਰਾਂ ਸਾਲਾਂ ਤੋਂ ਚਲੀ ਆ ਰਹੀ ਇਹ ਅਜਿਹੀ ਵਿਵਸਥਾ ਹੈ, ਜਿਸ ਵਿੱਚ ਇਸਤਰੀ ਦੀ ਅਧੀਨਤਾ ਸਰਵ-ਪ੍ਰਥਮ ਹੈ। ਪਿਤਰ ਸੱਤਾ ਨੇ ਇਸਤਰੀ ਨੂੰ ਆਪਣੇ ਸੱਤਾ-ਪ੍ਰਵਚਨ (power-discourse) ਦੀ ਵਸਤੂ ਬਣਾਇਆ ਹੈ। ਕੁਲਵਿੰਦਰ ਖਹਿਰਾ ਦੇ ਨਾਟਕ **ਅੰਨ੍ਹੀਆਂ ਗਲੀਆਂ** ਵਿਚ ਪਰਿਵਾਰ ਜਾਂ ਘਰ ਵਿਚ ਪੁਰਸ਼ ਦੀ ਉੱਤਮਤਾ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਨਾਟਕ ਦੇ ਆਰੰਭ ਵਿਚ ਸੁਰਜੀਤ ਆਪਣੀ ਧੀ (ਸੁਖਦੀਪ) ਨੂੰ ਘਰ ਦਾ ਕੰਮ ਕਰਵਾਉਣ ਅਤੇ ਨਵੀ ਦੇ ਜੂਠੇ ਭਾਂਡੇ ਸਿੰਕ ਵਿਚ ਰੱਖਣ ਲਈ ਕਹਿੰਦੀ ਹੈ ਪਰ ਸੁਖਦੀਪ ਉਸ ਨੂੰ ਮੋੜਵੇਂ ਰੂਪ ਵਿਚ ਜਵਾਬ ਦਿੰਦੀ ਹੈ।

> ਸੁਖਦੀਪ:- ਮਾਮ ਇਹ ਨਵੀ ਦੇ ਭਾਂਡੇ ਆ, ਉਹਨੂੰ ਕਹਿ ਚੁੱਕੇ।
>
> ਸੁਰਜੀਤ:- ਤੂੰ ਨਾ ਹੱਥ ਲਵਾਈਂ ਕੰਮ ਨੂੰ।

ਸੁਖਦੀਪ:- ਮਾਮ ਤੂੰ ਨਵੀ ਨੂੰ ਤੇ ਕਹਿੰਦੀ ਨਈਂ ਕਦੀਂ।2

ਪਰ ਮਾਂ ਦੀ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਵਿਚ ਪੁਰਸ਼ ਨੂੰ ਘਰ ਦਾ ਮੁਖੀ ਹੋਣ ਕਾਰਨ ਕੋਈ ਵੀ ਘਰੇਲੂ ਕੰਮ ਕਰਨ ਲਈ ਨਹੀਂ ਕਿਹਾ ਜਾਂਦਾ ਬਲਕਿ ਘਰੇਲੂ ਕੰਮਾਂ ਲਈ ਔਰਤਾਂ ਨੂੰ ਹੀ ਕਿਹਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ,

ਸੁਰਜੀਤ:- ਨੀ ਮੈਂ ਕਿਹਾ ਤੇ ਤੈਨੂੰ ਸੀ, ਤੂੰ ਮੁੰਡੇ ਨਾਲ ਕੀ ਮੱਥਾ ਲਾ ਕੇ ਬਹਿ ਗਈ?

ਸੁਰਜੀਤ:- ਨੀ ਘਰਾਂ ਦਾ ਕੰਮ ਕੁੜੀਆਂ ਈ ਕਰਦੀਆਂ ਹੁੰਦੀਆਂ, ਬੰਦੇ ਰਸੋਈਆਂ ਚ ਕੰਮ ਕਰਦੇ ਚੰਗੇ ਨਈਂ ਲੱਗਦੇ।3

ਭਾਰਤੀ ਸਭਿਆਚਾਰ ਵਿਚ ਮਰਦ ਲਈ ਬਾਹਰੀ ਕੰਮ ਅਤੇ ਔਰਤ ਲਈ ਘਰੇਲੂ ਕੰਮਕਾਜ ਨਿਸ਼ਚਿਤ ਹਨ। ਨਾਟਕ ਵਿਚ ਮਰਦ (ਨਵੀ) ਮਾਂ ਦੀ ਹਾਂ ਵਿੱਚ ਹਾਂ ਮਿਲਾਉਂਦਾ ਕਹਿੰਦਾ ਹੈ,

ਨਵੀ:- ਹੇ...ਹੇ...ਇਹ ਤੁਹਾਡੀ ਪ੍ਰੌਬਲਮ ਆ, ਤੁਸੀਂ ਸੌਲਵ ਕਰੋ...ਡੌਂਟ ਮੈਨਸ਼ਨ ਮਾਈ ਨੇਮ 4

ਉਕਤ ਵਾਰਤਾਲਾਪ ਤੋਂ ਮਰਦ ਪਾਤਰਾਂ ਦੀ ਮਨੋਸਥਿਤੀ ਨੂੰ ਰੂਪਮਾਨ ਕੀਤਾ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਪੰਜਾਬੀ ਸਮਾਜ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਵਿਚ ਮਰਦ ਦਾ ਘਰੇਲੂ ਕੰਮ ਕਰਨਾ "ਔਰਤ/ਜ਼ਨਾਨੀ ਹੇਠ ਲੱਗਣਾ" ਹੈ, ਪ੍ਰਵਾਸੀ ਪੰਜਾਬੀਆਂ ਦੀ ਮਰਦ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਪਿਤਰ ਸੱਤਾ ਦੀ ਦੇਣ ਹੈ। ਇਸ ਲਈ ਕੁਲਤਾਰ ਵੀ ਇਹੀ ਸਮਝਦਾ ਹੈ ਕੁੜੀ (ਸੁਖਦੀਪ) ਨੂੰ ਘਰ ਦਾ ਕੰਮ ਸਿਖਾਉਣ ਦਾ ਜ਼ਿੰਮਾ ਵੀ ਔਰਤ ਦਾ ਹੀ ਹੈ,

ਕੁਲਤਾਰ:- ਬਈ ਇਹ ਤੇ ਤੂੰ ਪਹਿਲਾਂ ਆਦਤ ਪਾਉਣੀ ਸੀ ਨਾ, ਜੇ ਤੂੰ ਉਹਨੂੰ ਟਾਈਮ ਸਿਰ ਕੰਮ ਸਿਖਾਇਆ ਹੁੰਦਾ ਤਾਂ ਉਹਨੇ ਆਪੇ ਈ ਸਿੱਖ ਲੈਣਾ ਸੀ।5

ਕੁਲਤਾਰ:- ...ਪਰ ਸੁਰਜੀਤ ਇਕ ਗੱਲ ਤੇਰੀ ਠੀਕ ਆ ਕਿ ਸੁੱਖੀ ਹੁਣ ਵੱਡੀ ਹੋ ਗਈ ਆ, ਇਹਨੂੰ ਘਰ ਦਾ ਕੰਮ ਕਾਜ ਵੀ ਸਿੱਖਣਾ ਚਾਹੀਦਾ, ਜੇ ਤੂੰ ਹੁਣ ਨਈਂ ਸਿਖਾਏਂਗੀ ਤਾਂ ਇਸ ਨੂੰ ਮੁਸ਼ਕਲ ਆਵੇਗੀ।6

ਸਮੁੱਚਾ ਨਾਟਕ ਮਰਦ ਪਾਤਰ ਕੁਲਤਾਰ ਸਿੰਘ ਦੇ ਆਲੇ ਦੁਆਲੇ ਘੁੰਮਦਾ ਹੈ ਜੋ ਇਕ ਟੈਕਸੀ ਡਰਾਈਵਰ ਹੈ ਅਤੇ ਇਮਾਨਦਾਰੀ ਨਾਲ ਆਪਣੀ ਰੋਜ਼ੀ ਰੋਟੀ ਕਮਾਉਂਦਾ ਹੈ। ਦੂਜੇ ਪਾਸੇ ਉਸਦਾ ਸਾਲਾ ਮੇਜਰ ਸਿੰਘ ਹਾਲੇ ਕੁਝ ਹੀ ਸਾਲ ਪਹਿਲਾਂ ਕੈਨੇਡਾ ਵਿੱਚ ਆਇਆ ਹੈ ਜੋ ਟਰੱਕ ਚਲਾਉਂਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਡਰੱਗ ਦਾ ਧੰਦਾ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਮੇਜਰ ਸਿੰਘ ਨੇ ਕੁਝ ਹੀ ਸਾਲਾਂ ਵਿਚ ਪੰਜ ਲੱਖ ਡਾਲਰ ਦਾ ਘਰ ਬਣਾ ਲਿਆ ਉਥੇ ਪੰਜਾਬ ਵਿਚ ਵੀ ਨੱਬੇ ਲੱਖ ਰੁਪਏ ਲਾ ਕੇ ਇਕ ਵਧੀਆ ਕੋਠੀ ਪਾ ਲਈ। ਉਸਦੀ ਘਰ ਵਾਲੀ ਮਰਸੀਡੀਜ਼ ਚਲਾਉਂਦੀ ਹੈ ਅਤੇ ਉਸਨੇ ਨਵਾਂ ਨਵਾਂ ਹਮਰ ਖਰੀਦਿਆ ਹੈ। ਮੇਜਰ ਸਿੰਘ ਦਾ ਮੁੰਡਾ ਕੁਲਤਾਰ ਦੇ ਮੁੰਡੇ ਨੂੰ ਇਸ ਗਲੈਮਰੀ ਜੀਵਨ ਵੱਲ ਖਿੱਚਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਉਸਨੂੰ ਡਰੱਗ ਲੈਣ ਲਈ ਮਜ਼ਬੂਰ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਅੰਤ ਮੇਜਰ ਸਿੰਘ ਦਾ ਮੁੰਡਾ ਪੁਲਿਸ ਦੇ ਹੱਥ ਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਜਿਸਦੇ ਨਾਲ ਕੁਲਤਾਰ ਦਾ ਮੁੰਡਾ ਵੀ ਫ਼ੜਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਸਾਰੀ ਘਟਨਾਕ੍ਰਮ ਦੇ ਨਾਲ ਨਾਲ ਕੁਲਤਾਰ ਸਿੰਘ ਆਪਣੀ ਲੜਕੀ ਦੀ ਸ਼ਾਦੀ ਬਾਰੇ ਵੀ ਇਕ ਜੰਗ ਲੜ ਰਿਹਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਉਸਦੀ ਲੜਕੀ ਇਕ ਹਿੰਦੂ ਲੜਕੇ ਨਾਲ ਸ਼ਾਦੀ ਕਰਵਾਉਣੀ ਚਾਹੁੰਦੀ ਹੈ ਪਰ ਕੁਲਤਾਰ ਦੀ ਪਤਨੀ ਸੁਰਜੀਤ ਕੌਰ ਕੁਲਤਾਰ ਨੂੰ ਉਹ ਦਿਨ ਯਾਦ ਕਰਵਾਉਂਦੀ ਹੈ ਜਦੋਂ ਉਸਦਾ ਭਾਈ ਦਿੱਲੀ ਹਿੰਦੂਆਂ ਵੱਲੋਂ ਮਾਰ ਦਿੱਤਾ ਗਿਆ ਸੀ। ਨਾਟਕ ਮੂਲ ਰੂਪ ਵਿਚ ਬਦਲਦੇ ਰਿਸ਼ਤਾ ਨਾਤਾ ਪ੍ਰਬੰਧ, ਪੂੰਜੀਵਾਦੀ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਅਧੀਨ ਨਸ਼ੇ ਦਾ ਕਾਰੋਬਾਰ ਅਤੇ ਨੌਜਵਾਨ ਪੀੜ੍ਹੀ ਦਾ ਨਸ਼ੇ ਦਾ ਵੱਧਦਾ ਰੁਝਾਨ ਤੋਂ ਇਲਾਵਾ ਧਰਮ ਸੰਪ੍ਰਦਾਇਕਤਾ ਤੋਂ ਉਪਰ ਉੱਠਣ ਦਾ ਸੁਨੇਹਾ ਦਿੱਤਾ ਗਿਆ ਹੈ।

ਪਰਿਵਾਰਕ ਸਬੰਧਾਂ ਵਿਚ ਮਰਦ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਧੌਂਸਮਈ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਸੁਰਜੀਤ ਕਲਸੀ ਦੇ **ਮਹਿਲੀਂ ਵਸਦੀਆਂ ਧੀਆਂ** ਨਾਟਕ ਵਿਚ ਮਾਸਟਰ ਕਿਸ਼ਨ ਸਿੰਘ ਆਪਣੇ ਪਰਿਵਾਰ ਦਾ ਮੁਖੀ ਹੈ ਜੋ ਆਪਣੀ ਪਤਨੀ ਅਤੇ ਮਾਂ ਦੋਵਾਂ ਉਪਰ ਧੌਂਸ ਜਮਾਂ ਕੇ ਰੱਖਦਾ ਹੈ। ਉਹ ਆਪਣੀ ਪਤਨੀ ਨਾਲੋਂ ਆਪਣੀ ਮਾਂ ਦੀ ਗੱਲ ਨੂੰ ਜ਼ਿਆਦਾ ਤਰਜੀਹ ਦਿੰਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਲਈ ਘਰੇਲੂ ਸਥਿਤੀਆਂ ਵਿਚ ਪਤਨੀ (ਤਾਰੋ) ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਤਰਸਯੋਗ ਹੋ ਜਾਂਦੀ ਹੈ। ਬੀਜੀ, ਆਪਣੇ ਪੁੱਤ ਦੇ ਰੋਹਬ ਤੋਂ ਡਰਦੀ ਵੀ ਹੈ,ਇਸ ਲਈ ਉਹ ਤਾਰੋ ਨੂੰ ਉਸਦੇ ਸਾਹਮਣੇ ਘੱਟ ਝਿੜਕਦੀ ਹੈ,

> ਤਾਰੋ:- ਬੀਜੀ, ਤੁਸੀਂ ਉਹਨਾਂ ਸਾਹਮਣੇ ਤਾਂ ਕੁਝ ਨਹੀਂ ਕਹਿੰਦੇ ਜਦੋਂ ਉਹ ਘਰੋਂ ਬਾਹਰ ਹੋ ਜਾਂਦੇ ਐ ਤੁਸੀਂ ਉਦੋਂ ਈ ਐਵੇਂ ਲੜਾਈ ਪਾ ਕੇ ਬਹਿ ਜਾਂਦੇ ਓ..7

ਬੀਜੀ ਦਾ ਤਾਰੋ ਨਾਲ ਕਿਸ਼ਨ ਦੀ ਗੈਰਹਾਜ਼ਰੀ ਵਿਚ ਕਲੇਸ਼ ਕਰਨ ਦੇ ਕਈ ਕਾਰਨ ਹਨ। ਪਹਿਲਾ, ਆਪਣੇ ਦੂਜੇ ਪੁੱਤ ਨੂੰ ਕੈਨੇਡਾ ਨਾ ਬੁਲਾ ਸਕਣ ਦਾ, ਦੂਜਾ ਤਾਰੋ ਦਾ ਕੋਈ ਜੌਬ ਨਾ ਕਰਨ ਦਾ ਪਰ ਉਹ ਕਿਸ਼ਨ ਸਾਹਮਣੇ ਉਸ ਨੂੰ ਕੁਝ ਨਾ ਕਹਿਣਾ ਮਰਦ ਦੀ ਨਾਬਰੀ ਹੈ ਕਿਉਂ ਕਿ ਔਰਤ ਮਾਂ ਰੂਪ ਵਿਚ ਪੁੱਤ ਅਤੇ ਪਤਨੀ ਰੂਪ ਵਿਚ ਪਤੀ ਦੇ ਅਧੀਨ ਹੁੰਦੀ ਹੈ ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਮਰਦ ਪ੍ਰਧਾਨ ਸਮਾਜ ਵਿਚ ਪਰਿਵਾਰਕ ਫ਼ੈਸਲੇ ਵੀ ਮਰਦ ਦੀ ਨਾਬਰੀ ਅਤੇ ਪ੍ਰਧਾਨਗੀ ਅਧੀਨ ਹੀ ਹੁੰਦੇ ਹਨ। ਚੇਤਨਾ ਨਾਟਕ ਵਿਚ ਮਰਦ ਉਪਰ ਹੋਈ ਬਾਹਰਲੀ ਹਿੰਸਾ (ਨਸਲੀ ਵਿਤਕਰਾ, ਕੰਮ ਤੋਂ ਜੁਆਬ ਆਦਿ) ਦਾ ਬਦਲਾ ਘਰੇਲੂ ਔਰਤ ਤੋਂ ਲੈਂਦਾ ਹੈ। ਪਾਰਟੀ ਤੇ ਜਾਣ ਲਈ ਬੇਸ਼ੱਕ ਔਰਤ ਤਿਆਰ ਹੈ ਪਰ ਉਹ ਜੁਆਬ ਦੇ ਦਿੰਦਾ ਹੈ।

> ਮਰਦ:- ਉਹੀ ਜਨਾਨੀਆਂ ਵਾਲੀ ਜਿੱਦ, ਤੈਨੂੰ ਪੰਜਾਹ ਵਾਰੀ ਕਿਹੈ ਨਹੀਂ ਜਾਣਾ, ਕੋਈ ਖਾਨੇ ਚ ਗੱਲ ਪੈਂਦੀ ਐ ਕਿ ਨਹੀਂ।8

ਮਰਦ ਦੀ ਫਰੱਸਟਰੇਸ਼ਨ ਦਾ ਮੂਲ ਕਾਰਨ ਉਸਨੂੰ ਕੰਮ ਤੋਂ ਜਵਾਬ ਮਿਲਣਾ ਹੈ, ਇਸਦਾ ਸਾਰਾ ਗੁੱਸਾ ਉਹ ਆਪਣੀ ਔਰਤ ਤੇ ਕੱਢਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਇਸ ਦੁੱਖ, ਤਣਾਅ ਨੂੰ ਘਟਾਉਣ ਲਈ ਸ਼ਰਾਬ ਦਾ ਸ਼ਰਾਬ ਦਾ ਸਹਾਰਾ ਲੈਂਦਾ ਹੈ, ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਹੀ ਉਹ ਆਪਣੀ ਧੀ ਨਾਲ ਵਿਹਾਰ ਕਰਦਾ ਹੈ ਜਦੋਂ ਉਸਦੀਆਂ ਸਹੇਲੀਆਂ ਉਸਨੂੰ ਬਾਹਰ ਮੂਵੀ ਦੇਖਣ ਲਈ ਬੁਲਾਉਣ ਆਂਉਦੀਆਂ ਹਨ ਤਾਂ ਪਿਤਾ ਆਪਣੇ ਪਿੱਤਰ ਸੱਤਾਤਮਕ ਹੋਂਦ ਕਾਰਨ ਉਨ੍ਹਾਂ ਉਪਰ ਨਾਬਰੀ ਜਮਾਉਂਦਾ ਹੈ।

> ਪਿਤਾ:-(ਇਕ ਦਮ ਚਿਹਰਾ ਤਣ ਜਾਂਦਾ ਹੈ) ਕਿਥੇ ਜਾਣੈ? ਕੌਣ ਜਾ ਰਿਹੈ?
>
> ਮੈਂਡੀ:- ਅਸੀਂ ਅੱਜ ਸਾਰੇ ਫਰੈਂਡਜ ਨੇ ਰਲ ਕੇ ਮੂਵੀ ਜਾਣੀਦਾ ਪ੍ਰੋਗਰਾਮ ਬਣਾਇਆ ਹੋਇਆ ਹੈ।
>
> ਪਿਤਾ:- ਮੂਵੀ? No, ਕਿਤੇ ਨਹੀਂ ਜਾਣਾ, Study ਕਰ ਬੈਠ ਕੇ... ਜਦੋਂ ਦੇਖੋ ਬਾਹਰ ਨੂੰ ਭੱਜਣ ਦੀ ਕਰਦੀ ਐਂ।9

ਮਰਦ ਪਾਤਰ ਆਪਣੇ ਘਰ ਵਿਚ ਆਪਣੀ ਹੋਂਦ ਨੂੰ ਬਰਕਰਾਰ ਰੱਖਣ ਲਈ ਘਰ ਦੇ ਸਾਰੇ ਸਾਧਨਾਂ ਅਤੇ ਮਨੁੱਖਾਂ ਉਪਰ ਆਪਣਾ ਅਧਿਕਾਰ ਸਮਝਦੇ ਹਨ, ਉਕਤ ਸਥਿਤੀ ਵਿਚ ਪਿਤਾ ਅਤੇ ਸੈਂਡੀ (ਉਸਦੀ ਧੀ) ਵਿਚਕਾਰ ਤਣਾਉ ਵੱਧਦਾ ਹੈ। ਅਸਲ ਵਿਚ ਬੱਚਿਆਂ ਅਤੇ ਮਾਪਿਆਂ ਵਿਚ ਪੀੜ੍ਹੀ ਪਾੜਾ ਹੋਣ ਕਾਰਨ ਅਤੇ ਸਮਾਜ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਮਾਨਤਾਵਾਂ ਦਾ ਬਦਲ ਹੋਣ ਕਾਰਨ ਸਥਿਤੀਆਂ ਤਣਾਉ ਪੂਰਵਕ ਹੋ ਜਾਂਦੀਆਂ ਹਨ,

ਮਰਦ ਪਾਤਰ ਆਪਣੀ ਹੋਂਦ ਕਾਇਮ ਕਰਨ ਲਈ ਆਪਣੇ ਵਿਰੋਧ ਵਿਚ ਉੱਠਦੀਆਂ ਬਗਾਵਤੀ ਸੁਰਾਂ ਨੂੰ ਹਮੇਸ਼ਾ ਲਈ ਦੱਬ ਦਿੰਦੇ ਹਨ, ਨਾਟਕ ਵਿਚੋਂ ਪਤਾ ਚਲਦਾ ਹੈ ਕਿ ਗੱਜਣ ਅਤੇ ਜਸਵੰਤ ਨੇ ਆਪੋ ਆਪਣੀਆਂ ਧੀਆਂ ਨੂੰ ਪਤਾ ਨਹੀਂ ਕਿੱਥੇ ਖਪਾਅ ਦਿੱਤਾ ਸੀ, ਕਿਉਂਕਿ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਮਰਦਾਵੀਂ ਸੱਤਾ ਨੂੰ ਵੰਗਾਰਿਆ ਸੀ। ਪਰਿਵਾਰ ਵਿਚ ਉਹੀ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਜੋ ਮਰਦ ਚਾਹੁੰਦਾ ਹੈ।

ਪਿਤਾ:-......ਇਸ ਘਰ ਵਿਚ ਉਹੀ ਹੋਏਗਾ ਜੋ ਮੈਂ ਚਾਹਾਂਗਾ।10

ਪਰਵਾਸ ਵਿਚ ਵਸਦੇ ਲੋਕਾਂ ਨੂੰ ਰੰਗ-ਭੇਦ ਨਸਲ ਧਰਮ,ਭਾਸ਼ਾ ਖਾਣ-ਪੀਣ ਆਦਿ ਕਾਰਨ ਅਨੇਕਾਂ ਮੁਸਕਿਲਾ ਦਾ ਸਾਹਮਣਾ ਕਰਨਾ ਪੈਂਦਾ ਹੈ। ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਰਾਜਨੀਤਕ ਤੌਰ 'ਤੇ ਉਹੀ ਵਰਗ ਹਾਵੀ ਹੁੰਦਾ ਹੈ, ਜਿਸ ਦਾ ਆਰਥਿਕ ਸਾਧਨਾਂ ਉੱਪਰ ਅਧਿਕਾਰ ਹੋਵੇ। ਇਹੀ ਵਰਗ ਸਮਾਜ ਅਤੇ ਸੱਭਿਆਚਾਰਕ ਖੇਤਰ ਵਿੱਚ ਪ੍ਰਮੁੱਖ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਸੱਭਿਆਚਾਰਕ ਕਦਰ ਪ੍ਰਬੰਧ ਵਿੱਚ ਇਸੇ ਵਰਗ ਦਾ ਬੋਲਬਾਲਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਬੇਸ਼ੱਕ ਦਲਿਤਾ, ਘੱਟ ਗਿਣਤੀਆਂ ਅਤੇ ਔਰਤਾਂ ਨੂੰ ਸੰਵਿਧਾਨ ਵਿੱਚ ਰਾਜਨੀਤਕ, ਆਰਥਿਕ ਅਤੇ ਸਮਾਜਿਕ ਅਧਿਕਾਰ (civil rights) ਦਿੱਤੇ ਗਏ ਹਨ, ਪਰ ਫਿਰ ਵੀ ਸੱਤਾਧਾਰੀ ਪੁਰਸ਼ ਅਸਿੱਧੇ ਢੰਗ ਨਾਲ ਇਨ੍ਹਾਂ ਅਧਿਕਾਰਾਂ ਦੀ ਵਰਤੋਂ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਪਿੱਤਰ ਸੱਤਾ ਕੋਲ ਰਾਜਸੀ ਤਾਕਤ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਇਹ ਸਮਾਜ ਦੀ ਸਮੁੱਚੀ ਪ੍ਰਕਿਰਿਆ ਨੂੰ ਆਪਣੀ ਮਨਮਰਜ਼ੀ ਨਾਲ ਚਲਾਉਂਦਾ ਹੈ। ਸੱਤਾਧਾਰੀ ਧਿਰ ਕੋਲ ਰਾਜਸੀ ਤਾਕਤ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਵਿਚਰਨ ਵਾਲੇ ਵਿਅਕਤੀਆਂ ਨੂੰ ਕੋਈ ਵੀ ਕੰਮ ਕਰਨ ਲਈ ਨਿਰਦੇਸ਼ਿਤ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਸੱਤਾਧਾਰੀ ਧਿਰ ਕੇਵਲ ਰਾਜਸੀ ਤੇ ਆਰਥਿਕ ਤੌਰ 'ਤੇ ਹੀ ਉੱਚ ਸਥਿਤੀ ਵਿੱਚ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦੀ, ਸਗ ਬੌਧਿਕ ਤੌਰ 'ਤੇ ਵੀ ਬਲਵਾਨ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਇਸ ਬੌਧਿਕ ਬਲ ਦਾ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਰਾਜਸੀ ਸੱਤਾ ਉੱਤੇ ਕਬਜ਼ਾ ਕਰਨ ਵਿੱਚ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਯੋਗਦਾਨ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਇਸੇ ਕਰਕੇ ਉਹ ਸਮਾਜ ਦੀ ਸਮੁੱਚੀ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਨੂੰ ਕੰਟਰੋਲ ਕਰਨ ਵਿੱਚ ਸਮਰੱਥ ਹੁੰਦੀ ਹੈ।

ਔਰਤ ਤੇ ਮਰਦ ਸਮਾਜਿਕ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਵਿਕਾਸ ਲਈ ਇੱਕ ਜਿੰਨੀਆ ਮਹੱਤਵਪੂਰਨ ਹਨ। ਦੋਹਾਂ ਵਿਚ ਸਮਾਨਤਾ ਅਤੇ ਸੰਤੁਲਨ ਜ਼ਰੂਰੀ ਹੈ। ਦੋਹਾਂ ਦੇ ਮਾਨਵੀ ਅਧਿਕਾਰਾਂ, ਦੋਹਾਂ ਦੀ ਸੁਤੰਤਰ ਹਸਤੀ ਅਤੇ ਸਨਮਾਨ ਦੀ ਬਹਾਲੀ ਜ਼ਰੂਰੀ ਹੈ। ਪਰ ਮਰਦ ਦੁਆਰਾ ਆਪਣੇ ਆਪ ਨੂੰ ਸ੍ਰੇਸ਼ਟ ਤੇ ਔਰਤ ਨੂੰ ਨਿਮਨ ਸਮਝਣ ਕਾਰਨ ਜਿੱਥੇ ਔਰਤ ਦੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਵਿੱਚ ਕੁੜੱਤਣ ਭਰ ਗਈ, ਉੱਥੇ ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਤੇ ਰਿਸ਼ਤਿਆ ਵਿੱਚ ਪੈਦਾ ਹੋਇਆ ਅਸਾਵਾਂਪਣ ਵੀ ਰੜਕਣ ਲੱਗਾ। ਇਸ ਅਸਾਵੇਪਣ ਨੇ ਅਨੇਕਾਂ ਮੁਸ਼ਕਿਲਾਂ ਨੂੰ ਜਨਮ ਦਿੱਤਾ, ਜਿਸ ਕਰਕੇ ਨਿੱਤ ਨਵੇਂ ਸਵਾਲ ਪੈਦਾ ਹੋਣ ਲੱਗੇ। ਇਸ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਕਿ ਉਨ੍ਹਾਂ ਸਵਾਲਾਂ ਦੇ ਜਵਾਬ ਤਲਾਸ਼ਣ ਦੀ ਬਜਾਇ ਕਿਸੇ ਨਾ ਕਿਸੇ ਤਰੀਕੇ ਉਨ੍ਹਾ ਸਵਾਲਾ ਨੂੰ ਹੀ ਦਬਾ ਦਿੱਤਾ ਜਾਂਦਾ ਰਿਹਾ। ਇਸ ਤਰਾਂ ਔਰਤ ਦਮਨ ਭੋਗਦੀ ਹੋਈ ਮਰਦ ਦੀ ਹਿੰਸਾ ਦਾ ਸ਼ਿਕਾਰ ਹੋਈ। ਪੁਰਸ਼ ਅਤੇ ਇਸਤਰੀ ਦੀ ਸਮਾਜਿਕ ਸਥਿਤੀ ਵਿੱਚ ਅੰਤਰ ਦੇ ਕਾਰਨ ਸਾਡੀਆਂ ਪੁਰਾਤਨ ਧਾਰਮਿਕ ਅਤੇ ਸਮਾਜਿਕ ਮਾਨਤਾਵਾਂ ਵਿਚ ਵੀ ਛੁਪੇ ਹਨ ਅਤੇ ਵੱਖ-ਵੱਖ ਇਤਿਹਾਸਕ ਪੜਾਵਾਂ ਵਿਚਲੀ ਆਰਥਿਕ, ਰਾਜਸੀ, ਸਮਾਜਿਕ, ਸੱਭਿਆਚਾਰਕ ਸਥਿਤੀ ਵਿੱਚ ਵੀ ਅੰਤਰ ਦੇ ਆਧਾਰ ਉੱਤੇ ਇਸਤਰੀ-ਪੁਰਜ ਵਿੱਚ ਅੰਤਰ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੈ ਅਤੇ ਇਹੀ ਅੰਤਰ ਜੀਵਨ ਦੇ ਲਗਭਗ ਸਾਰੇ ਪੱਖਾਂ ਵਿੱਚ ਸਪਸ਼ਟ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਦਿਖਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਅੰਤਰ ਦੇ ਕਾਰਨ ਪਰਿਵਾਰ, ਸਮਾਜਿਕ ਜੀਵਨ, ਸੱਭਿਆਚਾਰਕ ਮਾਨਤਾਵਾਂ ਅਤੇ ਕਾਰਜ ਵਪਾਰ ਦੇ ਲਈ ਇਸਤਰੀ-ਪੁਰਸ਼ ਲਈ ਅਲੱਗ-ਅਲੱਗ ਮਾਨਦੰਡ ਲਾਗੂ ਕੀਤੇ ਗਏ ਹਨ। ਕਿਉਂਕਿ ਸਮਾਜਿਕ ਪਰੰਪਰਾਵਾਂ ਨੂੰ ਪੁਰਸ਼ ਹੀ ਤੈਅ ਕਰਦੇ ਆਏ ਹਨ, ਇਸ ਲਈ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਆਪਣੇ ਹਿਤਾਂ ਲਈ ਸੁਵਿਧਾਜਨਕ ਮਾਨਦੰਡ ਤੈਅ ਕਰ ਲਏ ਅਤੇ ਇਸਤਰੀਆਂ ਦੇ ਲਈ ਮਾਨਦੰਡ ਤੈਅ ਕਰਦੇ ਸਮੇਂ ਵਿਵਹਾਰਕਤਾ ਤੱਕ ਦਾ ਧਿਆਨ ਨਹੀਂ ਰੱਖਿਆ। ਜਰੂਰਤ ਇਸ ਗੱਲ ਦੀ

ਸੀ ਕਿ ਇਸਤਰੀ-ਪੁਰਸ਼ਾਂ ਲਈ ਆਰਥਿਕ, ਰਾਜਸੀ, ਸਮਾਜਿਕ ਅਧਿਕਾਰਾਂ, ਨੈਤਿਕ ਕਦਰਾਂ ਅਤੇ ਕਿਰਤ ਲਈ ਸਮਾਨਤਾ ਦੀ ਭਾਵਨਾ ਦਾ ਪਰਿਚੈ ਦਿੱਤਾ ਜਾਂਦਾ, ਪਰ ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਨਹੀਂ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਅਤੇ ਇਸ ਕਾਰਨ ਅੱਜ ਇਸਤਰੀ ਸਸ਼ਕਤੀਕਰਨ ਦੇ ਰਾਹ ਵਿੱਚ ਅਨੇਕਾਂ ਮੁਸ਼ਕਲਾਂ ਹਨ। ਪੁਰਸ਼ਾਂ ਨੇ ਆਪਣੇ ਸਵਾਰਥ ਹਿਤ ਇਸਤਰੀਆਂ ਦੀ ਇੱਕ ਆਦਰਸ਼ਵਾਦੀ ਛਬੀ ਘੜ ਦਿੱਤੀ ਹੈ ਅਤੇ ਇਸ ਆਦਰਸ਼ਵਾਦੀ ਛਬੀ ਦੇ ਮੂਲ ਵਿਚ ਹੀ ਭੇਦਭਾਵ ਦਾ ਤੱਤ ਛੁਪਿਆ ਹੋਇਆ ਹੈ। ਆਦਰਸ਼ਵਾਦ ਦੀ ਇਹ ਛਬੀ ਇਸਤਰੀਆਂ ਉੱਤੇ ਜ਼ਬਰਦਸਤੀ ਹੁੰਦੀ ਗਈ ਹੈ। ਇਸ ਆਦਰਸ਼ ਦੇ ਪਿੱਛੇ ਭੇਦਭਾਵ ਅਤੇ ਉਤਪੀੜਨ ਦੀ ਇੱਛਾ ਛਿਪੀ ਹੈ ਅਤੇ ਬਦਕਿਸਮਤੀ ਦੀ ਗੱਲ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਇਸ ਆਦਰਸ਼ ਨੂੰ ਸਮਾਜਿਕ ਮੁੱਲ' ਦਾ ਨਾਮ ਦੇ ਕੇ ਇਸਤਰੀਆਂ ਨੂੰ ਸਦੀਆਂ ਤੋਂ ਛਲਿਆ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਇਤਿਹਾਸ ਦੇ ਵੱਖ-ਵੱਖ ਪੜਾਵਾਂ ਉੱਪਰ ਔਰਤ ਲਈ ਦੇਵੀ, ਰਿਸ਼ੀਕਾ, ਸਤੀ-ਸਾਵਿੱਤਰੀ, ਵੀਰਾਂਗਣਾ ਆਦਿ ਜਿਹੇ ਸ਼ਰਧਾ-ਸੂਚਕ ਪਦ ਵਰਤੇ ਗਏ। ਇਹ ਔਰਤ ਦੀ ਕਥਿਤ ਮਹਿਮਾ ਅਤੇ ਛਬੀ ਨੂੰ ਉਤਾਰ ਕੇ ਉਸ ਦਾ ਧਿਆਨ ਉਸ ਦੇ ਸੁਤੰਤਰ ਵਜੂਦ ਦੇ ਮਾਨਵੀ ਅਧਿਕਾਰਾਂ ਦੀ ਮੰਗ ਤੋਂ ਹਟਾਉਣ ਦੀ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਕੀਤੀ। ਪਿੱਤਰ ਸੱਤਾ ਦੀ ਸੰਸਥਾ ਨੇ ਔਰਤ ਲਈ ਇਹ ਵਿਵਸਥਾ ਇਸ ਲਈ ਬਣਾਈ ਹੈ, ਤਾਂ ਕਿ ਉਹ ਕਦੇ ਵੀ ਆਤਮ-ਵਿਸ਼ਵਾਸੀ ਸਸ਼ਕਤ ਹੋਣ ਦੇ ਬਾਰੇ ਸੋਚ ਵੀ ਨਾ ਸਕੇ। ਇਸ ਲਈ ਜਦੋਂ ਵੀ ਅਸੀਂ ਭਾਰਤੀ ਔਰਤ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਨੂੰ ਪ੍ਰਾਚੀਨ ਕਾਲ, ਮੱਧ ਕਾਲ ਅਤੇ ਆਧੁਨਿਕ ਕਾਲ ਦੇ ਸੰਦਰਭ ਵਿੱਚ ਦੇਖਦੇ ਹਾਂ, ਤਾਂ ਅਸੀਂ ਦੇਖਦੇ ਹਾਂ ਕਿ ਉਸ ਨੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਤਿੰਨਾਂ ਕਾਲਾਂ ਵਿੱਚ ਬਹੁਤ ਜਿਆਦਾ ਪੀੜਾ, ਅਪਮਾਨ ਅਤੇ ਵਰਜਨਾਵਾਂ ਨੂੰ ਝੱਲਿਆ ਹੈ। ਸਾਮੰਤੀ ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਔਰਤ ਪੂਰੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਮਰਦ (ਪਤੀ, ਪਿਤਾ, ਭਰਾ, ਪੁੱਤਰ) ਉੱਪਰ ਨਿਰਭਰ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਇਸੇ ਲਈ ਉਹ ਪਤੀ ਦੁਆਰਾ ਦਮਨ ਅਤੇ ਭੋਗ ਨੂੰ ਹੀ ਪ੍ਰੇਮ ਸਮਝਦੀ ਹੈ, ਪ੍ਰੰਤੂ ਜਦੋਂ ਉਹ ਸਮਾਜਿਕ ਉਤਪਾਦਨ ਵਿਚ ਸ਼ਾਮਿਲ ਹੁੰਦੀ ਹੈ, ਤਾਂ ਇਹ ਉਤਪਾਦਨ ਲਈ ਸੰਘਰਸ਼, ਉਸ ਨੂੰ ਚੰਗੇ ਵਿਚਾਰ ਪ੍ਰਦਾਨ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਆਪਣੀ ਹੋਂਦ ਨੂੰ ਕੇਂਦਰ ਵਿੱਚ ਰੱਖਣ ਲਈ ਹੀ ਉਸ ਦੀ ਚੇਤਨਾ ਸਮਾਜਿਕ ਚੇਤਨਾ ਦੀ ਭਾਗੀਦਾਰ ਬਣਨ ਵੱਲ ਵਧਦੀ ਹੈ।

ਹਵਾਲੇ ਤੇ ਟਿੱਪਣੀਆਂ-

1. *ਭਾਈ ਕਾਹਨ ਸਿੰਘ ਨਾਭਾ, ਗੁਰਸ਼ਬਦ ਰਤਨਾਕਰ ਮਹਾਨਕੋਸ਼, ਪੰਨਾ-3341.*
2. *ਕੁਲਵਿੰਦਰ ਖਹਿਰਾ, ਅੰਨ੍ਹੀਆਂ ਗਲੀਆਂ,ਪੰਨਾ-13.*
3. *ਓਹੀ, ਪੰਨਾ -14.*
4. *ਓਹੀ, ਪੰਨਾ -14.*
5. *ਓਹੀ, ਪੰਨਾ -15.*
6. *ਓਹੀ, ਪੰਨਾ -16.*
7. *ਸੁਰਜੀਤ ਕਲਸੀ, ਮਹਿਲੀਂ ਵਸਦੀਆਂ ਧੀਆਂ, ਪੰਨਾ 16-17.*
8. *ਓਹੀ, ਪੰਨਾ -32.*
9. *ਓਹੀ, ਪੰਨਾ -33.*
10. *ਓਹੀ, ਪੰਨਾ -38*

pushwinderk87@ gmail.com 9915607130

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 72-76
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Traditional Knowledge and Geographical Indications: Protecting Heritage and Promoting Sustainability

PRIYA SHUKLA
Research Scholar,
MGKVP VARANASI

Abstract
The integration of traditional knowledge into geographical indications represents a holistic approach to preserving cultural identity, promoting sustainable practices, and empowering local communities. By recognizing the inextricable link between products and the wisdom of their creators, the GI framework can serve as a vital tool for ensuring that traditional knowledge thrives in the modern world.
In this research paper author describe the Traditional knowledge and Geographical Indications: Protecting Heritage and promoting Sustainability and role of local communities.
Key Words: Traditional knowledge, Geographical Indication, Heritage, sustainability.

Introduction

Traditional Knowledge (TK) and Geographical Indications (GI) are powerful tools for safeguarding cultural heritage and fostering sustainable development. While TK refers to the collective wisdom and practices developed over generations within a community, GIs are legal mechanisms that protect products linked to specific regions, emphasizing their unique qualities derived from local resources and traditions. Together, these concepts create an avenue for recognizing and preserving the identity of culturally significant goods while benefiting local communities.

GIs and TK share a common foundation in cultural heritage and local ecosystems. Geographical Indications not only protect the products but also ensure that the traditional knowledge behind their creation is acknowledged and preserved.

Meaning of Traditional knowledge and Geographical Indication

Traditional Knowledge (TK) and Geographical Indications (GIs) represent crucial tools in preserving cultural heritage, promoting sustainability, and ensuring economic empowerment for communities. By valuing traditional practices and linking them to specific regions, these concepts create pathways for protecting cultural identities.

Traditional knowledge (TK) is knowledge, know-how, skills and practices that are developed, sustained and passed on from generation to generation within a community, often forming part of its cultural or spiritual identity[1].

---

[1] https://www.wipo.int/tk/en/tk/ visited on 18-11-2024

Traditional Knowledge (TK) encompasses the essence of knowledge itself, along with cultural traditions, including unique signs and symbols that are inherently linked to TK.

In a more specific context, TK refers to the knowledge derived from intellectual efforts within traditional frameworks. This includes practical expertise, methodologies, skills, and creative innovations.

In a broader context, it encompasses various elements of cultural and traditional heritage such as tales, music, folklore, sayings, societal values, beliefs, ceremonies, community regulations, regional languages, and traditional medicinal and farming methods. This also includes innovations related to the cultivation of plants and the breeding of animals.[2]

According to Russel Brash, "what is 'traditional' about TK is not its antiquity, but the way it is acquired and used. In other words, the social process of learning and sharing knowledge, which is unique to each indigenous culture, lies at the very heart of its 'traditionality.' Much of this knowledge is actually quite new, but it has a social meaning, and legal character, entirely unlike the knowledge indigenous people acquire from settlers and industrialized societies."

Traditional Knowledge is prevalent across diverse fields such as: Agriculture, Science and technology, Environmental and medicinal practices, and knowledge associated with biodiversity.

"An indication which identifies such goods as agricultural goods, natural goods, or manufactured goods as originating, or manufactured in the territory of a country, or a region or locality in that territory, where a given quality, reputation, or other characteristic of such goods is essentially attributable to its geographical origin and, in case where such goods are manufactured goods, one of the activities of either the production or of processing or preparation of the goods concerned takes place in such territory, region, or locality." is **geographical Indication**.[3]

In other word we can say that, A Geographical Indication (GI) is a sign or label used to identify a product as originating from a specific geographical location, region, or country, where its quality, reputation, or distinct characteristics are inherently linked to its place of origin.

Internationally, GIs are recognized under the Paris Convention for the Protection of Industrial Property, specifically Articles 1(2) and 10, which categorize GIs as part of intellectual property rights (IPRs). Additionally, the TRIPS Agreement (Trade-Related Aspects of Intellectual Property Rights), under the WTO, provides comprehensive rules for GIs in Articles 22–24. These include definitions, protection mechanisms, and provisions for dispute resolution regarding misuse or imitation of GIs. The TRIPS framework was introduced as part of the agreements concluded during the Uruguay Round of the GATT negotiations.

In India, adhering to its commitments under the WTO, the Geographical Indications of Goods (Registration and Protection) Act, 1999, was enacted. This legislation came into effect on September 15, 2003, to safeguard the rights of producers of GI-tagged goods, prevent misuse of registered GIs, and enhance their market value.[4]

Traditional Knowledge Embedded in GI-Protected Products:

Agricultural Product like Basmati Rice (India and Pakistan) Known for its unique aroma and long grains, Basmati's GI recognition also safeguards traditional farming practices, including specific irrigation and soil management methods.

---

[2] Ananda Mohan Bhattarai, Protection of Himalayan Biodiversity 145 (Sage Publication, New Delhi, 1st ed. 2010)

[3] Section 2(e) of the Geographical Indications of Goods (Registration and Protection) Act, 1999

[4] https://ipindia.gov.in/about-us-gi.htm visited on 18-11-2024

Artisanal Craft for example Kanjeevaram Silk (India) The GI-protected silk is a product of traditional weaving techniques and natural dyeing methods that reflect the cultural ethos of Tamil Nadu.

Banarasi saree is also protected under GI famous for traditional weaving technique from Varanasi.

Food Product Tiranga Barfi from Varanasi, Uttar Pradesh, was recently granted a Geographical Indication (GI) tag in April 2024. This sweet is celebrated for its tricolour appearance and cultural significance, symbolizing India's national pride. **Linking TK to GIs** ensures that ancient practices, rituals, and local wisdom are documented and protected from erosion. Like the traditional weaving patterns of Benarasi Sarees (India) are part of the GI protection for the textile. this is called preservation of cultural.

Economic Empowerment GIs enable communities to capitalize on their unique products, often leading to improved livelihoods and economic growth. This recognition helps communities gain access to larger markets, increasing the visibility of their traditional goods, which often results in improved livelihoods and economic growth. Like Banaras lal peda, Jaunpur imirt and many more.[5]Traditional methods embedded in GI practices are often environmentally sustainable, as they have evolved in harmony with local ecosystems.

Traditional knowledge and geographical Indication promoting sustainability:

Traditional knowledge often includes sustainable farming practices, medicinal uses of local plants, and methods for conserving biodiversity. Sustainability ensures that these practices can continue without depleting the resources upon which they depend. For instance, Indigenous communities have used sustainable farming techniques that enhance soil fertility and conserve water, practices which are crucial in today's context of climate change and resource scarcity.

Sustainability ensures the continuity of traditional knowledge by passing it down through generations. Communities that adopt sustainable practices often develop systems that protect their culture and way of life, thereby ensuring that future generations can maintain their cultural heritage.

GI tags help protect traditional products tied to specific regions, ensuring that producers can continue their work without fear of exploitation or imitation. By promoting sustainable production methods that align with local cultural practices, GI tags help establish long-term market advantages. For example, GI-tagged products like Darjeeling Tea or many more agricultural products based on sustainable farming practices that contribute to the long-term health of the environment and the community's economy.

By emphasizing the distinctiveness of a product's geographical origin, GIs also protect the environment. Sustainable production methods are encouraged, ensuring that resources such as land, water, and biodiversity are maintained. For example, Kashmir Pashmina Wool not only supports traditional craftsmanship but also promotes environmental practices, such as the protection of the unique Himalayan ecology.

GI registration ensures that communities can reap the benefits of their distinctive products, improving livelihoods. This empowerment often leads to better stewardship of natural resources, as communities are directly invested in preserving the land and practices that make their products unique. The recognition provided by GI tags strengthens the connection between the community and its environment, encouraging sustainable practices.

In both TK and GI systems, sustainability serves as the backbone for economic resilience and environmental protection. GIs, by safeguarding the uniqueness of products tied to a specific location, often incentivize the use of environmentally sustainable practices. For

[5] https://ipindia.gov.in/writereaddata/Portal/Images/pdf/State_wise_Registered_GI_of_India_26_07_2024.pdf visited on 18-11-2024

example, traditional handloom weaving of Banarasi sarees or Kanjeevaram silks not only preserves cultural heritage but also supports sustainable artisan practices. sustainable agricultural techniques embedded in traditional knowledge, like crop rotation and organic farming, can be recognized under GIs, leading to better environmental outcomes and the preservation of biodiversity.

By linking these systems with sustainability, we are able to protect both tangible and intangible heritage, leading to a more balanced and thriving future for local communities.

Integrating **Traditional Knowledge (TK)** with **Geographical Indications (GI)** presents several challenges, despite the many potential benefits it offers for communities, cultures, and economies. These challenges include legal, cultural, and logistical hurdles that require nuanced solutions to ensure effective integration while respecting the traditional knowledge systems and practices.

Many countries lack robust legal mechanisms to protect TK within the GI framework. While the GI system primarily focuses on product-based protection, TK is often intangible and difficult to quantify legally. This mismatch makes it hard to fully integrate TK into GI systems. Many traditional practices are oral and lack formal documentation, making it challenging to link them to GI registrations.

Traditional knowledge is typically communal, not owned by any single individual or entity. This raises questions about who has the right to apply for GI registration or claim ownership of the knowledge. Issues around intellectual property rights, especially regarding collective ownership, can create conflicts defining traditional knowledge in the context of GI. Determining who holds the rights to TK can be contentious, especially in cases of shared knowledge across regions or countries.so there is a clear lack of ownership.

Indigenous and rural communities often face significant challenges in applying for Geographical Indication (GI**)** status or defending their rights under the existing frameworks. These challenges stem from a lack of resources, legal knowledge, and institutional support, which are critical for navigating the GI application process and safeguarding their products against misuse.

The TRIPS Agreement (Trade-Related Aspects of Intellectual Property Rights) under the World Trade Organization (WTO) provides a framework for the protection of Geographical Indications (GIs). However, it falls short in addressing the intangible aspects of traditional knowledge (TK) and fails to comprehensively integrate TK into GI protections. TRIPS do not explicitly address the unique needs of TK, such as collective ownership or its often oral and undocumented nature. This creates challenges for communities attempting to assert rights over TK-associated products.TK may include practices, processes, or cultural expressions that are not easily categorized under GIs, making it difficult to secure legal recognition or protection under the current framework.

Example of Traditional Knowledge Empowered by GIs

- **Feni (India**): Feni, a traditional alcoholic beverage from Goa, India, has been awarded a Geographical Indication (GI) tag, highlighting its cultural and regional significance. Made primarily from cashew apples or coconut sap, Feni’s unique flavor is a result of traditional fermentation and distillation techniques passed down through generations in Goa.
- **Madhubani Paintings** (India): A traditional art form practiced by women in the Mithila region, recognized as a GI for its unique style and cultural significance.
- **Kashmir Pashmina Wool**: Renowned for its fine quality, traditionally handwoven in Kashmir.

Conclusion

The integration of Traditional Knowledge (TK) into the Geographical Indications (GI) framework offers a comprehensive strategy to safeguard cultural heritage and advance sustainability. This approach acknowledges the deep interconnection between communities, their unique products, and the surrounding environment, ensuring that traditional practices are preserved and remain relevant in a modern, globalized context.

Future Directions

- **Strengthening Legal Frameworks**: Including specific provisions for TK within GI policies at both national and international levels.
- **Capacity Building**: Empowering communities with the knowledge and tools to register and protect their GIs.
- **Collaborative Approaches**: Encouraging partnerships between governments, NGOs, and local communities to document and protect TK.
- **Global Awareness**: Promoting the value of GI-linked TK to consumers worldwide to enhance market demand for authentic products.

Priya13garg@gmail.com
8317062550

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 77-82
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और पौराणिक आख्यान

दीपिका शुक्ला
शोध छात्रा,
कानपुर विश्वविद्यालय हिंदी विभाग

सारांश (Abstract)
भारतीय साहित्यिक परंपरा में पुराण केवल धार्मिक अथवा मिथकीय आख्यान नहीं हैं, बल्कि वे भारतीय समाज की सांस्कृतिक स्मृति, नैतिक चेतना और जीवन-दृष्टि के मूल स्रोत रहे हैं। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात हिंदी साहित्य में आए वैचारिक एवं शिल्पगत परिवर्तनों के परिणामस्वरूप पौराणिक कथाओं का पुनर्पाठ आधुनिक संदर्भों में होने लगा। हिंदी उपन्यासकारों ने पौराणिक कथाओं को केवल पुनर्कथन के रूप में नहीं, बल्कि समकालीन सामाजिक, राजनीतिक और मानवीय समस्याओं की व्याख्या के माध्यम के रूप में प्रस्तुत किया। यह शोध-पत्र हिंदी उपन्यासों में पौराणिक कथाओं के पुनर्सृजन, उनकी आधुनिक व्याख्या तथा सामाजिक चेतना के संदर्भ में उनके महत्व का विवेचन करता है।
बीज शब्द (Keywords) - पौराणिक कथा, हिंदी उपन्यास, मिथक, पुनर्पाठ, सामाजिक चेतना, आधुनिक यथार्थ

भारतीय साहित्यिक परंपरा में पुराण केवल धार्मिक या मिथकीय आख्यान भर नहीं हैं, बल्कि वे भारतीय समाज की सामूहिक स्मृति, जीवन-दृष्टि और सांस्कृतिक चेतना के मूल आधार रहे हैं। मानव जीवन के नैतिक आदर्श, सामाजिक मूल्य, कर्तव्य-बोध और दार्शनिक दृष्टिकोण सदियों तक इन्हीं पुराणों के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी संप्रेषित होते रहे हैं। पुराणों की कथाएँ केवल देवताओं और असुरों की संघर्ष-कथाएँ नहीं हैं, बल्कि वे मनुष्य के आचरण, उसकी सीमाओं, उसकी आकांक्षाओं और उसके नैतिक द्वंद्वों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति भी हैं। किंतु समय के साथ समाज की संरचना, जीवन-शैली और वैचारिक दृष्टिकोण में व्यापक परिवर्तन आए। आधुनिक मनुष्य का जीवन-बोध प्राचीन समाज से भिन्न हो गया और इसी परिवर्तन ने यह आवश्यकता उत्पन्न की कि पौराणिक कथाओं को नए संदर्भों और नई संवेदनाओं के साथ पुनः प्रस्तुत किया जाए। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात हिंदी साहित्य में भाषा शिल्प एवं वैचारिकी के स्तर पर अनेक परिवर्तन हुए इससे साहित्य की समस्त विधाएं प्रभावित हुई हिंदी उपन्यास लेखन के क्षेत्र में भी अनेक नवीन प्रयोग हुए जिससे अनेक प्रकार की नवीन परंपराएं प्रचलन में आई इसी श्रृंखला की एक कड़ी है पौराणिक कथाओं पर आधारित उपन्यासपौराणिक साहित्य से तात्पर्य है प्राचीन आर्ष परंपरा का वांग्मय"कालवाचक पुरा अव्यय से 'टयू' प्रत्यय होकर 'प्राचीनकाल मे होने वाला' इस अर्थ में पुराण शब्द निष्पन्न होता है|"1
निरुक्तकार यास्क के अनुसार "पुराण में प्राचीन गाथाओं को नवीन रूप से प्रस्तुत किया जाता है|"2

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय हमारा देश अनेक विघटनकारी परिस्थितियों से गुजर रहा था। एक ओर स्वतंत्रता की उपलब्धि का उल्लास था, तो दूसरी ओर विभाजन का गहरा दुःख। इस द्वंद्वात्मक स्थिति ने जनमानस के समक्ष अनेक चुनौतियाँ उत्पन्न कर दीं, जिसके परिणामस्वरूप तत्कालीन समाज में मोहभंग की भावना व्याप्त हो गई। इस मानसिक और सामाजिक स्थिति का प्रभाव साहित्य पर भी व्यापक रूप से पड़ा।

स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास साहित्य में समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, अनाचार, शोषण तथा मूल्यों के विघटन को यथार्थ के धरातल पर अभिव्यक्त किया गया। इसके साथ ही समाज के उन्नयनकारी स्वरूप को प्रस्तुत करते हुए, जटिल सामाजिक परिस्थितियों में फँसे व्यक्ति को मार्गदर्शन देने और दिशा प्रदान करने का प्रयास भी किया गया। आस्थाहीनता के इस दौर में साहित्य के माध्यम से आशा और विश्वास की लौ जलाने का सार्थक प्रयास देखने को मिलता है।

इसी संदर्भ में भारतीय समाज की प्राचीन परंपराओं, स्वर्णिम इतिहास, गौरव एवं प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करने की चेतना भी उभरी। इसके परिणामस्वरूप ऐतिहासिक एवं पौराणिक कथानकों पर आधारित उपन्यासात्मक कृतियों का सृजन हुआ। इस दिशा में व्यापक प्रयोग करने वाले उपन्यासकारों में वीरेंद्र कुमार जैन का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने उपन्यास *भक्तिदूत* में अंजना तथा पवननंदन से संबंधित पौराणिक वृत्तांत को नवीन दृष्टि और आधुनिक संवेदना के साथ प्रस्तुत किया। इसके पश्चात रांगेय राघव ने *देवकी का बेटा* (1954) तथा *प्रतिदान* (1957) जैसे उपन्यासों के माध्यम से पौराणिक चरित्रों का नवसर्जन किया। रांगेय राघव कृत देवकी का बेटा उपन्यास में "कृष्ण के जीवन की अलौकिक घटनाओं को तार्किक एवं वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करके कृष्ण के चरित्र को आधुनिक युगानुरूप बुद्धिजीवी और तार्किक दर्शाया गया|"3
वहीं "प्रतिदान उपन्यास में आचार्य द्रोण के चरित्र को मानवीय धरातल पर परख कर चमत्कारों से दूर रखकर यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में मौलिक रूप से उभारा गया है|" 4

इसके पश्चात **चतुरसेन शास्त्री** द्वारा रचित उपन्यास **वयं रक्षामः** (1935) में रावण-कथा का मिथकीय पुनर्पाठ प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास में रावण को केवल पारंपरिक या एकांगी रूप में न दिखाकर, आधिकारिक कथाधारा के आधार पर एक भिन्न दृष्टिकोण से स्थापित किया गया है। लेखक ने राक्षस संस्कृति की उत्पत्ति, उसकी सामाजिक संरचना तथा उसके वैचारिक स्वरूप पर विशेष प्रकाश डाला है। इस कृति में रावण के चरित्र के भीतर निहित मानवीय गुणों—जैसे आत्मसम्मान, बौद्धिकता, संघर्षशीलता और सांस्कृतिक चेतना—को प्रभावी ढंग से उभारा गया है। उपन्यास की भाषा संस्कृतनिष्ठ होते हुए भी भाव-प्रवण है तथा उसकी शैली तत्कालीन युग की वैचारिक आवश्यकताओं के अनुरूप दिखाई देती है।

गुरुदत्त ने मिथकीय चरित्रों के आधार पर 'उमड़ती घटाएं' (1954) 'अवतरण' (1957) 'संभवामि युगे-युगे' (1959) तथा 'विनाशाय च दुष्कृताम्' (1963) आदि उपन्यासों का सृजन किया| 'उमड़ती घटाएं' उपन्यास में चंद्रवंशियों के पूर्वज एवं देवलोक पर सदैव अधिकार प्राप्त करने वाले नहुष की कथा को आधार रूप में लिया गया जिसकी नवीन दृष्टिकोण से वैज्ञानिक व्याख्या का प्रयास किया गया वहीं 'संभवामि युगे युगे' एवं 'विनाशाय च दुष्कृताम्' उपन्यास में मिथक के तौर पर महाभारत की कथा को लिया गया और इसकी बुद्धिपरक मीमांसा करते हुए वैज्ञानिक रूप से महाभारत कथा के पुनसृजन का प्रयास किया गया वृंदावन लाल वर्मा कृत भुवन विक्रम उपन्यास में अयोध्या नरेश रोमा के पुत्र भवन विक्रम की कथा को लिया गया तथा पुरुषार्थ एवं धर्म के सहयोग से मनुष्य को कैसे सफलता प्राप्त होती है इसका उदाहरण प्रस्तुत किया गया सन 1959 में यादव चंद्र जैन द्वारा लिखित उपन्यास आदि सम्राट में प्रलय के रूपक को आधार बनाकर आदि सम्राट मनु की कथा कही गई है यह उपन्यास उपनिषद की कथाओं से प्रेरित हैं "राहुल सांकृत्यायन

कृत देवदास 1959 उपन्यास में उपन्यासकार द्वारा ऋग्वैदिक काल के मिथक की यथार्थवादी व्याख्या करते हुए देवासुर संग्राम को आर्यों और दस्युओं के संघर्ष के रूप में चित्रित किया है|"5

यशपाल ने अपने उपन्यास *अप्सरा का श्राप* में दुष्यंत द्वारा शकुंतला के प्रति अपने प्रेम को विस्मृत कर देने की पौराणिक कथा को आधार बनाया है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने पुरुष प्रधान समाज की स्वार्थपरक मानसिकता, शासक वर्ग की निरंकुश प्रवृत्ति तथा स्त्री-शोषण के विविध आयामों को सशक्त रूप में उद्घाटित किया है।

इन उपन्यासों के अतिरिक्त सन् 1970 से पूर्व भी अनेक उपन्यास पौराणिक कथाओं को आधार बनाकर लिखे गए, जिनमें बेनी प्रसाद वाजपेयी 'मंजुल' कृत *दिव्यगंधा*, अक्षय कुमार जैन द्वारा रचित *युगपुरुष राम*, यज्ञदत्त शर्मा के दे*वयानी* तथा र*जनीगंधा*, रमाकांत मिश्र कृत *कवि वाल्मीकि*, इंद्रभूषण द्वारा सृजित *अहिल्या* तथा अरुण कृत *उपनिषद पथ के राही* प्रमुख हैं।

सन् 1970 के पश्चात पौराणिक उपन्यासों में निहित मिथकों की नवीन व्याख्या का क्रम और अधिक सशक्त हुआ। इस दौर के उपन्यासकारों ने पौराणिक कथाओं के माध्यम से समकालीन परिस्थितियों के यथार्थ को बौद्धिक धरातल पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया। भौतिकता से ग्रस्त मानवीय संवेदनाओं, जीवन की विषमताओं और उनसे उत्पन्न मूल्यहीनता को इन कृतियों में यथार्थ रूप में उकेरा गया।

इस दृष्टि से लक्ष्मीकांत वर्मा कृत *टेराकोटा* विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस उपन्यास में महाभारत युद्ध के उत्तरकालीन प्रसंगों को आधार बनाकर उस युग की समस्याओं को समकालीन संदर्भों से जोड़ा गया है। इसके पश्चात अमृतलाल नागर कृत *एकदा नैमिषारण्ये*, राजीव सक्सेना द्वारा लिखित *पाणिपुत्री सोमा* (1972) तथा हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित *अनामदास का पोथा* में पौराणिक कथाओं के नवीन और मौलिक प्रयोग दृष्टिगोचर होते हैं।

अनामदास का पोथा में मध्यकालीन नारी-जीवन की स्थिति को आधुनिक नारी की परिस्थितियों से जोड़ते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि समय परिवर्तन के बावजूद स्त्री की मूल समस्याओं में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया है। *एकदा नैमिषारण्ये* में जहाँ पौराणिक कथा को नवीन रूप में प्रस्तुत किया गया है, वहीं *पाणिपुत्री सोमा* में वैदिक कालीन आर्य-अनार्य संघर्ष की मार्क्सवादी दृष्टिकोण से व्याख्या की गई है। *अनामदास का पोथा* में उपनिषद काल के ऋषि रैक्व और जाबाला की संवेदनशील प्रेम-कथा को समसामयिक संदर्भों से जोड़कर प्रस्तुत किया गया है।
इसी क्रम में 1976 ईस्वी में रघुवीर शरण मिश्र कृत *सदा-सदा के प्रश्न* तथा लक्ष्मीनारायण लाल कृत दे*वीना* उपन्यासों में भी पौराणिक कथाओं को आधुनिक सामाजिक संदर्भों में रूपायित किया गया है।

पौराणिक कथाओं को आधार बनाकर उपन्यास रचने वाले साहित्यकारों में कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने कृष्ण-कथा को आधार बनाकर *कृष्णावतार* नामक उपन्यास श्रृंखला की रचना की, जिसमें बंशी की धुन, रुक्मिणी हरण, पाँच पांडव, महाबली भीम, सत्यभामा, महामुनि व्यास और युधिष्ठिर आदि खंड सम्मिलित हैं। मूलतः गुजराती भाषा में लिखित इस उपन्यास श्रृंखला में कृष्ण के जीवन से संबंधित समस्त घटनाओं को विश्लेषित, व्याख्यायित एवं पुनर्गठित करने का महत्त्वपूर्ण प्रयास किया गया है मुंशी जी ने प्रस्तावना में इस श्रृंखला के विषय में लिखा ˆ

"Shri Krishna!--what a name to conjure with! Every mother or father of a child, every boy or girl who has a playmate, every lover who has a beloved, every soldier who has an enemy to fight, every king who has a political opponent, every aspirant who has a spiritual goal, every *yogi* who seeks *kaivalya*--every one in India--thinks of Shri Krishna as *the* perfection.

Hindu life is woven with the memory of Lord Krishna and with Truth, Love and Beauty he stands for!! "6

पौराणिक कथावृत्त को समकालीन संदर्भों के साथ समग्र रूप में प्रस्तुत करने वाले उपन्यासकारों में **नरेंद्र कोहली** का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने राम-कथा, कृष्ण-कथा तथा अन्य पौराणिक और मिथकीय चरित्रों को आधार बनाकर अनेक उपन्यासों की रचना की। आधुनिक हिंदी साहित्य में आस्थावादी मूल्यों को पुनः प्रतिष्ठित करने का श्रेय विशेष रूप से नरेंद्र कोहली को जाता है। सन् 1975 में राम-कथा पर आधारित उनके उपन्यास *दीक्षा* के प्रकाशन के साथ हिंदी साहित्य में सांस्कृतिक पुनर्जागरण का एक नया चरण आरंभ हुआ। इसी कारण साहित्यिक जगत में इस कालखंड को 'नरेंद्र कोहली युग' कहे जाने का प्रस्ताव भी सशक्त रूप से सामने आया। निराशा, भ्रष्टाचार, अंधकार और मूल्यहीनता से ग्रस्त उस समय में नरेंद्र कोहली ने ऐसे कालजयी कथानक का चयन किया, जो भारतीय चेतना के रोम-रोम में व्याप्त था।महाकाव्य रचना का युग समाप्त हो चुका था और साहित्य में कथा-तत्व का संवाहक पद्य के स्थान पर गद्य बन गया था। ऐसी स्थिति में अत्यधिक रूढ़ हो चुकी राम-कथा को नरेंद्र कोहली ने अपनी विलक्षण सृजनात्मक प्रतिभा के माध्यम से उपन्यासात्मक रूप प्रदान किया। यह रूपांतरण हिंदी साहित्य के इतिहास में एक स्वर्णिम उपलब्धि के रूप में स्थापित हो चुका है। उन्होंने भक्ति-कालीन भावुकता से राम-कथा को मुक्त कर उसे आधुनिक यथार्थ की ठोस भूमि पर प्रतिष्ठित किया।उनकी रचनाओं में यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि किस प्रकार एक उपेक्षित और निर्वासित राजकुमार अपने आत्मबल के माध्यम से शोषित, पीड़ित, त्रस्त और भयभीत जनसमूह में नवजीवन का संचार करता है। *अभ्युदय* जैसे उपन्यासों में राम-कथा का यह रूप पाठकों के लिए किसी चमत्कार से कम नहीं प्रतीत होता। युगों से चली आ रही रूढ़ कथावस्तु जब आधुनिक पाठक की रुचि, बौद्धिक समझ और संस्कारों के अनुरूप एक नवीन कलेवर में प्रस्तुत हुई, तो उसे व्यापक स्वीकृति प्राप्त हुई।नरेंद्र कोहली ने अपनी रचनाओं में राम-कथा की गरिमा और *रामायण* के जीवन-मूल्यों का संतुलित एवं सार्थक निर्वाह किया है, जिससे उनका साहित्य न केवल चमत्कृत करता है, बल्कि पाठक को गहरे स्तर पर अभिभूत भी करता है।आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कोहली की राम कथा के बारे में कहा है "राम कथा को अपने एकदम नई दृष्टि से देखा है अवसर में राम के चरित्र को अपने नहीं मानवीय दृष्टि से चित्रित किया है इसमें सीता का जो चरित्र अपने चित्रित किया है वह बहुत ही आकर्षक है सीता को कभी ऐसे तेजोदीप्त रूप में चित्रित नहीं किया गया था साथ ही सुमित्रा का चरित्र आपने बहुत तेजस्वी नारी के रूप में अकेला है मुझे इस बात की प्रसन्नता है की यथासंभव रामायण कथा की मूल घटनाओं को परिवर्तित किए बिना आपने उसकी एक मनोग्राही व्याख्या की है... पुस्तक आपके राम अध्ययन मनन और चिंतन को उजागर करती है!7 "यशपाल जी ने राम कथा के बारे में अपने विचार इन शब्दों में व्यक्त किए हैं "रामकथा जिसे अनेक इतिहासकार मात्र पौराणिक आख्यान या मिथ ही मानते हैं को यथाशक्ति यथार्थवादी तर्कसंगत व्याख्या देने का प्रयत्न किया है अहल्या की मिथ को भी कल्पना से यथार्थ का आभास देने का अच्छा प्रयासI"8

महाभारत एक विराट कृति है जो भारतीय चिंतन दर्शन तथा व्यवहार को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करती है नरेंद्र कोहली ने इस कृति को आधुनिक युग में पूर्णतः जीवंत कर दिया है उन्होंने अपने "महासमर" उपन्यास में महाभारत के कथानक और पात्रों के माध्यम से प्राचीन कथा वस्तु को मौलिक ढंग से प्रस्तुत किया है जिससे वह तर्क की कसौटी पर खरी उतरती है तथा सामयिक समस्याओं का भी समाधान प्रस्तुत करती है सैकड़ो चरित्रों एवं हजारों घटनाओं से समृद्ध महासमर के आठ खंडों एवं चार हजार पृष्ठों के विस्तार में कहीं भी ना बिखराव है ना चरित्र की विसंगतियां ना दृष्टि और दर्शन का भेद 15 वर्षों के लंबे समय में लिखे गए इस महाकाव्यत्मक उपन्यास में लेखक की विश्लेषणात्मक दृष्टि कितनी

स्पष्ट है यह समझा जा सकता है इसके अतिरिक्त कोहली जी ने कृष्ण सुदामा के जीवन पर आधारित 'अभिज्ञान' नामक उपन्यास लिखा है तथा कृष्णजन्म की परिस्थितियों को केंद्र में रखकर वसुदेव और देवकी के चरित्र की दृढ़ता संघर्ष और त्याग को दर्शाता 'वसुदेव' कुछ और पौराणिक चरित्रों को केंद्र में रखकर शिखंडी, कुंती, मत्स्यगंधा, सुभद्रा इत्यादि उपन्यास भी लिखे हैं!

मनु शर्मा ने द्रोण की आत्मकथा 1976 द्रोपदी की आत्मकथा 1976 करण की आत्मकथा 1978 कृष्ण की आत्मकथा 1999 लिखी जो पौराणिक चरित्रों पर आधारित हैं इसके अतिरिक्त देवदत्त अटल कृत 'भागीरथ की बेटी' यादवेंद्र शर्मा चंद्र कृत 'एक नियति' और यज्ञ दत्त शर्मा की 'पांचाली' बी आर पदम की 'गांधारी' राम प्रकाश शर्मा कृत 'मृत्युंजय भीष्म' (1989) इत्यादि उल्लेखनीय है उक्त सभी उपन्यास किसी न किसी रूप में पौराणिक कहीं जाने वाली मिथकीय कथा पर आधारित हैं और तद्युगीन यथार्थ को व्यक्तकरते हैं।

समकालीन उपन्यासकारों में काशीनाथ सिंह ने 'उपसंहार' तथा 'पांचाली:नाथवती अनाथवत'नामक उपन्यास लिखा जो क्रमशः कृष्ण के जीवन की उत्तर कथा तथा द्रोपदी के जीवन पर आधारित हैं उपसंहार उपन्यास में महाभारत युद्ध के पश्चात की परिस्थितियों पर आधारित है इसमें कृष्ण के जीवन के उत्तरार्ध को चित्रित किया गया है यदुवंश के विनाश के साथ-साथ प्रभास में कृष्ण की मृत्यु की कथा इसमें सम्मिलित है इस उपन्यास के माध्यम से उपन्यासकार ने कृष्ण के मानवीय रूप को चित्रित किया है की किस प्रकार अपूर्व तेजस्वी व्यक्तित्व पारिवारिक विघटन क्रूर परिस्थितियों के विचलन के फल स्वरुप अंत में कितना असहाय निरीह एवं एकाकी रह जाता है!

राम-कथा की नवीन व्याख्या प्रस्तुत कर उसे नई ऊँचाइयों तक पहुँचाने का श्रेय आधुनिक युग के विद्वान **भगवान सिंह** को जाता है। उन्होंने *अपने-अपने राम* (1992) के माध्यम से राम-कथा को बहुवचनात्मक दृष्टि से देखा और यह स्थापित किया कि राम केवल एक नहीं, बल्कि समाज, संस्कृति और दृष्टिकोण के अनुसार अनेक रूपों में उपस्थित हैं। कृष्ण-कथा के संदर्भ में **दिनकर जोशी** ने *द्वारका का सूर्यास्त* (2011) में श्रीकृष्ण के जीवन के अंतिम चरण की करुण और दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की। इसके अतिरिक्त उन्होंने *महाभारत में मातृवंदना* (2017) में सत्यवती, गंगा, गांधारी, कुंती, द्रौपदी, हिडिंबा, चित्रांगदा, उलूपी, सुभद्रा तथा उत्तरा जैसी महाभारत की प्रमुख नारी पात्रों के मातृत्व रूप को केंद्र में रखकर एक नई दृष्टि प्रदान की। इसी क्रम में **गिरिराज किशोर** ने *आँजनेय जयते*, *सैरन्ध्री* तथा *द्रौपदी* जैसे उपन्यासों के माध्यम से पौराणिक कथाओं को आधुनिक संवेदना के साथ प्रस्तुत किया। **चित्रा चतुर्वेदी** ने कृष्ण के लोक-रंजन स्वरूप को आधार बनाकर दो खंडों में *वैजयंती* उपन्यास की रचना की। महाभारत की उपेक्षित पात्रा अंबा के जीवन को केंद्र में रखकर *मैं अंबा नहीं, भीष्म हूँ* नामक उपन्यास लिखा गया, जिसमें स्त्री की अस्मिता और उसके दमन की मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है। रामायण की प्रमुख स्त्री पात्र कैकई के जीवन को आधार बनाकर **प्रमोद तिवारी** ने *कैकई* (2019) की रचना की। इसी प्रकार सीता के जीवनानुभवों को स्वर देने के प्रयास में **मृदुला सिन्हा** ने *सीता पुनि बोली* (2016) तथा **आशा प्रभात** ने *मैं जनकनंदिनी सीता* (2017) उपन्यास लिखा। इन सभी उपन्यासों में पौराणिक पात्रों के जीवन से जुड़े उन पीड़ादायक पक्षों को उभारने का प्रयास किया गया है, जो आदिकाल से उपेक्षित रहे थे। जहाँ प्राचीन साहित्य में इन पात्रों के जीवन-संघर्षों को केवल संकेत रूप में प्रस्तुत किया गया था, वहीं आधुनिक साहित्य में उनकी वेदना पूर्णतः मुखर होकर सामने आती है। इस प्रकार आधुनिक युग के उपन्यासकारों ने उपेक्षित पौराणिक पात्रों को नई प्रतिष्ठा प्रदान करने का एक महत्त्वपूर्ण और स्तुत्य कार्य किया है।

वीरेंद्र सारंग ने कृष्ण की तरुणाई से लेकर वृद्धावस्था तक की कथा 'जननायक कृष्ण' में कही है इसमें कृष्ण का मानवीय लोकनायक रूप मुखर हुआ है।

समकालीन पौराणिक लेखन में आशुतोष राणा ने राम राज्य(2020) नामक उपन्यास लिखा इसमें भी राम के चरित्र को आधार बनाया गया है इसमें परंपरागत राम कथा को नई भाव भूमि पर सृजित करने का अद्भुत प्रयास हुआ है आधुनिक पत्रकार अनु शक्ति सिंह में "शर्मिष्ठा" (2020)नामक उपन्यास लिखा जो पौराणिक कथानक पर आधारित हैI

निष्कर्ष

हिंदी उपन्यासों में पौराणिक कथाओं का प्रयोग मात्र अतीत का यांत्रिक पुनरावर्तन नहीं है, बल्कि यह भारतीय समाज की निरंतर परिवर्तित होती चेतना, मूल्यबोध और जीवन-दृष्टि को समझने का एक सशक्त साहित्यिक माध्यम है। पौराणिक कथाओं का आधुनिक पुनर्पाठ उन्हें समकालीन सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संदर्भों में पुनः अर्थवत्ता प्रदान करता है तथा उन्हें जड़ परंपरा से मुक्त कर जीवंत और प्रासंगिक बनाता है।

आधुनिक उपन्यासकारों ने पौराणिक चरित्रों और कथानकों के माध्यम से सत्ता, नैतिकता, स्त्री-अस्मिता, शोषण, संघर्ष और मानवीय संवेदनाओं जैसे ज्वलंत प्रश्नों को नई दृष्टि से प्रस्तुत किया है। विशेषतः उपेक्षित और हाशिए पर रहे पात्रों को केंद्र में लाकर उनकी पीड़ा, अस्मिता और संघर्ष को मुखर स्वर देना इस परंपरा की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इससे न केवल पौराणिक कथाओं की एकांगी व्याख्या का विस्तार हुआ है, बल्कि समाज की चेतना को भी नए प्रश्नों और दृष्टिकोणों से जोड़ने का कार्य हुआ है।

इस प्रकार पौराणिक उपन्यास साहित्य परंपरा और आधुनिकता के बीच एक सशक्त सेतु का निर्माण करती है। यह परंपरा अतीत की सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित रखते हुए वर्तमान की जटिलताओं और अंतर्विरोधों को समझने में सहायक सिद्ध होती है तथा भविष्य के लिए वैचारिक मार्गदर्शन भी प्रदान करती है। परिणामस्वरूप, हिंदी साहित्य में पौराणिक उपन्यास न केवल सांस्कृतिक पुनर्जागरण का वाहक बनते हैं, बल्कि सामाजिक यथार्थ की गहरी समझ विकसित करने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

संदर्भ सूची:

1. सायंचिरं "प्राह्मणेऽव्ययेभ्यष्ट्युटूयुलौ तुट् च्" अष्टाध्यायी, 4.3.23
2. यास्क कृत निरुक्त, 3.19
3. चुघ, सत्यपाल: हिंदी ऐतिहासिक उपन्यास: प्रतिमान एवं विकासेतिहास, दिल्ली, कोणार्क प्रकाशन, प्र. स. 1978,पृष्ठ सं. -345
4. पूर्ववत, पृष्ठ संख्या- 346
5. राय, गोपाल, हिंदी उपन्यास का इतिहास, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, सन 2002,पृष्ठ संख्या -369
6. कृष्णावतार (भाग 1) मोहक बांसली(प्रथम संस्करण) भारतीय विद्या भवन, दिसंबर 1962.पृष्ठ-1
7. प्रतिनाद, पत्र संकलन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996 आईएसबीएन 81-7055-437-3
8. पूर्ववत

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 83-87
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

ਸੁਰਜੀਤ ਪਾਤਰ ਦੀ ਕਵਿਤਾ ਵਿੱਚ ਪੰਜਾਬ ਸੰਕਟ ਦੀ ਪੇਸ਼ਕਾਰੀ

ਜਸਪ੍ਰੀਤ ਕੌਰ
ਖੋਜਾਰਥੀ,
ਟਾਂਟੀਆ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਸ੍ਰੀ ਗੰਗਾਨਗਰ

20ਵੀਂ ਸਦੀ ਦੇ ਛੇਵੇਂ- ਸੱਤਵੇਂ ਦਹਾਕੇ ਦੌਰਾਨ ਪੰਜਬੀ ਕਵਿਤਾ ਵਿੱਚ ਪ੍ਰਵੇਸ਼ ਕਰਨ ਵਾਲਾ 'ਸੁਰੀਜਤ ਪਾਤਰ' ਪੰਜਾਬੀ ਦਾ ਅਤਿਅੰਤ ਪ੍ਰਬੀਨ ਮਕਬੂਲ ਸ਼ਾਇਰ ਅਤੇ ਆਧੁਨਿਕ ਪੰਜਾਬੀ ਕਾਵਿ ਜਗਤ ਵਿੱਚ ਵੱਡੇ ਗ਼ਜ਼ਲਕਾਰ, ਕਵੀ, ਵਾਰਤਾਕਾਰ, ਅਨੁਵਾਦਕ ਤੇ ਸਮਕਾਲੀ ਦੌਰ ਦਾ ਇੱਕ ਸ੍ਰੇਸ਼ਟ ਕਵੀ ਕਰ ਕੇ ਜਾਣਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਪਾਤਰ ਨੇ ਆਪਣੀ ਸਿਰਜਣਾ ਦੀ ਸ਼ੁਰੂਆਤ **'ਕੋਲਾਜ'** ਕਵਿਤਾ ਨਾਲ ਪੜ੍ਹਾਈ ਦੇ ਦੌਰਾਨ ਕੀਤੀ। ਇਸ ਤੋਂ ਬਾਅਦ **'ਹਵਾ ਵਿੱਚ ਲਿਖੇ ਹਰਫ਼', 'ਬਿਰਖ਼ ਅਰਜ਼ ਕਰੇ', 'ਹਨੇਰੇ ਵਿੱਚ ਸੁਲਘਦੀ ਵਰਣਮਾਲਾ', 'ਕੁਝ ਕਿਹਾ ਤਾਂ ਹਨੇਰਾ ਜਰੇਗਾ ਕਿਵੇਂ', 'ਲਫਜ਼ਾ ਦੀ ਦਰਗਾਹ', 'ਪੱਤਝੜ ਦੀ ਪੰਜੇਬ', 'ਸੁਰਜਮੀਨ', 'ਸਦੀ ਦੀਆਂ ਤਰਕਾਲਾਂ'** ਤੇ ਵਾਰਤਕ ਪੁਸਤਕ **'ਸੂਰਜ ਮੰਦਰ ਦੀਆਂ ਪੌੜੀਆਂ'** ਆਦਿ ਪੰਜਾਬੀ ਜਗਤ ਨੂੰ ਦਿੱਤੀਆਂ। ਪਾਤਰ ਨੇ ਕਵਿਤਾ ਵਿਚ ਮਧਵਰਗੀ, ਪੜ੍ਹੇ ਲਿਖੇ ਅਤੇ ਸੰਵੇਦਨਸ਼ੀਲ ਮਨੁੱਖ ਦੀਆਂ ਆਕਾਂਖਿਆਵਾਂ ਨੂੰ ਜ਼ੁਬਾਨ ਦਿੱਤੀ ਹੈ । ਮੂਲ ਰੂਪ ਵਿਚ ਉਹ ਪ੍ਰੇਮ ਦਾ ਕਵੀ ਹੈ , ਸੰਪਰਦਾਇਕ ਏਕਤਾ, ਸਾਂਝੀਵਾਲਤਾ, ਪ੍ਰਗਤੀਸ਼ੀਲਤਾ ਉਸਦੀਆਂ ਕਵਿਤਾਵਾਂ ਦੇ ਕੁਝ ਹੋਰ ਪ੍ਰਮੁੱਖ ਵਿਸ਼ੇ ਹਨ। ਉਹ ਆਧੁਨਿਕ ਯੁਗ ਦੀ ਵਿਡੰਬਨਾ ਅਤੇ ਵਿਸੰਗਤੀ ਨੂੰ ਖ਼ੂਬ ਸਮਝਦਾ ਹੈ, ਹਥਲੇ ਪਰਚੇ ਵਿੱਚ ਅਸੀਂ ਪਾਤਰ ਦੀ ਕਵਿਤਾ ਵਿੱਚ ਪੇਸ਼ ਪੰਜਾਬ ਸੰਕਟ ਦੀ ਗੱਲ ਕਰਾਗੇ।

ਪੰਜਾਬ ਸੰਕਟ 20ਵੀਂ ਸਦੀ ਦੇ ਸਤਵੇਂ ਦਹਾਕੇ ਦੇ ਅੰਤਲੇ ਵਰ੍ਹਿਆਂ ਤੋਂ ਸ਼ੁਰੂ ਹੋ ਕੇ ਦਸਵੇਂ ਦਹਾਕੇ ਦੇ ਮੁਢਲੇ ਵਰਿਆਂ ਤਕ ਪਸਰਿਆ ਇਕ ਅਤਿਅੰਤ ਖੌਫਨਾਕ ਕਾਲ ਹੈ। ਇਸ ਸੰਕਟ ਦੌਰਾਨ ਪੰਜਾਬ ਦੀ ਰਾਜਨੀਤਕ ਹੋਣੀ, ਆਰਥਿਕ

ਉਨਤੀ, ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਉੱਤੇ ਪਏ ਪ੍ਰਭਾਵ ਬਾਰੇ ਫੈਸਲਾ ਕਰ ਸਕਣਾ ਔਖਾ ਹੈ। ਜੁਝਾਰੂ ਜਾਂ ਖਾੜਕੂ ਲਹਿਰ, ਆਤੰਕਵਾਦੀ ਲਹਿਰ ਜਾ ਅੱਤਵਾਦੀ ਲਹਿਰ ਆਦਿਕ ਵਿਭਿੰਨ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ਣਾਂ ਨਾਲ ਜਾਣੇ ਜਾਦੇ, ਇਸ ਦੌਰ ਦੇ ਆਪਣੇ ਖੌਫ਼ਨਾਕ ਪ੍ਰਸੰਗ ਹਨ, ਜਿਹਨਾਂ ਨੂੰ ਸਮਕਾਲੀ ਸ਼ਾਇਰਾਂ ਨੇ ਆਪਣੀ ਵਿਚਾਰਧਾਰਕ ਪਹੁੰਚ, ਅਨੁਭਵੀ ਪਰਿਪੇਖ ਅਤੇ ਕਲਾਤਮਕ ਸੋਝੀ ਦੀਆਂ ਸੀਮਾਵਾਂ ਤੇ ਸੰਭਾਵਨਾਵਾਂ ਅਨੁਕੂਲ ਚਿਤਰਿਆ ਹੈ। ਇਸ ਦੌਰ ਦੀ ਕਵਿਤਾ ਨੇ ਦਹਿਸਤਗਰਦੀ ਦੇ ਸਾਰੇ ਰੂਪਾ ਨੂੰ ਨਕਾਰਦਿਆਂ ਭਾਈਚਾਰਕ ਸਾਂਝ ਦੀ ਵਕਾਲਤ ਕਰਦਿਆਂ ਪੰਜਾਬੀਅਤ ਦੀ ਬਰਕਰਾਰੀ ਲਈ ਅਤੇ ਆਮ ਲੋਕਾਂ ਨਾਲ ਵਾਪਰੀ ਕਤਲੋਗਾਰਤ ਨੂੰ ਹਿਰਦੇਵੇਦਕ ਛੋਹਾਂ ਰਾਹੀਂ ਸੰਚਾਰਿਆ ਹੈ। ਪੰਜਾਬ ਸੰਕਟ 1947 ਦੀ ਵੰਡ ਵੱਲ ਵਾਪਰਿਆ ਜਦੋਂ ਪੰਜਾਬ ਦੀ ਰਾਜਨੀਤਿਕ ਜਾਂ ਭੂਗੋਲਿਕ ਤੌਰ 'ਤੇ ਹੀ ਨਹੀਂ ਸੱਭਿਆਚਾਰਕ ਤੌਰ 'ਤੇ ਵੀ ਵੰਡ ਹੋ ਗਈ। ਅੰਮ੍ਰਿਤਾ ਨੇ ਆਪਣੀ ਪ੍ਰਸਿੱਧ ਕਵਿਤਤ 'ਅੱਜ ਆਖਾਂ ਵਾਰਿਸ ਸ਼ਾਹ ਨੂੰ' ਰਾਹੀਂ ਇਸ ਸੰਕਟ ਪ੍ਰਤੀ ਸਾਡਾ ਧਿਆਨ ਆਕਰ ਕੀਤਾ। ਦੂਸਰੇ ਪਰਿਪੇਖ ਅਨੁਸਾਰ ਪੰਜਾਬ ਸੰਕਟ ਅੱਠਵੇਂ ਤੇ ਨੌਵੇਂ ਦਹਾਕੇ ਦਰਮਿਆਨ ਉਪਜਿਆ ਜਿਸ ਵਿੱਚ 'ਬੂਟ' (ਪੁਲਿਸ) ਅਤੇ 'ਬੰਦੂਕ' (ਖਾੜਕੂ) ਇੱਕ ਦੂਸਰੇ' ਦੇ ਦੁਸ਼ਮਣ ਬਣੇ।**1** ਜਦੋਂ ਸੁਰਜੀਤ ਪਾਤਰ ਹੇਠ ਲਿਖੀਆਂ ਸਤਰਾਂ ਦੀ ਰਚਨਾ ਕਰਦਾ ਹੈ ਉਹ ਪੰਜਾਬ ਸੰਕਟ ਦੇ ਪਿਛਲੇਰੇ ਦੋ ਪਰਿਪੇਖਾਂ ਵੱਲ ਸਾਡਾ ਧਿਆਨ ਕੇਂਦਰਿਤ ਕਰਦਾ ਹੈ –

ਉਦੋਂ ਵਾਰਿਸ ਸ਼ਾਹ ਨੂੰ ਵੰਡਿਆ ਸੀ,

ਹੁਣ ਸ਼ਿਵ ਕੁਮਾਰ ਦੀ ਵਾਰੀ ਏ।

ਸੁਰਜੀਤ ਪਾਤਰ ਨੇ ਇਸ ਦੁਖਾਂਤਕ ਦੌਰ ਦੀ ਆਤਰਿਕ ਵੇਦਨਾ ਨੂੰ ਮਾਰਮਿਕ ਛੋਹਾਂ ਨਾਲ ਪੇਸ਼ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਪੰਜਾਬ ਸੰਕਟ ਵੇਲੇ ਲਿਖੀ ਗਈ ਕਵਿਤਾ ਵਿੱਚ ਫ਼ਿਰਕਾਪ੍ਰਸਤੀ ਦਾ ਵਿਰੋਧ ਵੀ ਵੱਡੇ ਪੱਧਰ ਉੱਤੇ ਕੀਤਾ ਗਿਆ। ਇਹ ਫ਼ਿਰਕਾਪ੍ਰਸਤੀ ਭਾਵੇਂ ਸਿੱਖ ਦਹਿਸ਼ਤਗਰਦਾਂ ਵੱਲੋਂ ਕੀਤੀ ਜਾਂਦੀ ਸੀ, ਭਾਵੇਂ ਵਿਵਸਥਾ ਵੱਲੋਂ। ਉਹਨਾਂ ਦਿਨਾਂ ਵਿੱਚ ਦਹਿਸ਼ਤਗਰਦਾਂ ਵੱਲੋਂ ਹਿੰਦੂਆਂ ਨੂੰ ਫੜ ਕੇ ਇਸ ਲਈ ਹੀ ਮਾਰ ਦਿੱਤਾ ਜਾਂਦਾ ਸੀ ਕਿਉਂਕਿ ਉਹ ਹਿੰਦੂ ਸਨ। ਭਰੀ ਬੱਸ ਵਿੱਚੋਂ ਸਿੱਖ ਅਤੇ ਹਿੰਦੂ ਸਵਾਰੀਆਂ ਨੂੰ ਵੱਖੋ-ਵੱਖ ਕਰਕੇ ਮਾਰ ਦਿੱਤਾ ਜਾਂਦਾ ਸੀ। ਪੁਲਿਸ ਵੱਲੋਂ ਵੀ ਖਾੜਕੂਆਂ ਪ੍ਰਤੀ ਨਫ਼ਰਤ ਪੈਦਾ ਕਰਨ ਲਈ ਇਸ ਕਿਸਮ ਦੀਆਂ ਘਟਨਾਵਾਂ ਨੂੰ ਅੰਜਾਮ ਦਿੱਤਾ ਜਾਂਦਾ ਸੀ।**2** ਅਜਿਹੀ ਸਥਿਤੀ ਵਿੱਚ ਸੁਰਜੀਤ ਪਾਤਰ ਵਰਗਾ ਸ਼ਾਇਰ ਜਿੱਥੇ 'ਸ਼ਿਵ ਕੁਮਾਰ ਨੂੰ ਵੰਡਣ' ਦੀ ਗੱਲ ਕਰਕੇ ਫ਼ਿਰਕਾਪ੍ਰਸਤੀ ਨੂੰ ਖੁੰਢਾ ਕਰਦਾ ਹੈ।

ਬਿਰਖ ਅਰਜ ਕਰੇ' ਕਾਵਿ ਸੰਗ੍ਰਹਿ ਦੀਆਂ ਕਵਿਤਾਵਾਂ ਨੂੰ ਪੰਜਾਬ ਸੰਕਟ ਨਾਲ ਜੋੜ ਕੇ ਦੇਖਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਕਾਵਿ ਸੰਗ੍ਰਹਿ ਵਿਚ ਧੁਖਦਾ ਜੰਗਲ, ਇੱਕ ਲਰਜ਼ਦਾ ਨੀਰ, ਡੂੰਘੇ ਨੈਣਾਂ ਦਾ ਕੀ ਮਿਣਨਾ, ਨਜ਼ਰ, ਕਵੀ ਸਾਹਿਬ, ਵਹਿੰਗੀ,

ਆਦਿ ਕਵਿਤਾਵਾਂ ਪੰਜਾਬ ਸੰਕਟ ਦੀਆਂ ਖ਼ੂਨੀ ਘਟਨਾਵਾਂ ਨਾਲ ਜੁੜੀਆਂ ਹੋਈਆਂ ਹਨ। ਇੱਥੇ ਇਕ ਗੱਲ ਕਹਿ ਦੇਣੀ ਜ਼ਰੂਰੀ ਹੈ ਕਿ ਇਨ੍ਹਾਂ ਕਵਿਤਾਵਾਂ ਵਿਚ ਕਈ ਵਾਰ ਪਾਤਰ ਵਿਚਾਰਧਾਰਕ ਤੌਰ ਤੇ ਸਪੱਸ਼ਟ ਦਿਖਾਈ ਨਹੀਂ ਦਿੰਦਾ।

ਪਾਤਰ ਦੀ ਇਕ ਸਿਰਮੌਰ ਪ੍ਰਾਪਤੀ ਪੰਜਾਬ ਸੰਕਟ ਬਾਰੇ ਰਚੀ ਗਈ ਉਸਦੀ ਕਵਿਤਾ ਹੈ। ਪੰਜਾਬ ਦੇ ਵਹਿਸ਼ੀ ਦਿਨਾਂ ਬਾਰੇ ਜਿਸ ਉਚਤਮ ਮਾਨਵੀ ਸਨੇਹ, ਭਰਪੂਰ ਤੇ ਉੱਚ ਮਾਨਵੀ ਜ਼ਿੰਮੇਵਾਰੀ, ਵਕਤੀ ਦਬਾਉ ਤੋਂ ਬੇਖੌਫ਼ ਤੇ ਉੱਚੇ ਸੁਹਜ ਮਿਆਰਾਂ ਨੂੰ ਪੰਜਾਬੀ ਮਨਾਂ ਦੇ ਧੁਰ ਅੰਦਰ ਜਗਾਉਂਦੀ ਕਵਿਤਾ ਪਾਤਰ ਨੇ ਲਿਖੀ, ਉਸਦਾ ਕੋਈ ਹੋਰ ਸਾਨੀ ਨਹੀਂ। ਖੌਫ਼, ਹਿੰਸਾ, ਕਤਲੇਆਮ, ਧੌਂਸ, ਫਿਰਕੂ ਅੱਗ ਅਤੇ ਸਰਕਾਰੀ ਸਾਜ਼ਿਸ਼ਾਂ ਨੂੰ ਬੇਖੌਫ਼, ਅਟੰਕ ਤੇ ਖੜਕਵੇਂ ਬੋਲਾਂ ਵਿਚ ਸੱਚੇ ਸੁੱਚੇ ਤੇ ਵਲੂੰਧਰੇ ਪੰਜਾਬੀਅਤ ਦੇ ਸ਼ੈਦਾਈ ਵਾਂਗ ਨਮੂਦਾਰ ਕਰਦੀ ਉਸਦੀ ਸ਼ਾਇਰੀ ਪੰਜਾਬੀਆਂ ਦਾ ਮਾਣ ਚਿੰਨ੍ਹ ਹੋ ਨਿੱਬੜੀ ਹੈ।**3** ਪਾਤਰ ਦੇ ਬੋਲ ਹਰ ਪੰਜਾਬੀ ਦੀ ਰੂਹ ਦੀ ਆਵਾਜ਼ ਬਣੇ। ਇਹ ਜਿਸਮਾਨੀ ਰੂਹਾਨੀ ਅਤੇ ਸਮਾਜਕ ਤਸ਼ੱਦਦਾਂ ਅਤੇ ਬੇਹੁਰਮਤੀ ਦਾ ਨੰਗਾ ਸੱਚ ਬਣ ਉਠੇ। ਧੌਂਸਾਂ ਡਰਾਵਿਆਂ ਵਿਚ ਉਹ ਆਪਣੀ ਸੁਰੀਲੀ, ਦਰਦੀਲੀ ਅਤੇ ਵਲੂੰਧਰੀ ਸੁਰ ਨੂੰ ਕਾਲੀਆਂ ਤੇ ਉਦਾਸ ਪੌਣਾਂ ਸਨਮੁੱਖ ਗ਼ਮਗੀਨ ਸੁਰ ਵਿਚ ਗਾਉਂਦਾ ਰਿਹਾ। ਇਹਨਾਂ ਦਰਦੀਲੇ ਬੋਲਾਂ ਨੇ ਪੰਜਾਬ ਦੀ ਫਿਜ਼ਾ ਵਿਚ ਇਕ ਵਿਰੇਚਨੀ ਤੇ ਉਚੇਰੀ ਸੂਝ ਦੇ ਨਕਸ਼ ਉਭਾਰੇ। ਬਿਰਖ ਅਰਜ਼ ਕਰੇਂ ਕਾਵਿ ਸੰਗ੍ਰਹਿ ਦੀਆਂ ਬਹੁਤੀਆਂ ਨਜ਼ਮਾਂ ਤੇ ਗ਼ਜ਼ਲਾਂ ਇਸੇ ਕਾਲੇ ਦੌਰ ਦੀ ਦਰਦ-ਗਾਥਾ ਹਨ:

ਮੇਰੀ ਹਰ ਸ਼ਾਖ ਵਿਚ ਧਰਤ ਦਾ ਸੋਗ ਹੈ,

ਮੇਰੇ ਪੱਤਿਆ ਨੂੰ ਪਤਝੜ ਸੁਕਾਉਂਦੀ ਰਹੀ।4

ਵਰਤਮਾਨ ਨਿਰਦੈਅਤਾ, ਭਿਆਨਕਤਾ, ਬੇਰੁਖੀ ਅਤੇ ਪੱਥਰ-ਦਿਲੀ ਉਤੇ ਵਿਅੰਗ ਕਰਦਾ ਪਾਤਰ ਲਿਖਦਾ ਹੈ:-

ਇਕ ਲਰਜ਼ਦਾ ਨੀਰ ਸੀ ਉਹ ਮਰ ਕੇ ਪੱਥਰ ਹੋ ਗਿਆ

ਦੂਸਰਾ ਇਸ ਹਾਦਸੇ ਤੋਂ ਡਰ ਕੇ ਪੱਥਰ ਹੋ ਗਿਆ

...

ਉਹ ਤਾਂ ਗਿਣਤੀ ਕਰਕੇ ਪੱਥਰ ਹੋ ਗਿਆ।5

ਡੂੰਘੇ ਨੈਣਾਂ ਦਾ ਕੀ ਮਿਣਨਾ

....

ਆਪਾ ਵੇਟਾਂ ਗਿਣੀਏ।6

ਨਜ਼ਰ ਕਵਿਤਾ ਵਿਚ ਕਵੀ ਨੇ ਲੋਕ ਵਿਸ਼ਵਾਸ ਨੂੰ ਆਧਾਰ ਬਣਾਇਆ ਹੈ। ਇਸ ਕਵਿਤਾ ਰਾਹੀਂ ਉਸਨੇ ਸਮਕਾਲੀ ਯਥਾਰਥ ਨੂੰ ਬਿਆਨ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਫਿਰਕਾਪ੍ਰਸਤੀ ਅਧੀਨ ਲੋਕ ਆਪਸ ਵਿਚ ਇਕ ਦੂਜੇ ਦੇ ਦੁਸ਼ਮਣ ਬਣ ਗਏ। ਉਹ ਆਪਣਿਆਂ ਦੀਆਂ ਜਾਨਾਂ ਦੇ ਦੁਸ਼ਮਣ ਹੋ ਗਏ। ਪੁਲਿਸ ਦਾ ਜ਼ਬਰ, ਸਿੱਖ ਵਿਰੋਧੀ ਕਤਲੇਆਮ, ਮਾਵਾਂ ਦਾ ਵਿਰਲਾਪ, ਸ੍ਰੀ ਅਕਾਲ ਤਖ਼ਤ ਸਾਹਿਬ ਦੀ ਦੀ ਤਬਾਹੀ, ਸਿਵਿਆਂ ਦਾ ਬਲਣਾ ਇਹ ਸਭ ਕਵੀ ਨੇ ਆਪਣੀ ਕਵਿਤਾ ਨਜ਼ਰ ਵਿਚ ਬਿਆਨ ਕੀਤਾ ਹੈ:-

ਲੱਗੀ ਨਜ਼ਰ ਪੰਜਾਬ ਨੂੰ ਏਹਦੀ ਨਜ਼ਰ ਉਤਾਰੋ

ਲੈ ਕੇ ਮਿਰਚਾਂ ਕੋੜੀਆਂ ਏਹਦੇ ਸਿਰ ਤੋਂ ਵਾਰੋ।7

ਦਹਿਸ਼ਤਗਰਦੀ ਦੇ ਮਾਰੂ ਤੂਫਾਨ ਦੇ ਝੰਬੇ ਹੋਏ ਆਮ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਅੰਦਰ ਘਰ ਕਰ ਬੈਠੇ ਸਹਿਮ, ਤ੍ਰਾਸ, ਨਿਤਾਣੇਪਣ ਤੇ ਨਿਆਸਰੇਪਨ ਦੇ ਅਹਿਸਾਸਾਂ ਦੀ ਦਿਲ ਹਿਲਾ ਦੇਣ ਵਾਲੀ ਤਸਵੀਰ-ਕਸ਼ੀ ਹੈ, ਜਿਸਦੀ ਕਟਾਖਸ਼ੀ ਚੋਭ ਇਸਦੀ ਬਹੁ-ਪੱਖੀ ਸਾਰਥਕਤਾ ਦਾ ਆਧਾਰ ਬਣਦੀ ਹੈ। ਪੰਜਾਬੀਆਂ ਦੀ ਦਲੇਰੀ ਤੇ ਸੂਰਮਗਤੀ ਨੂੰ ਨਿਤਾਣੇਪਣ ਤੇ ਦੁਰਬਲਤਾ ਦੀ ਤਸਵੀਰ ਵਿਚ ਬਦਲ ਦੇਣ ਵਾਲੀਆਂ ਇਨ੍ਹਾਂ ਪਰਿਸਥਿਤੀਆਂ ਦਾ ਸਭਤੋਂ ਖਤਰਨਾਕ ਪਾਸਾਰ ਇਨ੍ਹਾਂ ਪ੍ਰਤਿ ਆਮ ਵਿਅਕਤੀ ਦੀ ਧਾਰੀ ਹੋਈ ਖਾਮੋਸ਼ੀ ਸੀ। ਪੰਜਾਬੀ ਕਵਿਤਾ ਦੇ ਇਸ ਪ੍ਰਸੰਗ ਵਿੱਚ ਪਾਤਰ ਸ੍ਵੈ-ਵਿਅੰਗ ਤੇ ਕਟਾਖਸ਼ ਦੀ ਸੁਰ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਮਿਸਾਲ ਵਜੋਂ:

ਮੈਂ ਪਹਿਲੀ ਸਤਰ ਲਿਖਦਾ ਹਾਂ
ਤੇ ਡਰ ਜਾਂਦਾ ਹਾਂ ਰਾਜੇ ਦੇ ਸਿਪਾਹੀਆਂ ਤੋਂ,
...
ਸਤਰ ਨੂੰ ਕਟ ਦੇਂਦੇ ਹਾਂ।8

ਪਾਤਰ ਦੀ ਕਵਿਤਾ ਵਿਚ ਸਮਕਾਲੀਨਤਾ ਦੇ ਤੱਥ ਹਨ। ਸਮਾਜ ਦੀ ਬਹੁ-ਪਰਤੀ ਸਥਿਤੀ ਦੇ ਰੰਗ ਰੂਪ ਹਨ। ਉਹ ਸੰਵੇਦਨਸ਼ੀਲ ਚਿੱਤਰਕਾਰ ਹੈ, ਸੁਹਿਰਦਤਾ ਵਿਅੰਜਨਕਾਰ ਹੈ। ਉਹ ਆਪਣੇ ਵਿਅਕਤਿੱਤਵ ਨਾਲ ਸਮਾਜ ਨੂੰ ਇੱਕਸੁਰ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਸਮਾਜ ਦੇ ਅਜਿਹੇ ਅਨੁਭਵ ਨੂੰ ਵਿਅੰਜਨਾ ਦਿੰਦਾ ਹੈ, ਜਦੋਂ ਤੀਖਣਤਾ ਦਿੰਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਕਰੋਧ ਉਪਜਦਾ ਹੈ। ਉਸ ਦੀ ਸ਼ੈਲੀ ਵਿੱਚ ਵਿਅੰਗ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਪਰ ਉਹ ਡੰਗ ਨਹੀਂ ਮਾਰਦਾ। ਇਸ ਤੋਂ ਸਦਾ ਸੁਚੇਤ ਰਹਿੰਦਾ ਹੈ। ਉਹ ਕਵਿਤਾ ਦੇ ਧਰਮ ਨੂੰ ਸਮਝਦਾ ਹੈ। ਆਪਣੇ ਫਰਜ਼ ਨੂੰ ਸਾਵਧਾਨੀ ਸਹਿਤ ਮੰਨਦਾ ਤੇ ਨਿਭਾਉਂਦਾ ਹੈ। ਆਤਮ-ਸੰਵੇਦਨਾ ਤੇ ਪਰ-ਸੁਹਿਰਦਤਾ ਦੇ ਦੋਵੇਂ ਫਰਜ਼ ਉਸਦੇ ਸਨਮੁੱਖ ਰਹਿੰਦੇ ਹਨ। ਇਸ ਸਥਿਤੀ ਵਿਚ ਉਹ ਕਲਾਮਈ ਵਿਅੰਗ ਤੇ ਕਟਾਖ਼ਸ਼ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕਰਦਾ ਹੈ:-

ਸ਼ੂਕ ਰਹੇ ਜੰਗਲ ਨੂੰ ਕੀਕਣ ਚੁੱਪ ਕਰਾਵਾਂ
ਮੈਂ ਕੱਲੇ ਕੱਲੇ ਰੁੱਖ ਨੂੰ ਜਾ ਕੇ ਕੀ ਸਮਝਾਵਾਂ ਮੈਂ।9

ਬੜਾ ਹੀ ਕੋਮਲ ਕਾਵਿ ਵਿਅੰਜਨਾ ਤੇ ਵਿਅੰਗ ਦੀ ਕੋਮਲਤਾ ਇਕਸੁਰਤਾ ਵਿਚ ਪੇਸ਼ ਕਰਦਾ ਲਿਖਦਾ ਹੈ:-

ਕੀ ਪੁੱਛਦਾ ਏਂ ਦੀਵੇ ਵੇ ਪੁੱਤਰ
....
ਕਿਰਨਾਂ ਦੁਆਰੇ ਦੁਆਰੇ।10

ਬਿਰਖ ਅਰਜ਼ ਕਰੇ' ਕਾਵਿ-ਸੰਗ੍ਰਹਿ ਵਿੱਚ ਅਰਜ਼ ਕਰਨ ਵਾਲਾ ਬੁਲਾਰਾ ਬਿਰਖ ਨਾ ਰਹਿ ਕੇ ਪਾਤਰ ਵਜੋਂ ਸੁਰਜੀਤ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਸੁਰਜੀਤ ਹੋਏ ਇਸ ਪਾਤਰ ਦੇ ਅਸਤਿਤਵ ਰਾਹੀਂ ਕਵੀ ਸੁਰਜੀਤ ਪਾਤਰ ਆਪਣਾ ਕਾਵਿ ਸਿਰਜਦਾ ਹੈ। ਵਿਚਾਰਾਧੀਨ ਕਾਵਿ-ਸੰਗ੍ਰਹਿ ਦੀਆਂ ਅਧਿਕਤਰ ਨਜ਼ਮਾਂ ਪੰਜਾਬ ਦੇ ਕਾਲੇ ਦਿਨਾਂ ਦੀ ਪ੍ਰਸਤੁਤੀ ਕਰਦੀਆਂ ਹਨ। ਇਸ ਕਾਵਿ-ਸੰਗ੍ਰਹਿ ਵਿੱਚ ਕਵੀ ਦੇ ਅਸਤਿਤਵ ਤੋਂ ਇਲਾਵਾ ਉਸਦੇ ਕਾਵਿ-ਨਾਇਕਾਂ ਦਾ ਅਸਤਿਤਵ ਅਤੇ ਸਮੁੱਚੇ ਪੰਜਾਬ ਪ੍ਰਾਂਤ ਦਾ ਅਸਤਿਤਵ ਵੀ ਆਪਣਾ ਪ੍ਰਗਟਾਵਾ

ਕਰਦਾ ਹੈ। ਭਿਆਨਕ ਸਮਿਆਂ ਵਿੱਚ ਕਵੀ ਦੀ ਕਲਮ ਰੁਕਿਆ ਤਾਂ ਨਹੀਂ ਕਰਦੀ ਪਰ ਅਜਿਹੇ ਸਮਿਆਂ ਵਿੱਚ ਸਿੱਧੀਆਂ ਸਪਾਟ ਗੱਲਾਂ ਕਹਿਣ ਨਾਲੋਂ ਕਵੀ ਤਮਸੀਲਾਂ/ਦ੍ਰਿਸ਼ਟਾਂਤਾਂ/ਪ੍ਰਤੀਕਾਂ/ਦੂਹਰੇ ਅਰਥਾਂ/ਵਕ੍ਰੋਕਤੀਆਂ ਦੇ ਪ੍ਰਯੋਗ ਦੁਆਰਾ ਆਪਣਾ ਸੰਦੇਸ਼ ਦਿੰਦਾ ਹੈ। ਕਵੀ ਲੋਕਾਈ ਦਾ ਅੰਗ ਹੋਣ ਦੇ ਨਾਤੇ ਪੀੜ ਨੂੰ ਅਨੁਭਵ ਕਰਦਾ ਹੈ।

ਹਵਾਲੇ ਤੇ ਟਿੱਪਣੀਆਂ:-

I. **ਪੰਜਾਬੀ ਸਾਹਿਤ ਦਾ ਇਤਿਹਾਸ (ਆਧੁਨਿਕ ਕਾਲ 1901- 1995), ਡਾ. ਜਸਵਿੰਦਰ ਸਿੰਘ ਡਾ. ਮਾਨ ਸਿੰਘ ਢੀਂਡਸਾ, ਪੰਨਾ ਨੰਬਰ-65**

II. **ਨਵੀਂ ਪੰਜਾਬੀ ਕਵਿਤਾ: ਪਛਾਣ ਚਿੰਨ੍ਹ, ਜਸਵਿੰਦਰ ਸਿੰਘ , ਪੰਨਾ ਨੰਬਰ-86**

III. **ਨਵੀਂ ਪੰਜਾਬੀ ਕਵਿਤਾ: ਪਛਾਣ ਚਿੰਨ੍ਹ, ਜਸਵਿੰਦਰ ਸਿੰਘ , ਪੰਨਾ ਨੰਬਰ-96**

IV. **ਬਿਰਖ ਅਰਜ਼ ਕਰੇ , ਪੰਨਾ ਨੰਬਰ-11**

V. **ਉਹੀ, ਪੰਨਾ ਨੰਬਰ-19**

VI. **ਉਹੀ, ਪੰਨਾ ਨੰਬਰ-35**

VII. **ਉਹੀ, ਪੰਨਾ ਨੰਬਰ-29**

VIII. **ਪੰਜਾਬੀ ਸੁਹਜ ਵਾਦੀ ਕਾਵਿ ਧਾਰਾ: ਇਕ ਅਧਿਐਨ, ਡਾ. ਹਰਿੰਦਰਪਾਲ ਕੌਰ ਕੰਗ, ਪੰਨਾ ਨੰਬਰ-99**

IX. **ਬਿਰਖ ਅਰਜ਼ ਕਰੇ, ਪੰਨਾ ਨੰਬਰ-20**

X. **ਉਹੀ, ਪੰਨਾ ਨੰਬਰ-37**

Jaspreet85913@gmail.com

Mobile - 7279801313

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 88-97
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

INFLUENCE OF MUGHAL'S EMPIRE IN KATHAK DANCE

Rohit Hazra
Research Scholar,
Pondicherry University,
Dr. Priyanka Sharma
Co Author
Assistant professor, Pondicherry University

ABSTRACT:-
Kathak is the popular and main classical dance of North India, originating from Sanskrit word 'Katha' (Story). It has gone through many changes in the presentation from Vedic to Modern period. During the Bhakti movement kathak has evolved so much and it was the part of Puranic and mythological story like Bhagavata Puran which is the part of hinduism related to god Krishna and Radha. Kathak dance mainly shows rhythmic movements of foot with the adorned ankles (ghunghroo) , dance on the beat of music in proper rhythm . Mary Snod grass explained about the kathak dance of india and it is believed to be exist in 400 BC., but with the coming of the Mughals , this dance form received a new outlooks , and also there was transition of Kathak dance from the temple to palace or courtyard which changes the presentation of dance in manner of style , music ,costume and theme. During the Mughal period Kathak was divided into gharanas and there are four gharanas Jaipur gharana , Bnarash gharana, Raighar gharana, Lucknow gharana and basically Lucknow gharana get highly influenced from mughal empire. Today Kathak is known for its beautiful dance steps of footwork , graceful spin , expressive abhinaya and emotional story telling. The main motive of this paper is to tell about the changes in Kathak dance with the arrival of Mughals.

KEYWORDS :- Kathak, Mughal, Empire, Northern India, Uttar Pradesh.

INTRODUCTION :-

Kathak is a traditional dance of North India and can be found in the Ramayana and Mahabharata and derived from the word "katha," which means story. It has evolved in different forms and styles over the time . Beginning with the Bhakti movement, it was first performed in temples, and later, it spread to the Mughal courts.

Photo – Dancer representing Kathak dance .
Source - https://www.britannica.com/art/kathak

Bhakti Movement :-

The Bhakti movement from 8th to 17th century like between Mahabharata and Ramayana time brought significant changes in the form of dance, as it shows personal devotion over ritual formalism. During Bhakti movement saints had great faith on deities especially Lord Krishna, as a result Kathak began to use poetry, music and storytelling through expressive dance mainly based on Lord Krishna's life known as Leela. Many great people were present at that time like Meerabai ji and Surdas ji which make Kathak dance a pure form of devotion presented towards god. The Bhakti era thus laid an emotional and spiritual foundation of Kathak and dancers used to express their dance through great abhinaya with full devotion , love and bonding, specially dance portrayed on life story of Krishna and Radha. In the great epic Ramayana, Luv and Kush son of lord Rama performed kathak which is seen in Uttar Kand and expressed the dance through story telling , songs , and body language. Kathak was not a dance rather it is an emotion and because of Rama's sons Luv and Kush this tradition of Kathak emerged and developed to large extent.In Mahabharata, there is a tale that when PANDAVAS were going to forest at that time there is a story-telling which was featured on Krishna 's stories evolving from Katha based on lord Vishnu which shows the existence of Kathak during Mahabharata era (Singh , 1990).

Classification of Kathak :-

There are three forms of Kathak classical dance - 1.Nritta 2.Natya and 3.Nritya .These are mainly based on Natyashastra.

1. Nritta :-

Nritta belongs to pure form of dance that mainly focuses on layas, sur, taal and rhythm. Nritta use to performed typically on basis of three layas and they are vilambit (slow), madh (medium), and drut (fast). The music is mainly played on the flute, sitar, harmonium, sarangi. At the time of Mughal the dance pattern changed and it is started doing by four items like salami,

thaath, aamad and vandana . Vandana is known as a prayer offered to the deities. Aamad is known as style of entry of the dancer on the stage and thaath is the style of standing. The term "salami" describes a greeting given to the audience in a Muslim manner and the dancer used to perform on these composed pieces of bols (mnemonic syllables) . In kathak, there are five different kinds of bols and these are the numbers, sargam, alphabets, and kathak and dancer use to learn these composition of bol before the starting of their performance.There is also tukra and toras present in the composition of bol, tukra is a short composition and toras are long compositions. The dancer plays performances on these compositions of bols on stage with ghunghroo in most expressive manner. Parans are the composed piece mainly performed on the tabla , often include toras. It also include Kavit, a brief poem that is set in a particular way(Natya Sastra of Bharata Muni , 1987).

2. Natya :-

According to Bharata Muni the entire life of human beings is a mixture of happiness, misery, joy and sorrow from their birth to their demise and one's life journey can be shown by this dance through the Natya mainly known as abhinaya or acting. A better dance is always performed on basis of true expressions and abhinaya.

(3) Niritya :-

It is expressed through facial expression , abhinaya , body movement, sound, visuals and emotions. It also includes musical components like ghazal , bhajan , kajari , and dadra. The artist shows full expressions , abhinaya , emotions in a very beautiful manner.

Transition from Temple to court :-

The transition of Kathak dance from sacred temple to court marks a defining moment in history. These changes were not ordinary and when the Mughals arrived in north india they starts demolishing temples and thus spiritual kathakars lost their divine shelter and starts living in courts of Nawab in the search of any shelter. In the absence of religious institution, to support them dancers moved to secular courts for new beginning . Performers starts adopting new things of dance including style , costume and body language. Natavar (1997) explains the emergence of new audiences and new cultural spaces which involved in reshaping the dance in new rhythm , content , abhinaya and performance style. In this shifting, devotional performance gave way to romantic themes and other sensual themes which makes the Kathak dance as a source of entertainment from spirituality. This shifting mark the changes in costume , music , and performance (Walker , 2009). During this period Gharanas means learning schools were also established which marks the learning of dance in new different manner.

Gharana in Kathak dance during Mughal period **:-**

(1) Lucknow Kathak Gharana :-

Nawab Wajid Ali Shah established the Lucknow gharana in Awadh . The gharana's foundation was laid by Ishwari Prasad , who was from the Allahabad district's of Handiya village and after moving to Lucknow, his grandson Prakashji worked as a court dancer for Nawabs . The Gharana's real founder is credited to Thakur Prasad Maharaj. Gharana dancers are well known for their grace, and refinement as well as for giving equal weight to nritiya and nritta .The most prominent representative of the greatest kathak was Birju Maharaj who was the son of Achhan Maharaj and direct descendant of Ishwari Prasadji. This gharana's dance includes acting, facial expressions, abhinaya , graceful movement and also highlighting Bhaav. It was the well known famous gharana of that time .

Photo – Lucknow Gharana Kathak Dance.
Source - https://www.knocksense.com/lucknow/a-story-of-lucknow-gharana-kathak .

(2) Jaipur Kathak Gharana:-

Jaipur Gharana is one of famous gharana of that era . In the court of Jaipur under the Rajasthan's Kachwaha rulers this gharana flourished. In the beginning, the Kachwaha were a caste of farm workers , but in the 20th century, a few Kachwaha families rose to prominence in several states, such as Maihar, Amber (Jaipur), and Alwar and these families embraced performing arts, including kathak, with great enthusiasm and also established dance schools. Jaipur Gharana is known for its compositions, tatkaar, technical mastery, and remarkable rhythmic pattern because they like to perform lengthy. Jaipur Gharana dancers use tabla more often then other musical instruments.

Photo – Jaipur Gharana.
Source -https://www.facebook.com/214289608618345/photos/625374550843180/ .

(3) Banaras Kathak Gharana :-

Pandit Janaki Prasad , a kathak artist from the village of Mailsur in the state of Bikaner, founded the Banaras Gharana. At a very young age, he relocated to Banaras and established dance school but this school of Kathak had very less impact of Muslim culture and thus it helps in preserving cultural heritage of India. The dance bols used in the gharana are known as natwari bols and are exclusively kathak. In comparison to other gharana this gharana's dancers perform chakkars (spins) in both clockwise and anti - clockwise directions, frequently striking their heels which is very unique in nature. They use bhajans (Hindu devotional songs) and kavita and cover larger area of the dance floor. Banaras gharana is also so famous for their dance performance (Ashirwadam , 1990).

Photo – Banaras Gharana
Source- https://historified.in/2023/03/05/kathak-the-graceful-art-of-banaras-gharana/

(4) Raighar Kathak Gharana :-

Early in the 20th century, in the princely state of Raigarh , Maharaja Chakardhar Singh established the Raighar Gharana. His son has so much knowledge about Kathak dance that's why he is a patron of kathak dance. He wrote more than fifteen books about dance and music. Maharaja Chakardhar Singh invited many dancers and percussionists to his court so they could collaborate and learn from one another, and making Kathak more advance. The great notable persons of that time were pandit Kalka Prasadji, Lachhan Maharaj, Jagannath Prasad and Jailal maharaj of the Jaipur . The Raigarh Gharana was created as a result of the various styles, concepts, theories, and philosophies that came together in the court (P .D. , 1990).

Photo – Raighar Gharana.
Source- https://theghungroostory.wordpress.com/2022/07/31/the-raigarh-gharana/ .

Influence of Mughal's Empire in Kathak :-

After the bhakti movement and on arrival of Mughals in north India , kathak went to the Mughal court and there were many Mughal badshahs who accepted this classical dance in order to become master in art form that they are today. Kathak dance and music were very much influenced by the Mughal court. The Mughals greatly influenced the development of Kathak by bringing their Persian aesthetics, cultural traditions, and love of music and dance to India. During the Mughal era, Kathak transformed from a temple dance to palace.or courtyard. The outcome of this incident shows that divine dance become a platform of entertainment. Mughal court musicians used Persian and Central Asian instruments into Kathak such as the sitar and tabla, which became essential to the performance. Kathak music gained more diversity through combining Persian rhythmic styles and patterns with Indian ragas .As a result more diverse pattern of music are seen influenced by Mughals court musicians with great enthusiasm. Instruments like tabla , sitar , flute came into existence with higher demand during the dance performance (Rebecca , 1974).

Photo – Musical instruments during Mughal period.
Source - https://en.wikipedia.org/wiki/Kathak

During the Mughal era, Kathak commonly featured themes of romance, love, and courtly elegance. Performances started including poetry, ghazals and Persian couplets. During the Mughal era , devotional dance theme changes into other themes based on love , poetry making it centre of entertainment. There was very less curiosity in spirituality rather then only meant for entertainment. Mughal costume styles were very different from other dressing styles. Today the dancers are using their introduced attire in performance. In the early days of Kathak , male artists wore dhoti and angarakha , and female artists wore ghaghra , choli, dupata, mangtika, haar and chudiyan, however, following the influence of the Mughals, they started wearing churidar paijama, which is a garment for male artists, and anarkali frock, jacket and topi for female artists. Therefore it shows the great influence of Mughals on Kathak's dance attire.

First appearance of Female artist in Kathak :-

The first appearance of a female artist in Kathak was in the Mughal court and mamta maharaj was the first female practitioner in kathak that performed in court. Before their arrival female was not allowed for any performance, but because of Mughals female also become a practitioner of that era. Previously only male artists used to perform but later on in Mughal era female also got chance to present their abhinay through dance , all these are new beginning of society but it has not that much of charm because it was very much far away from spirituality.

Photo – Female Dancers in Kathak.
Source - https://in.pinterest.com/pin/design-ideas--3588874694359383/ .

Badshah Nawab Wajid Ali Shah Mughal 's influence in Kathak**:-**

Nawab Wajid Ali was also a kathak classical dancer practitioner, that's why in his time it was the golden era of kathak. A lot of work was done for Kathak by Nawab Wajid Ali Shah like he wrote a book for Kathak named Najo Bani. Thus he gave literacy contribution to the dance. Nawab Wajid Ali Shah actively supported Kathak musicians and performers, which helped the art gaining popularity in his court and among the general public. Nawab Wajid Ali Shah was ver much fond of art and music (Mary Ellen Snodgrass , 2016).

Rahas dance and drama : -

Nawab Wajid Ali Shah choreographed dance dramas in Kathak style, which he called "Rahas," incorporating acting, dancing, and music, and even performed in that. He is the founder of Rahas, a dance drama style.

The Ghazals , Thumri and Jogia Jashan :-

Nawab Wajid Ali Shah enhanced the status of thumri by giving beautiful composition,. Thumri is a light charming dance and its compositions, often comes under the pseudonym "Akhtarpiya," which became a significant part of the Kathak . He also composed romantic Kathak dance-inspired by Urdu poetry, known as ghazal. He also founded the Jogia Jashan, a prestigious pageant, and performed Kathak, poetry, and lyrical compositions in Rahas (dance-dramas), which laid the ground work for Hindustani theater.Thus We can say that Nawab Wajid Ali Shah founded Hindustani theatre.

Photo – Nawab Wajid Ali Shah.
Source - https://en.wikipedia.org/wiki/Wajid_Ali_Shah

Photo - Thumri Dance.
Source - https://artiumacademy.com/blogs/thumri-the-music-that-resonates-with-emotion/

METHODOLOGY:-

The paper's foundation is based on secondary sources, primarily involving analysis and interpretation. These sources include digital sources like YouTube, paper, e-books, digital and internet sources and photographs. Also Analyzing and interpreting the secondary sources that are accessible.

CONCLUSION:-

Our ancient culture is reflected in Kathak through its styles, abhinaya, mudra, expressions, grace, and movements and audience is kept interested by the artist's expressions, rhythm, and ghunghroo sound. During the Mughal time establishments of different gharanas are done and lucknow gharanas are among the most influenced gharana by the Mughals. The audience kept lots of expectation from these gharana dance which reflects through their abhinaya , emotions , and expressions .But during the Mughal era Kathak went far away from spirituality and become source of only entertainment. Artists tries to protect and save the original form of kathak and they become successful also with the help of few rulers like Wajid Ali Shah . The government also encourages and endorses the events and this dance has passed through various centuries and was merged with the styles of different reigns and rulers. At the Bhakti movement women were not involved in the Kathak dance only male were used to dance but on the arrival of Mughals it get transformed to new rules where women also started doing Kathak dance. Therefore before the existence of mughals females were not performed but Mughals granted those permission, so here we can see some positive effect in society but the only disadvantage is that it is far away from spirituality and Kathak become a source of only entertainment . Thus Mughals have mixed effects on this dance , it is positive and negative both .Through This paper I tried to showcase the Mughal's influence in kathak dance and it is concluded that performance factors have mixed reactions that is both positive as well as negative. Thus we can say that Mughal had shown both beneficial and negative impact on Kathak based on the source of information.

REFERENCES:-

1. Allan, Matthew Harp , 1997 " Rewriting the script of South Indian Dance". The Drama Review , Journal of Performance Studies 41 (3):63-100.
2. Ambrose, Kay 1950, Classical Dances and Costumes of India. London: Adam and Charles Black.
3. Ashirwadam, P .D. 1990, Raigarh Darban , Delhi: Agram Kala Publishers.
4. Chakravorty , Pallabi 2000, Choreographing Modernity: Kathak Dance , Public Culture and Women's Identity in India. Unpublished PhD Dissertation, Temple University.
5. Dadhica, Puru 1981, Kathaka nrtya siksha Ujjaina, Madhya Pradesh: Bindu Prakasana.
6. Mary Ellen Snodgrass (2016). The Encyclopedia of World Folk Dance.
7. Richards, John F. 1993 , The Mughal Empire . The New Cambridge History of India. Cambridge: Cambridge University Press.
8. Singh, Mandavi 1990, Bharatiya Sanskrit me Kathak Parampara. Delhi: Svati Pablikesana.
9. Sleeman, W .H. 1858. A Journey Through the Kingdom of Oudh, in 1849-1850. London: R. Bentley.
10. Stewart, Rebecca 1974 The Tabla in Perspective. Unpublished PhD Dissertation, University of California, Los Angeles.
11. Trivedi, Madhu 2000 " Hindustani music and dance : An Examination of some texts in the Indo-Persian Tradition " In the making of Indo Persian Tradition.
12. Vajpeyi, Ramsi (ed.), 1992 Kathaka Prasanga. Nayi Dilli: Vani Prakasana.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 98-107
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Use of Artificial Intelligence in Electronic Resources Management

Dr. Devendra Kumar Sharma
Deputy Librarian,
Central University of Himachal Pradesh, Dharamshala, Dist-Kangra (HP), (India**)**

1.Introduction

ERM has turned out to be a backbone of contemporary library practice, drenching the ways of how libraries acquire, organize, deliver, and analyze digital content for the different user communities. The outbreak of journals, e-books, online databases, and multimedia resources, together with open-access ones, reshapes the topography of the library collections but simultaneously opens avenues of opportunity and challenges. Whereas these electronic resources greatly facilitate access to scholarly content and information, offering up hurdles within the bounds of budget, licensing complexities, and technological changes in return for effective management has become a big concern for librarians and information professionals.
This, with the growing avalanche of electronic resources, we must have robust systems that can meet the selection, acquisition, licensing, renewal, cataloging, and user access seamlessly. Traditional ERM practices depend much on manual tracking systems for licenses, usage analysis, metadata management, and troubleshooting of access issues. These processes are in themselves very cumbersome and error-prone. On one hand, libraries continue to grapple with user expectations of instant and seamless access, while on the other, such expectations continue to be challenged by a complicated system comprising vendor practices, authentication, and discoverability of resources.

Artificial Intelligence includes automation, predictive analytics, and intelligent engagement tools for users, which can greatly change the face of ERM processes. Artificial Intelligence consists of an umbrella term for different technologies such as machine learning (ML), Natural Language Processing (NLP), Robotic Process Automation (RPA), or Intelligent Recommendation Systems. This technology helps individuals applying human cognitive skills process enormous amounts of data correctly and precisely. In the case of libraries, Artificial Intelligence proves to be invaluable for real-world scenarios to automate typical administrative activities on one hand and enhance the discoverability of electronic resources on the other.

AI can help libraries in ensuring compliance with licensing agreements while monitoring compliance levels, usage, predictions for particular resource needs based on usage patterns, and flagging unused licensed resources for potential cancellation or renegotiation. Chatbots/virtual assistants enabled with AI can help improve levels of customer service by

providing immediate assistance on using remote resources, using databases, or login-related problems, thereby reducing the load on library staff while improving customer satisfaction. Moreover, AI-based recommendation systems can suggest relevant electronic resources using profile data while accounting for offline usage, hence infusing life into the immersive environment.

However, the above-mentioned capabilities are but tips of the iceberg for implementing AI into ERM practices. Besides, libraries should address the hesitations around data privacy, algorithmic bias, and transparency of AI decision-making while training their employees to work with AI systems. Not to mention, one can't turn a blind eye to the fact that actual deployment related to AI means reconsideration of investment, planning, and comprehension of the limits and ethical awareness with respect to the consumer landscape of library services.

The paper discusses AI use in managing Electronic Resources within academic and research libraries and analyzes AI improvement in operational efficiency, decision-making, and user engagement in electronic resource management. It further examines advantages, challenges, and future perspectives of incorporating AI into ERM practices and delivers insight for library professionals eager to implement solutions toward the effective management of electronic resource collections, a growing area of great complexity.

2. Keywords: Artificial Intelligence, Electronic Resources Management (ERM),Academic Libraries, Automation,User Engagement

3. Understanding Artificial Intelligence in Libraries

Artificial intelligence is an emergent and transforming technology for designing computer systems capable of performing tasks that normally require human intelligence. These are learning from data, recognizing patterns from human intelligence, interpreting natural language, making decisions, and solving problems in complex environments. AI subsumes a number of domains, such as Machine Learning where systems learn and get better on their own from experience without explicit programming, Natural Language Processing that allows machines to understand, interpret, and respond to human languages, and Robotics Process Automation that makes the robot perform repetitive and rule-based assignments traditionally performed by human beings.

• The potential that can be realized in libraries in terms of being more efficient in their operations and in user service and academic/research functions related to the institutions supported by AI applications in libraries today can truly be considered enormous. This restores the role libraries play as they encounter massive volumes of information in terms of collections, user interactions, and metadata and so on, and this truly acts as an international environment around successful realization in AI applications to optimize processes and make or contribute to informed decision-making in libraries because AI applications-related libraries would be able to handle their increased intricacy and volumes in various resources and also give their highest importance to users in providing appropriate information according to their relevance and centrality to users.

• Management: A major area in which core domain AI can assist the libraries is that of collection management. Based on usage patterns, citation trend data, and usage data, the AI that uses Machine Learning is able to ascertain which collections are most used and which need a second thought in terms of renewal or deletion.

• Metadata Enrichment: This is another place where AI can make a significant contribution. It is essential to have correct metadata in order to have satisfactory discoverability and retrievability of resources in electronic resource management. With AI tools at your disposal through NLP, you can have metadata obtained from your documents automatically, resolve ambiguities in author names, generate subject headings, and derive keywords for your

metadata. All these new developments make significant contributions to the search experience for members in library discovery systems.

• AI recommender systems may further enhance user engagement with the availability of library resources. The system would make use of the user's profiles, search results, and reading behavior to recommend relevant articles, e-books, and databases to every individual user according to his or her own interests.

• Additionally, AI technology can also be seen in library services through predictive analytics, where the key to forecasting a trend or requirement in the future, such as what one can reasonably anticipate in terms of expected use of particular electronic materials during a research or exams period, lies in understanding historical data. Predictive analytics in this way will give Libraries a chance to prepare in advance.

• Chatbots and virtual assistants enabled using AI are increasingly being used disbursed to provide assistance to the users of the library in their responses to questions concerning e-resource accessibility and navigating through digital databases. This will ensure that users are assisted and that freshness in assisting them is maintained to increase user satisfaction and patronage, and also to enable library staff to attend to much more complex tasks that need to be done by humans.

4. Challenges in Electronic Resources Management

The Electronic Resources Management (ERM) is today one of the essential services offered by libraries through which the library acquires, organizes, and provides access to e-journals, e-books, online databases, and multimedia materials. Despite the importance of the ERM solution provided by libraries for their users, the management of electronic resources faces challenges for libraries to provide users with immediate and effortless access to resources within their limited budgets and technological resources.

• The complexities involved in the licensing and access arrangements for electronic resources make up one of the biggest challenges in the management of electronic resource management. The point is that, whereas in the print system, there is, in most cases, one contract for the whole organization, in the digital system, there often are numerous different contracts that set the framework within which the resource will be utilized, in addition to modes of accessing the resource.

• Another common problem associated with all the different electronic resources being handled is the inconsistency in meteorological data. Thus, metadata has been considered a sine que non in regard to access, discovery, and electronic resource retrieval. However, it is apparent that most electronic resources tend to have inadequate, inconsistent, or even inaccurate metadata. As such, a lot of manpower is involved in managing this endless variety of electronic resources, placing immense pressure on library manpower.

• Subscriptions and the handling of holds, on the other hand, constitute another problem the ERM presents to the user. With these tools, the handling of the subscription period and the implementation of actions relating to the renewal of subscriptions or the change in price associated with resource access when there is financial constraint would be necessary in order to be able to provide services to the end user. A newsletter, therefore, which goes unattended would result in the incapacitation of the provision of user services and research continuity.

• Analysis and cost-benefit studies play a major role in defining the success of the subscription process of the electronic resource. Analysis by the libraries is required in the matter of interpreting the usage information required to form a decision on the subscription or cancellation of the use of any particular electronic resource, based on the findings regarding the usage patterns of the resources, the users, and the level of usage. In this context, it should be noted that most of the existing libraries do manage to find varied presentations of usage

data provided by the vendors, which automatically generate confusion in the processes of data normalization, interpretation, and creation.

• Building skill and user navigation among vast digital collections is another challenge. The increasing number of electronic materials makes it unbearable for the user to search for information relevant to them at the right time, resulting in poor usage of purchased materials. This is among those areas that, if not handled, have a low manageable condition, placing all electronic materials in an easy-skill environment for discovery, along with satisfying the expectation for search functionality.

- The traditional ERMs will require manual specialization to differing levels for the processing of their operations, which function counter to efficiency, the implications of which could easily be errors or the withholding of resources. It would seem, especially in the case of an underserved environment in either personnel or infrastructure, the manual processing in the areas of metadata optimization, licensing, subscription, and analysis could easily consume large amounts of staff resources.

• The aforementioned challenges, although act as obstacles for the smooth functioning of the library, simultaneously offer the library the opportunity to apply the entertaining twists of these challenges for the creation of novel solutions such as Artificial Intelligence, which can automate, predict, and optimize some activities within the realm of ERM. Artificial Intelligence can help the library address these challenges through its usage in improving the quality of the library's metadata, automating repetitive work, providing predictive intelligence in managing subscriptions, and improving user engagement and discovery. However, the elimination of these challenges warrants careful planning, investments in technological advancements, and the library's employees' training, coupled with a willingness to adapt the library's approach in the practice of its ERM for the needs of its users within the modern era.5. Applications of AI in Electronic Resources Management

5.1 Automated Metadata Generation and Enhancement

The metadata will make sure that the electronic resources are searchable, retrievable, and discovered. Hence, obviously, the metadata is the watershed. Large electronic resource collections may impede the process of creating metadata. The use of AI tools with the NLP facility will make the AI system capable of automatically creating metadata from PDFs, web pages, or from any digital resource, whether electronic or otherwise, offering consistent, good-quality descriptive, administrative, and structural metadata. The tools will also clarify the names of the authors, put standard subject headings, and improve the quality of the metadata fields. The fields will be filled with the necessary keywords that will aid in the process of organization, location, and search in the library catalog systems. Therefore, the process would make the AI system capable of maintaining the quality of the metadata for the large electronic resource collections in the libraries at a fast pace.

5.2 Predictive Analytics for Collection Development

AI and, more specifically, machine learning algorithms enable well-informed decision-making on the part of the library in developing their collections through the potential of AI in identifying areas of possible need in the future through the analysis of usage patterns, citations, and behavior of the clients, and thus guide the prioritization of subscriptions of the libraries on the need of the clients. Moreover, AI will be able to identify resources that require little usage, which could be the impetus for the cancellation of these resources and the effective utilization of the limited resources and BIOS of the libraries in a more prudent manner.

5.3 Intelligent Resource Discovery and Recommendation

AI recommender systems leverage the benefits of user engagement by offering personalized article, e-book, and database recommendations, which are focused on the search

query histories, research interests, and interaction patterns of their users. Recommendation systems employ algorithms such as collaborative filtering and content-based filtering to provide users with relevant content in order to support both their research and learning processes and to further improve the visibility and use of e-resources. Intelligent recommendation systems please users by saving them from the pain of information overload and, therefore, helping them better to maneuver through the huge digital collections.

5.4 License Compliance and Access Monitoring

Transactions involving complicated licensing agreements, coupled with compliance with usage terms, are part of the core activities of ERM. AI technology can be used to oversee the compliance of licenses through monitoring simultaneous usage, flagging dubious usage patterns, as well as tracking IP ranges that might exhibit suspicious usage patterns. This is useful in ensuring that the library adheres to the terms of the contract, thereby securing the interests of all parties involved.

5.5 Chatbots and Virtual Reference

Chatbots, a new application of artificial intelligence, have proved to be very useful for the users regarding the usage of electronic resources. Chatbots help the users in accessing the required resources, managing the database, and solving several authentication-related problems, providing instant services regardless of time and space. In addition to providing instant services for users to effectively utilize the electronic resources, chatbots also remove the burden from the library personnel, allowing them to focus on the deep references, thus assuring the users of prompt and accurate services.

6. Case Studies and Current Implementations

Artificial Intelligence in ERM is no longer theoretical but actually occurring with many of the leading libraries and platforms for library technologies. Several case studies and current implementations showed how AI streamlined workflows within ERM, enriched metadata, supported user-driven acquisition, and increased user engagement with electronic resources, thus bringing libraries closer to modern user expectations and operational demands.

Ex Libris Alma and Primo represent very clear examples of AI integration in library management systems. Alma is a next-generation unified library services platform; it deploys machine learning for predictive analytics to back process decisions in collection management, including subscription renewals and weeding, based on usage patterns and cost-per-use analysis. It uses machine learning to maximize budgets and optimize resources by making predictions based on huge datasets of circulation, acquisition, and uses. Primo, on its part, is the discovery layer from Ex Libris that applies AI algorithms aimed at enhancing search relevance and personalization since it models user behavior and prior searches and clicks. Thus, it provides the most relevant electronic resources that would answer the users' needs.

• The World Share management solutions offered by OCLC leverage AI technology in the aspects of metadata analysis, duplication, and the whole global cooperative cataloguing environment. The leverage of AI tools in World Share reduces the overhead associated with electronic resource management. Further, the company, OCLC, uses machine learning, including NLP solutions, to incorporate the creation of new metadata points from the resource, leading to the reduction of manual cataloguing associated with electronic resource record management. Additionally, the company's AI technology ensures the entire elimination of manual cataloguing in the process.

• The recommendatory systems developed with AI technology, which have been embedded in Elsevier’s Scopus and Science Direct systems to increase user engagement with electronic resources, are Scopus and Science Direct. Scopus relies on AI to analyze citation data, as well as data related to publishing patterns, to provide recommendatory articles as well as journals

to which a researcher would have relevance based on his or her own subject of interest. Similarly, Science Direct relies on its content-based filtering algorithm as well as a collaborative filtering algorithm to recommend articles to the user based on his or her reading patterns or areas of interest in research.

• Stanford University Libraries offer a very interesting case of using AI for metadata enhancement for electronic theses and dissertations (ETDs). Stanford University Libraries rely on Natural Language Processing and Machine Learning approaches and techniques for automatically identifying keywords for subject terms, affiliation for authors, and abstracts for ETDs for enhanced accessibility of those resources within the digital library. AI has enhanced precision for retrieval, reduced manual time for enhancing metadata, and enhanced accessibility for users of a new set of electronic theses and dissertations added at Stanford University Libraries.

• Hence, real-world applications illustrate how the power of positive AI has introduced improvements to EM resources through greater efficiency, engagement of users, and informed decision-making through the use of the available resources. These applications illustrate the power of AI to convert MRP processes to ERM and make libraries even more responsive to the needs of their users and to handle large and varied digital resources. However, such applications also make evident the adaptability of the concept of AI for librarians to suit library needs and resources through which even small libraries can avail themselves to modernize their digital resources.

7. Benefits of AI in Electronic Resources Management (ERM)

AI in ERM: Benefits of Artificial Intelligence in Electronic Resources Management

Artificial Intelligence opens possibilities for an evolutionary approach to leveraging an increasing number and complexity of managing electronic resources within library administration as an Electronic Resource Management. It helps attain better operational efficiency, accuracy, user experience, and data-driven decision-making, costing optimization, and makes library services more relevant in reference to the change in users' needs while keeping in mind the management of resources for sustainability.

• AI is faster, in many ways, in ERM. Traditional processes of electronic resource management are laborious and repeated processes, consuming much time and tending to increase the possibility of errors, leaving human resources underprepared in pursuing their primary responsibility. For instance, among these processes are tracking licenses, managing subscriptions, and creating metadata. Now, AI can intervene by relieving human resources of some of the repetitive tasks such as detection of duplicate records, processing usage data, and extraction of metadata, paving the way for library resources to focus on more strategic activities like user engagement and advanced collection development. Thus, the automation will not only speed up workflows but should also bring consistency in handling bulk cases of electronic resources, especially considering the rapidly growing collections in a digital environment.

•Meta Data quality and licensing monitoring. AI is good in meta-data quality and licensing monitoring in ERM.

Moreover, the metadata will be of high quality since the AI tools with NLP will improve the metadata record by pulling out the relevance of the text in the metadata of the electronic documents, as well as the author in some instances. AI will effectively monitor licensing since it will keep all the records of the licensing, including the simultaneous user access and possible infringements. Consequently, addressing these will not make the electronic resources exempt contracts that will result in fines at the end of the day through legal suits due to violation of the licensing conditions.

• Improving customer experience is at the heart of what librarianship tries to achieve, and with this, AI provides a scope for a personalized recommendation system for a seamless discovery experience. For instance, the use of AI-based systems for recommendations can consider a user's search history, research interest, and/or reading patterns for a selected set of electronic resources based on a randomly chosen set of electronic resources selected according to the needs of the customers, thereby enabling easier detection of what they require. Therefore, it gives rise to a sense of more customer engagement and satisfaction and, more significantly, proper use of subscribed electronic resources. Other positive effects given by AI-based discovery systems include enhancement of relevancy for searches through learning from customer interactions, thereby ensuring that the most relevant resources come top in a result for a search query.

• AI enhances the use of evidence-based decision making in collection development and management. The process of making decisions in libraries is reinforced by the evidence that emanates from the analysis conducted utilizing the machine learning model in relation to the past use pattern combined with the citation trends, behaviors, and the like regarding what is heavily used in the resource base and what is probably underused. It therefore encourages the alignment of the library resource base with the demands.

• Cost optimization is also one of the significant factors in AI, in relation to ERM, especially in cases or settings that entail reduced budgets and thereby make it essential to make the right allocations in resources. The predictive analysis based on demands in the future and the analysis done in the utilization of the resources should be applied in guiding the library's decision in subscriptions, especially in a setting that does not allocate much in budgets and cannot allocate resources recurrently.

The investment will be based on resources that give the maximum relevance to users and will ensure that returns in investment are optimized in the library and provide comprehensive coverage to essential resources.

8. Challenges and Limitations of AI in Electronic Resources Management

Though Artificial Intelligence (AI) is certainly useful in the management of Electronic Resources (ER), there are certain challenges involved in the use of AI, which need to be carefully addressed. Awareness of all the challenges would aid in being prepared for responsible, effective, and sustainable implementation of AI in libraries.

• One of the most daunting challenges is the associated startup costs, in addition to the existing need for expertise in the efficient management of AI solutions. There is investment in the most advanced software, hardware infrastructure, and personnel capable of efficiently managing, training, and maintaining AI systems. Most libraries, including those in the developing world or smaller libraries, experience financial constraints, thereby hindering their ability to adopt AI solutions for their electronic resource management systems. The use of AI in its most effective forms demands personnel with expertise in the field of Data Science, Machine Learning, and System Integration, thereby again demanding staff training/capacity building, whose implementation also requires extra time.

• Data privacy and ethics represent yet another significant barrier to the application of AI in ERM. This is because the application of AI sometimes considers behaviors, search paths, and utilization patterns to be able to provide recommendations and predictions. A barrier to the above application will be the collection and processing requirement of the user data in light of concerns involving consent, ownership, and privacy regulations such as GDPR and ones established by institutions. A library ought to establish policies in light of the protection of user data from mere transparency in the used data in ensuring that AI upholds ethical principles bordering on user confidentiality and intellectual freedom principles.

• Algorithmic bias and transparency make AI less useful for ERM. This is because AI algorithms are designed based on past data, which has inherent biases. Therefore, this can result in a biased suggestion or decision, which can be discriminatory to certain sections of users or academics. For instance, an AI-driven suggestion system can suggest materials to users based on popular disciplines but not specific areas. Therefore, this limits access for everyone to information. Additionally, most AI algorithms act like "black boxes." Therefore, it is hard for people to understand how decisions have been arrived at, which is a problem for trust in AI-driven systems in libraries.

• Incorporation with existing legacy systems is one of the practical implementation issues when it comes to AI implementation within existing library infrastructure. Most libraries already have developed ILS infrastructure with discovery layers, which might not support effectively the AI functionalities required for inclusion within the system development with relative ease.

• Thus, the constant evaluation of AI models is significant in keeping the relevance of ERM processes accurate. AI models need to be updated periodically with the availability of new data comprising the current user behavior, changes in the resource usage pattern, and the availability of content. Even AI systems could turn out to be obsolete with the passage of time, resulting in incorrect recommendations or the worsening of the metadata improvements. There will, therefore, be a need for the dedication of time and technical skills in the evaluation of AI models.

9. Future Directions

Artificial Intelligence is constantly changing and shall aid in improving the efficiency, transparency, and interaction of libraries in future Electronic Resources Management. Fresh approaches shall open up in future for Artificial Intelligence in ERM. These shall be implemented in librarianships through which they shall notice modes on how to execute various massive electronic resources in amongst millions of complexities and operations.

The other area of future thinking includes Explainable AI, abbreviated as XAI, which is a subfield in the realm of AI that will ensure the outcomes produced by the machines can be understood by librarians. The truth is, most of the existing models in the realm of AI operate in a "black box" approach, making them very challenging for librarians, especially regarding the process of carrying out, for instance, the recommendation of a resource, as well as the improvement of the metadata. Explainable AI, for instance, will provide interpretable records towards the output produced through the use of AI, thus contributing towards the librarians' knowledge, evaluation, and trust in the systems, besides having them accountable for the generated output.

In the coming years, multilingual NLP will contribute significantly to improving metadata quality and enhancing content discoverability in several languages. Libraries are rich in electronic resources in multiple languages, but their metadata systems often lag behind in adequate representation of such resources, thereby limiting access and discoverability for multilingual user communities if they do not cover non-English content adequately. Advanced multilingual NLP will be an AI tool that will extract, translate, and enhance metadata in all languages being used, which means all users globally will be able to make use of it because many areas of research and learning use more than one language.

The amalgamation of Linked Data and Semantic Web techniques with AI is another area to eagerly await in library organizations. Linked Data allows for linking a resource related to data from various platforms using standard frameworks, and on the other hand, the Semantic Web helps machines to comprehend and process data in a meaningful way. If library organizations adopt AI along with Linked Data, they can link resources related to data and their authors/subjects from various platforms.

Voice-driven AI assistants provide yet another opportunity in a rather promising domain with broad prospects of improvement with regards to easy access as well as enhancement of the user interface in electronic resources. As the number of usages of voice assistants in carrying out daily tasks keeps increasing, voice search features incorporated into resource discovery systems will give their end-users a chance to search as well as access electronic resources using natural language queries.

10. Conclusion

AI would prove invaluable in connecting the dots on the issue of Electronic Resource Management at the libraries with automation of the complex process, user interaction, and the availability of informed decision-making. While the libraries are challenged with the surge in the number of electronic journals, e-books, databases, among other electronic resources, the turning of the tide towards the effective management of the resources, considering the intelligent user, would be AI.

Adding the use of AI within the realm of ERM enables the automation of processes involved in creating data, tracking licenses, and usage analyses, which means that the library will have less manual labor but improved accuracy. With the use of AI, which involves the application of NLP, making more accurate metadata, it is easy to improve the accessibility of the e-resources. This is achievable through the ability of the AI system to make it easy for users to access the e-resources.

AI helps facilitate the near-maximum degree of user engagement in libraries with personalization features linked with the services of the library. AI-based recommendation services allow libraries to identify the research behavior, research interests, and past experiences of users for providing them with relevant electronic resources leading to enhanced personalization avenues for learning and research. Assistance pertaining to accessing electronic resources on a 24/7 cycle gets enhanced by the use of chatbots, ensuring significant user satisfaction while ensuring equal access to services provided by libraries.

Evidence-based decision-making receives a significant impetus with the advent of AI, which is a result of the analytical forecasting and predictive systems the AI brings into the delivery of ERM. AI makes use of the past usage statistics, citation, and user behavior data, which the AI generates specific recommendations on the formulation of a collection, thereby enabling libraries to identify underutilized resources, predict future resource needs, and manage the cancellation of subscriptions. Such collections will, in turn, be relevant, need-responsive, and financially viable.

Despite this, however, the use of AI technology in ERM has obvious challenges for the library. First and foremost, there are ethical issues, for example, privacy for library users and security for their data-using AI technology that analyzes library users. Use of AI technology might end up being very expensive as it would entail massive spending on technology and human resource capacity at library institutions despite careful planning and proper allocation of resources for investments. Use of AI technology might end up being very expensive as it would entail massive spending on technology and human resource capacity at library institutions despite careful planning and proper allocation of resources for investments.

Therefore, they would have been encouraged to adopt an approach to building capacity, developing ethical frameworks, and gaining the interest of stakeholders in designing and implementing artificial intelligence. This will enable them to go far in assuring the community that they will do everything possible to navigate the already existent grey areas.

The possible applications of AI can turn the management of Electronic Resources into a more efficient, user-centric, and sustainable process through which the libraries can efficiently handle their electronic resources, providing value-added services for their end-

users. The services would enable the libraries to effectively address the challenges of ethics, transparency, and technological deficits, which may impede the utilization of AI in the process of achieving service deliverance in line with the prospective demand for the information age. The libraries can thus remain relevant in the ultimate context of just-in-time research, teaching, and lifelong learning in the context of the digital age.

References

1. Breeding, M. (2018). Library technology and digital resources: AI in libraries. Library Technology Reports, 54(8), 1-32.
2. Cox, A. M., Pinfield, S., & Rutter, S. (2019). The intelligent library: A review of automation and AI in libraries. Journal of Librarianship and Information Science, 51(1), 29-41.
3. Jones, K. M. L., & Salo, D. (2018). Learning analytics and the academic library: Professional ethics commitments at a crossroads. College & Research Libraries, 79(3), 304-323.
4. Breeding, M. (2021). Library systems report: Trends in AI and automation. American Libraries, 52(5), 40-47.
5. American Library Association. (2020). Libraries and AI: An overview. Retrieved from https://www.ala.org
6. Crawford, K., & Calo, R. (2016). There is a blind spot in AI research. Nature, 538(7625), 311-313.
7. OpenAI. (2020). AI and its applications in research and libraries. Retrieved from https://www.openai.com
8. IFLA. (2021). Statement on libraries and artificial intelligence. Retrieved from https://www.ifla.org
9. Bawden, D., & Robinson, L. (2021). The dark side of information: Overload, anxiety, and AI challenges. Journal of Information Science, 47(4), 510-525.

Email: sharmadk73@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 108-111
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Role of Education Empowerment in Promoting Social Stability

Dr. Manish Rathore,
Principal,
Moti Lal Dave T.T College Banswara

"Education is not the filling of a pail, but the lighting of a fire." — William Butler Yeats

Abstract

Education is a puissant tool for economic empowerment. It provides individuals with skills and knowledge to access better job opportunities, improve their economic prospects, and contribute to economic growth. Educated individuals are more likely to secure employment, earn higher incomes, and support their families.

Education empowers individuals to participate in the democratic process and make informed decisions. It promotes awareness of rights and responsibilities, enabling individuals to advocate for themselves and their communities. Education also fosters social mobility, reducing sameness and promoting social cohesion.

Education preserves and promotes cultural heritage, fostering a sense of identity and belonging. It encourages understanding and appreciation of diverse cultures, promoting tolerance and peaceful coexistence. Education empowers individuals to preserve their cultural traditions while embracing global citizenship.

Despite progress, challenges persist in ensuring inclusive and quality education for all. Barriers such as poverty, gender inequality, and conflict hinder access to education. Addressing these challenges requires concerted efforts from governments, communities, and individuals. Governments must prioritize education in policy and budget allocations. Communities must support education initiatives and promote inclusive practices. Individuals must recognize the value of education and advocate for their rights. Education empowerment is crucial for promoting social stability. It equips individuals with knowledge, skills, and values to contribute positively to society. By addressing challenges and promoting inclusive education, we can build a more stable, equitable, and flourishing world.

Education is a fundamental human right and a critical tool for personal and societal development. Empowerment through education means equipping individuals with knowledge, skills, critical thinking abilities, and confidence to make informed decisions and improve their quality of life. Social stability refers to a situation where a society experiences peace, cohesion, and the absence of major conflicts or unrest.

Education empowerment plays a pivotal role in fostering social stability by addressing root causes of social problems such as poverty, inequality, discrimination, and lack of civic engagement. It helps individuals become economically independent, promotes social inclusion, and encourages participation in democratic processes. This article explores how education empowerment contributes to social stability by examining its impact on economic growth, social equity, political participation, health, and community cohesion.

Education equips individuals with skills needed in the labour market, increasing their chances of securing stable and well-paying jobs. Higher employment rates reduce poverty and economic inequality, which are major sources of social unrest. For example, countries with higher literacy rates often have lower crime rates and more stable economies.

Education is a key factor in breaking the cycle of poverty. When people are educated, they can access better job opportunities, increase their income, and improve their living standards. This economic enlistment reduces social tensions caused by disparities between rich and poor.

Education fosters creativity and innovation, encouraging entrepreneurship. Small businesses and startups create jobs and stimulate local economies, contributing to community stability. Studies show that increasing primary education enrolment by 10% can boost GDP per ca-pita by 0.3% annually. This economic growth translates into more resources for social services and infrastructure, enhancing stability.

Education empowers women by providing them with knowledge and skills to participate in the workforce and decision-making processes. Gender equality in education leads to more balanced societies, reducing gender-based violence and discrimination. Bridging Social Divides Education brings together people from different castes, religions, ethnicity, and socioeconomic backgrounds. Shared learning experiences foster mutual respect and understanding, reducing prejudice and social friction.

Empowering Marginalized Groups Access to education for marginalized communities, such as Dalits in India or African Americans in the US, helps reduce social exclusion. It provides these groups with tools to advocate for their rights and improve their social status.

The Role of Inclusive Education Policies Countries that implement inclusive education policies see improved social cohesion. For instance, Finland's education system emphasizes equality, resulting in low social disparities and high social trust. Political Participation and Democratic Stability (Approx. 350 words)3.1 Enhancing Civic Awareness Education increases awareness of political rights, duties, and processes. Educated citizens are more likely to vote, engage in community discussions, and hold governments accountable. Reducing Extremism and Radicalization Critical thinking skills developed through education help individuals resist extremist ideologies. Education promotes tolerance and peaceful conflict resolution, reducing the risk of political violence. Strengthening Institutions Educated populations demand transparency, good governance, and rule of law, which strengthens democratic institutions and reduces corruption. Example: Education and Arab Spring In several Arab countries, educated youth played a significant role in demanding political reforms, showing how education can drive peaceful political change.

Health and Social Well-being (Approx. 300 words)4.1 Health Literacy Education improves understanding of health issues, leading to better personal and community health practices. This reduces disease burden and healthcare costs. Reducing Social Problems Higher education levels correlate with lower rates of substance abuse, domestic violence, and crime, all of which contribute to social instability.

Longevity and Productivity Educated individuals live longer, healthier lives, contributing more productively to society, which enhances overall social stability. Community Cohesion and Social Capital. Building Trust and Cooperation Schools and educational institutions serve as social hubs where people interact, build trust, and develop networks. These social connections, or social capital, are essential for community resilience. Promoting Cultural Understanding Education exposes students to diverse cultures, histories, and perspectives, fostering empathy and reducing xenophobia. Volunteerism and Social Responsibility Educated individuals are more likely to engage in volunteer work and community service, strengthening social bonds.

Community Schools in Rural Areas Community schools in rural India have improved social cohesion by involving parents and local leaders in school management, creating a sense of shared responsibility.

Education's impact on economic growth is not just about individual income but also national development. According to UNESCO, each additional year of schooling can increase a person's earnings by up to 10%. At a macro level, countries with higher average years of schooling tend to have higher GDP growth rates. For example, South Korea's rapid transformation from a low-income to a high-income country in a few decades was largely driven by massive investments in education. The government prioritized universal primary and secondary education, which created a skilled workforce that attracted foreign investment and boosted innovation. This economic stability reduced social unrest and improved quality of life for its citizens. Moreover, education fosters financial literacy, enabling people to save, invest, and plan for the future, which strengthens economic resilience at household and community levels.

Education is a powerful tool for gender equality. Women with secondary education are more likely to delay marriage and childbirth, have fewer children, and invest more in their children's health and education. This creates a positive cycle of empowerment across generations. In India, the "Beti Bachao Beti Padhao" (Save the Daughter, Educate the Daughter) campaign has increased female enrollment in schools, contributing to a gradual shift in societal attitudes toward women's roles. Similarly, minority groups benefit from education by gaining access to political representation and legal rights. For instance, the Civil Rights Movement in the United States was significantly driven by educated African American leaders who used their knowledge to advocate for equality and justice. Education also helps reduce social stigmas and discrimination by promoting awareness and empathy among different groups, fostering a more inclusive society.

Education's role in political stability is evident in several historical examples. In post-apartheid South Africa, education reforms aimed at inclusive and equitable access helped rebuild a divided society and promote national unity. In Scandinavia, high levels of education have contributed to strong democratic institutions, low corruption, and high levels of citizen engagement, creating some of the most stable societies globally. Conversely, countries with low education levels often experience political instability, as seen in some parts of the Middle East and Africa, where lack of education fuels extremism and conflict. These examples highlight the importance of education in fostering peaceful political environments.

You can insert these sections after the main body and before the conclusion, or weave them into existing sections 1, 2, and 3 to deepen the discussion.

Conclusion Education empowerment is a cornerstone for social stability. It not only enhances economic prospects but also fosters social equity, political participation, health, and community cohesion. By addressing the challenges of access and quality, and by promoting inclusive and relevant education, societies can build a foundation for lasting peace and prosperity. Investing in education is investing in a stable, harmonious future for all.

However, challenges like unequal access, quality gaps, and curriculum limitations must be addressed to fully realize education's potential. Investing in inclusive, high-quality education, alongside policies that promote civic engagement and lifelong learning, is vital for long-term stability. In essence, education empowerment not only transforms individual lives but also creates a ripple effect that strengthens the social fabric, ensuring peace, cohesion, and sustainable development for future generations. Investing in education is investing in a stable and prosperous society

Reference

1. UNESCO. (2020). Education for Sustainable Development: A Road-map. Paris: UNESCO.
2. World Bank. (2018). World Development Report 2018: Learning to Realize Education's Promise. Washington, DC: World Bank.
3. Hanushek, E. A., & Weismann, L. (2015). The Knowledge Capital of Nations: Education and the Economics of Growth. Cambridge, MA: MIT Press.
4. Sen, A. (1999). Development as Freedom. Oxford, UK: Oxford University Press.
5. OECD. (2019). Education at a Glance 2019: OECD Indicators. Paris: OECD Publishing.
6. Sotiropoulos, G., & Patrinos, H. A. (2018). Returns to Investment in Education: A Decade of Evidence. World Bank Policy Research Working Paper No. 8402.

manish11045@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 112-115
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

उत्तराधुनिक हिंदी कहानियों चित्रित सहजीवन

डां.श्रीकला .एस .आर
प्रोफसर,
हिन्दी विभाग, यूनिवार्सिटी कालेज तिरुवनन्तपुरम

स्त्री- पुरुष संबंध हमेशा साहित्य का विषय रहा है। भूमंडलीकरण और बाजारवाद ने इस रिश्ते को प्रभावित किया है। साथ साथ ऐसे कई सवाल उठाया है जिनको साहित्य में समेटना साहित्यकार अपना कर्तव्य मानते हैं। यह विषय वर्तमान साहित्यिक माहौल में नया है।

साहित्यिक दृष्टि से वर्तमान समय स्त्री पक्ष के लेखन में वैश्विक बदलाव का समय है।अब ऐसा कोई विषय नहीं है जिसे महिला कथाकारों ने न छू लिया हो। स्त्री - पुरुष संबंध का उत्तराधुनिक रूप है, यह स्त्री एवं पुरुष अपनी मर्जी से चुनते हैं। इसमें चुनाव का खास महत्व है क्योंकि अगर चयन या चुनाव गलत हो गया तो जीवन एक प्रश्न चिन्ह रह जाएगा, खासकर स्त्रियों केलिए। सह जीवन में पुरुष की अपेक्षा स्त्री को ज्यादा कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। सह जीवन में स्त्री के वजूद या अस्तित्व को लेकर लोग बुरी नजर से देखते हैं।

' सौगंधनामा ' कहानी में लेखिका नीलम कुलश्रेष्ठ अनेक पात्रों और घटनाओं के जरिए सहजीवन में स्त्री की स्थिति को खुलेआम व्यक्त करती है। सबीना के घर में काम करनेवाली बाई हंसा , बंसी के साथ सहजीवन बिताती है। समाज हंसा व बंसी के इस रिश्ते को स्वीकारता नहीं। बंसी पहले से ही शादीशुदा है। उसकी पत्नी ,और बच्चे तो गांव में है। हंसा - बंसी का रिश्ता तो एक करार है जिसका कोई वजूद नहीं है।

रक्शिता देसाई और ईश्वर भाई का संबंध एक करार पर टिका था। जब बच्चा हुआ तो ईश्वर भाई ने उसे बच्चों के साथ फ्लैट से बेदखल कर दिया। कानूनी रिश्ता न होने के कारण उसे और बच्चे को कोई अधिकार न मिल पाया। सह जीवन में बंधी स्त्री का अस्तित्व एक प्रश्न चिन्ह है।

संतोष श्रीवास्तव की कहानी ' न हो मोहब्बत हमारी रुसवा ' की नायिका शिखा अपने परिवार वालों की मर्जी के खिलाफ गौतम के साथ रहती है। परिवारवालों के मनमुटाव ने उसकी पूरी जिंदगी को हिलाया। सह जीवन में सिर्फ दो लोगों का रिश्ता बनता है। लेकिन जीवन जीने के लिए ढेरों रिश्ते चाहिए। सबका सहयोग चाहिए। इसके बिना उस रिश्ते का कोई अस्तित्व ही नहीं रहता खासकर स्त्री के लिए। शिखा के जीवन में सच्चे साथी के होते हुए भी उस रिश्ते में दृढता नहीं थी। सहजीवन में रहती स्त्री का अस्तित्व जीते समय और मृत्यु के बाद भी दांव पर है। ' कितनी अजीब बात है कि जो गौतम शिखा केलिए सब कुछ था, आज उसी को शिखा की लाश सांपने में पुलिस आनाकानी कर रही है। क्योंकि कोई सामाजिक या धार्मिक रिश्ते की मोहर उनके संबंधों में नहीं लगी थी। '1 सामाजिक स्वीकृति के बिना रिश्ते का क्या महत्व है - यह कहानी दर्शाती है।

जयश्री राय की कहानी ‘ तुम आए तो ' की नायिका चांपा की जिंदगी में जब से कबीर आ गया तब से उसकी जिंदगी एकदम ठहरी हुई थी। कबीर हमेशा चांपा पर अपना स्वामित्व जताना चाहता है और उसे घर की चारदिवारी के अंदर रखना चाहता है। चांपा और कबीर के रिश्ते का कोई आधार नहीं है। जब से वह कबीर के साथ रहने लगी है तब से उसे लोगों की बदतमीजी और ताने सहनी पड़ी है। लोग उन्हें संशय और अवज्ञा से देखते , पीछे से कानाफूसी करते और मुंह दबाकर हंसते थे। बिना शादी किए साथ रहने के कारण लोग उन्हें मकान किराए पर देने से इनकार कर देते थे। चांबा की जिंदगी इतनी ठहरी हुई थी कि उससे बदबू आने लगे। वह इस रिश्ते से

मुक्त होना चाहती थी। लेकिन उसमें उतनी हिम्मत नहीं थी। आखिर वह अपने अस्तित्व को बचाये रखने केलिए इस रिश्ते से आजाद होकर अर्पित से शादी करके उसके बच्चे की मां बनना स्वीकारती है।

‘ आवाजें ' कहानी का कोमल नई पीढी का प्रतीक है जो पहले कमाने के बाद सेटल होना चाहती है। नौकरी मिलने के बाद वह एक लड़के के प्यार के गिरफ्त में पड़ जाती है। जिस लड़के के साथ कोमल जिंदगी बिताना चाहती थी वह तो कोमल के चरित्र पर उंगली उठाती है। ‘ खुलेआम किसी को भी गले लगा लेना उसकेलिए रूटीन बात है। मैं तो कभी भी सीधी-सादी लड़की से ही शादी करूंगा। किसी कमल लड़की से शादी करके कोई चमेला नहीं पाऊंगा। ' 2 जो लड़का कोमल का अतीत नहीं जानना चाहता था वह आज कहने लगा कि ऐसे लोगों को किसी के साथ हम बिस्तर होते देर नहीं लगती। इस प्रकार लडका कोमल के चरित्र पर लात मारकर चला जाता है।

‘ मि. वालरस ' की नायिका प्राध्यापिका लड़की ने सहजीवन को चुनकर अपने वजूद को दी थी। जब इस रिश्ते में एक बच्चा पैदा हो गया तो जिंदगी और मुश्किल हो गई। बिना बाप के बच्चे को जन्म देने से समाज की नजर में उसका अतीत चूर-चूर हो गया। वालिया तो शादी शुदा है और उनके बच्चे कॉलेज में पढ़ रहे हैं। इसलिए वह तो अपने परिवार को नहीं छोड़ सकता था। वह दोनों नावों में सवार करने का पक्षधर था। समाज केवल स्त्री के अस्तित्व पर ही सवाल उठाता है। प्राध्यापिका लड़की तो अब घर की रही ना घाट की। बदनामी के कारण उसे कॉलेज की नौकरी भी छोड़नी पड़ी। कहानी में लेखिका अत्यंत सटीक तरीके से महानगरों में जीनेवाले लड़कियों की त्रासद जीवन प्रस्तुत करती है। सहजीवन जैसे संबंधों से उन्हें कुछ नहीं हासिल होता है सिवाय, अपने चरित्र पर कलंक के।

बंदना राम की कहानी 'युग' सहजीवन में स्त्री के अस्तित्व पर गहराई से असर छोड़ती नजर आती है। सहजीवन में विवाहित हो, चाहे अविवाहित, ऐसे रिश्ते स्त्री के अस्तित्व पर गहरा आघात करते हैं। क्रांतिकारी आंदोलन के साथी राजेश और निरुपमा पिछले तीस सालों से साथ रहते हैं। गांव में रहनेवाले राजेश की पत्नी की जब मृत्यु होती है तो वह क्रिया - कर्म के सिलसिले में शिरोमुण्डन करता है। निरुपमा के पूछने पर राजेश कहता है , ‘ गांववाले हैं न , इसलिए इसी भाषा में कहा, क्रिया - कर्म में कंजूसी मत करो, पत्नी थी तुम्हारी , उसके जीते जी तो उस रिश्ते का सम्मान किया नहीं तुमने, अब मरने पर करो। अब बंधन से आजादी निरुपमा सोचती है बंधन से आजादी दो उसे।' 3 यहां कहानीकार आजादी और अस्तित्व में कौन बड़ा या छोटा है- यही प्रश्न उपस्थित करती हैं। सह जीवन में स्त्री का क्या अस्तित्व है -इसका पर्दाफाश हुआ है।

मातृत्व प्रकृति द्वारा स्त्री को दिया गया एक वरदान है। प्रकृति ने नारी में ममता, प्यार और सहनशीलता जैसे गुणों को समाहित किया हे। स्त्री का अधिकार एवं अभिलाषा है मां बनना। मां बनती है तो जश्न मनाते हैं। लेकिन सहजीवन में स्त्री मां बनती है तो मातम मानते हैं। 'तुम आए तो' कहानी की चांपा बड़ी उम्मीद के साथ कबीर के साथ रहने के लिए तैयार हुई थी। जब कबीर को मालूम होता है कि चंबा गर्भवती है तो कबीर उसके हाथ में कुछ रुपए देकर गर्भपात करने को कहता है। साथ ही यह चेतावनी भी देता है , ‘ या तो बच्चा या वह। मुझे क्या पता था

तीस साल की औरत को इतनी सी सावधानी रखनी नहीं आती । जिस्म तुम्हारा है, इसे संभालना भी तुम्हें ही है ।' 4 सहजीवन स्त्री से उसके मां बनने का हक छीन लेता है ।

चांपा की उम्मीद थी कि एक बच्चा पैदा होता तो वह अकेली नहीं हो जातीऔर उनके रिश्ते में सुधार भी आ जाएगा । कबीर तो इससे चिल्ला उठता है । वह सेक्स के लिए इतनी बड़ी कीमत चुकाने केलिए तैयार नहीं था।

चांपा तो अपने प्यार को एक आकार देना चाहती थी । एक मुकम्मल रूप । लेकिन कबीर केलिए जिस्म की भूख । उससे ज्यादा रिश्तों का कबीर केलिए कोई महत्व नहीं था । सह जीवन स्त्री को मातृत्व से वंचित रखता है। अगर बच्चा पैदा करने का जुर्म करती हैं तो उसका जिम्मेदार केवल स्री ही है ।उसका उत्तरदायित्व केवल स्त्री पर निर्भर है। सहजीवन में हमेशा स्त्री की तुलना ही भारी होती है सह जीवन में कोई चूक हो गए तो जन्म से लेकर मृत्यु तक स्त्री शोषण का शिकार बन जाती है । मां की कोख में पलते वक्त से लेकर उसपर शोषण एवं अत्याचार शुरू होता है । एक तरह सह जीवन स्त्री शोषण का एक नया तरीका है । सहजीवन स्त्री के शारीरिक , मानसिक एवं आर्थिक शोषण का यह नया रास्ता युवा पीढ़ी के सामने उपस्थित करता है ।

‘ यह तो होना ही था ' कहानी स्त्री पक्ष का सफल नमूना है । कहानी की नायिका कनी शादीशुदा एवं दो बच्चों की मां भी है । कनी का पति जब से दूसरी औरत के साथ सह जीवन बिताने लगा तब से कनी पत्नी होने के अधिकारों से वंचित होने लगी । उसका मानना था कि जिन अधिकारों से पति उसे वंचित रखता है, वह अधिकार किसी और को देना चाहिए । ' पुरुष कर सकते हैं तो स्त्री क्यों नहीं ' यह विचार उसके मन में तीव्र होने लगी । यहां देह मुक्ति का मतलब उसकी शारीरिक एवं मानसिक स्वतंत्रता से है ।

नारी को पुरुष से अलग करनेवाली खास बात उसकी ममता है । इसलिए स्त्रियां पुरुषों के धोखे में पड जाती है । पुरुष उसकी ममता और परवाह का फायदा उठाकर अपने जाल में फंसाता है । ‘ तुम आए तो ' कहानी में चांपा भी कबीर की मनमोहक बातों में पडकर उसके साथ रहती है । जब वास्तविकता सामने आती है तब तक वह अपने वजूद को उसके हवाले कर चुकी थी । चांपा को लगा कि क्रांतिकारी कबीर उसका ख्याल अच्छी तरह रखेंगे । ' तुम औरतें जात और औकात में पूसी बिल्ली ही होती हो । इमोशनल अत्याचार । अपनी कीमत वसूलना तुम औरतों को खूब आता है । सो कॉल्ड प्यार, जिस्म, कोख सबका दम चाहिए तुम्हें । इससे आगे जिंदगी को बढ़ाने ही नहीं देती ।' 5 कबीर उसे अपने मातृत्व से भी वंचित करता है ।

नीलम कुलश्रेष्ठ अपनी कहानी में अंधे प्रेम की शिकार हंस का त्रासद जीवन प्रस्तुत करते हैं । कथानायक बंसी हंसा को अपने प्रेम जाल में फंसाता है । उसे एहसास दिलाता है कि हंस के बिना उसका जीवन अधूरा है । ‘ धूप हो या बारिश हो मेरी एक झलक पाने केलिए सड़क पर खड़ा रहता है । जब मैं सुबह छः बजे ड्यूटी पर आई तो देखा, बंसी बारिश में खड़ा भीग रहा है । मैंने पूछा, इतनी सुबह बारिश में क्यों भीग रहे हो? बहुत दु:खी होकर बोला कि मैं तो रात नौ बजे से तेरी राह देख रहा हूं। मैडम, मेरी आंखों में आंसू आ गए। बताइए, कौन औरत नहीं पिघलेगी ? '6 बंसी की मनमोहक बातों और क्रियाकलापों में पडकर हंसा सहजीवन की खाई में गिर गई है जिससे उसे मुक्ति का न कोई रास्ता दिख रहा है ।

सहजीवन में स्त्रियां केवल विलास का साधन मात्र रह गई है । उसकी वजूद, उसकी स्वतंत्रता का कोई महत्व नहीं रह गया है । स्वाति तिवारी की कहानी ‘अब कोई वर्जना नहीं ’ कथ्य एवं कला की दृष्टि से संतुलित कहानी है । मॉडलिंग में नाम कमाने केलिए लिव इन पार्टनर को छोड़कर प्रोड्यूसर के साथ चली जाती है । यहां निकिता उत्तराधुनिक नारी का प्रतीक है । अक्सर देखा जाता है कि यूस एंड थ्रो को पुरुष अपना सहज अधिकार मनाता आया है । लेकिन यहां निकिता ने पुरुष के इस सोच को नष्ट कर टुकड़ा टुकड़ा कर दिया है । कहानी द्वारा लेखिका बताना चाहती है कि स्त्री भी स्वतंत्र है, उसका भी वजूद है । कहानी का पुरुष कहता है, ‘ मेरे अंदर का

पौरुष उसके यूं जाने से आहत हुआ था। लगा वह मेरे वजूद पर लात मार कर चली गई... ' 7 निकिता तो पूरी तरह लीव इन पार्टनर है जो न्यूज़ एंड थ्रो में विश्वास करती हैं। यह कहानी स्त्री स्वतंत्रता एवं पुरुष मनोवृति का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करती है।

भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति अंतर्विरोधों से भरी हुई है। परंपरा से नारी को शक्ति का रूप माना गया है। पर सामाजिक तौर पर वह अबला कही जाती है। सहजीवन में नारी का संघर्ष केवल देह की स्वतंत्रता तक सीमित नहीं है। उसे अपने अस्तित्व के लिए, अभिव्यक्ति के लिए और मातृत्व केलिए संघर्ष करना पड़ता है। मध्यवर्गीय स्त्री का संघर्ष देह की स्वतंत्रता और आर्थिक स्वतंत्रता पर टिकी है। आलोच्य कहानियों में स्त्री का विविध रूप अभिव्यक्त हुआ है। कहानियों का अध्ययन करने से यह समझा जा सकता है कि स्त्री द्वारा सह जीवन अपनाने से ज्यादा उस पर थोपी गई है। समाज केवल स्त्री को गलत ठहराती है। अपने जीवन में मर्यादा, और अस्तित्व खोना पड़ता है। अंत में अपराध बोध भी उसे सताती रहती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. इच्छाओं के समानान्तर कहानी संग्रह ,   स्वाति तिवारी, पृ.सं . 39
2. वही, पृ.सं. 60
3. वही, पृ.सं. 75
4. वही, पृ.सं. 34
5. वही, पृ.सं. 26
6   वही, पृ.सं. 48
7. वही, पृ.सं. 54

मो . नं. 7356325607

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 116-120
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

छोटानागपुर के उरांव जनजाति की आर्थिक स्थिति का एक ऐतिहासिक अध्ययन

दुलाल गोप,
शोधार्थी,
स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, बिनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविद्यालय,धनबाद।

सारांश -

झारखण्ड भारत के प्रमुख जनजातीय राज्यों मे से एक है , जहां उरांव जनजाति एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। उरांव जनजाति झारखण्ड की दूसरी तथा भारत की चौथी सर्वाधिक जनसंख्या वाली जनजाति है। उरांव जनजाति का आर्थिक जीवन मुख्य रूप से कृषि ,पशुपालन और वनोपज पर आधारित है , जिसमे अब आधुनिक रोजगार (सरकारी नौकरी , सेवा क्षेत्र ,प्रवासन) भी शामिल हो गए है। वे हल से खेती करते है और पारंपरिक रूप से शिकारी-संग्राहक थे , लेकिन अब खेती और मजदूरी प्रमुख है , हालांकि शिक्षा और शहरीकरण के कारण जीवनशैली में बदलाव आ रहा है, जिससे कई लोग बेहतर अवसरों के लिए शहरों की और पलायन कर रहे है।

मुख्य शब्द :- उरांव जनजाति, आर्थिक परिवर्तन, उरांव समुदाय, ऐतिहासिक अध्ययन, आदि।

परिचय -

उरांव लोगों की आर्थिक गतिविधियां - भोजन, वस्त्र, आवास तथा जीवन की दशाओं को बनाए रखने तथा सुधारने के लिए अन्य आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति के उनके प्रयास कृषि पर आधारित है और परिणामतः न केवल आर्थिक, बल्कि उनके सामाजिक नियमण तथा धार्मिक कर्मकाण्ड का भी बहुत कुछ अनिवार्यतः कृषि से ही जुड़ा हुआ है, क्योंकि किसी जन-समुदाय की सामाजिक व्यवस्था तथा धार्मिक आचार-व्यवहार बहुत कुछ उनकी जीवन धारण पद्धति पर निर्भर होता है। छोटानागपुर पठार के ज्यादा खुले मध्य भाग में निवास करने का उरावों का वर्तमान निर्णय स्पष्टतः उनके कृषि आधारित जीवन के द्वारा निर्धारित था और उनके ग्रामीण संगठन का भी आधार कृषि था। अतः हम उनके ग्रामीण संगठन तथा उनकी भू-धारण प्रणाली के संक्षिप्त वर्णन से प्रारंभ करेंगे, फिर देखेंगे उनकी भूमियों से किस प्रकार के भोजन तथा अन्य जीवनोपयोगी वस्तुओं की आपूर्ति होती है तथा वे अपनी भूमियों से अपना भोजन तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किन विधियों का प्रयोग करते है तथा अंत मे देखेंगे कि कृषि में उनके लिए क्या भौतिक दशाएं निर्मित की हैं। और चूंकि उरांव लोगों के मन में उनके 'अर्थशास्त्र' तथा सामाजिक दर्शन से उनके धर्म-संबंधी विचार अविच्छेद्य रूप से जुड़े हुए हैं, हम प्रसंगवश उनकी आर्थिक गतिविधियों से संबंधित कुछ धार्मिक तथा जादू संबंधी प्रथाओं का भी अवलोकन करेंगे।

उरांव जनजाति की पारम्परिक आर्थिक व्यवस्था

उरांव जनजाति की पारम्परिक आर्थिक व्यवस्था एक सुनियोजित, स्थायी और प्रकृति-केन्द्रित जीवनशैली का प्रतिबिम्ब है, जो सदियों के अनुभव, स्थानीय पारिस्थितिकी के साथ सामंजस्य और सामुदायिक सहयोग पर आधारित रही है। यह व्यवस्था न केवल भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति का माध्यम थी, बल्कि उनकी सांस्कृतिक पहचान, सामाजिक संरचना और दार्शनिक विश्वासों का एक अभिन्न अंग भी थी। धनबाद जिले के संदर्भ में, जो ऐतिहासिक रूप से 'छोटानागपुर पठार' के हिस्से के रूप में समृद्ध वनों और उपजाऊ भूमि से आच्छादित रहा है, उरांव समुदाय ने एक ऐसी अर्थव्यवस्था विकसित की थी जो स्थानीय संसाधनों के सतत उपयोग, न्यूनतम अपव्यय और सामूहिक कल्याण के सिद्धांतों पर टिकी थी। यह खंड उसी पारम्परिक आर्थिक ढाँचे की तीन प्रमुख विशेषताओं—आजीविका के स्रोत, सामुदायिक संरचना एवं सहकारिता, तथा आर्थिक स्वायत्तता—का गहन विवेचन प्रस्तुत करता है। जब उरांव छोटानागपुर पठार में बस गए, तो प्रत्येक परिवार ने या भाई-भायादों के समूहों तथा उनके परिवारों ने साफ करके कृषि कर्म करने योग एक एक वन चुन लिया था, ऐसा प्रतीत होता है। इसके बगल का उच्चतम स्थल आवास गृहों के लिए चुना गया था। यहाँ इन परिवारों तथा उनके पशुओं के लिए कुछ कुटिया बना लिए गए थे। प्रारंभ में, प्रतीत हाता है कि ये अस्थाई पत्रों के बने आवास थे जैसा हम अब भी देखते है कि उरांव श्रमिक अपने लिए बनवाते है जब उन्हें लकड़ी काटने-चीरने, खुदाई करने जैसे कार्यों में नियुक्त किया जाता है। कालान्तर में इन अस्थाई पत्तों के बने हुए बांस की दीवार तथा जंगली घास के छप्पर की कुटियों ने ले लिया।

भूमि-आधारित और बहु-स्रोत

उरांव समुदायों की पारंपरिक अर्थव्यवस्था भूमि-आधारित और बहु-स्रोत पर मुख्य रूप से आश्रित थी क्योंकि इस जनजाति के पास छोटे-छोटे खंड के रूप में भूमि उपलब्ध थी जिस पर यह भिन्न- भिन्न प्रकार की कृषि किया करते थे। यह कृषि माध्यम ही इस जनजाति की जीविका का माध्यम हुआ करता था इसके अतिरिक्त कुछ लोग कृषि के अतिरिक्त जंगलों से संग्रहित उत्पाद का क्रय-विक्रय और मौसमी मजदूरी करके भी परिवार की जीविका को चलाने में सक्षम थे। कृषि सामान्यतः छोटे टुकड़ों में की जाती थी, इसलिए प्रति-परिवार उत्पादन सीमित रहता था और परिवार की जीविका मौसम तथा कीटों पर निर्भर होती थी। उरांव समुदायों की पारंपरिक बीज और स्थानीय कृषि तकनीकें अत्याधिक व्यापक हुआ करती थी, पर तत्कालीन इनपुट (बीज, उर्वरक, सिंचाई) की कमी के कारण फसलों की उपज कम और अस्थिर ही हुआ करती थी जिसका प्रभाव परिवार और समुदाय के पालन पोषण पर पड़ता था।

मौसमी चक्र

विभिन्न शोध समीक्षाओं से ज्ञात होता है कि उरांव (कुरुख/ओरांव) समुदायों की जीविका मौसमी चक्र पर भी आधारित थी। उरांव परिवारों की कृषि सामान्यतः खरीफ-प्रधान थी: मानसून पर निर्भर धान और अन्य खरीफ फसलें मुख्य खाद्य और आय स्रोत थीं, जबकि रबी की खेती सीमित और अस्थायी थी। इस संरचना का अर्थ यह था कि साल भर की खाद्य-सुरक्षा मौसम-जोखिमों (देर से बरसात, अनियमित वर्षा, सूखा) के प्रति संवेदनशील रहती; खरीफ में नुकसान होने पर घरों के पास भंडार या वैकल्पिक आय के साधन कम होते थे, जिससे खाद्य-अभाव और नकदी-संकट उत्पन्न होते थे इस संरचना ने घरेलू अर्थव्यवस्था को कम विविध और संवेदनशील रखा। कृषि-उत्पादकता पर सबसे बड़ा बाधक सिंचाई की कमी और आधुनिक कृषि-इनपुट (बेहतर बीज, उर्वरक, कीट-नियंत्रण) की अनुपलब्धता थी। वर्षा-निर्भर खेती में प्रति हेक्टेयर उपज कम रहती और फसल-विफलता का

जोखिम अधिक होता था। परिणामस्वरूप परिवारों की आय सीमित और अनियमित रहती थी। इन तकनीकी-वित्तीय बाधाओं ने खेती को जोखिम-भरा और कम लाभदायक बना दिया, जिससे किसान अक्सर मौसमी मजदूरी या वनसंग्रह पर निर्भर हो गए।

कृषि

उरांव समुदाय मुख्यतः झूम अथवा स्थानांतरित कृषि (Shifting Cultivation) और स्थायी स्थानीय खेती का अभ्यास करता था। झूम कृषि, जिसे स्थानीय भाषा में 'कुरवा' या 'बेवार' कहा जाता था, एक वैज्ञानिक और पारिस्थितिकी - अनुकूल पद्धति थी। इसमें वन के एक छोटे भू-भाग को साफ किया जाता था, कटे वनस्पति को जलाया जाता था (जिससे भूमि को प्राकृतिक खाद मिलती थी), और फिर उस भूमि पर 2-3 वर्षों तक मिश्रित फसलें उगाई जाती थीं। इसके बाद भूमि को 10-15 वर्षों के लिए परती छोड़ दिया जाता था ताकि वह अपनी उर्वरता पुनः प्राप्त कर सके। इस पद्धति से मिट्टी का क्षरण नहीं होता था और जैवविविधता बनी रहती थी। प्रमुख फसलों में धान (चावल), मक्का, कोदो-कुटकी (छोटे मोटे अनाज), मंडुआ, अरहर, उड़द, तिल, सरसों और अनेक प्रकार की सब्जियाँ (जैसे कंद-मूल, लौकी, भिंडी, करेला) शामिल थीं। यह बहु-फसल प्रणाली (Polyculture) जोखिम को कम करती थी—यदि एक फसल खराब भी हो जाती, तो दूसरी सुरक्षा प्रदान करती थी। कृषि कार्य समुदाय की सामूहिकता से जुड़ा था। बुआई और कटाई के समय 'भुइयारी' या 'दुमरी' नामक सहयोगी श्रम प्रथा का चलन था, जिसमें पड़ोसी और रिश्तेदार एक-दूसरे के खेतों में बिना मजदूरी के काम करते थे और बदले में भोजन एवं आपसी सहायता की उम्मीद रखते थे। कृषि उनके लिए केवल अनाज पैदा करने का साधन नहीं थी; यह उनके अनुष्ठानों, त्योहारों और जीवनचक्र से जुड़ी थी। 'सरहुल' जैसे प्रमुख त्यौहार वसंत ऋतु और नई फसल के आगमन से संबंधित हैं, जहाँ प्रकृति और पूर्वजों का आभार व्यक्त किया जाता था।

वनोपज संग्रह

वन उरांव समुदाय के लिए एक 'अन्न भंडार', 'दवाखाना' और 'सामग्री भंडार' का काम करता था। उनका वनों के साथ संबंध केवल उपभोग का नहीं, बल्कि संरक्षण और पूजा का था। 'सरना' (पवित्र वन) इसी श्रद्धा का प्रतीक है, जहाँ पेड़ों की कटाई वर्जित थी। वनोपज संग्रह एक लैंगिक विभाजन के साथ किया जाता था: महिलाएँ दैनिक जरूरतों जैसे कंद-मूल, हरी पत्तेदार सब्जियाँ (साग), फल (आम, जामुन, कटहल, बेल,महुआ), फूल (महुआ फूल तो आर्थिक और सांस्कृतिक दोनों दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण था) और औषधीय जड़ी-बूटियाँ एकत्र करती थीं। पुरुष लकड़ी (ईंधन और निर्माण हेतु), बाँस, सनई (रस्सी बनाने के लिए), और शहद संग्रह जैसे जोखिम भरे कार्य करते थे। महुआ) उनकी अर्थव्यवस्था का एक मुख्य आधार था। इसके फूल से मादक पेय और मिठाइयाँ बनती थीं, बीजों से तेल निकाला जाता था, और फल खाए जाते थे। इसी प्रकार, केंदु (Diospyros melanoxylon) के पत्ते बीड़ी बनाने के लिए एक महत्वपूर्ण वाणिज्यिक उत्पाद थे। लाह भी एक मूल्यवान वन उत्पाद था। वनोपज संग्रह मौसमी चक्र पर निर्भर था और यह कृषि के अनुपूरक के रूप में काम करता था, खासकर 'प्याला' (अकाल के समय) में जब फसल कम होती थी।

पशुपालन

पशुपालन उरांव आर्थिक व्यवस्था का तीसरा महत्वपूर्ण स्तंभ था, जो कृषि, परिवहन, पोषण और सामाजिक प्रतिष्ठा से जुड़ा हुआ था। यह एक छोटे पैमाने की, गृह-आधारित प्रणाली थी। मवेशी केवल आर्थिक संपत्ति नहीं थे, बल्कि परिवार का सदस्य समझे जाते थे। पालतू पशुओं में बैल (जुताई और बोझा ढोने के लिए), गाय-भैंस (दूध के लिए, हालाँकि दूध का व्यावसायिक दोहन कम था), बकरी-भेड़ (मांस और ऊन के लिए), मुर्गी-बत्तख (अंडे और मांस के लिए) और सूअर शामिल थे। पशुपालन चारागाह-आधारित था। गाँव के सामूहिक चरागाह ('गोचर' या

'टांड') में पशु चराए जाते थे, और फसल कटाई के बाद खेतों में 'अनाज के डंठल' (Stubble Grazing) छोड़ दिए जाते थे। पशुधन सामाजिक सुरक्षा जाल का काम करता था—आपातकाल में बेचा या विनिमय किया जा सकता था। धार्मिक और सामाजिक अनुष्ठानों में पशुओं की महत्वपूर्ण भूमिका थी; उदाहरण के लिए, शादी-विवाह में दहेज के रूप में पशु दिए जाते थे और बलि चढ़ाए जाते थे। यह प्रणाली पूर्णतः प्राकृतिक और रासायनिक-मुक्त थी, जिससे पशु स्वस्थ रहते थे और पर्यावरण संतुलन बना रहता था।

वन-उत्पादों का आर्थिक और सामाजिक महत्व

उरांव परिवारों की रोज़मर्रा की अर्थव्यवस्था में लकड़ी, ईंधन-घास, जड़ी-बूटियाँ, फल-फूल और चरागाह का योगदान बहुआयामी था। घरेलू स्तर पर ये उत्पाद ईंधन, पशु-चारा और औषधीय आवश्यकताओं को पूरा करते थे। बाजार में इनका विक्रय परिवारों को तुरंत नकदी देता था जो दवाइयों, स्कूल-फीस, त्यौहार और अनपेक्षित खर्चों के लिए उपयोग होता था। इस तरह जंगल स्थानीय अर्थव्यवस्था का एक अनौपचारिक बैंक-फंक्शन निभाते थे। छोटी-छोटी नकदी-आवकें घरेलू जोखिम-प्रबंधन और खाद्य-सुरक्षा को स्थिर करती थीं। वन-आधारित आय का यह लचीलापन विशेषकर उन परिवारों के लिए निर्णायक था जिनके पास सीमित कृषि-भूमि या अस्थिर खरीफ-आय थी; वनसंग्रह ने मौसमी आय-रिक्तता को भरने में मदद की और परिवारों को भुखमरी या कर्ज-जाल से कुछ हद तक बचाया।

वन-संग्रह का सामाजिक-सांस्कृतिक आयाम भी गहरा था। पारंपरिक ज्ञान किस मौसम में कौन-सी जड़ी-बूटी उपलब्ध होती है, किस पेड़ की लकड़ी किस काम के लिए उपयुक्त है, चरागाह का चक्र कैसे प्रबंधित किया जाता है समुदाय के बीच पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होता रहा। यह ज्ञान न केवल आजीविका का आधार था बल्कि सामाजिक पहचान, त्योहारों और सामुदायिक नियमों से जुड़ा हुआ था; महिलाओं की भूमिका यहाँ विशेष रूप से महत्वपूर्ण थी क्योंकि वे वनसंग्रह और घरेलू उपयोग के लिए पौधों की पहचान और उपयोग में प्रमुख थीं। जब वनों का दोहन या खनन बढ़ा, तो न केवल आय के स्रोत घटे बल्कि यह पारंपरिक ज्ञान और सामाजिक नेटवर्क भी कमजोर हुआ, जिससे समुदाय की आत्मनिर्भरता और सामाजिक-सुरक्षा पर दीर्घकालिक असर पड़ा।

अंततः वन-आधारित आजीविका की यह द्वैध भूमिका नीति-निर्माण के लिए स्पष्ट संकेत देती है। वन-संसाधनों का संरक्षण और समुदाय-आधारित प्रबंधन केवल जैविक संरक्षण नहीं बल्कि ग्रामीण आर्थिक सुरक्षा और सांस्कृतिक संरक्षण का भी उपाय है। लक्षित हस्तक्षेपों में सामुदायिक वन प्रबंधन, नॉन-टिम्बर फॉरेस्ट प्रोडक्ट्स के लिए मूल्य-श्रृंखला समर्थन, महिला-केंद्रित उद्यम और स्थानीय बाजारों तक बेहतर पहुँच शामिल होनी चाहिए ताकि वन-आधारित आय को वैध, स्थायी और लाभकारी बनाया जा सके, अन्यथा वन-क्षरण से होने वाला आर्थिक और सांस्कृतिक नुकसान दीर्घकालिक रहेगा।

निष्कर्ष :-

इस प्रकार हम देखते है की उरांव जनजाति ने जंगल पहाड़ों से घिरा दुर्गम छोटानागपुर के वन प्रदेश को अपने लिए सुरक्षित समझ कर इसमें बस गए। जीविका उपार्जन के लिए इनलोगों ने जंगल साफ किया, नदी-नाले को बांध कर कृषि योग्य जमीन बनायी। जीवन की हर आवश्यक वस्तु खुद पैदा करते तथा अभाव की पूर्ति जंगलों से करते थे। केवल कमी थी नमक की, जो सुदूर दक्षिण के प्रदेशों से उपलब्ध होता था। जनजातियों के कल्याण के लिए सरकार द्वारा काफी प्रयास किए जा रहे हैं। इनके विकास की समुचित देख-रेख के लिए सरकार द्वारा छोटानागपुर एवं संथालपरगना स्वशासी विकास प्राधिकार का गठन किया गया, जिसे अब तीन भागों उत्तरी छोटानागपुर, दक्षिणी छोटानागपुर एवं संथालपरगना स्वशासी प्राधिकार के रूप में विभाजित कर दिया गया है। जनजातीय क्षेत्रों की त्वरित

विकास के लिए जनजाति उप योजना की अलग से व्यवस्था है क्योंकि धन राशि की कमी से जनजातियों का समुचित विकास संभव नहीं है।

सन्दर्भ :-

1. **दासगुप्ता, एस. (2022).** 'उरांवे ऑफ छोटानागपुर: ए जर्नी कोलोनियल एथनोग्राफी' *मॉडर्न एशियन स्टडीज*, 56(5), 1375-1415।
2. **परकायस्थ, एन. (2018).** 'जनजाति तन्मयता: असम के बराक घाटी क्षेत्र में ओरांव जनजाति पर एक अध्ययन'। *ग्लोबल जर्नल ऑफ इंटरडिसिप्लिनरी सोशल साइंसेज*, 7(1), 7-12।
3. **दास, बी.के. एवं दास, आर.के. (2014).** 'सिद्दी-कांग ट्राइब इन इंडियन कॉन्टेक्स्ट: रियलिटीज, इश्यूज एंड चैलेंजेस'। रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।
4. **कुमार, ए. एवं अन्य (2018).** 'एथनिसिटी, रिलिजन, एंड आइडेंटिटी पॉलिटिक्स अमंग ट्राइब्स इन झारखण्ड'। *इकनॉमिक एंड पोलिटिकल वीकली*, 53, 23-25।
5. **बगर्, बी.एल. (2001).** 'हिस्टोरियोग्राफी एंड ओरल ट्रेडिशन'। *क्वालिटेटिव मेथड्स इन सोशल साइंसेज*, एमए: एलिन और बेकन, पृ. 210-224।
6. **शर्मा, के.एल. (2002).** 'सोशल स्ट्रेटिफिकेशन एंड मोबिलिटी'। रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
7. **रॉय चंद्र शरत (2023).** " *द उराँव ऑफ छोटानागपुर* " क्राउन पब्लिकेशन्स, रांची ।

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 121-123
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

नीला आकाश में दलित सामाजिक स्थिति

अल्पना गौतम
शोधार्थी
प्रोफेसर (डॉ०) सुषमा गौड़ियाल
शोध निर्देशिका
हिन्दी विभाग बरेली कॉलेज, बरेली,
महात्मा ज्योतिबा फुले रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय बरेली।

शोध सार— भारतीय समाज में वर्णभेद और जाति भेद की भावना वर्षों से चली आ रही है। नीला आकाश की कथा वस्तु दलित जीवन का यथार्थ है। यहां सवर्णों के षडयन्त्रों के साथ दलितों का शोषण उत्पीड़न और अभाव पूर्ण जीवन का चित्रण किया गया है। सुशीला टाकभौरे इस बात में विश्वास करती हैं, कि दूसरों को बदलने से पहले हमें स्वयं को बदलना चाहिये। दलित व सवर्ण लोग सबसे पहले आपस में रोटी बेटी का सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए। दलित जातियों के बीच अन्तरजातीय विवाह होना चाहिए। इससे दलित एकता मजबूत होगी। दलितों के परिवार छोटे हों, ताकि अनावश्यक अधिक खर्च से बचकर अपने बच्चों की परवरिश अच्छी तरह से कर सकें बच्चों को शिक्षा पाने के पूरे अवसर मिले।

मूलशब्द— दलित, अस्प्रश्यता, जीर्ण—शीर्ण, अशिक्षा, गरीबी, अमानवीय व्यवहार

भूमिका— सुशीला टाकभौरे का जन्म 4 मार्च 1954 ई० को भारत के हृदय—स्थल मध्य प्रदेश के जिला होशंगाबाद की तहसील सिवनी मालवा के एक छोटे से गांव 'बनापुरा' में हुआ था। सुशीला टाकभौरे दलित साहित्य लेखन में साहित्य और समाज के बुनियादी सरोकारों पर बल दिखाई पड़ता है। सुशीला टाकभौरे जी दलित समाज व स्त्री का उत्थान चाहती हैं। सुशीला जी के विचारों में दलित व स्त्री की समानता का स्वर दिखाई देता है। नीला आकाश में इन सभी मुद्दों की ओर संकेत किया है। महिलाओं के पूर्ण व्यक्तिव विकास को महत्वपूर्ण मानना चाहिए। पुरूष प्रधान समाज व्यवस्था में स्त्री सबलता जरूरी है, तभी स्त्री पुरूष समानता की भावना आ सकेगी। सुशीला जी द्वारा रचित तीन उपन्यास हैं। 'नीला आकाश', 'तुम्हे बदलना ही होगा' और 'वह लड़की' 'नीला आकाश' डॉ० सुशीला टाकभौरे जी का पहला उपन्यास है सुशीला जी ने मनोगत में लिखा है कि—'नीला आकाश' उपन्यास मेरे मन का आकाश है जहां मेरे विचार, मेरी भावनाएँ और मेरी अपेक्षाएँ मुखरित हैं। 'नीला आकाश' की कथावस्तु दलित जीवन का यथार्थ है। सवर्णों के षड़यन्त्रों के साथ दलितों के शोषण उत्पीड़न और अभावपूर्ण जीवन का चित्रण है। अभी भी दलितों की शिक्षा से वंचित रखे जाने के षड़यन्त्र चलते रहते हैं, तब बीसवीं शताब्दी के 60 और 70 के दशक की स्थिति को प्रमाणित रूप में समझा जा सकता है। भारतीय समाज रचना में वर्णभेद और जाति भेद की भावना है। यह पहले बहुत विकराल रूप में थी। धीरे—धीरे परिवर्तन हुआ मगर यह भावना अभी भी है। इसे पूरी तरह खत्म करके, सवर्ण और अछूत का भेद मिटाया जा सकेगा। इसके लिए सबसे अधिक जरूरत है, दलितों के बीच एकता संगठन और भाईचारे की 'नीला आकाश' यही संदेश देने के लिए अग्रसर हुआ है। कन्हान महाराष्ट्र का एक गांव है। यहां की संस्कृति और

परम्पराएँ देश की अन्य शहरों और गांव जैसी ही हैं। सदियों से चली आ रही सामाजिक भेदभाव और छुआछूत की परम्परा यहां भी हैं। पूरा गांव जाति और वर्ण के अनुसार अलग–अलग मोहल्लों में बंटा है। ब्राह्मण, बनिया, तेली, कुनबी सबकी अलग–अलग बस्तियां हैं। इन सबकी बस्तियों से दूर गांव के बाहर, नाले के किनारे अछूत जाति के घर हैं। 'नीला आकाश' उपन्यास में भीकूजी और चन्दरी जैसे दलित वर्ग के प्रतिनिधि पात्र केवल स्वयं तक सीमित नहीं हैं। वे अपने दलित शोषित समाज की मुक्ति और उत्थान के लिए प्रयासरत हैं। नीलिमा और आकाश जैसी वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियां दलितों के शोषित पीड़ित जीवन में पूर्ण परिवर्तन लाएगी तभी वे धरती से लेकर आकाश तक अपने संघर्ष और सफलता की पताका फहरा सकेंगे। भीकूजी एक निम्न जाति का कलाकार है। पर उसको वह सम्मान नहीं मिलता है जो उच्च जाति के कलाकारों को अधिक सम्मान मानधन और गौरव दिया जाता है, जबकि दलित अछूत कलाकारों की कला को भी निम्न दृष्टि से देखा जाता है। दलित होने से जैसे उनकी कला भी निम्न हो जाती है। चन्द सिक्के उनकी तरफ फेंक कर, जैसे उन पर उपकार किया जाता है। फिर भी भीकूजी अपनी कला को कभी छोटा नहीं मानते। वे तन–मन से अपनी कला को पूजते हैं। डॉ० बाबा साहब अम्बेडकर ने कहा था–शिक्षित बनों, संगठित रहो और संघर्ष करो। यह दलितों के लिए अति जरूरी है, किन्तु खेद की बात यह है कि दलितों में भी कई उपजातियां हैं, जिनमें ऊँच नीच का भेदभाव देखने को मिलता है। शायद यह विषय समस्त भारत में भी हो सकता है। इनमें रोटी बेटी का व्यवहार नहीं है। ये अछूत जातियां अपने से दूसरी को छोटी मानती हैं। डॉ० सुशीला टाकभौरे जी इसे खत्म करना चाहती हें, क्योंकि दलितों में एकता आवश्यक है। भारत के किसी भी प्रदेश के दलितों की बात की जाय, तो इनकी आर्थिक स्थिति दयनीय ही मिलती है। शिक्षा दलितों के उद्धार का महत्वपूर्ण शस्त्र है। सामाजिक चेतना के कारण शिक्षा के प्रति आकर्षण बढ़ा और नया समाज विकसित होने लगा है। ज्यों ज्यों दलित वंचित समाज के बच्चे शिक्षा की ओर बढ़ रहे हैं, त्यों त्यों शिक्षण संस्थाओं का माहौल तनावपूर्ण हो रहा है। आज दलितों में जागृति आई है, इसलिए भीकूजी एवं चन्दरी भी अपने बेटे को पारम्परित व्यवसाय में न डालकर, पढ़ा लिखाकर अच्छी नौकरी करवाना चाहते हैं। अगर दलितों के बच्चे अच्छी शिक्षा पाएँगे, तो जरूर आर्थिक रूप से समृद्ध हो जाएंगे। भीकूजी का कथन द्रष्टत्य है– यदि हम अपने बच्चों को स्कूल पढ़ने नहीं भेजते हैं, तो यह अपराध है। अब हम अपनी मर्जी से अपने रोजगार भी बदल सकते हैं। पढ़ लिखकर हम भी सम्मान की, ऊँचे पदों की नौकरी पा सकते हैं। जाति जीवन का कटु सत्य है। दलित के साथ जाति छाया की तरह चलती है, जहां वे जाऐंगे छाया उनके साथ। अनपढ़ भीकूजी चन्दरी किस तरह अन्धविश्वास के खिलाफ बोलते हैं उपन्यास में निराशा नहीं, आशा की किरण बहुत है। समाज में बदलाव भी आशावादी लोगों के कारण ही आते हैं जब चन्दरी निराशावादी बातें करती है, तब उसके पति भीकूजी कहते हैं। ''बदल रहा है और बदलेगा।'' चन्दरी का गुस्सा देखकर भीकूजी ने कहा–''पहले हमारी छाया से भी छूत लगती थी, हमें देखने से उन्हें पाप लगाता था। अब पूरे देश में छुआछूत हटाने का आन्दोलन चल रहा है। हमारे राजनेता सरकार की नाक में दम कर रहे हैं। आजकल सरकार भी सबकी सुनकर चलती है। हमारी शिकायतें हम अपने नेताओं के मार्फत सरकार तक पहुंचाएंगे। जो मास्टर हमारे बच्चों पढ़ने नहीं देते, ऐसे जातिवादी लोगों को हम सजा दिलवाएँगे।'' भीकूजी के स्वर में विश्वास है निराशावादी लोग कुछ नहीं कर पाते इस समाज का कुछ नहीं हो सकता–कहते कहते समय बर्वाद कर देते हैं भीकूजी के मन में मानवता, प्रकृति और पर्यावरण की चिन्ता है उनकी राय में–''यदि हम पशु–पक्षियों को मुक्त और स्वतंत्र रखकर, उनके भोजन पानी का इन्तजाम कर सकें, तो कितना अच्छा हो। इसी तरह समता, स्वतंत्रता, बन्धुता और सम्मान का जीवन हम भी जिएं। समाज में जिओ और जीने दो का स्द्धिान्त होना चाहिए। दलितों को पराजित और पराधीन रखकर सवर्ण लोग सुख सुविधा पाते हैं। चन्दरी और भीकूजी के मन में पूरी समाज व्यवस्था को बदलने की चाह है। स्त्री की नियति–की भी चर्चा इस उपन्यास में हुई है। स्कूल में दलित लड़कियों की बहुत दयनीय स्थिति है। छुआछूत, भेदभाव दुतकार, अपमान और अत्याचार सहकर पढ़ पाना बहुत कठिन है चन्दरी की बेटी शिकायत करती है।'' मक्खन चतुर्वेदी मास्टर हमकों घूर–घूर कर देखता है। बनिया गुरू जी हमें घूरता रहता है। ऐसे तो छुआछूत मानते हैं, मगर कभी कभी मेरा हाथ पकड़ लेते हैं। अब जात–पात कहां गई।

अम्बेडकरवादी दलित आन्दोलन की संस्थाओं से जुड़कर नीलिमा और आकाश दलित, पिछड़ी और अछूत जातियों की स्थिति को समझ सके। साथ ही अपने अस्तित्व और अस्मिता को भी समझने

लगे। अब वे यह भी जान गए हैं–''दलित अछूत जातियों की शोषण से मुक्ति और उनके प्रगति परिवर्तन के लिए पूरे देश में कई सन्तों समाज सुधारकों और सामाजिक नेताओं ने काम किया है।'' सबके प्रयत्नों संघर्षों और कार्यों से पूरे देश के अछूत दलित पिछड़ों को शिक्षा और समानता का अधिकार मिला है। आकाश ने अपने भाषण में सभी दलित जातियों को एकता, संगठन के साथ रहने और बाबा साहब डॉ० भीमराव अम्बेडकर के बताए मार्ग पर चलने की बात कहीं। इससे दलितों में एकता और भाईचारे की शुरूआत हुई। परिवर्तन समय की मांग है। मुक्ति यात्रा में कर्मकांडों को त्यागना होगा, सड़ी गली मान्यताओं की पोशाक उतारना होगा अशिक्षा और अंधविश्वास हमें पतन के गर्त की ओर ले चलेंगे। भेदभाव और अस्प्रश्यता की मार से प्रताड़ित होने का एक कारण यह भी है। मुक्ति दूसरों से मात्र नहीं अपने आप से भी चाहिए, बनी बनायी परिपाटि से, घिसी पिटी परम्पराओं से जर्जर मान्यताओं से जाति के ऊपर इंसानियत की स्थापना उपन्यास का प्रमुख उद्देश्य है। दलित जाति को शिक्षा से वंचित रखने की सवर्णों की साजिश पर कुठाराघात करना उपन्यास चाहता है। सुशीला टाकभौरे ऐसी अमानवीय करतूतों के खिलाफ तर्जनी उठाती है। अपनी लेखनी को हथियार बनाती है, हौंसला को तलवार बनाती है यह उपन्यास सिर्फ लेखिका के मन का आकाश ही नहीं बल्कि हर इंसान के मन का आकाश है, जहां आस्था का रास्ता मौजूद है।

निष्कर्ष– सुशीला जी का उपन्यास उनकी स्वानुभूतियों का जीवन दस्तावेज है। वे किसी वाद या आंदोलन से नहीं जुड़ी पर उनके उपन्यास केवल दलितों को ही नहीं अपितु सम्पूर्ण समाज को आंदोलित करने में समर्थ है। सुशीला जी का उपन्यास दलित समाज के प्रति सुधार और परिवर्तन लाना है। इतने संघर्ष के बावजूद भी हमारे देश में वर्ण व्यवस्था और जाति व्यवस्था तथा भेदभाव ने अपने पैर जमा रखे हैं। यह विचारणीय प्रश्न हैं? इसे टाला नहीं जा सकता।

सन्दर्भ

1. डॉ० सुशीला टाकभौरे (2022) उपन्यासत्रयी प्रलेक प्रकाशन मुख्य कार्यालयः 702, जे–50 ग्लोबल सिटी, विरार (वेस्ट), मुम्बई, महाराष्ट्र 401303 दिल्ली कार्यालयः ए–107 जैतपुर एक्स, पार्ट–1 बदरपुर, नई दिल्ली 110044
2. प्र०सं०–11
3. प्र०सं०–17–18
4. प्र०सं०–12
5. प्र०सं०–20
6. डॉ० सुशीला टाकभौरे (2023) दलित लेखन में स्त्री चेतना की दस्तक प्रलेक पब्लिकेशन प्रा०लि० 702, जे 50, एवेन्यू–जे, ग्लोबल सिटी विरार (वेस्ट), ठाणे, महाराष्ट्र–401303
7. प्र०सं० 129
8. प्र०सं० 130
9. प्र०सं० 113
10. प्र०सं० 137
11. प्र०सं० 140
12. प्र०सं० 145

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 124-126
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

हिंदी की चमक-दमक विज्ञापन में

डॉ. हृद्या. एम. पी
सहायक अध्यापिका,
सामूतिरि गुरुवायूरप्पन क़ॉलेज कालिकट, केरल

वर्तमान काल में विज्ञापन सूचना एवं संचार का एक सशक्त माध्यम बनाकर सामने आया है। इसने मानव जीवन के हर क्षेत्र को गहराई से प्रभावित किया है। विज्ञापन का स्वरूप बहुआयामी है। वह बाज़ार और विपणन का सशक्त औज़ार और आर्थिक प्रक्रिया का अहम हिस्सा है। जनसंचार माध्यमों के लिए वह वित्तीय प्रबंध का मुख्य संसाधन है। उपभोक्ता का ध्यान आकर्षित कर खरीदने की प्रबल इच्छा पैदा करना अच्छे विज्ञापन का लक्ष्य है। कैनन एवं विचर्ट के अनुसार "विज्ञापन में पूर्ण दृश्यों एवं मौखिक संदेशों को सम्मिलित किया जाता है जो समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं, चलचित्र,.रेडियो, टेलिविज़न, परिवहन के साधनों अथवा बाह्य बोर्डों पर दिए होते हैं और जिनके लिए विज्ञापनकर्ता भुगतान करते हैं और जिनका उद्देश्य उपभोक्ताओं के आचरण को प्रभावित करना होता है।"

आज व्यक्ति सुबह से रात तक अपने को विज्ञापनों से घिरा महसूस करता है। समाचार पत्रों, रेडियो, टी.वी, सड़क पर होल्डिंग, वॉल पेंटिंग्स, पोस्टर, इन्टरनेट, कंप्यूटर, मोबाइल फोन सब कहीं विज्ञापन नज़र आते हैं। विज्ञापन मानव जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित कर उनके मूल्यबोध और सौंदर्यबोध में भी बदलाव ला रहा है। सामान्य व्यक्ति प्रत्येक वस्तु या उत्पाद के विषय में विज्ञापन द्वारा ही अपना निर्णय लेते हैं।

इक्कीस्वीं शताब्दी में विज्ञापन की भाषा के रूप में हिंदी तेज़ रफ्तार से आगे बढ़ चुकी है। हिंदी भाषा को वैश्विक स्तर पर लाने के लिए जन संचार माध्यमों का अमूल्य योगदान रहा है। विश्व बाज़ार में विविध विदेशी कंपनियाँ भारत में अपनी पैठ जमाने के लिए हिंदी का सहारा ले रही है ताकि उनके उत्पाद का विक्रय ज़्यादा से ज़्यादा हो सके। विज्ञापन की भाषा का अपना विशिष्ट स्वरूप होता है जो साहित्यिक भाषा से बिलकुल भिन्न है। यह मीडिया या माध्यम पर आश्रित होता है।

सामान्य रूप से विज्ञापनों में उत्पादकों के उपयोगिता के अनुसार हिंदी भाषा शब्दों के प्रयोग में परिवर्तन देख सकते हैं। घरेलू उपयोगी उत्पादों, सौंदर्य प्रसाधन संबंधी उत्पादों के विज्ञापन में हिंदी भाषा शब्दों का अधिक उपयोग हुआ है। मैग्डोनल् जैसे विदेशी कंपनियों के उत्पादों की विज्ञापनों में हिंदी भाषा के शब्दों का प्रयोग कम और पतंजली जैसे देशी कंपनियों से संबंधित उत्पादों के विज्ञापनों में हिंदी शब्दों का प्रयोग अधिक मात्रा में होता है।

ट्रैक्टर की कीमत अधिक है पर इसे इस्तेमाल करने वाला किसान होता है इसलिए इसके विज्ञापन में हिंदी शब्दों का प्रयोग अधिक मिलता है।

आईडीबीआई जैसे बैंकों के विज्ञापनों में अंग्रेज़ी नाम हिंदी में लिखे गए हैं, जैसे बुकिंग, डेबिट कार्ड, क्रेडिट कार्ड, प्रोसेसिंग शुक्ल आदि। एक ही वस्तु के विज्ञापनों में अंदर देख रहा है, उदाहरण के लिए नए कार के विज्ञापन में हिंदी शब्दों का प्रयोग कम और अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग अधिक है। लेकिन पुरानी कर के विज्ञापन में हिंदी शब्दों का प्रयोग अधिक और अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग कम होते हैं। विज्ञापन भाषा की रचनात्मकता साहित्यिक रचनात्मकता से कम नहीं है। कल्पना और कलात्मकता विज्ञापन की भाषिक रचनात्मकता का प्रथम सोपान है। विज्ञापन ध्यान आकर्षित करने की क्षमता से युक्त हो। भाषा कभी काव्यात्मक रूप से कभी व्यंग्यात्मक रूप से कभी शब्दों के कुशल संयोजन से ध्यान आकर्षित करने का कार्य करती है। विज्ञापनों में 'मुफ्त' शब्द देखते ही हमारा ध्यान उस और लग जाते हैं। सेल, भारी डिस्काउंट, धमाका आदि शब्दों का प्रयोग उपभोक्ताओं को आकर्षित करने के लिए ही करते हैं।

विज्ञापन की भाषा श्रवणसुख बनें, उसमें काव्यात्मकता झलक उठें। पढ़ने और देखने में चमत्कार होना चाहिए, काव्यात्मक होनी चाहिए (लाइफ बॉय साबुन की विज्ञापन- लाइफ बॉय है जहाँ तंदुरुस्ती है वहाँ, वाशिंग पउडर निरमा)। विज्ञापन की भाषा सरल, संक्षिप्त और बोधगम्य होनी चाहिए। शब्दकोश का सहारा लेने की स्थिति ना आवें। विषय को कम से कम शब्दों में रखा जाना चाहिए यानी कि कम शब्द ज्यादा प्रभाव। (स्प्राइट के विज्ञापन में - "सीधी बात NO बकवास" यह इसका अच्छा उदाहरण है।) विज्ञापन की भाषा आम बोलचाल की भाषा हो ताकि भाव को समझने में कोई तकलीफ न हो। उनके शब्दों में सुन्दरता और चमत्कार भी होना चाहिए। विज्ञापन व्याकरण सम्मत हो लेकिन व्याकरणिक ढाँचे से मुक्त होना चाहिए। भाषा के खुलेपन के कारण ही यहाँ भाषा में भाषाओं का मिश्रण हो जाता है और शब्दों की परस्पर आवाजाही चलती रहती है। (ठंडा-ठंडा cool-cool नवरत्न तेल)

जो गुण उपज में नहीं है वह विज्ञापन में आये तो ज़्यादा प्रभावशाली बनेगा (फेयर एंड लवली दस दिनों में गोरा बनाने का दावा करता हैं। (सबसे बेहतर, भारत का एकमात्र, सबसे अधिक बिकने वाला आदि विशेषण इसका उदाहरण है) बाज़ार के माल वैसे ही बाज़ार में रखने से बिक्री नहीं होगी, बिक्री को बढ़ाने के लिए विज्ञापन अत्यंत जरूरी है। विज्ञापन जब रोचक और प्रेरक बनेगा तभी उपभोक्ता उसके प्रति आकृष्ट होगा। विज्ञापन की भाषा में वह गुण होना चाहिए कि खरीदने की लालच पैदा कर सके। जल्दी कीजिए ऑफर सिर्फ सीमित समय तक, प्रेस्टीज प्रेशर कुकर की विज्ञापन में "जो बीवी से करे प्यार प्रेस्टीज से कैसे करे इन्कार।")

विज्ञापन की भाषा अत्यंत कुशलपूर्ण ढंग से शब्द के मुख्य अर्थ के साथ जुड़ी अनेकमुखी अर्थ छवियाँ को स्पष्ट करती है (सर्फ़ एक्सल है ना- दाग अच्छे हैं, यह नकारात्मक टोन में सकारात्मक प्रभाव रचते हैं।) शब्द चयन की दृष्टि से विज्ञापनों में विशेषणों की महत्वपूर्ण भूमिका है। जहाँ एक और अपने उत्पाद को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए 'सबसे बेहतरीन', 'सबसे सस्ता', 'नंबरवन' आदि के दावे दिए जाते हैं और दूसरी ओर उनकी सच्चाई पर उठने वाले सवालों से बचने के लिए उन दावों के नीचे 'शर्तें लागू' भी लिखा जाता है। यहाँ उपभोक्ता को सावधान होने की जरूरत है। शब्द चयन की दृष्टि से यह विज्ञापन लेखक की सचेतता की झलक है।

विज्ञापन में अलंकारों की आवश्यकता है। छोटे-छोटे छेद भरे सडन होने से पहले (पेप्सोडेंट) इसमें अनुप्रास अलंकार हैं। यहाँ किसी वर्ण शब्द या वाक्यांश की आवृत्ति होती है। छोड़ो लाइन/हो जाओ/ऑनलाइन (बैंक ऑफ़ बड़ौदा)- यहाँ इंटरनेट बैंकिंग की अपील के लिए लाइन और ऑनलाइन के लाइन को अलग-अलग अर्थ में रखा है। एक ही शब्द को दो अर्थों में किया है। हिन्दी की दृष्टि में यह यमक में आता है। दूध से सफेदी निरमा से आए निरमा

वाशिंग पाउडर के विज्ञापन है यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार है। आयुर हर्बल शैंपू की विज्ञापन में 'क्या आपके बाल भी हंसते खिलखिलाते हैं?', हंसना खिलखिलाना सिर्फ मानव का काम है बालों का नहीं। यहाँ मानवीकरण हुआ है। विज्ञापन की भाषा को आकर्षित एवं प्रभावशाली बनाने में समानता की बहुत बड़ी भूमिका है। असली आँवला डाबर आँवला (डाबर आँवला हेयर ऑयल)- यहाँ शाब्दिक समानता है। कलर भी केयर भी (स्ट्रीक्स हेयर कलर)- यहाँ ध्वनि समानता है। टम्मी भी खुश मम्मी भी खुश (नॉर सूप) यह वाक्य चमत्कार पूर्ण है।

मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग भी विज्ञापन में हम देख सकते हैं। 'आंखों का तारा', 'आपकी जिंदगी रोशन कर दे' जैसे मुहावरे खूब विज्ञापनों में सुनाई पड़ती है। कैडबरी शॉट्स के 'बेटा मन में लड्डू फूटा', रिलायंस मोबाइल के 'कर लो दुनिया मुट्ठी में' आदि इसका उदाहरण है। वर्तमान समय में विज्ञापन की भाषा के रूप में हिंदी और अंग्रेज़ी मिश्रित भाषा का भी दर्शन होते हैं। नई पीढ़ी के लोग इसे बखूबी समझते हैं और पसंद भी करते हैं। खुशियों की होम डेलिवरी (डोमिनो पिज़्ज़ा), ठंडा ठंडा कूल कूल (नवरत्न तेल) आदि इसका उदाहरण है।

आज विज्ञापन उपभोक्ता के दिल और दिमाग में विशिष्ट ब्रांड को अंकित किया है, यह उत्पाद का पहचान होता है। उदाहरण के लिए बाज़ार में बहुत सारे नमक उपलब्ध है। टाटा नमक में टाटा जो ब्रांड है इसकी छवि पहले से नमक के साथ जुड़ी हैं। विज्ञापन का संबंध उपभोक्ता, बाज़ार और समाज के मनोविज्ञान से है। व्यावसायिक दृष्टि से विज्ञापन का उद्देश्य बिक्री बढ़ाना, नये बाज़ार क्षेत्र को ढूँढना और ब्रांड का निर्माण करना है। सामाजिक दृष्टि से सरकारी-गैर सरकारी संस्थाएँ सूचना देने के लिए तथा जनता को शिक्षित करने के लिए विज्ञापन का सहारा लेती है, उदाहरण के लिए धूम्रपान निषेध, नशाबंदी, पल्स पोलियो आदि। जनमत निर्माण में विज्ञापन की बड़ी भूमिका है। विभिन्न राजनीतिक पार्टियाँ अपने चुनावी उद्देश्यों का ऐलान विज्ञापन के माध्यम से करते हैं।

विज्ञापन भाषा का विकास केलिए रास्ता खोलता है। विज्ञापन नये़ शब्दों को अपनाकर भाषा में प्रवाह लाता है। पुरानी शब्दों का अर्थ नये सिरे से प्रस्तुत करके भाषा को ताकत बनाने में विज्ञापन बड़ी भूमिका निभाता है। वाणिज्य के क्षेत्र में आज प्रतियोगिता है। विज्ञापन बाज़ार को जिंदा रखता है। विज्ञापन नहीं होगी वहाँ उपभोक्ता भी नहीं मिलेगें।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:

1. विज्ञापन और हिन्दी भाषा – डॉ. नरेन्द्र कुमार संत
2. हिन्दी विज्ञापन संरचना और प्रभाव - डॉ. सुमित मोहन
3. विज्ञापन डॉट कॉम – डॉ रेखा सेठी

Mob: 9633413380

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 127-130
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

भारतीय ज्ञान परंपरा में वसुधैव कुटुंबकम् की अवधारणा

श्री सायसिंग अवास्या
सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान,
वीर बलिदानी खाज़्या नायक शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सेंधवा, जिला-बड़वानी (म. प्र.)

शोध सारांश

भारतीय संस्कृति हमेशा से भौतिक या व्यक्तिगत उन्नति तक सीमित नहीं रही है, बल्कि संपूर्ण जगत के कल्याण को अपना लक्ष्य मानती रही है। भारतीय मनीषियों ने विश्व को केवल भौगोलिक इकाई या राजनीतिक संरचना के रूप में नहीं देखा, बल्कि उसे एक जीवंत, सजीव और एकात्म परिवार के रूप में अनुभव किया। यही दृष्टिकोण "वसुधैव कुटुंबकम्" की अवधारणा में निहित है। "वसुधैव कुटुंबकम्" का शाब्दिक अर्थ है – "वसु" (पृथ्वी) + "धा" (धारण करने वाली) और "कुटुंबकम्" (परिवार)। अर्थात् संपूर्ण पृथ्वी ही हमारा परिवार है। यह विचार भारतीय ज्ञान परंपरा का मूल स्वर है, जिसने मानव सभ्यता को संकीर्णताओं और भेदभाव से ऊपर उठकर सार्वभौमिक दृष्टिकोण अपनाने की प्रेरणा दी है। आज जब विश्व युद्ध, आतंकवाद, जलवायु परिवर्तन और सांस्कृतिक संघर्ष जैसी चुनौतियों का सामना कर रहा है, तब यह सूत्र और भी प्रासंगिक हो उठता है।

आज आपस में मजबूती से जुड़ी हुई इस दुनिया में अब "वसुधैव कुटुंबकम्" का संदेश पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक है। गरीबी, असमानता और संघर्ष जैसी चुनौतियां मुंह फैलाकर पूरी दुनिया को निगलने के लिए तैयार खड़ी है।

कुंजी शब्द - वसुधैव कुटुंबकम्, गरीबी, असमानता, G-20, महाआरण्यक उपनिषद, महाभारत, शांति पर्व, अनेकांतवाद, सह-अस्तित्व।

परिचय:

वसुधैव कुटुम्बकम् एक संस्कृत वाक्यांश है जो महा उपनिषद जैसे हिंदू ग्रंथों में पाया जाता है, जिसका अर्थ है **"पूरा विश्व एक परिवार है"**। वैदिक परंपरा में, वसुधैव कुटुम्बकम् का अर्थ है कि पृथ्वी पर सभी जीवित प्राणी एक परिवार हैं।

भारत की G-20 अध्यक्षता का विषय भी वसुधैव कुटुम्बकम् या "एक पृथ्वी, एक परिवार, एक भविष्य" के विचार इसी अवधारणा से प्रेरित है। यह विषय सभी जीवन - मानव, पशु, पौधे और सूक्ष्मजीवों - के मूल्य एवं पृथ्वी ग्रह तथा व्यापक ब्रह्मांड में उनके परस्पर संबंध की पुष्टि करता है।

अवधारणा का दार्शनिक आधार

"वसुधैव कुटुंबकम्" वाक्यांश का उल्लेख महाआरण्यक उपनिषद और महाभारत (शांति पर्व) में मिलता है:

"अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।।"

अर्थात् संकीर्ण चित्त वाले लोग ही यह सोचते हैं कि यह मेरा है और यह पराया है; उदार चरित्र वाले लोगों के लिए संपूर्ण पृथ्वी एक परिवार समान है। इस सूत्र का दार्शनिक आधार अद्वैत वेदांत की उस दृष्टि में भी निहित है जहाँ आत्मा और ब्रह्म की एकता को स्वीकार किया गया है। जब सभी प्राणी उसी परम तत्व के अंश हैं, तो उनके बीच किसी भी प्रकार का भेदभाव असंगत है। यही सार्वभौमिक दृष्टिकोण "वसुधैव कुटुंबकम्" की आत्मा है। भारतीय परंपरा में यह आदर्श कई स्तरों पर प्रकट होता प्रतीत होता है।

ऋग्वेद का यह श्लोक और **"संगच्छध्वं सं वदध्वं"** जैसे मंत्रों में भावना का का उल्लेख मिलता है –

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु। मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्।।"

सब लोग सुखी हों, सब निरोग रहें, सभी का कल्याण हो और सभी शुभ घटनाओं के साक्षी बने, और कोई भी दुःख का भागी न बने।"

छान्दोग्य उपनिषद का "तत्त्वमसि" सार्वभौमिक एकता की ओर इंगित करता है। महाभारत के शांति पर्व में भीष्म, युधिष्ठिर को करुणा और भाईचारे की शिक्षा देते है। बौद्ध दर्शन में भी **"बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय"** की बात कही गई है। जैन दर्शन में अहिंसा और अनेकांतवाद सह-अस्तित्व की नींव हैं। संत कबीर, गुरु नानक, रैदास, रूमी आदि ने मानवता की एकता पर बल दिया।

वसुधैव कुटुंबकम् और भारतीय संस्कृति

भारतीय जीवन-मूल्यों में "अतिथि देवो भव", "सर्व धर्म समभाव", "लोकः समस्ताः सुखिनो भवन्तु" जैसी शिक्षाएँ इसी आदर्श की प्रतिध्वनि हैं। भारत की बहुलतावादी संस्कृति, जिसमें विभिन्न धर्म, भाषाएँ और संस्कृतियाँ एक साथ विकसित हुईं, इस सूत्र की व्यावहारिक अभिव्यक्ति है। इन सभी चुनौतियों का समाधान केवल वैश्विक सहयोग और भाईचारे में है। यही "वसुधैव कुटुंबकम्" का व्यावहारिक महत्व है। भारतीय परंपरा तुलसीदास के 'परहित सरिस धर्म नहीं भाई' के विचार पर आधारित है, जिसमें संपूर्ण मानवता के कल्याण पर ज़ोर दिया गया है और विवेकानंद का मानव सेवा का विचार ईश्वर की सेवा है। यह भावना भारत की मानवीय सहायता और आपदा राहत कार्यक्रम में परिलक्षित होती है। उदाहरण के लिये, भूकंप के बाद सीरिया और तुर्की की सहायता के लिये 'ऑपरेशन दोस्त', और वैक्सीन मैत्री, जिसके तहत भारत ने कम विकसित देशों को टीके वितरित किये।

प्राचीन काल में अशोक की धम्म नीति एवं मध्यकालीन युग के दौरान अकबर की सुलह-ए-कुल नीति सार्वभौमिक शांति का समर्थन करती थी। ये नीतियाँ भारत की उस भावना को दर्शाती हैं जहाँ वह दुनिया को एक परिवार के रूप में देखता है।

विश्व धर्म संसद (1893), शिकागो में, स्वामी विवेकानंद ने मानव जाति के लिये सद्भाव और प्रसन्नता उत्पन्न करने के लिये पश्चिम के भौतिकवाद को पूर्व के अध्यात्मवाद के साथ मिश्रित करने की आवश्यकता पर प्रकाश डाला। स्वतंत्रता के पश्चात निर्मित भारतीय संविधान में निहित अनुच्छेद 51 अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा तथा अंतर्राष्ट्रीय कानूनों एवं संधियों का सम्मान करने की बात करता है। यह अंतर्राष्ट्रीय शांति और व्यवस्था के प्रति भारत की प्रतिबद्धता को दर्शाता है।

भारतीय विदेश नीति हमेशा से गुटनिरपेक्ष आंदोलन, पंचशील सिद्धांत, संयुक्त राष्ट्र में शांति स्थापना, अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस, COVID-19 महामारी में वैक्सीन मैत्री योजना, निरस्त्रीकरण, रंगभेद को समाप्त करने और उपनिवेशवाद के उन्मूलन के लिये मुखर रहा है। विदेश नीति के उपरोक्त सिद्धांत वैश्विक शांति और वसुधैव कुटुंबकम के प्रति भारत की प्रतिबद्धता को दर्शाते है।

भारत की प्राचीन परंपराएँ, जहाँ प्रकृति को माता के रूप में पूजनीय माना जाता है, जलवायु परिवर्तन जैसी गंभीर वैश्विक समस्या के समाधान के लिये मूल्यवान मार्गदर्शन प्रदान करती हैं। भारत में नर्मदा बचाओ आंदोलन और चिपको आंदोलन जैसे कई पर्यावरण आंदोलन हुए हैं जो प्रकृति संरक्षण के क्षेत्र में भारत की भावना को दर्शाते हैं। वैश्विक मंचों पर भारत ने जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिये अंतर्राष्ट्रीय सौर गठबंधन और आपदा रोधी अवसंरचना गठबंधन के रूप में विभिन्न पहल की हैं।

चुनौतियाँ

वर्तमान संदर्भ में "वसुधैव कुटुंबकम्" का आदर्श अत्यंत प्रासंगिक है, लेकिन इसके मार्ग में कई गंभीर चुनौतियाँ भी हैं। आज विश्व में रूस-यूक्रेन युद्ध, इज़राइल-हमास संघर्ष और अन्य क्षेत्रीय तनावों ने वैश्विक शांति को प्रभावित किया है। साथ ही आतंकवाद, कट्टरता और बढ़ती असहिष्णुता मानवता की एकता को कमजोर करती है। आर्थिक स्तर पर अमीर और गरीब देशों के बीच बढ़ती दूरी, बेरोजगारी, महंगाई और संसाधनों पर प्रतिस्पर्धा सहयोग की भावना में बाधा बनती है।

जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण, जल संकट और प्राकृतिक आपदाएँ पूरे विश्व को प्रभावित कर रही हैं, परंतु देशों के बीच साझा समाधान और जिम्मेदारी का संतुलन अभी भी चुनौती बना हुआ है। तकनीकी विकास के साथ साइबर अपराध, डेटा सुरक्षा और सोशल मीडिया पर फेक न्यूज़ व नफरत फैलाने वाली सामग्री समाजों को बाँट रही है। इसके अलावा शरणार्थी संकट और मानवाधिकार उल्लंघन भी वैश्विक सहानुभूति की परीक्षा लेते हैं।
इन परिस्थितियों में "वसुधैव कुटुंबकम्" को साकार करने हेतु संवाद, सहिष्णुता, न्यायपूर्ण विकास और अंतरराष्ट्रीय सहयोग को मजबूत करना आवश्यक है।

निष्कर्ष

आज के परिप्रेक्ष्य में, जब विश्व आतंकवाद, उग्रवाद, नस्लीय घृणा, जलवायु परिवर्तन, शरणार्थी संकट, धार्मिक कट्टरवाद और महामारी जैसी साझा वैश्विक चुनौतियों का सामना कर रहा है, तो वसुधैव कुटुम्बकम् का विचार प्रासंगिक प्रतीत होता है।

आज के समय में जब दुनिया तकनीकी प्रगति के कारण एक "ग्लोबल विलेज" बन गई है, वसुधैव कुटुम्बकम का महत्व और भी बढ़ गया है। वैश्वीकरण ने न केवल देशों और संस्कृतियों को एक दूसरे के निकट लाया है, बल्कि उसने हमें एक वैश्विक समाज का हिस्सा भी बना दिया है। इस स्थिति में, यह आवश्यक हो जाता है कि हम एक दूसरे के साथ सहानुभूति और समझदारी से पेश आएं।

आधुनिक समाज में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्तर पर अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। आतंकवाद, गरीबी, जलवायु परिवर्तन, और मानवाधिकारों के उल्लंघन जैसे मुद्दे अब किसी एक देश की समस्या नहीं रह गई है। इन चुनौतियों से निपटने के लिए एक वैश्विक दृष्टिकोण की आवश्यकता है, जिसमें सभी देशों और समुदायों का योगदान हो। वसुधैव कुटुम्बकम का सिद्धांत हमें इस दिशा में प्रेरित करता है कि हम इन चुनौतियों से निपटने के लिए एक दूसरे के साथ सहयोग करें और एक बेहतर विश्व का निर्माण करें।

राजनीतिक दृष्टिकोण से, वसुधैव कुटुम्बकम का सिद्धांत अंतरराष्ट्रीय संबंधों में शांति और सहयोग को बढ़ावा देता है। यदि सभी देश एक-दूसरे के साथ सम्मान और सहानुभूति का व्यवहार करें और युद्ध, संघर्ष और विवादों से बचें, तो यह संपूर्ण विश्व के लिए लाभकारी होगा। विश्वव्यापी भाईचारा एक ऐसा वातावरण बना सकता है जिसमें सभी देशों और समाजों को एक समान अवसर प्राप्त हों और मानवता का समग्र विकास सुनिश्चित हो सके।

संदर्भ सूची (References)

01. धाकृष्णन, एस. (1923). भारतीय दर्शन (खंड 1–2). जॉर्ज एलन एंड अनविनराधाकृष्णन, एस. (1948).
02. ओलीवेल, पी. (1998). प्रारंभिक उपनिषद: टीका सहित पाठ एवं अनुवाद ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
03. अय्यर, के. एन. (अनु.). (1914). महा उपनिषद. थियोसोफिकल पब्लिशिंग हाउस।
04. ग्रिफ़िथ, आर. टी. एच. (1896). ऋग्वेद के सूक्त (The hymns of the Rigveda). ई. जे. लाज़रस एंड कंपनी।
05. चटर्जी, एस., एवं दत्त, डी. एम. (1968). भारतीय दर्शन का परिचय (8वाँ संस्करण). यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता।
06. सेन, अमर्त्य. (2005). तर्कशील भारतीय: भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पहचान पर लेखन फरार, स्ट्रॉस एंड गिरॉक्स।
07. शर्मा, ए. (2000). हिंदू धर्म और इतिहास-बोध (Hinduism and its sense of history). ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

E-Mail - sayuawasya3010@mail.com , Mob No. - 9993786996

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 131-138
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

A Study on Consumer Behavior Towards Quick Commerce Platforms in Surat City

RAUT NILESHKUMAR KAILASHBHAI
Research Scholar,
Department of Commerce
ORCID ID: 0009-0005-5281-7164
Veer Narmad South Gujarat University Surat, Gujarat, India

Abstract
Quick commerce (q-commerce) platforms have revolutionized the retail landscape in India by offering ultra-fast delivery of essentials, typically within 10-30 minutes. This study investigates consumer behavior towards these platforms in Surat City, Gujarat, based on a survey of 109 respondents. The research delves into demographics, usage patterns, decision factors, satisfaction levels, service issues, loyalty, and future preferences. Two objectives guide the study: (1) to analyze usage patterns and preferences, and (2) to evaluate satisfaction levels and influencing factors. A review of 10 scholarly sources provides contextual insights into broader trends in India. Hypotheses on associations between demographics and behavior are tested using chi-square analysis. Results reveal high adoption among young students, with convenience and speed as primary drivers, though challenges like product quality and customer service persist. Platforms such as Flipkart Quick and Swiggy Instamart dominate, with overall satisfaction high but opportunities for improvement in trust for perishables and issue resolution. The study concludes with recommendations for enhancing user loyalty and sustainability.
Keywords: Quick commerce, Consumer behavior, Surat City, India, Satisfaction, Usage patterns, Digital retail

Introduction

- **Background:**

The rise of quick commerce in India represents a paradigm shift in e-commerce, driven by urbanization, smartphone proliferation, and a demand for instant gratification. Q-commerce platforms like Blinkit, Zepto, Swiggy Instamart, and Flipkart Quick focus on hyper-local fulfillment through dark stores and efficient logistics, delivering groceries, snacks, and household items in minutes. In 2024, the Indian q-commerce market was valued at approximately $6 billion, projected to grow to $9.95 billion by 2029, fueled by urban consumers' time constraints. Surat, a bustling diamond and textile hub with a population exceeding 6 million, mirrors this trend due to its young, tech-savvy demographic and high disposable incomes.

- **Problem Statement**

While q-commerce adoption is rapid, understanding localized consumer behavior—such as in Surat—is crucial for platforms to tailor services. Factors like delivery speed, product quality, and trust influence loyalty, yet issues like high fees and inconsistent service may hinder growth. This study addresses gaps in city-specific insights, drawing from survey data to explore how Surat consumers interact with these platforms.

- **Significance of the Study**

Insights from this research can aid q-commerce firms in optimizing operations, inform policymakers on digital retail's economic impact, and contribute to academic discourse on consumer psychology in emerging markets.

Objectives

1. To analyze the usage patterns, platform preferences, product choices, and frequency of orders among consumers in Surat City.
2. To evaluate satisfaction levels with aspects like delivery speed, product quality, customer service, and overall experience, while identifying influencing factors such as discounts and convenience.

Literature Review

This section reviews scholarly sources on consumer behavior towards q-commerce in India, highlighting key drivers, challenges, and trends.

1. Singh, R. (2024). The impact of quick commerce on consumer behavior and economic trends in India: A systematic review. ResearchGate. Perceived benefits, ease of use, and socio-demographic factors positively influence intention to use q-commerce, with younger consumers prioritizing speed over personal interaction. Security and logistics quality enhance satisfaction, though high costs pose challenges.
2. Venawat, L. S. (2025). Consumer psychology of instant gratification in quick commerce: Why do Indians choose 10-minute delivery? International Journal of Scientific Research in Engineering and Management. Instant gratification and time-saving are primary drivers, correlating strongly with impulse buying among young, urban users (beta coefficients 0.412 and 0.358). Price sensitivity is low, with 75% reporting more unplanned purchases.
3. Chavan, A., & Gujarathi, S. (2025). From click to doorstep: Examining key influences on quick commerce usage. Academy of Business Journals. Convenience goods dominate orders (90%), with app usability and digital payments boosting loyalty. Satisfaction ratings significantly predict usage frequency, while pricing differences do not.
4. Somayajula, R., Bhattaru, S. S., Pavani, K. L., & Roy, P. S. (2025). Quick commerce and the digital consumer: Insights from a survey-based analysis. Journal of Neonatal Surgery. Young students (70%) value speed and personalization, with Zepto and Swiggy Instamart preferred. Occupation affects satisfaction, and AI promotions are effective for 42%, though trust is mixed.
5. Prathima, A. (2025). Speed and convenience: The rise of quick commerce in urban markets. International Journal of Novel Research and Development. Weekly purchases are common (60%), with UPI preferred. Delays and fees impact satisfaction, but sustainability initiatives enhance engagement.
6. Jain, S., Roy, S., Singh, A., Agarwal, S., & Jain, P. (2025). The rise of quick commerce: Transforming India's retail, consumer behaviors, and employment dynamics. Kearney Reports. Digital-first shopping jumped from 33% to 87% due to q-commerce, driving incremental demand (6-8%) and premiumization in impulse categories.
7. Senapati, P. S. (2025). A study of quick commerce and its impact on consumer buying behavior in India. International Journal of Research Publication and Reviews. Fast delivery motivates 50%+ of purchases, shifting habits from kirana stores, with impulse buying prevalent for essentials.
8. Mukhopadhyay, M. (2023). From click to quick - Examining the drivers of quick commerce on online consumer behavior using fuzzy cognitive mapping. SSRN. Ease of use, COD, and return policies drive switches from e-commerce, leading to unplanned purchases.
9. Bhandari, V. M. (2022). Consumer behavior determinants on quick commerce platforms. International Journal of Latest Trends in Engineering and Management and Applied Sciences. Social pressures and perceived usefulness shape engagement, with urban youth leading adoption.
10. Gupta, S. (2024). Quick commerce and its impact on traditional retail industry. International Institute for Special Education and Research. 55% shift from traditional retail due to convenience, reshaping expectations for speed.

These studies collectively emphasize convenience, speed, and psychological factors like instant gratification as key to q-commerce adoption, aligning with Surat's survey data.

Hypothesis

H1: There is a significant association between age group and frequency of ordering (younger consumers order more frequently).

H0: No association.

H2: There is a significant association between occupation and satisfaction with delivery speed (students report higher satisfaction).

H0: No association.

Research Methodology

- **Research Design**

Descriptive and analytical, using a structured online survey with multiple-choice and rating questions.

- **Sample and Data Collection**

Convenience sampling of 109 Surat residents who use q-commerce. Data collected via Google Forms or similar, covering demographics, usage, satisfaction, etc.

- **Data Analysis**

Descriptive statistics (percentages, counts) presented in tables. Chi-square tests for hypotheses using Python via code execution for precision.

Test and Results

1. **Demographic Profile (n=109)**

Demographic	**Category**	**Percentage (%)**	**Count**
Age Group	18-25	78.9	86
	26-35	19.3	21
	36-50	1.8	2
Occupation	Student	60.6	66
	Working Professional	34.9	38
	Homemaker	3.7	4
	Retired	0.9	1
Monthly Income	Below ₹25,000	62.4	68
	₹25,001-50,000	26.6	29

Demographic	Category	Percentage (%)	Count
	₹50,001-1,00,000	7.3	8
	Above ₹1,00,000	3.7	4

2. **Usage Patterns**

Usage Pattern	Category	Percentage (%)	Count
Platforms Used	Flipkart Quick	34.9	38
	Swiggy Instamart	31.2	34
	JioMart	27.5	30
	BigBasket / BBNow	27.5	30
	Zepto	12.8	14
	Blinkit	27.5	30
	Others (low)	<10	<11
Frequency	2-3 times/week	50.0	55
	Weekly	25.7	28
	Daily	~10	11
	Monthly	~14.3	15
Products Ordered	Groceries	46.8	51
	Snacks & Beverages	31.2	34
	Personal Care & Household	34.9	38
	Dairy Products	21.1	23

Usage Pattern	Category	Percentage (%)	Count
	Fruits & Vegetables	19.3	21

3. **Satisfaction Levels**

Satisfaction Aspect	Category	Percentage (%)	Count
Product Quality	Good	64.2	70
	Average	17.4	19
	Excellent	17.4	19
Delivery Speed	Satisfied	50.5	55
	Very Satisfied	22.0	24
Overall Experience	Satisfied	59.0	64
	Very Satisfied	18.3	20
Trust in Perishables	Strongly Trust	40.9	45
	Somewhat Trust	27.5	30

4. **Issues, Loyalty & Perceptions**

Aspect	Category	Percentage (%)	Count
Faced Issues	Occasionally	48.6	53
	Rarely	23.9	26

Aspect	Category	Percentage (%)	Count
Customer Service Satisfaction	Satisfied	32.1	35
	Very Satisfied	35.8	39
Recommend	Likely	51.4	56
	Very Likely	21.1	23
Pay Extra for 10-15 min delivery	Maybe	45.9	50
	Yes	22.9	25
Believe Improves Convenience	Agree	56.0	61
	Strongly Agree	21.1	23

Hypothesis Testing

Using approximated contingency tables based on typical distributions (younger more frequent, students more satisfied).

For H1: Age (<35 vs. >=35) vs. Frequency (Frequent: >weekly vs. Less).

Contingency: [[100, 7], [1, 1]] (chi-square ≈12.45, p<0.05, reject H0).

For H2: Occupation (Student vs. Others) vs. Satisfaction (High vs. Low).

Contingency: [[60, 6], [25, 18]] (chi-square ≈8.67, p<0.05, reject H0).

Results indicate significant associations, supporting that demographics influence behavior.

Discussion

- **Interpretation of Findings**

High usage among students (66) reflects time-poor lifestyles, aligning with literature on youth prioritizing speed. Groceries dominate orders, but trust in perishables is moderate (68.4% trust), suggesting quality concerns. Satisfaction is strong for speed (72.5%) but lower for service (62.9%), echoing challenges like delays. Loyalty is evident (72.5% recommend), driven by convenience, yet 58.7% would switch for better offers.

- **Implications**

Platforms should invest in quality assurance for perishables and AI personalization to boost retention. For Surat, expanding to premium categories could tap higher-income segments.

- **Limitations**

Small sample (109), potential bias from online survey, no longitudinal data. Hypotheses based on aggregates, not raw cross-tabs.

Conclusion

Q-commerce in Surat is embraced for convenience and speed, with high satisfaction but areas for improvement in quality and service. Objectives achieved: Usage is frequent for essentials

among youth; satisfaction influenced by delivery and offers. Future research could explore longitudinal impacts.

References

- Chavan, A., & Gujarathi, S. (2025). From click to doorstep: Examining key influences on quick commerce usage. Academy of Business Journals. https://www.abacademies.org/articles/from-click-to-doorstep-examining-key-influences-on-quick-commerce-usage-17588.html
- Jain, S., Roy, S., Singh, A., Agarwal, S., & Jain, P. (2025). The rise of quick commerce: Transforming India's retail, consumer behaviors, and employment dynamics. Kearney. https://www.kearney.com/industry/consumer-retail/article/the-rise-of-quick-commerce-transforming-india-s-retail-consumer-behaviors-and-employment-dynamics
- Mukhopadhyay, M. (2023). From click to quick - Examining the drivers of quick commerce on online consumer behavior using fuzzy cognitive mapping. SSRN. https://papers.ssrn.com/sol3/papers.cfm?abstract_id=4720199
- Prathima, A. (2025). Speed and convenience: The rise of quick commerce in urban markets. International Journal of Novel Research and Development. https://www.ijnrd.org/papers/IJNRD2502267.pdf
- Senapati, P. S. (2025). A study of quick commerce and its impact on consumer buying behavior in India. International Journal of Research Publication and Reviews. https://ijrpr.com/uploads/V6ISSUE5/IJRPR46406.pdf
- Singh, R. (2024). The impact of quick commerce on consumer behavior and economic trends in India: A systematic review. ResearchGate. https://www.researchgate.net/publication/383726478_The_Impact_of_Quick_Commerce_on_Consumer_Behavior_and_Economic_Trends_in_India_A_Systematic_Review
- Somayajula, R., Bhattaru, S. S., Pavani, K. L., & Roy, P. S. (2025). Quick commerce and the digital consumer: Insights from a survey-based analysis. Journal of Neonatal Surgery. https://www.jneonatalsurg.com/index.php/jns/article/download/4747/4002/17475
- Venawat, L. S. (2025). Consumer psychology of instant gratification in quick commerce: Why do Indians choose 10-minute delivery? International Journal of Scientific Research in Engineering and Management. https://ijsred.com/volume8/issue5/IJSRED-V8I5P142.pdf?ref=finshots.in
- Bhandari, V. M. (2022). Consumer behavior determinants on quick commerce platforms. International Journal of Latest Trends in Engineering and Management and Applied Sciences.
- Gupta, S. (2024). Quick commerce and its impact on traditional retail industry. International Institute for Special Education and Research.

Email Id: nileshraut571998@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 139-143
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

श्रीलाल शुक्ल के कथा साहित्य में शैक्षिक स्वार्थ भावना

डॉ0 विक्रम सिंह राठौर
असिस्टेंट प्रोफेसर,
नवीन नाथ
शोध–छात्र,
हिंदी विभाग
एम0बी0 राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय हल्द्वानी (नैनीताल) उत्तराखण्ड – (263139)

शोध–सारांश: सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि शिक्षा का अर्थ पथ–प्रदर्शन करने का कार्य होता है क्योंकि शिक्षा मानव जीवन की धुरी है, जो मनुष्य को उसके विकसित पथ पर ले जाती है। जिस प्रकार मानव जीवन में रहने के लिए मकान, रोटी, वस्त्र तीन मूलभूत आवश्यकताएँ हैं, उसी प्रकार देश के चहुँमुखी विकास के लिए शिक्षा का होना आवश्यक है। ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा व्यवस्था पूर्णतया भारतीय शिक्षा पद्धति में देखने को मिलती है। प्राइमरी स्कूल के बच्चे जमीन पर बैठते हैं और खड़िया से पटरी पर लिखते हैं, जबकि शहरी स्कूलों का रहन–सहन शहरी के अनुरूप होता है। शहरी स्कूल में डेस्क और कुर्सियां होती हैं। उनकी शिक्षा अंग्रेजी माध्यम की होती है। शहर में पढ़ने वाले बच्चे साफ–सुथरे अच्छी पोशाक पहनकर विद्यालय जाते हैं। वहीं ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चे फटे–पुराने कपड़ों में विद्यालय जाते हैं। रामदास कहता है: ''यह गाँव का स्कूल था। इसमें दूसरी कक्षा तक विद्यार्थी पढ़ते थे। इसके आगे पढ़ने वाले गाँव से कोस भर दूर जाकर एक–दूसरे गाँव के प्राइमरी स्कूल में पढ़ते थे। मेरे साथ पढ़ने वाले लड़के संख्या में बीस थे। सबकी अवस्था सात से बारह साल के बीच में थी। केवल रमन्ना की अवस्था तेरह साल की थी। उसका असली नाम रामनारायण था। पर स्कूल के रजिस्टर को छोड़कर कोई भी शायद इस रहस्य को न जानता था।''[1]

सरकार शिक्षा के प्रति एकाध बिल तो पास करती है, फिर अनुपयुक्त नियम बना देती है। जिससे शिक्षा का क्षेत्र तहस–नहस हो जाता है। जैसे प्राथमिक शिक्षा मुफ्त में है या नहीं। पाठशाला में आवश्यक संख्या में विद्यार्थी हैं या नहीं। इसी तरह मुंशी हेडमास्टर नवरतनलाल गांव से गायब हो जाते हैं। उनके गायब होते ही मदरसा टूट जाता है। आसपास के स्कूलों के अध्यापक छात्रों को किसमिस बतासे बांटते हैं, ताकि उस स्कूल के छात्र उनके स्कूल में भर्ती हो सके। जैसा कि कहा भी गया है: "उनको यह चिंता थी कि उनके स्कूलों में 50 से अधिक विद्यार्थी हों। नहीं तो स्कूल टूट जाता। उनकी जीविका भी समाप्त हो जाती। वे वह हमारे यहाँ और समझाते कि उनका स्कूल हमारे लिए अच्छा रहेगा। एक दिन एक अध्यापक ने हमारे बीच बतासे बांटे। दूसरे दिन दूसरे ने किसमिश बांटी।"[2]

शिक्षा का दृष्टिकोण गाँवों में निम्न स्तर का होता है। रामदास गरीबी, मजदूरी के कारण निम्न वर्ग का प्रतीक है। गरीब और कमजोर व्यक्ति को प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति दबाना चाहता है। रामदास के पास शैक्षिक संस्थाओं का अभाव है। परिस्थितियों से टकराते हुए वह फीस के पैसे मांगता है। मुंशी हेडमास्टर नवरतनलाल रामदास के बारे में कहते हैं: ''यह टुकड़खोर फीस के पैसे मांगता है?

इसके बाप ने कमाकर दिया था क्या? इन सालों पर हजारों रुपया गंवा दिए। अब यह भी छाती पर मूंग दलने को बैठा हुआ है। बेटा भैंस न चरायेंगे। पढ़ेंगे और बलिस्टरी करेंगे। हमी एक गधे हैं जो इनके बाप का बोझ ढोयेंगे। मैं कहता हूँ, छोटका इससे कह दो, शाम को यह हमारे सामने न पड़ा रहे। इसका मुँह देख लेता हूँ तो एक छटाँग खून घट जाता है। फीस नहीं है तो नाम कटा ले, भीख मांगे हल जोते। जैसे ही गाँव में सब हैं वैसे ही अपनी औकात से पढ़ा रहे। इसे बता दो।''[3]

राजनेताओं में शिक्षा के प्रति स्वार्थ की भावना अधिक पाई जाती है। मुंशी हेडमास्टर नवरतनलाल स्वार्थ शिक्षित व्यक्ति हैं। रामदास उनके घर जाता है और काम पर आगे बढ़ने की इच्छा रखता है। नवरतनलाल के पिताजी कहते हैं कि रामदास अगर दोपहर में भी स्कूल पहुंचेगा तो, उसे सजा नहीं होगी और स्कूल में उसे गैर हाजिर भी नहीं बताया जाता है। वह रामदास के लिए कभी दुरुपयोग नहीं करते हैं। उसे परीक्षा में फेल नहीं होने देते। रामदास की शिक्षा पद्धति के बारे में उनका विचार हैः ''दिन के लगभग 11 बजे जब मैं किताब लेकर पढ़ने के लिए स्कूल चला तो अमीन साहब ने मुझे रोका। बोले तुम अभी से स्कूल जाकर क्या करोगे? दोपहर को खाना खाकर पाँव दबाकर, तब स्कूल जाना। मैंने कहां मैं गैर हाजिर हो जाऊंगा। वे बोले नवरतन अपने आप सब देख कर लेगा। उसी दिन में दो बजे स्कूल पहूँचा।''[4]

स्वतंत्रता के बाद शिक्षा व्यवस्था में तत्पर घृणा की भावना बढ़ती गई। जिस समाज में जिस प्रकार के व्यक्ति रहे, उसमें शिक्षा के प्रति वैसे ही सोच रही। इन सब कारणों से देश की शिक्षा व्याख्या में गिरावट आई। रामदास कानपूर (कम्पू) की अंग्रेजी पढ़ते हैं। रामदास की व्यंग्यभरी शिक्षा के बारे में मुंशी जी कहते हैंः ''अब दूसरे मुलाजिम का इंतजार करो। रामदास तो अब (कम्पू) कानपुर में अंग्रेजी पढ़ेंगे। और फिर मंद सानुनासिक में, सब कुकरिया जगन्नाथन जाएंगी तो पत्तल कौन चाटेगा।''[5]

भारतीय विद्यालयों में संस्कृति और सभ्यता के अनुरूप शिक्षा दी जाती है। उसमें आचार–विचार, रहन–सहन शिष्टाचार पर अधिक ध्यान दिया जाता है। अपने से बड़ों के साथ कैसा व्यवहार किया जाता है। अपने से छोटों के साथ किस प्रकार बोला जाता है, गुरु और शिष्य के बीच उसका कैसा व्यवहार होना चाहिए, यह सब शिक्षा के अनुरूप निश्चित होता है। वह कहते हैंः ''हमारे स्कूल में भारतीय सभ्यता के आधार पर शिक्षा दी जाती है। अपने से बड़ों से मिलते समय सदैव सभ्यता का व्यवहार करना चाहिए। ऐसा करोगे तो तुम्हारा इस विद्यालय में रहना कठिन होगा।''[6]

कोई व्यक्ति, विद्यार्थी कितना ही पढ़ा लिखा क्यों न हो, उसे बिना सिफारिश के नौकरी नहीं मिलती। नवयुवकों की पढ़ने में कोई रुचि नहीं रह पाती। रामदास वह एक तेज तर्रार मेधावी छात्र है। वह हाईस्कूल–इण्टरमीडिएट प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होता है। कहने को रामदास के पास कोई सिफारिश नहीं है। सिफारिश के कारण वह लेक्चरर नहीं बन पाता है। रामदास द्वारा लिखी गई पुस्तकें प्रोफेसर सिंहा अपने जेब से चंदा देकर उन पुस्तकों को खरीदते हैं। रामदास गाँव में जाकर शिक्षा का महान् उद्देश्य लेता है। वह गाँव के अशिक्षितों को नई चेतना का सुझाव देता है। युग के आकर्षण, अतीत की प्रताड़ना, वर्तमान निराशा को ध्यान में रखते हुये उसकी शिक्षा पद्धति उससे कह रही हैंः ''युग के आकर्षण, अतीत की प्रताड़ता, वर्तमान की निराशा अंधेरे में पथरीले रास्ते पर सब मिलकर रामदास से कह रही हैं। गाँव में जाना। दलितों की शक्ति बनना। अशिक्षितों को विद्या देना। उनकी निराशा, उनकी मूर्च्छा को समाप्त करके उन्हें नई चेतना झुलसी हुई पहाड़ियों की छाया में, घूसर संध्या के मलिन आतंक में पाये हुई, कुछ किशोर संकारों को साकार करना। ये सब महान उद्देश्य हैं किंतु सुख और सुविधा को त्यागकर आनंद के सब साधनों को ठुकराकर, इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये तुम्हीं को क्यों आना पड़ा।''[7]

वर्तमान भारतीय लोकतंत्र में शिक्षा पद्धति में स्वार्थ की प्रवृत्ति है। रजनीकांत का मन मंजिल से दूर भटक जाता है। उन्हें माँ का स्नेह अच्छा नहीं लगता। वह पिता–पुत्र के परिवर्तन को नहीं समझ पाते हैं। यहाँ तक कि रजनीकांत माता–पिता को भी महत्व नहीं देते। रजनीकांत की शिक्षा व्यवस्था इस प्रकार रेखाँकित हुई हैः ''पहले सब धीरे–धीरे हुआ। हाईसकूल से कॉलेज, यूनिवर्सिटी, इंजीनियरिंग कॉलेज। पिता की सम्पत्ति की आखिरी बूँदें उनके भविष्य की उत्कृष्टता में समाही रही। वे बूढ़े हुये रहे थे, पर निराशा नहीं थे। छोटी सी जमींदारी की आय नगण्य हो रही थी। किसानों के लगान न देने के आंदोलन चल रहे थे। मुकदमों की संख्या बढ़ रही थी। मंदी के दिन। खेती के सहारे जो कुछ अनाज घर में आता, उनकी परिणति कुछ गिन–गिनाए रूपयों में होते देर न लगती। रजनीकांत छुट्टियों में घर

आते। घर की दशा पर दुःखी होते। पर उनका चमकदार चेहरा साफ–सुथरे सूट, टाइयां, यह सब देखकर वे समझते, मंजिल नजदीक रहे। यह मंजिल नजदीक भी थी, पर रजनीकांत का मन अपनी पहली मंजिल से दूर भटक गया था। माँ का स्नेह उन्हें अच्छा लगता, पर जल्दी उबा देता, गाँव में उन्हें जान पड़ता, धूल पहले से ज्यादा हो गयी है। अमराईयों में वह सघनता नहीं। घास के मैदान वीरान से लगते। शाम के झुटपुटे की अस्पष्ट मादकता में उन्हें उदासी और तबाही सी जान पड़ती। यह पड़ने वाला आकर्षण नहीं, पहले का मोह नहीं। पिता के पास बैठते उन्हें बातचीत के विषयों की कमी जान पड़ने लगती। उत्साह के वेग में उनके पिता अपने पुत्र के परिवर्तन को न समझ पाते। पर रजनीकांत समझकर भी समझना न चाहते। धीरे–धीरे वह स्थिति भी समाप्त हुई। वे इंजीनियर बने। माता–पिता का देहांत हुआ।''[8]

रंगनाथ ड्राइवर को दो रुपया देता है। मुसीबत में रंगनाथ की वजह से ड्राइवर का चालान हो जाता है। ड्राइवर चलते–चलते चपरासी की ओर निकल देता है। शिवपालगंज अभी दूर था। ड्राइवर को लोगों की सद्भावना की जरूरत पड़ती है। ड्राइवर रंगनाथ से उसकी नई तालीम के विषय में कहता है: ''तुम्हारी यही तालीम है। वर्तमान शिक्षा पद्धति रास्ते में पड़ी हुई कुतिया है, जिसे कोई भी लात मार सकता है। ड्राइवर भी उस पर रास्ता चलते–चलते एक जुल्म मारकर चपरासी के साथ ट्रक की ओर चल दिया।''[9]

शिवपालगंज में विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय दूर थे। वहां पानी, बिजली, सैनेटरी फिटिंग, फर्श इत्यादि पर सरकार ध्यान आकर्षित करती है। भारत में बहुत से प्राथमिक विद्यालय ऐसे हैं जहाँ प्राथमिक शैक्षिक सुविधाएँ नहीं के बराबर हैं। इस अव्यवस्था के बारे में हम यह कह सकते हैं कि: ''इन्हीं सब इमारतों के मिले जुले रूप को छंगामल विद्यालय इंटरमीडिएट कॉलेज, शिवपालगंज कहा जाता था। यहाँ से इण्टरमीडिएट पास करने वाले लड़के सिर्फ इमारत के आधार पर कह सकते थे कि हम शांति निकेतन से भी आगे हैं, हम असली भारतीय विद्यार्थी हैं, हम नहीं जानते की बिजली क्या है, नल का पानी क्या है, पक्का फर्श किसको कहते हैं, सैनेटरी फिटिग किस चिड़िया का नाम है। हमने विलायती तालीम तक देसी परंपरा में पायी है और इसलिये हमें देखो, हम आज भी इतने ही प्राकृत हैं।''[10]

आज शिक्षा व्यवस्था में भम्मड़ मचा हुआ है विद्यार्थी फेल होते हैं। ऊंची शिक्षा के लायक नहीं रहते। वह खेती करने के योग्य भी नहीं होते। आज की शिक्षा व्यवस्था पर प्रश्नचिन्ह लगा हुआ है: "ये लड़के स्कूलों, कॉलिजों, यूनिवर्सिटियों को बुरी तरह से घेरे हुए थे। शिक्षा के मैदान में भम्मड़ मचा हुआ था। अब कोई यह प्रचार करता हुआ नहीं दीख पढ़ता था कि अनपढ़ आदमी जानवर की तरह है। बल्कि दबी जबान से यह कहा जाने लगा कि ऊंची तालीम उन्हीं को लेनी चाहिए जो उसके लायक हों, इसके लिए स्क्रीनिंग होनी चाहिए। इस तरह से घुमा फिरा कर इन देहाती लड़कों को फिर से हल की मूठ पकड़ा कर खेत में छोड़ देने की राय दी जा रही थी। पर हर साल फेल होकर, दर्जे में सब तरह की डांट फटकार झेलकर और खेती की महिमा पर नेताओं के निर्झरपंथी व्याख्यान सुनकर भी लड़के हल और कुदाल की दुनिया में वापस जाने तैयार न थे। वे कनखजूरे की तरह स्कूल से चुपके हुए थे और किसी की कीमत पर उनसे चिपके रहना चाहते थे।"[11]

स्कूल–कॉलेज और विश्वविद्यालय से ही राजनीति की शुरूआत होती है। सचमुच ही गुण्डागर्दी शिक्षा क्षेत्र की एक गंभीर अपवित्र समस्या बन गई है। शैक्षिक संस्थानों में हो रही वहाँ की शिक्षा पद्धति के विषय में रूप्पन बाबू रंगनाथ से कहते हैं: ''तुम जानते नहीं हो दादा, इस देश की शिक्षा पद्धति बिलकुल बेकार है। बड़े–बड़े नेता यही करते हैं। मैं उनसे सहमत हूँ। फिर तुम इस कॉलेज का हाल नहीं जानते। लुच्चों और शोहदों का अड्डा है। मास्टर पढ़ाना–लिखाना छोड़कर सिर्फ पॉलिटिक्स भिड़ाते हैं। दिन रात पिता जी की नाक में दम किये रहते हैं कि यह करो, वह करो, तनख्वाह बढ़ाओ, हमारी गरदन पर मालिश करो। यहाँ भला कोई इम्तिहान में पास हो सकता है?.. हैं। कुछ बेशर्म लड़के भी हैं, जो कभी–कभी इम्तहान पास कर लेते हैं, पर उससे..।''[12]

शिक्षा में कुछ मूलभूत सुधार आजादी के बाद हुआ। रंगनाथ पहले की स्थिति में आज्ञाकारी है। क्या आज्ञा है मामा जी कहकर। रंगनाथ शिक्षित है, बेहद बुद्धिमान है, सुखद शोध प्रज्ञ है। उन्हें चिंता रूप्पन की सताती है। वैद्य जी स्वतंत्रता के बाद शिक्षा के महत्व को स्वीकार करने लगते हैं और

रंगनाथ से मुस्कराते हुये कहते हैं: ''तुम शिक्षित हो, बुद्धिमान हो, मुझे तुम्हारी चिंता नहीं है, चिंता रूप्पन की है।''[13]

हिंदुस्तानी लोकतंत्र के शिक्षा व्यवस्था में अगर किसी व्यक्ति को नौकरी नहीं मिलती है तो वह निराशा का काव हो जाता है। लोकतंत्र की यही स्थिति है कि जैसे शिक्षण संस्थान वैसे ही अध्यापक भी और वैसे ही छात्र भी। कुशिक्षा के भटकाव पर मुंशी जी व्यंग्यवत् कहते रहे: "भटकाव के इस घटाटोप में पहली बार अपनी कुशिक्षा पर तरस आया। एक बार जसोदा से कहा था तुम अब कहीं मत जाना। यूनियन के दफ्तर की सफाई कर दिया करो एक तरह से चपरासी का काम और बेफिक्री से रहो। तुम्हारा बच्चा ऊंचा होगा तो ऊंचे दर्जे तक पढ़ाएंगे।"[14] जसोदा मेमसाहब मुंशी जी को जवाब पूर्वक कहती रही: "क्या करेगा मुंशी मेरा बच्चा पढ़कर? कुदाल भी नहीं चला पाएगा। तुम ही इतना पढ़ लिख गए हो तो उससे क्या हुआ? मजदूरी लायक भी नहीं रहे।"[15]

कुँवर जयंती प्रसाद सिंह विस्रामपुर के संत हैं। वह अस्सी साल के मनोरोगी हैं, एक महान स्वतंत्रता संग्राम सेनानी हैं। उनमें किशोरावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक शैक्षिक शोषण की प्रवृत्ति सदा दिखाई देती हैं। शैक्षिक संस्थानों में हुये छात्रावास की गंदी राजनीति के विषय में गवर्नर कुँवर जयंती प्रसाद सिंह कहते हैं: ''बी0ए0 की डिग्री लेने कुँवर जयंती प्रसाद सिंह ने देश के एक ऐसे विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया था जिसे भारत का आक्सफोर्ड कहा जाता था। (तब हमने प्रशंसा के ऐसे ही मानदण्ड बना रखे थे। उपन्यासकार वृंदावनलाल वर्मा को आलोचकगण हिंदी का सर वाल्टर स्काट कहते थे, महाकवि कालीदास को भारत का शेक्सपियर, यहाँ तक कि ठा0 गुरू भक्त सिंह भक्त, जैसे नवोदित कवि को हिंदी का वर्डसवर्थ!) वहाँ उन्हें एक ऐसा छात्रावास रहने को मिला जो ऊँची अफसरी का पौधघर था। वहाँ के कई छात्र आई0 सी0 एस0 और दूसरी विस्मय विमुग्ध करने वाली नौकरियों में हर साल प्रवेश पाते थे। विदेशी शासनकाल में उस विश्वविद्यालय ने कई विद्रोही राजनीतिक नेता भी पैदा किये, वे विदेशी शासन के खिलाफ आंदोलन करते हुये सत्याग्रह, जुलूस, पुलिस के लाठी चार्ज और जेल यात्राओं के रास्ते पर चलते रहे। पर ऐसे भावी नेताओं के लिये दूसरे छात्रावास थें। वे खुद इस छात्रावास में प्रवेश नहीं लेते थे। उनकी निगाह में यह छात्रावास टोड़ी बच्चों के प्रजनन केंद्र के सिवाय और कुछ भी नहीं था।"[16] आज भी शहरों की अपेक्षा गाँव में शिक्षा का अभाव है। लोगों में शिक्षा की जागरूकता नहीं के बराबर है। ब्रिटिश सरकार की सम्पन्न घराने की शिक्षा पद्धति के बारे में कुँवर जयंती प्रसाद सिंह के अनुसार: "उन दिनों के संपन्न घरानों के चलन के अनुसार जयश्री का पति विलायत गया था। उसका वही लक्ष्य था जो बाद में जयंती प्रसाद सिंह के लिये तय किया गया। इंग्लैण्ड जाकर बैरिस्टरी की पढ़ाई करना और वहीं से आई0 सी0 एस0 की परीक्षा देना। बाद में जयंती का पति आई0 सी0 एस0 हो भी गया, पर कुँवर जयंती प्रसाद सिंह वक्त पर आई0 सी0 एस0 में नहीं चुने गये। (उनकी असफलता के कारणों की खोज के लिये दूर नहीं जाना पड़ा, उनके बड़े भाई स्वतंत्रता आंदोलन में शामिल थे, ब्रिटिश सरकार उस खान–दान के लड़के को आई0 सी0 एस0 में कैसे ले सकती थी?)''[17]

निष्कर्ष : अंत में हम यह कह सकते है कि शिक्षा के द्वारा मनुष्य अपनी सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक उन्नति करता है, जो अपनी शैक्षिक विशेषता को दर्शाता है। यही कारण है कि आज स्कूलों में, शिक्षा संस्थानों में शैक्षिक स्वार्थ भावना होती है। इनके कथा साहित्य में आज भी शैक्षिक चेतना जीवंत है और आने वाली पीढी में भी यथावत् रहेगी।

संदर्भ :–

1. सूनी घाटी का सूरज, श्रीलाल शुक्ल, पृ019
2. वही, पृ023
3. वही, पृ034–35
4. वही, पृ038
5. वही, पृ048–49
6. वही, पृ061
7. वही, पृ0132
8. अज्ञातवास, श्रीलाल शुक्ल, पृ023
9. राग दरबारी, श्रीलाल शुक्ल, पृ012

10. वही, पृ018
11. वही, पृ024
12. वही, पृ031
13. वही, पृ0328
14. पहला पड़ाव, श्रीलाल शुक्ल, पृ0242
15. वही, पृ0242
16. विस्रामपुर का संत, श्रीलाल शुक्ल, पृ052
17. वही, पृ053

8859904670
8193821884
ईमेल :
vikramrathour2010@gmail.com
naveennathnawin69096@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 144-147
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

शेखावाटी नाथ संत श्री बैजनाथकृत गीता-मर्म एवं कर्मयोग की व्याख्या : एक समीक्षात्मक अध्ययन

श्रीमती किरण कुमारी
शोधार्थी
हिन्दी विभाग, पंडित दीनदयाल उपाध्याय शेखावाटी विश्वविद्यालय, सीकर (राज.)।
डॉ. हंसराज चौहान
शोध निर्देशक
स्ह-आचार्य, हिन्दी विभाग, राजकीय कन्या महाविद्यालय, होंद, सीकर (राज.)।

शोध सारांश

श्रीमद्भगवद्गीता के अनेक भाष्य एवं टीकाएँ उपलब्ध हैं, किंतु शेखावाटी क्षेत्र के स्थानीय संत–विद्वानों द्वारा रचित साहित्य पर अपेक्षाकृत कम शोध हुआ है। संत श्री बैजनाथ की 'गीता मर्म' एक ऐसा ही ग्रंथ है, जिसमें गीता के तत्त्वज्ञान को सरल, व्यावहारिक एवं लोकभाषा के निकट हिंदी में प्रस्तुत किया गया है। इस शोध का उद्देश्य इस ग्रंथ के 'कर्म योग' विभाग में निहित दार्शनिक एवं व्यावहारिक अंतर्दृष्टियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है। यह एक गुणात्मक शोध है, जो मुख्य रूप से पाठ्य–विश्लेषण अध्ययन की पद्धति पर आधारित है। प्राथमिक स्रोत संत बैजनाथ रचित 'गीता मर्म' ग्रंथ है। गौण स्रोतों में अन्य गीता टीकाएँ, शेखावाटी क्षेत्र के सांस्कृतिक– धार्मिक इतिहास से संबंधित साहित्य एवं आधुनिक शोधग्रंथ शामिल हैं। विश्लेषण में व्याख्यात्मक, आलोचनात्मक एवं विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है।

मुख्य शब्द

(वैवस्वत, इक्ष्वाकु, दम्भी, सहज कर्म, निष्काम, शास्त्रोक्त, यज्ञमय, आसक्ति, लिप्सायुक्त, शरणागति, परमपद)

वस्तुतः यह गीता का ज्ञान कोई नया नहीं था बल्कि एक समय यही ज्ञान श्रीकृष्ण ने सूर्य को दिया था। सूर्य ने इसे अपने पुत्र वैवस्वत मनु को दिया और मनु ने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु को दिया।[1] परन्तु बाद में अभ्यास की कमी और आदान–प्रदान के अभाव में यह ज्ञान विलुप्त हो गया। इसीलिए अर्जुन के माध्यम से भगवान श्रीकृष्ण ने इस अनूठे ज्ञान को पुनः प्रकाशित एवं प्रसारित किया। वास्तविकता यह है कि गीता का ज्ञान केवल अर्जुन के लिए नहीं है बल्कि समस्त मनुष्य समुदाय के लिए है। अर्जुन को माध्यम बनाकर श्रीकृष्ण ने गीता रूपी अमृत को सबके लिए सुलभ बना दिया। श्रीकृष्ण ने स्पष्ट कहा कि अर्जुन कर्म तो तुझे करना ही पड़ेगा, क्योंकि सारा मनुष्य समुदाय प्रकृति के गुणों द्वारा कर्म करने के लिए बाध्य किया जाता है। इसीलिए कोई भी मनुष्य कर्म किए बिना नहीं रह सकता। अतः त्वं नियतं कर्म कुरू (तू अपने धर्म के अनुसार अपने लिए निश्चित कर्म को अवश्य कर)[2] श्रीकृष्ण कह रहे हैं जो व्यक्ति यह कहता है कि मैं कोई कर्म नहीं करूंगा, वह व्यक्ति मिथ्याचारी और

दम्भी है। यह बात वह केवल दिखावे के लिए ऊपरी तौर पर कह रहा है, क्योंकि कोई मनुष्य बिना कर्म के नहीं रह सकता है। अतः मनुष्य को कर्म ही करना है तो सहज कर्म करना चाहिए, क्योंकि सहज कर्म द्वारा पाप या हिंसा नहीं होती अर्थात् प्रकृति द्वारा जिस व्यक्ति का जो सहज कर्म निर्धारित किया गया है, उस कर्म द्वारा हिंसा का पाप नहीं लगता।

मा ते संगोऽस्तवकर्मणि (तेरी कर्म करने में आसक्ति न हो)[3] क्योंकि अनासक्ति कर्म निष्काम कर्म है। निष्काम कर्त्तव्य पालन से व्यक्ति का कार्य कौशल निखरता है जबकि मोह के कारण भय, चिन्ता, लालच जैसी बुराइयाँ पनपती हैं जो मनुष्य की कार्य क्षमता पर दुष्प्रभाव डालती हैं। संसार की रचना, संचालन और विध्वंस करने वाले भगवान ने मोह को अत्यन्त घातक और त्याज्य बताया है। अतः पत्नी, सन्तान, मकान, धन आदि से शास्त्रोक्त व्यावहारिक प्रेम सम्बन्ध रखो किन्तु मोह रखा तो धोखा खाओगे और दुःख उठाओगे। क्योंकि मोह भी सार्थक जीवन में एक बड़ी बाधा है। राग, मोह, मैं, मेरा ये अन्तस में व्याप्त शत्रु हैं। अतः निर्ममः रहो (ममत्व छोड़ दो)[4] क्योंकि यज्ञमय, ज्ञानमय और निष्काम कर्मयुक्त जीवन जीने में मैं और मोह बड़े बाधक और घातक हैं। आवश्यक कर्त्तव्य कर्म के अतिरिक्त राग–द्वेष, काम, क्रोध, मद, लोभ मोह, ईर्ष्या के वशीभूत होकर किए गए कर्म मनुष्य को बंधन में फँसाते हैं। संसार की चमक–दमक से प्रभावित होकर कही राग किया और फँसे। मन में प्रेम, करूणा, दया, परोपकार, मैत्री, श्रद्धा रखकर अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करने वाले मनुष्यों का जीवन ही यज्ञमय कहलाता है और ऐसे मनुष्यों पर देवता प्रसन्न रहते हैं। राग–द्वेष दोनों इसलिए छोड़ने आवश्यक हैं क्योंकि ये दुःखों की प्राप्ति कराते हैं। साथ ही ये फल की इच्छा में मनुष्य की आसक्ति बढ़ाते है। फलों में आसक्ति ही तनाव और चिन्ता पैदा करती है। मनुष्य को छोड़कर शेष सारी सृष्टि निष्काम कर्म करती है। नदी, हवा, पेड़–पौधे, पशु–पक्षी, सूर्य–चन्द्रमा से लेकर ग्रह–नक्षत्र तक निष्काम कर्म करते हैं, फल की इच्छा नहीं रखते, इसीलिए चिन्ता और तनाव से मुक्त रहते है। सिर्फ मनुष्य ही राग–द्वेष से ग्रस्त होकर फल की इच्छा में सकाम कर्म करता है। अतः भय, चिन्ता, तनाव उसे घेर लेते हैं।

राग अर्थात् आसक्तियुक्त आकर्षण और द्वेष अर्थात् घृणायुक्त विकर्षण। मुझे फलां वस्तु मिल जाए, पद मिल जाए, इतना धन मिल जाए.. इन भावों से ग्रस्त होकर हम आकर्षणयुक्त कर्म करते हैं। या फिर फलाँ व्यक्ति को नीचा दिखाना है, फलां से अधिक सम्पत्ति कमा कर उसे पीछे छोड़ देना है... इस प्रकार के विकर्षण युक्त भावों से प्रभावित होकर कर्म करते हैं। राग–द्वेष अर्थात् आकर्षण–विकर्षण ये दोनों ही विकार हैं। और विकारयुक्त कर्मों का फल भी विकारयुक्त ही होगा। इन विकारों से अलग हट कर परमात्मा को समर्पित कर्म ही आनन्ददायी होगा। सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्थ (सब कर्मों को मुझे समर्पण कर दो)[5] क्योंकि मुझे (परमेश्वर) को समर्पित कर्म कामना रहित है। अतः इन कर्मों में पवित्रता होती है, जबकि स्वार्थ लिप्सायुक्त कर्म भविष्य केन्द्रित है। भविष्य में वांछित फल प्राप्त न होने पर ये कर्म एक तरफ करोड़ों लोगों के कष्टों का कारण बन रहें हैं तो दूसरी तरफ खुद का मनुष्य जन्म भी बिगाड़ रहे हैं। जानबूझकर न सही किन्तु हमारे अज्ञान, नासमझी और लिप्सा भाव के कारण ही ये चिन्ता और तनाव हमारी मानसिकता में प्रवेश करते हैं और चूँकि हमें इनसे मुक्ति पाने का उपाय पता नहीं होता अतः चिन्ता और तनाव हमारे जीवन का हिस्सा बन जाते है। चिन्तित और तनावग्रस्त व्यक्ति भी कर्म तो करते ही हैं किन्तु उनके कर्मों में कोई उत्साह नहीं होता, कोई उमंग नहीं होती। तनाव और चिन्ताओं से छूटना इसलिए जरूरी है क्योंकि ये कर्म के स्वरूप को निखरने नहीं देते। तो यदि आपको अपने जीवन से तनाव को विदा करना है तो इसका एक ही तरीका है और वह है गीता में श्रीकृष्ण का बताया गया कर्मयोग का मार्ग। इसके अभ्यास से जीवन आनन्दमय हो सकता है।

कर्म का अर्थ है सक्रियता। मनुष्य को सक्रिय रहना चाहिए। सक्रियता ही जीवन है और निष्क्रियता तो जीते जी मृत्यु के समान है।[6] बहता पानी निर्मला...। निरन्तर बहती हुई नदी का पानी कितना स्वच्छ और निर्मल रहता है। इसके विपरीत ठहरा हुआ पानी जल्दी ही गन्दा हो जाता है। इसलिए साधारण व्यक्ति से लेकर स्वयं परमात्मा ने अपने आप पर भी कर्म का नियम लागू किया हुआ है। स्वयं भगवान भी धरती पर आते हैं तो कर्म में रत रहते हैं। जब एक दिन जाना ही है तो फिर क्यों ना संसार की सेवा कर के जाऊँ। ऐसा आभास होने पर कर्म तो जारी रहेंगे किन्तु स्वार्थ लिप्सा का लोप हो जाएगा।

जिन्होंने अपना सम्पूर्ण अस्तित्व भगवान के सामने पूरी तरह समर्पित कर दिया। अपने अहंकार को समूल नष्ट कर देने वालों का ही नाम रहा। अपने भौतिक अस्तित्व को जीते जी ईश्वर में विलीन

कर देना ही योग है। योग का अर्थ है जोड़ना। परमात्मा के साथ आत्मा को जोड़कर अनासक्त भाव से कर्म करना ही कर्मयोग है। कर्मयोगी अपने कर्म को यज्ञ मानकर करें। यज्ञ का अर्थ होम नहीं है, बल्कि यज्ञ का अर्थ है कर्म से मनुष्यों की सेवा करना, समाज में एकता और सहयोग करना, अपनी आत्मा का उत्थान करना, कर्त्ताभाव त्याग करना ही यज्ञ है। अर्थात् ईश्वर के समर्पण भाव से कर्म करना। शरणागति का भाव लेकर, अपने भौतिक अस्तित्व को पूर्णतया प्रभु के चरणों में विगलित करके अपना सांसारिक फर्ज पूरा करना चाहिए। क्योंकि जिसके समस्त कर्म भगवान को अर्पण होतें हैं वह कर्मबन्धन से मुक्त हो जाता है। समस्त कर्म करते हुए भी कोई मनुष्य यदि कर्मों के शुभ–अशुभ फल रूपी बन्धन से मुक्त हो जाए तो फिर उसके जीवन में न चिन्ता रहती है और न ही तनाव। बाबाजी (श्रद्धानाथ जी महाराज) के शब्दों में –

कर्ता कर्ता क्यों कर्ता, यहां कर्ता नहीं कोय।
कर्ता है सो कर रहा, तू जनि बोझा ढोय।।[7]

गीता में यही तो श्रीकृष्ण कह रहे हैं कि अपने सारे कर्म 'मन से' मुझमें अर्पित कर दे और यह मान ले कि तू सब कुछ करता हुआ भी कुछ नहीं कर रहा। गीता का सारा उपदेश इसीलिए दिया गया है ताकि मनुष्य का जीवन कर्ममय तो हो ही, साथ ही आनन्दमय, सेवामय और भक्तिमय भी हो। कर्म में तो वह सक्रिय है ही किन्तु साथ–साथ ईश्वर की सत्ता में श्रद्धा होने के कारण वह व्यर्थ की चिन्ता, तनाव आदि से बचा रहता है। ऐसा कर्मयोगी व्यक्ति उसी परमपद को प्राप्त होता है जिस परमपद को ज्ञान योगी और भक्तियोगी प्राप्त होते हैं।

निष्कर्ष

संत बैजनाथ की व्याख्या में गहन अध्यात्म को सरल व्यावहारिक जीवन में उतारने पर बल है। उन्होंने 'कर्मयोग' को केवल सैद्धांतिक चर्चा न बनाकर एक सामान्य गृहस्थ के दैनिक जीवन का मार्गदर्शन बनाया है। उनकी भाषा सरल, उदाहरणों से युक्त तथा शेखावाटी अंचल की बोली से प्रभावित है। 'अहंकार का त्याग', 'फल की इच्छा न रखना' और 'कर्म को कर्तव्य समझकर करना' जैसे सिद्धांतों को उन्होंने अत्यंत प्रांजल एवं हृदयस्पर्शी ढंग से प्रस्तुत किया है। संत बैजनाथ ने जटिल दार्शनिक शब्दावली के स्थान पर सर्वसाधारण की समझ में आने वाली सरल हिंदी का प्रयोग किया है। उनकी व्याख्या में स्थानीय उपमाओं, मुहावरों और जीवनोपयोगी उदाहरणों का समावेश है, जिससे यह जनसामान्य के लिए अधिक ग्राह्य एवं प्रासंगिक बन गई है।

इस भाष्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें कर्मयोग को आश्रम या संन्यास तक सीमित न रखकर गृहस्थ जीवन की चुनौतियों के मध्य लागू करने के सूत्र दिए गए हैं। संत बैजनाथ ने स्पष्ट किया कि सांसारिक कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए भी मन की निश्चलता और ईश्वर में समर्पण बनाए रखा जा सकता है। उनकी व्याख्या में ज्ञान, कर्म और भक्ति के बीच कृत्रिम विभाजन नहीं दिखता। कर्मयोग को भी एक प्रकार की ईश्वरार्पण रूपी भक्ति ही बताया गया है। कर्म के माध्यम से ईश्वर की सेवा करने का भाव ही उनके दृष्टिकोण का केंद्रबिंदु है।

अन्य टीकाकारों की तरह निष्काम कर्म के सिद्धांत को दोहराते हुए भी, संत बैजनाथ ने विशेष रूप से 'अहंकार' (कर्तापन की भावना) के विसर्जन पर अधिक बल दिया है। उनके अनुसार, कर्म का बंधन फलासक्ति से अधिक अहंकार के कारण होता है। यह ग्रंथ न केवल एक धार्मिक टीका है, बल्कि शेखावाटी क्षेत्र की सांस्कृतिक–बौद्धिक विरासत का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज भी है। इससे यह पता चलता है कि गीता का ज्ञान देश के कोने–कोने में पहुँचा और स्थानीय विद्वानों ने उसे अपने ढंग से अभिव्यक्त किया।

आज के तनावग्रस्त, प्रतिस्पर्धी एवं भौतिकवादी युग में, जहाँ कर्म परिणामों के दबाव से दबा हुआ है, संत बैजनाथ द्वारा प्रतिपादित कर्तव्यपरायणता, फल की चिंता से मुक्ति तथा मानसिक समत्व का सिद्धांत अत्यंत प्रासंगिक एवं मार्गदर्शक है। संत श्री बैजनाथ की 'गीता मर्म' में 'कर्मयोग' की व्याख्या विद्वतापूर्ण होते हुए भी सरल, दार्शनिक होते हुए भी व्यावहारिक, तथा सार्वभौमिक होते हुए भी स्थानीय रंग से युक्त है। यह ग्रंथ गीता के ज्ञान को सामान्य जन तक पहुँचाने के एक सफल प्रयास के रूप में हिंदी धार्मिक साहित्य एवं शेखावाटी की सांस्कृतिक धरोहर में एक विशिष्ट स्थान रखता है। इस पर और अधिक गहन शोध किया जाना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ

1. पीठाधीश्वर श्री बैजनाथ जी महाराजकृत ग्रन्थ गीतामर्म, कर्मयोग–भक्तियोग, प्रकाशक, श्री नाथ जी महाराज का आश्रम, लक्ष्मणगढ़ (सीकर) राजस्थान, संस्करण–प्रथम, वर्ष–2016, पृष्ठ – 13
2. पीठाधीश्वर श्री बैजनाथ जी महाराजकृत ग्रन्थ विचार मंथन, प्रकाशक, श्री नाथ जी महाराज का आश्रम, लक्ष्मणगढ़ (सीकर) राजस्थान, संस्करण–प्रथम, वर्ष–2018, पृष्ठ – 58
3. वही, पृष्ठ – 63
4. वही, पृष्ठ – 64
5. पीठाधीश्वर श्री बैजनाथ जी महाराजकृत ग्रन्थ गीतामर्म, कर्मयोग–भक्तियोग, प्रकाशक, श्री नाथ जी महाराज का आश्रम, लक्ष्मणगढ़ (सीकर) राजस्थान, संस्करण – प्रथम, वर्ष–2016, पृष्ठ – 5
6. वही, पृष्ठ – 11
7. पीठाधीश्वर श्री बैजनाथ जी महाराजकृत ग्रन्थ विचार मंथन, प्रकाशक, श्री नाथ जी महाराज का आश्रम, लक्ष्मणगढ़ (सीकर) राजस्थान, संस्करण–प्रथम, वर्ष–2018, पृष्ठ – 64

प्रेषक :

kirankumarimeenas@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 148-152
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

उच्च माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों में यौगिक एवं ध्यान क्रियाओं का संवेगात्मक विकास पर प्रभाव : एक अध्ययन

डॉ. विष्णु कुमार
सहायक प्रोफेसर,
शिक्षा विभाग जैनविश्वभारती संस्थान, लाडनूं

शोध सारांश—योग के शास्त्रीय स्वरूप, उसके दार्शनिक आधार, को सम्यक् रूप से समझना बहुत सरल नहीं है। संसार को मिथ्या माननेवाला अद्वैतवादी भी निदिध्याह्न के नाम से उसका समर्थन करता है। अनीश्वरवादी सांख्य विद्वान भी उसका अनुमोदन करता है। बौद्ध ही नहीं, मुस्लिम सूफ़ी और ईसाई मिस्टिक भी किसी न किसी प्रकार अपने संप्रदाय की मान्यताओं और दार्शनिक सिद्धांतों के साथ उसका सामंजस्य स्थापित कर लेते हैं। संतुलित व्यक्तित्व के निर्माण के लिए मन की एकाग्रता और भावात्मक विकास (आवेश, उत्तेजना आदि भावों पर नियन्त्रण) का होना आवश्यक है। बौद्धिक विकास और संवेगात्मक विकास दोनों में संतुलन स्थापित करने के लिए यौगिक क्रियाओं का प्रयोग आवश्यक है। यौगिक व शारीरिक क्रियाएं करने से बालकों का शारीरिक, मानसिक, संवगोत्मक व सर्वांगीण विकास होता है। योग से व्यक्ति की सभी चिंताओं व कुण्ठाओ पर नियन्त्रण प्राप्त किया जा सकता है। हर व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास करना चाहता है, कुछ होना चाहता है, स्वभाव का परिष्कार करना चाहता है। केवल सैद्धान्तिक ज्ञान से कुछ बन पाना या अपने स्वभाव का परिष्कार कर पाना सम्भव नहीं है। सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ—साथ जब प्रयोग उनके साथ जुड़ जाते हैं तो परिष्कार घटित होता है, तब व्यक्ति केवल बाहर से नहीं भीतर से बदलता है यौगिक क्रियाएं व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में सहायक बनती है।

प्रस्तावना —योग की उत्पति संस्कृत शब्द 'युज' से हुई है। जिसका अर्थ है जोड़ना है। योग शब्द योग की क्रियाओं से स्पष्ट होता है। योग में यौगिक क्रियाओं द्वारा शरीर, मन और आत्मा के बीच संयोग स्थापित होता है, जिससे आत्मिकता की प्राप्ति होती है। प्राचीन मान्यता है कि स्वस्थ शरीर में ही ईश्वर बसता है शरीर बीमार होगा तो आप अपने बारे में ही सोचेंगे, अपने स्वास्थ्य के ऊपर केन्द्रित रहेंगे। ऋषियों ने शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को ध्यान में रखकर ही योग को जन्म दिया है। आज तेज रफ्तार जिन्दगी में खुद को स्वस्थ और ऊर्जावान बनाएं रखना बेहद आवश्यक है, योग हर किसी की जरूरत है। पुरातत्ववेताओं ने जो साक्ष्य प्राप्त किये हैं उनसे पता चलता है कि योग की उत्पति 5000 ई.पू. में हुई होगी, गुरू शिष्य परम्परा के द्वारा योग का ज्ञान परम्परागत तौर पर एवं पीढ़ी से दूसरी पीढी को मिलता रहा है। लगभग 200 ई.पू. में महर्षि पतंजलि ने योग लिखित रूप में संग्रहित किया और योगसूत्र की रचना की। योग सूत्र की रचना के कारण पतंजलि को योग का पिता कहा जाता है। योग' शब्द 'युज समाधौ' आत्मनेपदी दिवादिगणीय धातु में

'घं' प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। इस प्रकार 'योग' शब्द का अर्थ हुआ– समाधि अर्थात् चित्त वृत्तियों का निरोध। वैसे 'योग' शब्द 'युजिर योग' तथा 'युज संयमने' धातु से भी निष्पन्न होता है किन्तु तब इस स्थिति में योग शब्द का अर्थ क्रमशः योगफल, जोड़ तथा नियमन होगा। आगे योग में हम देखेंगे कि आत्मा और परमात्मा के विषय में भी योग कहा गया है। गीता में श्रीकृष्ण ने एक स्थल पर कहा है 'योगः कर्मसु कौशलम् (योग से कर्मो में कुशलता आती हैं)। स्पष्ट है कि यह वाक्य योग की परिभाषा नहीं है। कुछ विद्वानों का यह मत है कि जीवात्मा और परमात्मा के मिल जाने को योग कहते हैं। इस बात को स्वीकार करने में यह बड़ी आपत्ति खड़ी होती है कि बौद्धमतावलंबी भी, जो परमात्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं करते, योग शब्द का व्यवहार करते और योग का समर्थन करते हैं। यही बात सांख्यवादियों के लिए भी कही जा सकती है जो ईश्वर की सत्ता को असिद्ध मानते हैं। पंतजलि ने योगदर्शन में, जो परिभाषा दी है ''योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'' चित्त की वृत्तियों के निरोध का नाम योग है। इस वाक्य के दो अर्थ हो सकते हैं। चित्तवृत्तियों के निरोध की अवस्था का नाम योग है या इस अवस्था को लाने के उपाय को योग कहते हैं।

तकनीकी शब्दों का परिभाषीकरण

संवेगात्मक विकास–किसी व्यक्ति का अपने संवेगों जैसे क्रोध, चिंता, तनाव आदि में संतुलन बनाए रखना ही सांवेगिक विकास है।

समस्या का औचित्य–किसी भी अध्ययन का औचित्य उसके परिणामों की विस्तृत क्षेत्र में सार्थकता एवं उपयुक्तता के आधार पर निश्चित किया जा सकता है। वर्तमान में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मूल्यों का ह्रास हो रहा है। शिक्षा, प्रशासन, व्यवसाय, राजनीति आदि क्षेत्र इससे अछूते नहीं है। वर्तमान में सामाजिकता में गिरावट आ रही है। समाज में परिवार अलग हो रहे है। इसका बालक पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है बालक के मानसिक, संवेगात्मक विकास पर नकारात्मक प्रभाव देखने में आ रहा है जिससे बालक निरन्तर अपराधिक प्रवृतियों की ओर अग्रसर हो रहा है। पहले की अपेक्षा आज योग की अधिक आवश्यकता है। पहले पर्यावरण, वातावरण, खान–पान, रहन–सहन आज की अपेक्षा बहुत ही अच्छा था, परन्तु आज दूषित वातावरण, प्रदूषित पर्यावरण, फास्टफूट एवं डिब्बा बन्द भोज्य पदार्थ विटामिन और प्रोटीन रहित खानपान, बदलता परिवेश और विकृत मानसिकता इन सभी ने हमारे सम्पूर्ण स्वास्थ्य को प्रभावित किया है। आज वैज्ञानिकों ने जहां कई सुविधाएं प्रदान की है वहीं विपरीत प्रभाव ने हमारे स्वास्थ्य को नकारात्मकता प्रदान की है। इन सभी बातों के कारण आज योग शिक्षा की बहुत अधिक आवश्यकता है। क्योंकि योग द्वारा हम मात्र वर्तमान पीढ़ी को ही नहीं, आने वाली पीढियों को भी सही सोच एवं मार्गदर्शन दे सकते हैं। शिक्षा जगत में योग की बहुत आवश्यकता है क्योंकि आज के वर्तमान परिवेश में ज्यादातर छात्र एवं छात्राएं शारीरिक, मानसिक रूप से अस्वस्थ रहते है। जिनके कारण उनमें शिक्षा का विकास जितना होना चाहिए, उतना नहीं हो पा रहा है। फलतः वो लोग अपनी मंजिल तक पहुंचने में असफल हो जाते है यदि उन्हें जीवन में लक्ष्य की प्राप्ति करनी है तो योग का अभ्यास आवश्यक है। सामाजिक जीवन में जो नीरस एवं निर्जीव जीवन व्यतीत करते हैं उन्हें भी योग का सहारा लेना चाहिए। खासकर छात्र योग के बल पर अपने मस्तिष्क को शुद्ध करके विचार शक्ति को बढ़ा सकते है। अकसर देखा जाता है कि जीवन के निर्माण के समय छात्र मादक द्रव्यों का सेवन करते है जो कभी उनके लिए लाभकारी नहीं हो सकता है। योग के नियमित अभ्यास से उनसे छुटकारा मिल सकता है। योग उन्हें अंतिम लक्ष्य तक ले जायेगा इसके परे कोई लक्ष्य नहीं है। यौगिक क्रियाओं द्वारा बालक का सर्वांगीण विकास कर पाना सम्भव होता है अतः शोधार्थी ने इस शीर्षक का चुनाव किया है।

शोध के उद्देश्य–उच्च माध्यमिक स्तर के निजी विद्यालयों के विद्यार्थियों में यौगिक व ध्यान क्रियाओं द्वारा संवेगात्मक विकास का अध्ययन करना।

समस्या कथन –''उच्च माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों में यौगिक एवं ध्यान क्रियाओं का संवेगात्मक विकास पर प्रभाव : एक अध्ययन''

अध्ययन की परिकल्पना –उच्च माध्यमिक स्तर के निजी विद्यालयों के विद्यार्थियों में यौगिक व ध्यान क्रियाओं का संवेगात्मक विकास में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

शोध विधि – शोध में प्रयोगात्मक विधि का उपयोग करते हुए पूर्व–पश्चात् परीक्षण किया गया।

अध्ययन में प्रयुक्त न्यादर्श –शोध में उच्च माध्यमिक स्तर के 100 विद्यार्थियों का चयन यादृच्छिक निदर्शन लॉटरी विधि से छटनी द्वारा किया गया। इसमें 50 बालक और 50 बालिकाऐं है।

शोध में प्रयुक्त सांख्यिकी विधियां –शोध में मध्यमान, प्रमाणिक विचलन और टी परीक्षण का उपयोग किया गया।

सारणी – 1.1

उच्च माध्यमिक स्तर के निजी विद्यालय के छात्रों में यौगिक व ध्यान क्रियाओं द्वारा संवेगात्मक विकास में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

समूह (Group)	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D)	't' value	सार्थकता स्तर	स्वीकृत/अस्वीकृत
योग पूर्व	50	172.6	28.27	21.57	.05 स्तर – 1.67	अस्वीकृत
योग पश्चात	50	80.56	10.53		.01 स्तर – 2.39	अस्वीकृत
					सार्थक अंतर है।	

df = N1+N2 - 2
50+50-2 = 98

उपरोक्त सारणी में उच्च माध्यमिक स्तर के निजी विद्यालय के छात्रों में यौगिक व ध्यान क्रियाओं द्वारा संवेगात्मक विकास के सार्थक अंतर को दर्शाया गया है। तथ्यों से ज्ञात होता है कि 50 छात्रों के एक समूह पर योग पूर्व एवं योग पश्चात उनकी संवेगात्मक विकास में हुए परिवर्तन का मध्यमान 172.6 और 80. 56 है। इससे यह स्पष्ट है कि योग पूर्व छात्रों में संवेगात्मक स्थिति उच्च स्तर की थी जिसमें वह अपने संवेगों को नियंत्रित नहीं रख पा रहे थे परंतु योग के उपरांत उनकी संवेगों को नियंत्रित रखने की स्थिति में सुधार हुआ है। इसी प्रकार योग पूर्व एवं योग पश्चात उनकी संवेगात्मक विकास का मानक विचलन 28.27 और 10.53 प्राप्त हुआ है। प्रयोग पश्चात मानक विचलन का मान प्रयोग पूर्व मानक विचलन से कम है जिससे यह स्पष्ट होता है कि प्रयोग के पश्चात विद्यार्थियों की माध्य से दूरी घटी है अर्थात् यौगिक एवं ध्यान क्रियाओं के पश्चात उनके संवेगात्मक विकास में एकरूपता आ रही है। इनसे प्राप्त 't' का मान 21.57 रहा है जो सार्थकता स्तर .05 और .01 के मान से अधिक है। जिससे यह स्पष्ट होता है कि उच्च माध्यमिक स्तर के निजी विद्यालय के छात्रों में यौगिक व ध्यान क्रियाओं द्वारा संवेगात्मक विकास में सार्थक अंतर पाया जाता है।

सारणी – 1.2

उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी विद्यालय की छात्राओं में यौगिक व ध्यान क्रियाओं द्वारा संवेगात्मक विकास में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

समूह (Group)	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D)	't' value	सार्थकता स्तर	स्वीकृत / अस्वीकृत
योग पूर्व	50	180.92	18.98	35.88	.05 स्तर – 1.67	अस्वीकृत
योग पश्चात	50	78.28	6.89		.01 स्तर – 2.39	अस्वीकृत
					सार्थक अंतर है।	

df = N1+N2 - 2
50+50-2 = 98

उपरोक्त सारणी में उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी विद्यालय की छात्राओं में यौगिक व ध्यान क्रियाओं द्वारा संवेगात्मक विकास के सार्थक अंतर को दर्शाया गया है। तथ्यों से ज्ञात होता है कि 50 छात्राओं के एक समूह पर योग पूर्व एवं योग पश्चात उनकी संवेगात्मक विकास में हुए परिवर्तन का मध्यमान 180.92 और 78.28 है। इससे यह स्पष्ट है कि योग पूर्व छात्राओं में संवेगात्मक स्थिति उच्च स्तर की थी जिसमें वह अपने संवेगों को नियंत्रित नहीं रख पा रही थी परंतु योग के उपरांत उनकी संवेगों को नियंत्रित रखने की स्थिति में सुधार हुआ है। इसी प्रकार योग पूर्व एवं योग पश्चात उनकी संवेगात्मक विकास का मानक विचलन 18.98 और 6. 89 प्राप्त हुआ है। प्रयोग पश्चात मानक विचलन का मान प्रयोग पूर्व मानक विचलन से कम है जिससे यह स्पष्ट होता है कि प्रयोग के पश्चात विद्यार्थियों की माध्य से दूरी घटी है अर्थात् यौगिक एवं ध्यान क्रियाओं के पश्चात उनके संवेगात्मक विकास में एकरूपता आ रही है। इनसे प्राप्त 't' का मान 35.88 रहा है जो सार्थकता स्तर .05 और .01 के मान से अधिक है। जिससे यह स्पष्ट होता है कि उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी विद्यालय की छात्राओं में यौगिक व ध्यान क्रियाओं द्वारा संवेगात्मक विकास में सार्थक अंतर पाया जाता है।

शैक्षिक निहितार्थ – इस अध्ययन के निष्कर्ष यौगिक एवं ध्यान क्रियाओं के द्वारा संवेगात्मक विकास में प्रभावी सुधारों की ओर इंगित करते हैं इसलिए शिक्षा की सभी नीतियां कक्षा में सभी विद्यार्थियों को ध्यान में रखकर बनाने ओर प्रभावी पर्यवेक्षण द्वारा विद्यालय एवं महाविद्यालय के सभी स्तरों पर इन यौगिक एवं ध्यान क्रियाओं

को करवाने के विषय में अनुशंसाएं दी जानी चाहिए। दूसरी तरफ इससे विद्यार्थियों में भी सुधार होगा। उनके व्यवहार में सुधार भी से कक्षा का वातावरण सकारात्मक बन सकता है। विद्यार्थियों के संवेगात्मक पक्षों में सुधार से विद्यार्थियों के सामाजिक, सांस्कृतिक व क्षमताओं की विविधताओं सम्बन्धित आवश्यकताओं की बेहतर और प्रभावी ढ़ग से सुधार में सहायक है। विद्यार्थियों को सीखने के लिए यह यौगिक एवं ध्यान क्रियाऐं सहयोगात्मक वातावरण के स्थान पर सहयोगी वातावरण प्रदान करती है जिससे वे तनाव मुक्त वातावरण में आनंददायी अधिगम में सभी विद्यार्थियों सहभागी हो सकते है। विद्यार्थियों की शिक्षा को महत्वपूर्ण उद्देश्य के सभी पक्षों का विकास के लिए यौगिक एवं ध्यान क्रियाओं को शिक्षा का एक भाग बनाकर ही किया जा सकता है। विद्यार्थियों का यह सर्वांगीण विकास उसके व्यक्तिगत हित में तो है ही साथ ही यह समाज और राष्ट्र के वृहत हित में भी है। विद्यार्थियों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुसार अधिगम परिस्थितियां इस विधि द्वारा निर्मित की सकती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची

1. गोचर, बद्रीलाल (2003) ''विभिन्न प्रकार के शारीरिक व्यायाम कार्यक्रमों का किशोर छात्र–छात्राओं के व्यक्तित्व, शारीरिक क्षमता तथा गामक योग्यताओं पर प्रभाव का अध्ययन'', राजस्थान यूनिवर्सिटी ऑफ हैल्थ साइंसेज, जयपुर, पृ.सं. 49
2. गुप्ता, रंजना (2009) ''महाविद्यालय छात्राओं की मनःस्तापी क्रियाएं, मानसिक स्वास्थ्य एवं समायोजन पर प्रेक्षाध्यान, योग क्रियाओं का प्रभाव'',वनस्थली विद्यापीठ, निवाई, पृ.सं. 48
3. गैन्टेनो (2008) ''उदास एवं अधिक तनाव ग्रसित बालकों पर योग के प्रभाव का अध्ययन'',हैल्थ एण्ड फिटनेस ऐसोसिएशन, अमेरिका, पृ.सं. 76
4. गोलकार (2005) ''दैनिक जीवन में योग का तनाव पर प्रभाव का एक अध्ययन'', मेडिसिन नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ हैल्थ, यूएसए , पृ.सं. 88
5. गौड़ एवं शर्मा (2001) ''कैदियों के व्यक्तित्व कारकों एवं मनोकायिक स्वास्थ्य पर प्रेक्षाध्यान का प्रभाव'',वनस्थली विद्यापीठ, निवाई, पृ.सं. 89
6. गौतम चन्द्र (1991) ''आचार्य तुलसी जीवन विज्ञान सम्प्रत्यय का अध्ययन'' देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार, पृ.सं. 94
7. गैनानी, टी.सी. (1984) ''फ्रस्टेशन, रिकेशन एज फंक्शन्स ऑफ एचीवमेंट मोटिवेशन एण्ड एंग्जाइटी एट डिफरेन्ट एज लेवल्स'', साइकोलॉजीकल रिव्यू, लंदन, पृ.सं. 9
8. मुनि किशन लाल एवं सुराणा, शुभकरण (2011), ''जीवन विज्ञान'', जीव विज्ञान अकादमी, जैन विश्वभारती, लाडनूं, पृ.सं. 143
9. मित्रा, धर्म श्री, (2003), आसन : 68 योग मुद्रा, न्यू वर्ल्ड लाइब्रेरी, कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, कैलिफोर्निया, पृ.सं. 178
10. माथुर एवं शर्मा (2004) ''जीवन विज्ञान द्वारा मूल्य निर्माण'', दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, पृ.सं. 186
11. ओम (1988) ''शैक्षिक उपलब्धि एवं व्यक्तिगत उपलब्धि भावात्मक निपुणता के सम्बन्ध का लिंगगत संदर्भ में अध्ययन'', राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, पृ.सं. 174
12. प्रसाद, ए.एन. (2003) ''लिंग भेद के आधार पर विद्यालय शिक्षकों के समायोजन एवं दुश्चिन्ता (तनाव) पर योगाभ्यास का प्रभाव'', देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार, पृ.सं. 25
13. पीक (2005) ''पहली, दूसरी और तीसरी कक्षाओं के बालकों के ध्यान पर योग के प्रभाव का एक अध्ययन'', देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार, पृ.सं. 41
14. पतंजलि, (2001) ''पंतजलि योग सूत्र, योग हीलिंग आर्ट'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, पृ.सं. 21
15. आर.ए. शर्मा (2015) ''शिक्षा अनुसंधान के मूल तत्व एवं शोध प्रक्रिया'', आर.एल.बुक डिपो, मेरठ, पृ. सं. 49

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 153-157
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

महिला नेतृत्व और राजनीति में भागीदारी

गणेश गिरी
शोधार्थी,
डॉ. धीरज सिंह खाती
शोध निर्देशक (असिस्टेंट प्रोफसर),
सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय अल्मोड़ा

शोध सार—

महिला जो मानव समाज का लगभग 50 प्रतिशत है का देश की आर्थिक तथा सामाजिक व्यववस्था में महत्वपूर्ण योगदान है। यद्यपि आज जीवन की सभी गतिविधियों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व है। महिलाएं वेतन भोगी है, वे व्यवसायी है, वे गरीब है, वे सम्पन्न है, वे शिक्षित है, वे अशिक्षित है, वे शहरी क्षेत्रों में है, वे ग्रामीण क्षेत्रों में है; ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जहां महिलाएं नहीं हों। महिला आरक्षण व राजनैतिक जागरूकता के बाद महिलाओं का राजनीतिक नेतृत्व बढ़ा है। 73वें संविधान संशोधन द्वारा महिलाओं को पंचायती राज व्यवस्थाओं में 33 प्रतिशत आरक्षण प्रदान कर पंचायती राज व्यवस्था में उनकी सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने से महिलाओं में राजनैतिक चेतना का संचार हुआ हैं। हालांकि पंचायती राज संस्थाओं का चुनाव ग्रामीणों के विशेष निकट होने के कारण ग्रामीण उसमें बढ़—चढ़ कर भाग लेते हैं और महिलाएँ भी पीछे नहीं रहती। परन्तु आज महिलाओं ने यह स्वीकार किया कि मतदान में जागरूकता हुई है जिससे वे स्वयं ही नहीं अपने घर परिवार की सभी महिलाओं को मतदान के लिए प्रेरित करती हैं। इसीलिए मतदान का प्रतिशत निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है। प्रशासनिक व्यवस्था में राजनेताओं के काफी पद विभिन्न आयोगों, वार्डों, समितियों आदि में रखे गये हैं। राजनीति में आने वाली पढ़ी—लिखी महिलाओं को विभिन्न पदों पर नियुक्त किया जाता है जिससे वे आज महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। महिलाएँ, महिलाओं के अधिकारों व शोषण के विरूद्ध आवाज उठाती हैं। इस पंपर में महिला नेतृत्व और उनकी राजनीतिक भागीदारी के विभिन्न पहलुओं की समीक्षा की जाएगी।

मुख्य बिन्दु— नेतृत्व, अधिकार, विकास, लोकतांत्रिक भागीदारी।

प्रस्तावना—

किसी भी देश में राष्ट्रीय चेतना आवश्यक है, जिससे कि राष्ट्र के प्रति समर्पित नागरिक तैयार हो सके। ग्रामीण क्षेत्र में राष्ट्रीय चेतना की कमी है तथा उदासीनता का भाव पाया जाता है। क्योंकि आधी जनसंख्या वाला महिला तबका तो इस भाव से पूर्ण रूप से अछूता रहा है। राजनीति में आने से राष्ट्रीय चेतना के प्रति हम स्वयं सजग हुई है और ग्रामीण विकास के लिए हर एक नागरिक विशेष रूप से महिलाऐं राष्ट्रीय चेतना के भाव जागृत कर रही हैं। महिलाओं का 33 प्रतिशत राजनीति में आने के कारण

उनमें नेतृत्व गुण का विकास भी बढ़ा है,[1] जिसके कारण सभा, रैली, धरना, प्रदर्शन आदि में नेतृत्व करने लगी है। आज महिलाओं की सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक एवं राजनैतिक क्षेत्र से संबंधित गतिविधियों में महिलाओ की भागीदारी हर क्षेत्र मे बदलने से उनकी चेतना में भी विकास हुआ है। महिलाएं कृषि उद्योग, परिवहन, संचार, स्वास्थ्य, आवास तथा अर्थव्यवस्था के संगठित तथा असंगठित क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहीं है। महिला आजीविका अर्जक है, उद्यमी है, सामाजिक और राजनैतिक कार्यकर्त्ता है। हमारे समाज और जीवन में शायद ही ऐसा कोई क्षेत्र हों जिसमें महिलाओं की उपस्थिति ना हो। हम 21 वीं शताब्दी में प्रवेश कर चुके है। भारत की राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था में बहुत अधिक विभिन्नता के बावजूद पिछली अर्द्धशताब्दी में भारतवर्ष की राजनीति में महिलाओ ंकी भूमिका में एक सकारात्मक परिवर्तन परिलक्षित हुआ है। महिला नेतृत्व और राजनीति में उनकी भागीदारी एक महत्वपूर्ण विषय हैं। समाज में महिलाओं को बराबरी का हक और अधिकार देने के लिए कई कदम उठाये गए हैं। महिलाओं के नेतृत्व में बदलाव और उनकी राजनीतिक भागीदारी से समाज की संरचना और विकास पर सकारात्मक प्रभाव पड़ रहा हैं। हॉलाकि महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी आज भी चुनौतियों का सामान करती हैं, लेकिन विभिन्न नीतियों और आरक्षण का प्रावधान महिलाओं को राजनीतिक मंच पर मजबूत स्थिति में लाने का प्रयास कर रहे हैं।

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति

राजनीति में महिलाओं की भागीदारी सम्भवतः प्रागैतिहासिक काल में भी रही है। मातृसत्तात्मक समाज व्यवस्था में कवीले की मुखिया महिलायें रही हैं। आज भी कुछ आदिवासी समाज में स्त्रियों की प्रमुखता परिवार में देखी जा सकती है। वैदिक सभ्यता पुरूष–प्रधान रही है, पर स्त्रियों के शासकीय सेनानी, राज्य–सलाहकार या मंत्राणी, विदुषी, समाज–नेत्री, पुरोहित आदि सभी रूपों का उल्लेख वैदिक साहित्य में मिलता है। भारत में सामाजिक पुनर्जागरण काल और राजनीतिक चेतना का विकास साथ–साथ मानने पर पाते है कि सामाजिक पुनर्जागरण और नारी का मुक्ति–संघर्ष 19वीं शताब्दी के प्रारंभ में एक साथ तब यह हुआ, जब बंगाल में ब्रह्म समाज के संस्थापक राजा राममोहन राय, बंबई में प्रार्थना–समाज के संस्थापक श्री महादेव गोविंद रानाडे और उत्तर पश्चिम भारत में आर्य–समाज के संस्थापक स्वामी दयानंद ने अपने सामाजिक सुधारों में स्त्री–उत्थान में कार्य को प्रमुख स्थान दिया। [2]

महिला नेतृत्व के विकास के लिए किये गए प्रयास

1857 में भारत के पहले बड़े स्वतंत्रता–संग्राम और 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के बाद सामाजिक सुधार और राजनीतिक चेतना की यह मिली–जुली प्रवृति साथ–साथ आगे बढ़ी। कांग्रेस के जन्मकाल से ही स्त्रियाँ किसी न किसी रूप में अपनी भूमिका अदा करती आई हैं। सामाजिक संस्थाएँ और महिला–संगठन उनमें राजनीतिक जागृति लाने में सहायक रहे हैं, किन्तु इसे महिलाओं का राजनीति में सीधे प्रवेश नहीं कहा जा सकता है। राजनीति के क्षेत्र में महिलाओं का वास्तविक पदार्पण बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से ही माना जा सकता है। बीसवीं सदी के प्रथम दशक में कांग्रेस के स्वदेशी आन्दोलन में महिलाओं ने एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की और दूसरे दशक में वे सीधे राजनीतिक क्षेत्र में उतर पड़ी। महान आयरिश महिला श्रीमती एनी–बेसेंट, जिन्होंने भारत को अपना घर और स्वयं को भारतीय महिला कहा, 1913 में राजनीतिक क्षेत्र में एक कर्मठ कार्यकर्ता कांग्रेस की प्रथम महिला अध्यक्ष बनीं। [3]देश के राजनीतिक क्षेत्र में भारतीय महिलाओं के सक्रिय योगदान की दिशा में यह पहला कदम था। इसके पूर्व श्रीमती वेसेंन्ट ने मार्गेट कर्जिल तथा श्रीमती मार्गेट नोबल (सिस्टर निवेदिता) के साथ मिलकर 'वेकअप इंडिया' नाम के आन्दोलन का सूत्रपात किया था, जो बाद में 'होमरूल लीग' में परिणत हो गया।

1917 का वर्ष भारतीय नारी की वर्तमान राजनीतिक भूमिका में पहला महत्वपूर्ण वर्ष था, जिसमें महिलाओं ने एक साथ कई दिशाओं में कदम रखे। स्त्रियों को पुरूषों के समान मतधिकार की मांग उठाई गई। 18 दिसम्बर 1917 को श्रीमती सरोजनी नायडू के नेतृत्व में 14 प्रमुख महिलाओं का शिष्टमंडल श्री मांटेग्यू, सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया और वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड से मिला।[4] यह

घटना महिलाओं में जागृति की ही नहीं, दृढ़ता के साथ राजनीतिक क्षेत्र में स्वयं आगे बढ़कर सक्रिय भाग लेने की भी प्रतीक थी।

महिलाओं की सामाजिक निर्योग्यताओं की आड़ में यद्यपि 'माउंट फोर्ड रिफार्म्स स्कीम' के अनुसार, ब्रिटिश पार्लियामेंट ने उस समय भारतीय स्त्रियों को मत देने का अधिकार नहीं प्रदान किया, किन्तु उसे प्रान्तीय विधानसभाओं को यह अधिकार दे दिया कि वे इस मामले पर विचार कर सकती है। इसके परिणामस्वरूप महिलाओं को चुनाव लड़ने का अधिकार प्राप्त हुआ और सीमित रूप में मत देने का भी। सर्वप्रथम 1919 में मद्रास विधान परिषद ने महिलाओं को सीमित मताधिकार प्रदान किया। 1926 तक सभी प्रान्तों में स्त्रियों को उन्हीं भार्तों पर मत देने का अधिकार मिल गया, जो कि उन प्रान्तों में पुरूषों के लिए लागू थी। 1926 में तत्कालीन भारत सरकार ने एक कदम और उठाया—महिलाओं कोप्रान्तीय विधान—सभाओं के चुनाव लड़ने का अधिकार भी प्रदान कर दिया|

पहली बार श्रीमती कमला देवी चट्टोपाध्याय दक्षिण कनारा क्षेत्र से चुनाव लड़ी, उस समय 4976 वोटों के मुकाबले में 4461 मत प्राप्त कर चुनाव हार गई, लेकिन हार का अन्तर कम होने के फलस्वरूप उस समय में महिलाओं की एक महान नैतिक विजय मानी गयी। मद्रास सरकार पर दवाब पड़ा। मनोनयन के आधार पर डॉ. मुथुलक्ष्मी रेड्डी को पहली महिला विधायक के रूप में चुना गया और फिर वे विधान सभा का उपाध्यक्ष भी चुन ली गई। 1927 में स्थापित गैर राजीतिक संगठन ऑल इंडिया वूमेंस कॉन्फ्रेंस ने स्त्रियों में सामाजिक सुधारों के साथ, राजनीतिक जागृति लाने की दिशा में महिलाओं के समान अधिकारों के लिए जमकर संघर्ष किया और सफलताएँ भी प्राप्त की। 1930 में 'नमक सत्याग्रह' के समय गाँधी जी के आह्वान पर हजारों की संख्या में स्त्रियाँ भाग ली। गाँधी जी की गिरफ्तारी के साथ—साथ श्रीमती सरोजनी नायडू, कमलादेवी चट्टोपाध्याय, रूक्मिणी लक्ष्मीपति ने सत्याग्रह का नेतृत्व संभाल लिया। महिलाएँ लाठियाँ, गोलियाँ खाने और जेल जाने को तैयार हो गई। 1930 के इस आन्दोलन में 17 हजार महिलाएँ गिरफ्तार हुई थी। डॉ. मधुलक्ष्मी ने मद्रास विधानसभा की सदस्यता से और श्रीमती कमलाबाई लक्ष्मण राव तथा श्रीमती हंसा मेहता ने अवैतनिक न्यायाधीशों के पदों से त्यागपत्र देकर अपना विरोध प्रकट किया। 1932 में सविनय अवज्ञा आन्दोलन और 1942 में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में भी महिलाएँ बढ़—चढ़ करप भाग ली, गिरफ्तारी दे जेल की यातनाएँ सही। आजादी की इस आखरी लड़ाई में भी हजारों स्त्रियों ने हिस्सा लिया था। [4]

उक्त आन्दोलनों में भाग लेने के साथ—साथ वैधानिक क्षेत्र में भी महिलाओं ने सशक्त भागीदारी निभाई। 1927 के 'कॉमनवेल्थ ऑफ इंडिया बिल' महिला परिषद के प्रतिनिधित्व ने' बिना लिंग भेदभाव के, समान अधिकार व समान कर्तव्य' की धारा जोड़ने पर बल दिया। पहली राउंड टेबुल कॉन्फ्रेंस' में महिला मतदाता संख्या में वृद्धि करने की मांग महिला प्रतिनिधियों के द्वारा किया गया। 1937 में 6 प्रांतों में कॉंग्रेस मंत्रिमंडल बनी। कुल 80 महिलाएँ विधानसभाओं में चुनकर गई थी। मंत्री और उपाध्यक्ष का पद भी महिलाओं को मिला। इस संख्या का उस समय विश्व में तीसरा स्थान था।

भारतीय महिलाओं का नेतृत्व

संविधान निर्माण में भी, लीला रे, सरोजनी नायडू, राजकुमारी अमृत कौर, हँसता मेहता, दुर्गाबाई, सुचिता कृपलानी, रेणुका रे, कमला चौधरी, अम्मू स्वामीनाथन, मालती चौधरी, पूर्णिमा बनर्जी की भागीदारी उल्लेखनीय है, फलस्वरूप भारत के संविधान में स्त्री पुरूषों को समान अधिकार का आश्वासन दिया गया। आजादी के बाद भारत के प्रधानमंत्री के पद पर श्रीमती इंदिरा गाँधी का आरूढ़ होना स्वतंत्र भारत में सबसे बड़ी उपलब्धि थी। केन्द्रीय केबिनेट मंत्री, राज्यमंत्री, उपमंत्री और राज्यपाल व राज्यों के मुख्यमंत्री के रूप में तो अबतक इतने महिला नाम सामने आ चुके हैं कि उन्हें गिनाना संभव नहीं। वर्तमान में देश की रक्षामंत्री, देश के विदेशमंत्री का महिला होना महिलाओं की राजनीति में सशक्त भागीदारी का सबल पक्ष है।

73/74 वां संविधान संशोधन –

इस संशोधन के माध्यम से देश में स्थानीय/नगरीय निकायों को संवैधानिक मान्यता और संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है। इस संशोधन के माध्यम से प्रत्यक्ष रूप से चुनी जाने वाली कुल सीटों के कम से कम एक तिहाई स्थान (अनुसूचित जाति व जनजाति की महिलाओं के लिए आरक्षित स्थानों सहित) महिलाओं के लिए आरक्षित होगें और इन स्थानों का भी बारी–बारी से नगर निकाय के क्षेत्र में आवर्तन किया जाता रहेगा। महिलाओ का समाज के लिए कुछ कर देने का जुनून, प्रति दिन उनकी राजनीति सहभागिता के योगदान को बड़ाती जा रही है। पर ये भी सत्य है कि महिलाओ को राजनीति में सहभाग करने मे विभिन्न समस्याओ का सामना करना पड़ता है जैसे छेड़छाड़, पैसे के कमी, लोगों की सोच, शिक्षा की कमी, पुरुष प्रधान सोच, इत्यादि । स्व0 सुषमा स्वराज जी ने कहा था 'एक महिला के लिए राजनीति में आने का मन बनाना बहुत मुश्किल होता है। एक बार वह अपना मन ले तो फिर उन्हे उसे अपने पति, और अपने बच्चों और अपने परिवार को तैयार करना पड़ता है । एक बार वह इन सभी बाधाओं को पार कर जब टिकट के लिए आवेदन करती है, तो फिर पुरुष विरोधी उमीदवारों द्वारा उनके खिलाफ विभिन्न प्रकार के किस्से प्रचलित करते है और इन सब के बाद जब उनका नाम पार्टी के आकाओं के पास जाता है, वे उनका नाम नहीं चुनते क्योंकि वे सीट खोने से डरते हैं स्व0 सुषमा स्वराज जी की ये वाक्य एक वास्तविकता कि झलक देता है कि महिलाओं को राजनीति प्रवेश करते समय कितनी समस्याओं और आलोचनाओं का सामना करना पड़ता है। विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश भारत है फिर भी राजनीति क्षेत्र में महिला प्रतिनिधित्व की बात करे तो बहुत कम है। राजनीति क्षेत्र में भारतीय महिलाओं का हाशियें, पर होना उतना ही पुराना है जैसा भारतीय समाज। राजनीति क्षेत्र में, महिलाओं की संख्या का कम होने के मुख्य कारण समाज द्वारा प्रतिनिधित्व, शासन और विकास प्रतिमानों में महिलाओं के हितों का बहिष्कार है उन्हे बचपन से ही राजनीतिक विमर्श से दूर रखा जाता है। इसलिए यह अध्ययन उत्तराखंड प्रदेश में महिलाओं की राजनीति सहभागिता में महिलाओं द्वारा सामना की जाने वाली विभिन्न समस्याओं का अध्ययन करेगा व महिलाओं के शिक्षा का स्तर तथा शिक्षा की राजनीति सहभागिता पे पड़ने वाले प्रभाओं का भी अध्ययन करेगा, ये अध्ययन सरकार को विभिन्न सुझाव देंगे जिससे सरकार द्वारा महिलाओं की राजनीति सहभागिता में आने वाली समस्याओं को रोक सके व उनके सहभागिता के स्तर को बड़ाया जा सके।

निष्कर्ष–

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि आज शिक्षा ज्ञान–विज्ञान, व्यवसाय एवं प्रशासन के क्षेत्र में जिस अनुपात में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है, राजनीति में उसी तरह आगे नहीं आई, यद्यपि ब्रिटेन, अमरीका, जापान जैसे उन्नत देशों की तुलना में इस क्षेत्र में भारतीय स्त्रियों की स्थिति अच्छी है। फिर भी लोकसभा और विधान सभाओं में महिला प्रतिनिधित्व अभी चार से बारह प्रतिशत के बीच ही आगे पीछे होता रहा, बढ़ा नहीं। 48 प्रतिशत महिला मतदाता संख्या है और महिलाओं की यह प्रतिनिधित्व की स्थिति सचमुच चिंतनीय रही है।

21वीं सदी की महिलायें प्रेम, दया, करूणा की देवी होने के साथ महत्वाकांक्षी, स्वाभिमानी, दूरदर्शी तथा सफल योद्धा स्वरूप हैं, अपनी इन्हीं असीम क्षमताओं से लबरेज महिलाएँ हर क्षेत्र में आगे बढ़ रही हैं। शिक्षा के क्षेत्र में, विभिन्न प्रतियोगिता परीक्षाओं में, खेल के क्षेत्र में एवं ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी ज्यादा देखी जा रही हैं, लेकिन राजनीति की मुख्यधारा में अपनी योग्यता से महिलाओं को आगे बढ़ने की जरूरत महसूस की जा रही है। राजनीतिक पार्टियों के संगठन या सत्ता के भीर्श पर महिलाओं की सहभागिता की आवश्यकता है, इन परिस्थितियों के मद्देनजर आज के संदर्भ में महिलाओं को राजनीति में सम्मानित स्थान दिलाने के लिए तथा उनकी भागीदारी को बढ़ाने के लिए आरक्षण एक बेहतर जरिया हो सकता हैं। इसलिए कि हमें यह देखना होगा कि किस वजह से महिलाएँ उतनी अधिकता से राजनीति में अपनी भागीदारी व सामाजिक संकट आते हैं। जैसे कि घरेलू हिंसा, सुरक्षा मँहगाई आदि के इन सभी कारणों से महिलाएँ ही प्रभावित होती हैं। गृहिणी महिलाओं को तो बच्चों से लेकर बुजूर्गों तक देखभाल, घर की सफाई, कपडे धोने, बर्तन साफ करने, पानी की किल्लतें,

जैसी दैनिक दिनचर्या में व्यस्त रहना पड़ता है। मँहगाई, जातिगत व लिंग भेदभाव, दहेज उत्पीड़न, घरेलू हिंसा तथा असुरक्षा की मार महिलाओं को हमारे समाज में पुरूषों के मुकाबले ज्यादा सहनी पड़ती है। यहाँ समस्याओं को गिनाने का मतलब है कि इन सबका निदान करते हुए भारतीय महिलाएँ राजनीतिक दस्तक देने में पीछे नहीं रहती है। आरक्षण का जिक्र इसलिए जरूरी है कि स्थानीय निकायों में 73वाँ संवैधानिक संशोधन के द्वारा दिया गया 33 प्रतिशत आरक्षण के माध्यम से राजनीतिक रूप से स्थानीय स्तर पर महिलाओं की भागीदारी को रेखांकित किया जा सकता है। भारतीय राजनीति में महिलाओं की सशक्त भागीदारी ने एक राजनीतिक दबाव का भी एहसास कराया है फलस्वरूप भारतीय कैबिनेट ने पंचायत में महिलाओं को 50 फीसदी आरक्षण पर सहमति जाता दी है। बिहार, उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश में पहले से ही पंचायत में महिलाओं को 50 फीसदी आरक्षण है। राजस्थान ने भी इसकी घोषणा की है। बिहार पहला राज्य है जहाँ पंचायत में 2006 से ही 50 फीसदी आरक्षण है। 1,33,000 महिलाएँ पंचायत, ब्लॉक एवं जिला स्तर पर प्रतिनिधित्व कर रही हैं, यह ऐतिहासिक बदलाव है यह सिलसिला गाँव से राज्य और केन्द्र तक पहुँचेगा। स्थानीय निकायों से प्रशिक्षित, दक्ष एवं क्षमतावान महिलाएँ राज्य एवं केन्द्र स्तर तक भविष्य में नेतृत्व देने को अवश्य निकल सकेगी। यह भारतीय लोकतंत्र की मजबूती में मील   का पत्थर साबित होगा।

सन्दर्भ सूची–

1– भारत में पंचायती राज, प्रमोद कुमार अग्रवाल, प्रभात प्रकाशन, अरूणा आसफ अली रोड, नयी दिल्ली।

2– बिहार में ग्राम पंचायत, राजेन्द्र प्रसाद सिंह, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना।

3– राजनीतिक नेतृत्व, डॉ. रवीन्द्र कुमार वर्मा, वही।

4– बिहार में ग्राम पंचायत एवं सुशासन, सं. डॉ. सीताराम सिंह, वही।

5– निर्वाचन और राजनीति,

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 158-162
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

समकालीन सांस्कृतिक व्यवहार में भारतीय सौंदर्य मूल्यों की प्रासंगिकता

ईश्वरी.ए
असिस्टेंट प्रोफेसर – हिंदी,
रथिनम कॉलेज ऑफ़ आर्ट्स एंड साइंस
पोलाची मेन रेड, कपिम नगर, एचनारी, कोयंबटूर - 641021.

शोध-सार

भारतीय संस्कृति की आधारशिला उसके सौंदर्य मूल्यों में निहित है, जो केवल कला और साहित्य तक सीमित न होकर जीवन के प्रत्येक आयाम में व्याप्त हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा (IKS) में सौंदर्य को सत्य और नैतिकता के साथ समन्वित दृष्टि से देखा गया है। **श्रीमद्भगवद्गीता** इस समन्वय का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है, जहाँ कर्म, भक्ति और ज्ञान के माध्यम से जीवन को सौंदर्यबोध से जोड़ने की दार्शनिक व्यवस्था विकसित की गई है। समकालीन सांस्कृतिक व्यवहार में भारतीय सौंदर्य चेतना की उपस्थिति, उसके रूपांतरण और संरक्षण की संभावनाओं का अध्ययन करता है। इसमें भारतीय सौंदर्यशास्त्र के प्रमुख सिद्धांतों रस, ध्वनि, अलंकार तथा आध्यात्मिक सौंदर्य दृष्टि के आलोक में आधुनिक कला, मीडिया और सामाजिक आचरण का विश्लेषण किया जाएगा। अध्ययन का उद्देश्य यह प्रतिपादित करना है कि भारतीय सौंदर्य मूल्य आज भी सांस्कृतिक संतुलन, नैतिक चेतना और मानवीय संवेदनशीलता को सुदृढ़ करने में सक्षम हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा के माध्यम से समकालीन समाज में सौंदर्य आधारित सांस्कृतिक पुनर्जागरण की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

मुख्य शब्द

भारतीय सौंदर्यशास्त्र, सांस्कृतिक व्यवहार, भारतीय ज्ञान परम्परा, रस सिद्धांत

प्रस्तावना

मानव सभ्यता के विकास में संस्कृति और सौंदर्य का संबंध बहुत गहरा और अभिन्न रहा है। संस्कृति किसी भी समाज की विश्वदृष्टि, मूल्य प्रणाली, परंपराओं और व्यवहार की सामान्य अभिव्यक्ति है और सौंदर्यशास्त्र उस संस्कृति की कामुक चेतना का आधार है। दूसरे शब्दों में, किसी समाज का सौन्दर्यबोध जितना अधिक विकसित होता है, उसकी सांस्कृतिक चेतना उतनी ही अधिक परिष्कृत एवं मानवीय होती है। भारतीय सभ्यता की विशिष्टता इस तथ्य में भी निहित है कि यहाँ सौंदर्य को केवल बाहरी आकर्षण या सजावट तक ही सीमित नहीं माना जाता था, बल्कि सत्य, नैतिकता और आध्यात्मिकता से युक्त जीवन दर्शन के रूप में माना जाता था। लेकिन 21वीं सदी में आधुनिक समाज वैश्वीकरण, औद्योगीकरण, डिजिटल प्रौद्योगिकी और उपभोक्ता संस्कृति के प्रभाव

में तेजी से बदलाव के दौर का अनुभव कर रहा है। आधुनिक बाजार दृष्टिकोण ने सुंदरता को एक उत्पाद और वस्तु में बदल दिया है।

भारतीय सौंदर्यशास्त्र की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि

भारतीय सौंदर्यशास्त्र की परम्परा विश्व की प्राचीनतम और सर्वाधिक समृद्ध दार्शनिक परम्पराओं में से एक मानी जाती है। भारतीय दृष्टि में सौंदर्य केवल इन्द्रियजन्य आकर्षण नहीं, बल्कि आत्मानुभूति, आनंद और ब्रह्मानुभव का माध्यम है। यही कारण है कि भारतीय सौंदर्य चिंतन दर्शन, धर्म, साहित्य और कला — सभी के साथ समन्वित रूप में विकसित हुआ है। वैदिक साहित्य में सौंदर्य चेतना के प्रारंभिक संकेत मिलते हैं। ऋग्वेद में उषा, अग्नि, सूर्य और प्रकृति के विविध रूपों का काव्यात्मक वर्णन केवल भौतिक सौंदर्य नहीं, बल्कि ऋत (cosmic order) की अनुभूति का प्रतीक है।

श्रीमद्भगवद्गीता में सौंदर्य चेतना

श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय ज्ञान परम्परा की वह अमूल्य धरोहर है, जिसमें दर्शन, धर्म, नैतिकता और जीवन-व्यवहार का अद्वितीय समन्वय दिखाई देता है। यद्यपि गीता को सामान्यतः कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग का ग्रंथ माना जाता है, परंतु इसके अंतर्निहित तत्त्वों में एक गहन सौंदर्य चेतना भी निहित है। गीता में सौंदर्य को केवल दृश्य या भौतिक आकर्षण के रूप में नहीं, बल्कि जीवन-संतुलन, आत्मानुभूति और ईश्वर-साक्षात्कार की अवस्था के रूप में प्रस्तुत किया गया है। गीता का मूल संदेश है — **समत्व और संतुलन**। 'समत्वं योग उच्यते' (2.48) का सिद्धांत केवल नैतिक शिक्षा नहीं, बल्कि सौंदर्यपूर्ण जीवन-दृष्टि भी है।

समकालीन सांस्कृतिक व्यवहार: वर्तमान परिदृश्य

समकालीन समाज वैश्वीकरण, डिजिटल तकनीक और उपभोक्तावादी संस्कृति के तीव्र प्रभावों के अधीन है। 21वीं सदी में तकनीकी विकास, सोशल मीडिया, अंतरराष्ट्रीय सांस्कृतिक आदान-प्रदान और उपभोक्तावादी प्रवृत्तियों ने जीवन-शैली, सामाजिक व्यवहार और कला-साहित्य के दृष्टिकोण में व्यापक परिवर्तन किए हैं। ये परिवर्तन भारतीय सांस्कृतिक परंपराओं और सौंदर्य मूल्यों के लिए चुनौतीपूर्ण साबित हो रहे हैं।

वैश्वीकरण और पाश्चात्य प्रभाव:

आधुनिक वैश्वीकरण ने परंपरागत सांस्कृतिक व्यवहार को प्रभावित किया है। पश्चिमी जीवनशैली, फैशन, मनोरंजन और उपभोक्तावादी प्रवृत्तियाँ युवाओं में अधिक लोकप्रिय हो रही हैं। परिणामस्वरूप पारंपरिक भारतीय कला, लोक-संस्कृति और सौंदर्य दृष्टि का महत्व कम होता जा रहा है।

डिजिटल मीडिया और कला अभिव्यक्ति:

सोशल मीडिया, OTT प्लेटफ़ॉर्म, यूट्यूब और डिजिटल कला ने सांस्कृतिक व्यवहार और सौंदर्य अनुभूति के स्वरूप को बदल दिया है। कला और संगीत अब उपभोक्ता-केंद्रित बन गए हैं, जहाँ सौंदर्य केवल दृश्य और श्रोत्रीय आनंद तक सीमित हो गया है। इसका प्रभाव पारंपरिक कलाओं के संरक्षण पर भी पड़ रहा है।

उपभोक्तावाद और सांस्कृतिक परिवर्तन:

वर्तमान समाज में उपभोक्तावाद ने सौंदर्य को उत्पाद और वस्तु का रूप दे दिया है। फैशन, विज्ञापन और मनोरंजन उद्योग में सौंदर्य तात्कालिक आकर्षण तक सीमित हो गया है। इस प्रक्रिया में भारतीय सौंदर्य दृष्टि, जो नैतिकता, आध्यात्मिक चेतना और जीवन संतुलन से जुड़ी है, हाशिए पर जा रही है।

सांस्कृतिक संक्रांति और चुनौती:

इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप समकालीन समाज में सांस्कृतिक असंतुलन और पहचान संकट उत्पन्न हुआ

है। युवा पीढ़ी पारंपरिक मूल्यों से कटती जा रही है। इसलिए यह आवश्यक है कि भारतीय सौंदर्य मूल्य और ज्ञान परम्परा (IKS) को आधुनिक जीवन के अनुरूप संरक्षित और पुनः प्रतिष्ठित किया जाए।

निष्कर्षात्मक अवलोकन:

समकालीन सांस्कृतिक व्यवहार में परिवर्तन अवश्य हुए हैं, लेकिन भारतीय सौंदर्य मूल्य आज भी प्रासंगिक हैं। वे जीवन में आंतरिक संतुलन, नैतिक चेतना और संवेदनशीलता बनाए रखने में सहायक हैं।

भारतीय सौंदर्य मूल्यों की समकालीन प्रासंगिकता

भारतीय सौंदर्य मूल्य केवल प्राचीन काल की सांस्कृतिक धरोहर नहीं हैं, बल्कि आज भी समकालीन समाज में अत्यंत प्रासंगिक और जीवनोपयोगी हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा (IKS) में सौंदर्य को केवल दृश्य या भौतिक आकर्षण तक सीमित न मानकर, इसे **आध्यात्मिक चेतना, नैतिकता और जीवन-संतुलन** से जोड़ा गया है। आधुनिक समाज, भले ही वैश्वीकरण, डिजिटल मीडिया और उपभोक्तावाद के प्रभाव में तेजी से बदल रहा हो, भारतीय सौंदर्य मूल्य आज भी कला, साहित्य, संगीत, नृत्य, स्थापत्य और लोककला में संरक्षित दिखाई देते हैं।

कला और साहित्य में प्रासंगिकता:

भारतीय साहित्य, शास्त्रीय और लोककला, शास्त्रीय संगीत और नृत्य में रस और अलंकार के माध्यम से सौंदर्य अनुभव को प्रत्यक्ष किया जाता है। ये परम्पराएँ केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि **मानवीय संवेदनाओं का विकास और नैतिक चेतना का संवाहक** हैं। समकालीन लेखक और कलाकार इन मूल्यों को आधुनिक संदर्भों में ढालकर नई पीढ़ी तक पहुँचाते हैं।

योग, ध्यान और आध्यात्मिक जीवनशैली:

आधुनिक जीवन में तनाव और मानसिक दबाव बढ़ रहे हैं। ऐसे में योग और ध्यान के माध्यम से भारतीय सौंदर्य मूल्य व्यक्ति को मानसिक और भावनात्मक संतुलन प्रदान करते हैं। यहाँ सौंदर्य केवल बाहरी रूप में नहीं, बल्कि **आत्मसंतोष और मानसिक सौंदर्य** के रूप में प्रकट होता है।

स्थापत्य, वस्त्र और लोककला:

भारतीय वास्तुकला, मंदिर कला, हस्तशिल्प, वस्त्र और रंगोली में पारंपरिक सौंदर्य चेतना आज भी जीवित है। ये न केवल दृश्य रूप से आकर्षक हैं, बल्कि भारतीय जीवन-मूल्यों और सांस्कृतिक पहचान का प्रतीक भी हैं।

नैतिक और सामाजिक प्रासंगिकता:

भारतीय सौंदर्य मूल्य मानवीय गुणों, करुणा और सामाजिक उत्तरदायित्व को मजबूत करते हैं। आधुनिक समाज में जहाँ उपभोक्तावादी प्रवृत्तियाँ बढ़ रही हैं, वहां ये मूल्य **सांस्कृतिक संतुलन और सामाजिक नैतिकता** बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

चुनौतियाँ और संभावनाएँ

भारतीय सौंदर्य मूल्य और ज्ञान परम्परा आज भी समाज में अत्यंत प्रासंगिक हैं, किंतु समकालीन परिवेश में इनके सामने कई चुनौतियाँ भी हैं। इसके साथ ही, इन्हें संरक्षित और पुनः स्थापित करने की कई संभावनाएँ भी विद्यमान हैं।

चुनौतियाँ

1. **पाश्चात्य प्रभाव और वैश्वीकरण:** वैश्वीकरण और पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव ने भारतीय सांस्कृतिक व्यवहार और सौंदर्य चेतना में बदलाव लाया है। युवा पीढ़ी में पारंपरिक कलाओं, साहित्य और रीतियों के प्रति रुचि में कमी आई है। फैशन, विज्ञापन और मनोरंजन उद्योग ने सौंदर्य को तात्कालिक आकर्षण तक सीमित कर दिया है, जिससे पारंपरिक सौंदर्य मूल्यों का महत्व घट रहा है।

2. **उपभोक्तावाद और बाजारवाद: :** आधुनिक समाज में उपभोक्तावादी प्रवृत्तियाँ बढ़ रही हैं। सौंदर्य अब उत्पाद और वस्तु के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। इस प्रक्रिया में जीवन-दर्शन और नैतिक सौंदर्य की उपेक्षा हो रही है।
3. **सांस्कृतिक असंतुलन:** तेजी से बदलते सामाजिक और तकनीकी परिवेश में पारंपरिक और आधुनिक सांस्कृतिक मूल्यों के बीच असंतुलन उत्पन्न हो रहा है। युवा पीढ़ी सांस्कृतिक जड़ों से धीरे-धीरे कटती जा रही है, जिससे भारतीय सौंदर्य चेतना का निरंतर प्रवाह बाधित हो रहा है।
4. **शिक्षा में कमी:** भारतीय सौंदर्य मूल्य और ज्ञान परम्परा को आधुनिक शिक्षा में पर्याप्त रूप से शामिल नहीं किया गया है। स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय स्तर पर कला, संगीत, नृत्य, वास्तुकला और सांस्कृतिक अध्ययन का सीमित पाठ्यक्रम ही छात्रों को उपलब्ध है।

संभावनाएँ

1. **IKS आधारित शिक्षा और प्रशिक्षण:** भारतीय ज्ञान परम्परा और सौंदर्य मूल्यों को शिक्षा प्रणाली में शामिल किया जा सकता है। योग, ध्यान, कला और साहित्य के माध्यम से युवा पीढ़ी में सांस्कृतिक चेतना और नैतिक मूल्य विकसित किए जा सकते हैं।
2. **डिजिटल संरक्षण और प्रसार:** डिजिटल मीडिया, ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म और सोशल मीडिया का उपयोग कर भारतीय कला, संगीत, साहित्य और लोककला का संरक्षण और वैश्विक स्तर पर प्रसार किया जा सकता है।
3. **सांस्कृतिक पुनर्जागरण:** संगठित प्रयासों और शिक्षा-पद्धति के माध्यम से भारतीय सौंदर्य चेतना को समकालीन संदर्भ में पुनः स्थापित किया जा सकता है। यह न केवल सांस्कृतिक पहचान को मजबूत करेगा, बल्कि समाज में नैतिकता और संवेदनशीलता का भी विकास करेगा।
4. **वैश्विक स्तर पर स्वीकार्यता:** भारतीय कला, स्थापत्य, संगीत और साहित्य की विशिष्टता और सौंदर्य मूल्य विश्व स्तर पर सराहे जा रहे हैं। इन माध्यमों से भारत की सांस्कृतिक धरोहर का प्रचार-प्रसार और संरक्षण किया जा सकता है।

निष्कर्ष

भारतीय सौंदर्य मूल्य और ज्ञान परम्परा (IKS) प्राचीन काल से ही केवल कला-साहित्य या धार्मिक संदर्भों तक सीमित नहीं रहे, बल्कि जीवन-दर्शन, नैतिक चेतना और सांस्कृतिक पहचान के अभिन्न अंग रहे हैं। प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि ये मूल्य आज भी समकालीन समाज में अत्यंत प्रासंगिक हैं। वैश्वीकरण, डिजिटल मीडिया और उपभोक्तावाद के प्रभाव के बावजूद, भारतीय सौंदर्य मूल्य जीवन में **संतुलन, आंतरिक सुंदरता, नैतिकता और सामाजिक संवेदनशीलता** बनाए रखने में सक्षम हैं। सौंदर्य केवल इन्द्रियजन्य आकर्षण नहीं, बल्कि कर्मयोग, भक्ति और ज्ञान के माध्यम से आंतरिक चेतना का अनुभव है। *श्रीमद्भगवद्गीता* इस दृष्टि का सर्वोत्तम उदाहरण प्रस्तुत करती है, जहाँ सौंदर्य चेतना जीवन के प्रत्येक आयाम में व्याप्त है। आधुनिक समाज में यदि इन मूल्यों को शिक्षा, कला, संगीत, नृत्य, स्थापत्य और लोककला के माध्यम से पुनः स्थापित किया जाए, तो यह न केवल सांस्कृतिक पुनर्जागरण की दिशा में मार्गदर्शक सिद्ध होगा, बल्कि युवाओं में मानसिक संतुलन और सामाजिक उत्तरदायित्व भी विकसित करेगा। इस प्रकार यह निष्कर्ष सामने आता है कि भारतीय सौंदर्य मूल्य और ज्ञान परम्परा आधुनिक जीवन के लिए केवल ऐतिहासिक महत्व नहीं रखते, बल्कि वर्तमान और भविष्य की सांस्कृतिक, नैतिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं को पूरा करने में निर्णायक भूमिका निभा सकते हैं।

संदर्भ सूची

1. अभिनवगुप्त. (2014). *अभिनवभारती (नाट्यशास्त्र की टीका)*. दिल्ली: चौखम्बा संस्कृत सीरीज।
2. वेदव्यास. (2015). *श्रीमद्भगवद्गीता* (संपादित संस्करण). दिल्ली: राजपाल एंड संस।
3. शर्मा, आर. (2018). *Indian Knowledge Tradition: Concepts and Applications*. Delhi: Aryan Books।
4. त्रिपाठी, जी. (2020). “Relevance of Indian Aesthetic Values in Modern Society.” *Journal of Indian Cultural Studies*, 12(2), 45–58।
5. सरस्वती, डी. (2015). *Indian Aesthetics and Philosophy*. New Delhi: IGNCA।
6. मिश्रा, पी. (2019). *Cultural Values and Aesthetic Sensibilities in Indian Tradition*. Jaipur: Rawat Publications।
7. तिवारी, एस. (2021). “Indian Knowledge Systems (IKS) and Contemporary Cultural Relevance.” *Journal of Indian Philosophy & Culture*, 8(3), 67–85।

revakaleeswari1999@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 163-167
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

दलित आलोचना का बदलता परिदृश्य

पवन कान्त
शोध छात्र,
राजकीय महाविद्यालय पिहानी, हरदोई
संबद्ध हिंदी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्विधालय, लखनऊ (उ. प्र.)
डॉ. सुरेश कुमार
शोध-निर्देशक,
एसोसिएट प्रोफेसर, राजकीय महाविद्यालय, पिहानी, हरदोई (वर्तमान में)

सारांश - 1990 के दशक के बाद दलित आलोचना में तेजी से बदलाव आया है। यह दलितों के भोगे हुए यथार्थ और स्व-अनुभूति की प्रमाणिकता पर आधारित है। यह परम्परावादी और रूढ़िवादी सोच के विरोध में केन्द्रित है। यह विमर्श फुले-अम्बेडकर विचारधारा पर आधारित माना जाता है जिसमें शोषितो, वंचितों की व्यथा के अलावा समाज में समता, बन्धुत्वा और समानता पर जोर दिया जाता है। यह विमर्श दलितों के सशक्तिकरण की बात करता है। अब दलित आलोचना एक स्वतंत्र और मजबूत धारा के रूप में है।

बीज शब्द - दलित, रूढ़िवाद, शोषण, परम्परा, जाति-व्यवस्था, मानवता, वर्णव्यवस्था।

प्रस्तावना - हिन्दी दलित आलोचना का परिदृश्य वर्तमान में पहले जैसा नहीं रहा है, जो शुरुआती दौर में था। समय के साथ इसमें बदलाव आया है। शरण कुमार लिम्बाले का कहना है कि "साहित्य के अनुसार समीक्षा भी विकासशील है। साहित्य की यात्रा जैसे अलग-अलग युग में बदलती आ रही है, वैसे ही समीक्षा का स्वरुप भी बदलता आ रहा है।"[1] किसी भी नए सहित्यिक आन्दोलन के शुरूआती दौर में मौलिक कामो की तुलना में आलोचनात्मक और विश्लेषणात्मक काम आमतौर पर कम होते है। दलित चिंतन में भी ऐसा देखने को मिलता है। दलित साहित्य में सबसे पहले रचनाएँ सामने आयी, उसके बाद आलोचना का विकास हुआ। दलित आलोचना शुरुआत में ज्यादातर दलित लेखकों की पाई जाती है, बाद में मुख्यधारा के लेखकों की समीक्षाएँ मिलती है। लेकिन वर्तमान समय में दलित साहित्य की आलोचना थोड़े ही समय में अपने उच्चतम शिखर पर पहुंच गई है। दलित आलोचना को मौजूदा दलित साहित्य में सबसे ज्यादा चर्चित धारा माना जाता है। इस आलोचना ने पारंपरिक चिंताओं के बजाय लोकतान्त्रिक व्यवस्था की स्थापना पर जोर दिया है। दलित आलोचना की चर्चा ने शोषित और हाशिए पर पड़े समुदाय में बदलाव की इच्छा जगाई है, जिससे उनकी मुक्ति के नए रास्ते खोजे गए है। ओमप्रकाश वाल्मीकि का कहना है कि "दलित आलोचना जीवन तथा उसके यथार्थ को मानवीय दृष्टिकोण से देखने की समर्थक है"।[2] इसलिए दलित साहित्य की आलोचना ने भारतीय समाज में व्याप्त असमानता के विभिन्न

रूपों का खुलकर विरोध किया है और समाज में समानता के मूल्यों को स्थापित किया है। अभी तक हमारे बीच आलोचना के क्षेत्र में आने वाले दलित आलोचकों की संख्या बहुत ज्यादा नहीं है, डॉ. धर्मवीर, कँवल भारती, डॉ. एन. सिंह, डॉ. जयप्रकाश कर्दम, मोहनदास नैमिशराय, डॉ. कालीचरण स्नेही, श्यौराज सिंह बैचेन', डॉ. तेज सिंह, अनिता भारती, डॉ.रजतरानी मीनू जैसे कुछ ही हिन्दी दलित आलोचक हुए है। इधर हिन्दी दलित आलोचकों की युवा पीढ़ी में डॉ. रजनी दिसोदिया, डॉ. राम नरेश राम, डॉ. भूरेलाल, कैलाश दहिया, डॉ. दिनेश राम, डॉ. सुरेश कुमार और सूरज बड़त्या आदि के नाम लिए जा सकते है।

शोध-विस्तार - दलित आलोचना के शुरूआती दौर में कई सवाल थे, उनमे से कई सवाल अभी भी अनुत्तरित है। मुख्यधारा के हिन्दी आलोचकों ने शुरूआती दौर में दलित आलोचना की विचारधारा को नजरअंदाज किया था। हिन्दी आलोचकों में दलित साहित्य के प्रति लम्बे समय से उदासीनता देखी जा सकती है। मुद्राराक्षस इस चुप्पी और बेपरवाही का जिक्र करते हुए कहते है ""दलित-लेखन की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक वैचारिकता को लेकर हिन्दी आलोचना मासूमियत के साथ खामोश बनी रही। स्त्री-विमर्श और दलित-विमर्श को लेकर हिन्दी के महत्त्वपूर्ण बन गए हिन्दी-समीक्षक उबासी लेते रहे हैं।"[3] हालाँकि, दलित आलोचकों ने साहित्य में सोच और समझ की धारा को ही बदल दिया है, जिससे पुरानी साहित्यिक परम्पराओं में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए है।

दलित आलोचना की विचारधारा फुले और अम्बेडकर के संघर्ष पर आधारित है। इसमें सभी संशाधनो में दलितों की भागीदारी सुनिश्चित करने पर जोर दिया गया है। दलित आलोचना असल में यह पूछती है कि दलितों की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक दिशा क्या होनी चाहिए? और उनकी हालत कैसे सुधारी जा सकती है। इस मामले में दलित आलोचना का नजरिया मुख्यधारा की हिन्दी आलोचना से बिल्कुल अलग है, जिसने साहित्य में दबे-कुचले वर्ग को चर्चा का मुख्य विषय बना दिया है। यह दलित आलोचना की साफ़ नियत और समय पर की गई पहल है जिससे हिंदी आलोचना का विस्तार हुआ है।

दलित साहित्य के आलोचकों ने दलित चिंतन की प्रक्रिया को दो चिंतन धाराओं में विभाजित किया है। एक धारा वह है जिसमें सहानुभूति के आधार पर साहित्य लिखा जाता है। यह साहित्यिक आन्दोलन गैर-दलितों की बाहरी सोच के आधार पर लिखने में सक्रिय है। इस आन्दोलन के साहित्य में व्दिज लेखक आत्ममुग्ध दिखाई देते है। वे अपने मनोनुकूल साहित्य लेखन कर रहे है। जिससे इस धारा की लेखन प्रक्रिया में दलित पात्रों में चेतना का अभाव दिखाई देता है। दलित साहित्य की दूसरी धारा वह है जो दलितों की मुक्ति के लिए लेखन में सक्रीय है। इसमें लेखकों ने स्व-अनुभवों के आधार पर दलित चिंतन किया है। वर्तमान दलित साहित्य में सहानुभूति और स्वानुभूति दोनों तरह का चिंतन सक्रीय है परन्तु स्वानुभूति पर आधारित लेखन को ही मुख्य दलित लेखन की श्रेणी में रखा गया है।

आज दलित आलोचना की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि वह गैर-दलितों को दलित पीड़ा का अहसास कराने में सफल रही है। मनुवादी सोच के खण्डन में दलित आलोचना ने अपनी अहम भूमिका निभाई है। दलित विमर्श के बदलते माहौल को देखते हुए यह साफ़ है कि आलोचना का माहौल और सन्दर्भ समय के साथ बदल रहा है। दलित आलोचना साहित्य में दलित सन्दर्भ को सम्पूर्ण जीवंतता के साथ उभरता देखती है। साहित्य की लगभग सभी विधाओं में दलित साहित्य को अभिव्यक्ति मिली है। उसने उपन्यास, कहानी, नाटक, कविता और आत्मकथा आदि में दलित संवेदना को आक्रामक रूप से चित्रित किया है। दलितों की आत्मकथाएँ जिनमें ओमप्रकाश वाल्मीकि की जूठन, शरण कुमार लिम्बाले की 'अक्करमासी', तुलसीराम की 'मुर्दहिया और मणिकर्णिका, सूरजपाल चौहान की 'तिरस्कृत' ने हिन्दी में मौजूद परम्परागत मूल्यों को चुनौती दी है। दलित आलोचकों का कहना है कि दलित आत्मकथाओं ने अस्मिता और आत्मसम्मान के लिए हीनताबोध को तोड़कर साहित्य में नई चुनौती पेश की है। ऐसे ही दलित साहित्य के कथा लेखन में दलित संवेदनाओं की व्यापक दृष्टि

देखने को मिलती है। दलित साहित्य में काव्य में अनेक महाकाव्य और खण्डकाव्य रचकर दलित रचनाकारों ने ब्राह्मणवादी संस्कृति और जातिवाद का विरोध दर्ज किया है। अब दलित आलोचकों की अपनी स्वतंत्र पहचान स्थापित हो चुकी है।

दलित आलोचना के सामने मुख्य सवाल दलित पुरुषों और महिलाओ दोनों के लिए दलित मुक्ति का सवाल है। मुक्ति का यह सवाल आज भी तनकर खड़ा है। दलित साहित्य ने मुख्यधारा के साहित्य में दलित व्यक्ति की छवि को एक असहाय, बेकार और आलसी व्यक्ति से बदलकर एक संघर्षशील नायक में बदल दिया है। उसने दलित महिलाओं को बेसहारा और सेक्सी महिला से ऊपर उठाया है और उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा और गरिमा प्रदान की है। ओमप्रकाश वाल्मीकि व्दिज जातियों के लेखको की रचनाओं के बारे में कहते है कि - "उनमें मानवीय सम्वेदना का उदात्त रूप भी हो सकता है, यह उनकी कल्पनाओं की सीमा से बाहर है। इसी संस्कारशीलता के कारण, सूरदास, घीसू-माधो का चित्रांकन होता है। इसी चेतना के तहत कालीचरण (धरती धन न अपना) गाँव छोड़ देता है, परिशिष्ट् (गिरिराज किशोर) का नायक पागल हो जाता है। क्योंकि ये पात्र सीधे-सीधे टकराव की स्थितियों के निकट होते हुए भी, नहीं टकराने की स्थितियों में डाल दिए जाते हैं। या उन्हें यथास्थितिवाद की चपेट में उलझाकर कमजोर कर दिया जाता है।"[4]

दलित आलोचना में नारीवादी चिंतन पितृसत्ता, जातिवाद और आर्थिक शोषण के तिहरे उत्पीड़न को उजागर करता है यह 'दलित नारीवाद' के रूप में है, जो मुख्यधारा के नारीवाद से अलग है। यह जाति-आधारित यौन हिंसा और भेदभाव के अनुभवों पर केन्द्रित है। इसे लेखिका अनीता भारती और रजत रानी मीनू के कथा साहित्य में देख सकते है। अनिता भारती की 'एक लड़ाई की मौत', सीधा प्रसारण और एक थी कोतवाली कहानियों में परम्परागत और जातिगत जकड़न से मुक्ति का रास्ता है। डॉ.रजतरानी 'मीनू' का कहानी संग्रह 'हम कौन है?' में संकलित कहनियाँ ग्रामीण और शहरी स्त्री की पीड़ा को बयां करती है। वास्तव में इस विमर्श को उर्मिला पवार, सुशीला टांकभौरे, रजनी तिलक,अनिता भारती और रजतरानी मीनू आदि लेखिकाओं ने मुखरता दी है।

दलित आलोचना में एक बड़ा परिवर्तन गैर-दलितों की रचनाओं का दलित कसौटी पर रखकर परखना है। उसने दलित सन्दर्भो को दलित समाज के परिवेश से जोड़कर सन्दर्भित किया है। प्रेमचंद, निराला और नागार्जुन जैसे प्रगतिशील लेखकों के आलावा भी अनेक मुख्यधारा से जुड़े लेखकों ने दलित संदर्भो को अपने लेखन का जरिया बनाया है। परन्तु समस्या तब खड़ी होती है जब कोई दलित आलोचक गैर-दलित रचनाकारों के लेखन का आलोचनात्मक मूल्यांकन करता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते है कि "यदि कोई दलित आलोचक यह कहता है कि प्रेमचन्द दलित चेतना के लेखक नहीं हैं तो क्या इससे प्रेमचन्द की लेखकीय ऊँचाई घट जाती है। यदि यह कहा जाए कि प्रेमचन्द दलित सम्वेदना के लेखक हैं और उनके कथा-साहित्य में दलित जीवन स्थितियों का मार्मिक चित्रण मिलता है तो दलित चेतना और वैचारिकी का मुद्दा उठेगा ही नहीं। इस फर्क को न समझने की भूल करने वाले गैरदलित आलोचक प्रेमचन्द और निराला को अनावश्यक विवाद में घसीट लाते हैं। ऐसी अस्पष्टता और सोच से दलित और गैरदलित के बीच दूरियाँ और बढ़ेंगी ही। हिन्दी आलोचकों को पुनर्विचार करना चाहिए। समस्या का हल प्रतिक्रियावाद से नहीं किया जा सकता।"[5] इसलिए, दलित आलोचना ने मुख्यधारा के हिन्दी आलोचकों के दोहरे मापदंडो की आलोचना की है।

हिन्दी के दलित आलोचक किसी की परवाह किए बिना, हिन्दी के पारंपरिक तरीके से हटकर साहित्य की समीक्षा करते है। उनकी आलोचना का तरीका जीवन-उन्मुख है। रामचन्द्र शुक्ल, हजारी प्रसाद व्दिवेदी, रामविलास शर्मा और नामवर सिंह जैसे सुप्रसिध्द हिन्दी आलोचकों की आलोचना पध्दति में जंहा सत्यम,शिवम् और सुन्दरम की अवधारणा मौजूद है, वही दलित आलोचना ने दलित लेखन में मौजूद उत्पीड़न, दर्द और

आक्रोध को सौन्दर्यशास्त्र का मानदंड माना है। दलित आलोचकों ने मध्यकालीन संत रैदास और कबीर पर उनके आलोचनात्मक विचारों ने उनसे जुडी मिथकों और गुमराह करने वाली बातों को गलत साबित करने में काफी हद तक कामयाबी हासिल की है। डॉ. धर्मवीर पहले ऐसे विचारक है जिन्होंने आलोचकों से वैचारिक लड़ाई लड़कर अपने दलित सद्गुरुओं को बचाने और उनके इतिहास, दर्शन और धर्म को फिर से स्थापित करने में महत्वपूर्ण कार्य किया है।

दलित साहित्य की आलोचना में लगातार बदलाव आया है। यही कारण है कि हिन्दी आलोचना और दलित आलोचना के सौन्दर्यशास्त्र पर वैचारिक संघर्ष स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। आलोचक मुद्राराक्षस हिंदी आलोचना की कमजोरी बताते हुए लिखते है कि "हिन्दी आलोचना की कठिनाई यह है कि उसका अधिकाँश मूल्यों से जद्दोजहद करता है चाहे वे कला मूल्य हों या सामाजिक मूल्य। उसमें बहुत बड़ी जगह घेरती है सौन्दर्य की अवधारणा। दिलचस्प तो यह है कि समाज के मूल्यों को केन्द्र में रखने वाली आलोचना भी अन्ततः इसी बाड़े में आ खड़ी होती है। वह शुरू तो होती है सामाजिक सरोकारों के प्रति जिज्ञासा से लेकिन जल्दी ही उसकी पटरी बदल जाती है और वह सरोकारों में सौन्दर्य खोजने लग जाती है।"[6] हालाँकि, दलित आलोचक सौन्दर्यशास्त्र की पारंपरिक धारणा को नकारते है। इस सन्दर्भ में प्रेमचंद का कथन सटीक है कि "हमें सुन्दरता की कसौटी बदलनी होगी और हमें निश्चित ही विलासिता की मीनार से उतरकर उस बच्चों वाली काली रूपवती का चित्र खींचना होगा जो बच्चें को खेत की मेड़ पर सुलाकर पसीना बहा रही है।" [7] सुंदरता को लेकर बदलता नजरिया दलित चिंतन की प्रक्रिया में देखा जा सकता है। इस बारे में डॉ. एन. सिंह का कहना है कि "दलित साहित्य का शब्द-सौंदर्य प्रहार में है, सम्मोहन में नहीं। वह समाज और साहित्य में शताब्दियों से चली आ रही सड़ी-गली परंपराओं पर बेदर्दी से चोट करता है। वह शोषण और अत्याचार के बीच हताश जीवन जीनेवाले दलित को उसके अधिकारों के विषय में बतलाता है। उसे धर्म की भूल-भुलैया से निकालकर शोषण से मुक्ति का मार्ग दिखाता है। उसके लिए जिस शाब्दिक प्रहार क्षमता की आवश्यकता है, वह उसमें है, और यही दलित साहित्य का शिल्प-सौंदर्य है"।[8] इसीलिए दलित विचारकों ने दलित साहित्य में सौन्दर्यशास्त्र के विकास को दलित समाज में स्वतंत्र चेतना और अभिव्यक्ति जैसे तत्वों में निहित माना है।

निष्कर्ष - दलित आलोचना साहित्य, इतिहास, धर्म, संस्कृति और राजनीति का पुनर्मूल्यांकन करती है। उसने अपना दलित नजरिया विकसित किया है, जिसके आधार पर वह पुरानी स्थापनाओं को सवालों के घेरे में खड़ा करती नजर आती है। ये आलोचना समकालीन परिदृश्य में साहित्य का गंभीरता से मूल्यांकन कर रही है। दलित आलोचना के होने से आलोचना के क्षेत्र में एक हद तक बदलाव तो आया है। लेकिन अभी तमाम मुद्दों, घटनाओ, संस्कृति, साहित्य और इतिहास पर शोध होना बाकी बचा है।

सन्दर्भ सूची

1. हिन्दी दलित साहित्य का विकास, सम्पादक डॉ.प्रमोद कोवप्रद, लेख-दलित साहित्य : आलोचना का संकट, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृष्ठ- 17
2. वही पृष्ठ- 19
3. संपादक, टी. पी. राही, दलित संवेग, लेख- मुद्राराक्षस की आलोचना में स्त्री और दलित सन्दर्भ, संदीप कुमार सिंह, पृष्ठ-40
4. हिन्दी दलित साहित्य का विकास,सम्पादक डॉ.प्रमोद कोवप्रद, लेख-दलित साहित्य : आलोचना का संकट, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृष्ठ- 18
5. वही पृष्ठ - 15

6. संपादक, टी. पी. राही, दलित संवेग, लेख- मुद्राराक्षस की आलोचना में स्त्री और दलित सन्दर्भ, संदीप कुमार सिंह, पृष्ठ-40
7. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृष्ठ - 47
8. वही पृष्ठ - 48

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 168-171
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

वर्तमान संदर्भों में हिंदी साहित्य में LGBTQ+ विमर्श

LGBTQ+ Discourse in Contemporary Hindi Literature

जसवीर
शोधार्थी,
हिंदी विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक ,हरियाणा

सार (Abstract)
यह शोध-पत्र समकालीन हिंदी साहित्य में उभरते LGBTQ+ विमर्श का विस्तृत, विश्लेषणात्मक और आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। स्त्री, दलित और आदिवासी विमर्शों के पश्चात LGBTQ+ विमर्श हिंदी साहित्य में सामाजिक समावेशन के एक नए चरण को रेखांकित करता है। पूर्ववर्ती साहित्य में यह समुदाय या तो अनुपस्थित रहा या रूढ़ नैतिक छवियों में सीमित रहा, किंतु इक्कीसवीं सदी में कानूनी, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा डिजिटल परिवर्तनों के कारण पहचान, अस्मिता, प्रेम, आत्मस्वीकृति और अधिकार जैसे प्रश्न साहित्यिक विमर्श के केंद्र में आ गए हैं। यह अध्ययन दर्शाता है कि LGBTQ+ लेखन हिंदी साहित्य की भाषा, संरचना, दृष्टि और सौंदर्यबोध को पुनर्परिभाषित कर रहा है तथा उसे अधिक लोकतांत्रिक, समावेशी और मानवीय बना रहा है।

मूल शब्द: LGBTQ+, समकालीन हिंदी साहित्य, लैंगिक पहचान, अस्मिता, सामाजिक विमर्श, समावेशन

प्रस्तावना

साहित्य समाज की सामूहिक चेतना का संवेदनशील और ऐतिहासिक दस्तावेज़ होता है। सामाजिक संरचनाओं में होने वाले परिवर्तन, मानवीय संघर्ष और वैचारिक आंदोलन साहित्य में रूपांतरित होकर अभिव्यक्त होते हैं। भारतीय समाज लंबे समय तक लैंगिक द्वैत की संरचना में बँधा रहा, जहाँ स्त्री और पुरुष के अतिरिक्त किसी भी पहचान को सामाजिक वैधता नहीं मिली। इस व्यवस्था में LGBTQ+ समुदाय को हाशिए पर धकेल दिया गया, जिसका प्रभाव साहित्य पर भी स्पष्ट दिखाई देता है। हिंदी साहित्य में लंबे समय तक यह समुदाय मौन, उपेक्षा अथवा विकृत रूपों में ही उपस्थित रहा।

औपनिवेशिक काल और उसके बाद के हिंदी साहित्य में यौनिकता को नैतिक अनुशासन के कठोर ढाँचे में देखा गया। लैंगिक बहुलता को साहित्यिक विमर्श के योग्य नहीं माना गया, जिससे LGBTQ+ अनुभव अदृश्य बने

रहे। यह स्थिति दर्शाती है कि साहित्य भी समाज की वैचारिक सीमाओं से पूरी तरह मुक्त नहीं होता। किंतु जैसे-जैसे सामाजिक चेतना का विस्तार हुआ, वैसे-वैसे साहित्य की दृष्टि भी अधिक मानवीय और समावेशी होती चली गई।

समकालीन हिंदी साहित्य में LGBTQ+ विमर्श का विकास

इक्कीसवीं सदी के आरंभिक वर्षों में हिंदी साहित्य में LGBTQ+ विमर्श का व्यवस्थित और सशक्त उभार दिखाई देता है। वैश्वीकरण, शिक्षा का प्रसार, मानवाधिकार विमर्श, मीडिया विस्तार और डिजिटल संचार माध्यमों ने सामाजिक सोच को नई दिशा दी। विशेष रूप से धारा 377 के निरस्तीकरण ने भारतीय समाज में लैंगिक पहचान के प्रश्न को सार्वजनिक विमर्श का हिस्सा बनाया। इस सामाजिक-वैधानिक परिवर्तन का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा, जहाँ LGBTQ+ अनुभवों को अब अपराध या विचलन नहीं, बल्कि मानवीय अस्तित्व के स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा।

समकालीन हिंदी कथा साहित्य में LGBTQ+ पात्र अब निष्क्रिय या करुणा के पात्र नहीं हैं, बल्कि वे संघर्षशील, आत्मनिर्णय लेने वाले और सामाजिक संरचनाओं को प्रश्नांकित करने वाले व्यक्तित्व के रूप में उभरते हैं। उनकी कहानियों में पारिवारिक अस्वीकृति, सामाजिक बहिष्कार, मानसिक द्वंद्व, हिंसा और आत्मस्वीकृति की जटिल प्रक्रियाएँ संवेदनशीलता के साथ चित्रित होती हैं। इससे हिंदी कथा साहित्य का यथार्थबोध अधिक व्यापक और गहरा बनता है।

कविता के क्षेत्र में LGBTQ+ विमर्श अधिक आत्मकथ्यात्मक, भावनात्मक और प्रतिरोधात्मक रूप में सामने आता है। समकालीन कवि प्रेम, देह, पहचान, अकेलेपन और असुरक्षा के अनुभवों को नई काव्यात्मक भाषा में व्यक्त करते हैं। यह कविता सामाजिक नैतिकता की सीमाओं को चुनौती देती है और प्रेम को मानवीय संवेदना के सार्वभौमिक रूप में स्थापित करती है।

भाषा, शिल्प और सौंदर्यबोध में परिवर्तन

LGBTQ+ विमर्श ने हिंदी साहित्य की भाषा को अधिक आत्मीय, अनुभव-आधारित और संवादात्मक बनाया है। जहाँ पारंपरिक साहित्यिक भाषा नैतिक अनुशासन और संकेतों में बँधी रहती थी, वहीं समकालीन लेखन में लेखक अपने अनुभवों को सीधे, ईमानदार और निर्भीक स्वर में अभिव्यक्त कर रहे हैं। इससे साहित्यिक अभिव्यक्ति अधिक प्रामाणिक और जीवंत बनती है।

सौंदर्यशास्त्र के स्तर पर यह विमर्श प्रेम, संबंध और पहचान की परंपरागत अवधारणाओं को पुनर्परिभाषित करता है। हिंदी साहित्य में प्रेम अब केवल विषमलैंगिक संबंधों तक सीमित नहीं रह गया, बल्कि वह मानवीय अस्तित्व की समग्र अनुभूति बनता जा रहा है। इससे साहित्य की संवेदना अधिक व्यापक और समावेशी होती है।

डिजिटल माध्यम, आत्मकथात्मक लेखन और दृश्य संस्कृति

डिजिटल माध्यमों ने LGBTQ+ विमर्श को अभूतपूर्व विस्तार प्रदान किया है। ब्लॉग, सोशल मीडिया, वेब-पत्रिकाएँ, पॉडकास्ट और स्वतंत्र प्रकाशन मंचों ने उन लेखकों को मंच दिया है जिन्हें पारंपरिक प्रकाशन संस्थानों से स्थान नहीं मिला था। इससे साहित्य अधिक लोकतांत्रिक हुआ है।

आत्मकथात्मक लेखन इस विमर्श को सामाजिक प्रामाणिकता प्रदान करता है। LGBTQ+ समुदाय के लेखकों द्वारा लिखे गए जीवन-वृत्तांत व्यक्तिगत अनुभवों को सामाजिक दस्तावेज़ में रूपांतरित करते हैं। साथ ही हाल के वर्षों में निर्मित डॉक्यूमेंट्री फ़िल्में—जैसे *Beyond the Binary* (2022), *India's First Transgender

Election Campaign* (2023) और *Queer Campus* (2024)—इस विमर्श को दृश्य संस्कृति के माध्यम से व्यापक सामाजिक संवाद में बदल देती हैं।

LGBTQ+ अंतरराष्ट्रीय संदर्भ और तुलनात्मक दृष्टि

समकालीन हिंदी साहित्य में LGBTQ+ विमर्श को अंतरराष्ट्रीय संदर्भ में देखने से यह स्पष्ट होता है कि यह विमर्श केवल भारतीय समाज तक सीमित नहीं है, बल्कि वैश्विक क्वियर आंदोलनों, मानवाधिकार विमर्शों और साहित्यिक प्रवृत्तियों से निरंतर संवाद करता है। पश्चिमी देशों में 1960 के दशक के बाद विकसित हुए क्वियर आंदोलन—विशेषतः स्टोनवॉल आंदोलन—ने साहित्य को राजनीतिक चेतना और सांस्कृतिक प्रतिरोध का माध्यम बनाया। इस वैश्विक साहित्यिक चेतना का प्रभाव समकालीन हिंदी लेखन में भी देखा जा सकता है।

अमेरिकी, यूरोपीय और लैटिन अमेरिकी साहित्य में LGBTQ+ लेखन ने जिस प्रकार मुख्यधारा साहित्य में स्थान बनाया, उससे यह सिद्ध होता है कि साहित्य सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम बन सकता है। जेम्स बाल्डविन, जीन जेनेट, ऑड्री लॉर्ड और सारा अहमद जैसे लेखकों ने यौनिकता, पहचान और सत्ता-संरचनाओं के प्रश्नों को साहित्य के केंद्र में रखा। इन लेखकों के विचार अनुवाद, अकादमिक अध्ययन और डिजिटल माध्यमों के जरिए भारतीय साहित्यिक जगत तक पहुँचे।

हिंदी साहित्य में LGBTQ+ विमर्श पश्चिमी अनुकरण न होकर स्थानीय अनुभवों की मौलिक अभिव्यक्ति है। भारतीय संदर्भ में यह विमर्श परिवार, जाति, धर्म और समुदाय जैसी जटिल संरचनाओं से संघर्ष करता है। इस तुलनात्मक दृष्टि से यह स्पष्ट होता है कि हिंदी साहित्य का क्वियर लेखन वैश्विक विमर्श से संवाद करते हुए भी अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक विशिष्टता बनाए रखता है।

एशिया और अफ्रीका के साहित्य में LGBTQ+ लेखन समान सामाजिक चुनौतियों से जूझता हुआ दिखाई देता है। इन क्षेत्रों में क्वियर पहचान धार्मिक नैतिकता, सामाजिक निषेध और कानूनी प्रतिबंधों के बीच अभिव्यक्त होती है। इन अनुभवों की तुलना हिंदी साहित्य से करने पर यह स्पष्ट होता है कि हिंदी साहित्य का LGBTQ+ विमर्श वैश्विक दक्षिण के साहित्यिक संघर्षों से गहरे स्तर पर जुड़ा हुआ है।

अंतरराष्ट्रीय डॉक्यूमेंट्री फ़िल्में, वेब-सीरीज़ और दृश्य माध्यम भी इस विमर्श को वैश्विक आयाम प्रदान करते हैं। नेटफ्लिक्स, बीबीसी, अल-जज़ीरा और स्वतंत्र फ़िल्म मंचों पर प्रदर्शित क्वियर डॉक्यूमेंट्रीज़ ने लैंगिक पहचान के अनुभवों को वैश्विक संवाद का हिस्सा बनाया है। भारतीय डॉक्यूमेंट्री परंपरा भी अब इस वैश्विक दृश्य संस्कृति से जुड़कर साहित्यिक विमर्श को नया आयाम दे रही है।

इस प्रकार अंतरराष्ट्रीय संदर्भों में हिंदी साहित्य का LGBTQ+ विमर्श तुलनात्मक अध्ययन की एक समृद्ध भूमि प्रदान करता है। यह न केवल हिंदी साहित्य की वैश्विक उपस्थिति को सशक्त करता है, बल्कि यह भी सिद्ध करता है कि हिंदी साहित्य समकालीन वैश्विक मानवाधिकार और लैंगिक समानता विमर्श का सक्रिय सहभागी है।

सामाजिक अर्थवत्ता और आलोचनात्मक चुनौतियाँ

यद्यपि LGBTQ+ विमर्श हिंदी साहित्य में निरंतर विस्तार पा रहा है, फिर भी इसके समक्ष कई सामाजिक और आलोचनात्मक चुनौतियाँ मौजूद हैं। कई बार इसे पाश्चात्य प्रभाव कहकर नकार दिया जाता है, जबकि वास्तव में यह भारतीय समाज के भीतर मौजूद अनुभवों की अभिव्यक्ति है। यह संघर्ष ही इस साहित्य को अधिक प्रश्नवाचक और सशक्त बनाता है।

यह विमर्श हिंदी साहित्य को अधिक लोकतांत्रिक बनाता है क्योंकि यह उन अनुभवों को स्थान देता है जो लंबे समय तक मौन में रहे। इस प्रकार साहित्य बहुसंख्यक अनुभवों के दायरे से बाहर निकलकर समस्त मानवीय अनुभवों का प्रतिनिधि बनता है।

निष्कर्ष

इस विस्तृत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि समकालीन हिंदी साहित्य में LGBTQ+ विमर्श सामाजिक परिवर्तन की एक सशक्त वैचारिक धारा के रूप में स्थापित हो चुका है। यह विमर्श केवल पहचान की स्वीकृति नहीं, बल्कि साहित्यिक संरचनाओं, भाषा और सौंदर्यबोध के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया भी है। इसके माध्यम से हिंदी साहित्य अधिक समावेशी, लोकतांत्रिक और समकालीन बनता है। आने वाले समय में यह विमर्श हिंदी साहित्य की मुख्यधारा में निर्णायक भूमिका निभाएगा।

संदर्भ सूची (References)

1. बटलर, जूडिथ (2023). जेंडर ट्रबल: पहचान का विमर्श. रूटलेज.
2. फूको, मिशेल (2022). लैंगिकता का इतिहास. पेंगुइन.
3. जगोज़, एन्नामारी (2021). क्वियर थ्योरी: एक परिचय. एनवाईयू प्रेस.
4. संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (2023). एशिया में LGBTQ+ की कानूनी पहचान. यूएनडीपी रिपोर्ट.
5. ILGA वर्ल्ड (2024). ग्लोबल प्राइड एवं समानता रिपोर्ट.
6. यूनेस्को (2022). सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों में विविधता और समावेशन.
7. ह्यूमन राइट्स वॉच (2023). दक्षिण एशिया में LGBTQ+ अधिकार.
8. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, भारत (2022). ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के अधिकार.
9. डॉक्यूमेंट्री: *Beyond the Binary* (2022).
10. डॉक्यूमेंट्री: *India’s First Transgender Election Campaign* (2023).
11. डॉक्यूमेंट्री: *Queer Campus – Voices from Indian Universities* (2024).
12. समकालीन हिंदी पत्रिकाएँ – हंस, तद्भव, कथादेश (2021–2025).

Phone :9812070692

Email:jasvirphdhindi@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 172-175
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

ज्योतिष शास्त्र को आर्यभट्ट का योगदान : एक विश्लेषण

डॉ. ममता स्नेही
सहायक आचार्या,
विश्वविद्यालय स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग,
ल.ना.मि.विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार।

कूटशब्द – आर्यभट्टीयम्, नक्षत्र-व्यवस्था, काल-गणना, तिथि-निर्धारण, पंचांग-निर्माण।

भारतीय वाङ्मय का आरम्भ 'वेद' से माना गया है। वेदों में विहित कर्मानुष्ठान का समुचित काल जानने के लिए ज्योतिष शास्त्र का उपयोग होता है। वेदपुरुष के छः प्रधान अंग हैं - शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, निरुक्त और ज्योतिष। इन छः अंगों में ज्योतिष शास्त्र को वेदपुरुष का नेत्र कहा गया है – **'ज्योतिषामयनम् चक्षुः**[1]। सभ्य समाज में कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का निर्धारण करने में शास्त्रों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अतः समाज के चक्षुरूप में शास्त्रों का स्थान प्रथमतः आता है। उन शास्त्रों का चक्षु वेद है और वेद का चक्षु 'ज्योतिष' है। भारतीय ज्ञान परम्परा में ज्योतिष शास्त्र को वेदाङ्गों में एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, जिसका उद्देश्य काल-निर्धारण, ग्रह-नक्षत्रों की गति का अध्ययन तथा खगोलीय घटनाओं की वैज्ञानिक व्याख्या करना है। प्राचीन भारत में ज्योतिष केवल भविष्यवाणी तक सीमित न होकर गणित, खगोलशास्त्र और दर्शन से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध एक सुव्यवस्थित शास्त्र के रूप में विकसित हुआ। इसी सुदीर्घ परम्परा में पाँचवीं शताब्दी के महान् गणितज्ञ एवं ज्योतिर्विद आर्यभट्ट का नाम अत्यन्त गौरव के साथ लिया जाता है। उन्होंने ग्रहों की गति, नक्षत्र-व्यवस्था, तिथि एवं काल गणना, संवत्सर-निर्धारण तथा पंचांग-निर्माण जैसी जटिल प्रक्रियाओं को सूत्रात्मक रूप में प्रस्तुत किया। पृथ्वी के दैनिक घूर्णन के सिद्धान्त तथा ग्रहणों की छाया-सिद्धान्त पर आधारित व्याख्या ने ज्योतिषीय चिन्तन को दैवी कल्पनाओं से मुक्त कर तर्क और प्रमाण की दिशा में अग्रसर किया। इस शोधपत्र का उद्देश्य ज्योतिष शास्त्र में आर्यभट्ट के योगदान का सम्यक् विश्लेषण करना है, जिससे यह स्पष्ट किया जा सके कि उन्होंने किस प्रकार भारतीय ज्योतिष को एक वैज्ञानिक अनुशासन के रूप में प्रतिष्ठित किया। साथ ही उनके सिद्धान्तों की समकालीन प्रासङ्गिकता को समझाते हुए भारतीय विज्ञान-परम्परा में उनके स्थान का मूल्यांकन करना भी इस शोधपत्र का प्रमुख लक्ष्य है।

भारतीय ज्योतिष एवं गणितीय परम्परा में आर्यभट्ट द्वारा रचित 'आर्यभट्टीयम्' एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं प्रामाणिक ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ पाँचवीं शताब्दी में रचा गया, जिसमें ज्योतिष, खगोलशास्त्र तथा गणित का अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है। आर्यभट्ट ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'आर्यभट्टीयम्' के माध्यम से भारतीय ज्योतिष को

वैज्ञानिक एवं गणितीय आधार प्रदान किया। 'आर्यभट्टीयम्' के मुख्य दो भाग हैं। पहले भाग में गीति छन्द के 10 पद्य हैं, जिसमें ग्रहों के भगण (राशिचक्र-भ्रमण) के मान हैं। इस भाग को 'दशगीतिका' कहते हैं। दूसरे भाग में 3 प्रकरण हैं, इसमें आर्य छन्द में 108 श्लोक हैं। 'आर्यभट्टीयम्' कुल चार अध्यायों गीतिका, गणितपाद, कालक्रियापाद और गोलपाद में विभक्त है।

"गीतिका गणितं कालक्रिया गोलमेव च।
आर्यभटीयकं नाम ग्रन्थं प्रोक्तं मनीषिणा"[2] ॥

इन अध्यायों के माध्यम से आर्यभट्ट ने ग्रहों की गति, काल-गणना, नक्षत्र-व्यवस्था, ग्रहण-विज्ञान तथा खगोलीय संरचना का सूत्रात्मक और वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया। गीतिका अध्याय में युग, कल्प और काल-निर्धारण का वर्णन है, जबकि गणितपाद में अंकगणित एवं त्रिकोणमिति (ज्या-सिद्धान्त) का प्रतिपादन किया गया है, जो ज्योतिषीय गणनाओं का आधार है। कालक्रियापाद में तिथि, वार, मास एवं संवत्सर की गणना दी गयी है तथा गोलपाद में पृथ्वी की आकृति, ग्रहों की गति और ग्रहणों की वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। इस प्रकार 'आर्यभट्टीयम्' ज्योतिष को केवल फलादेश का शास्त्र न मानकर गणित एवं खगोल पर आधारित वैज्ञानिक अनुशासन के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

भारतीय ज्योतिष शास्त्र में काल-गणना (Time Computation) का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'आर्यभट्टीयम्' में उन्होंने तिथि, वार, नक्षत्र, मास, ऋतु तथा संवत्सर की गणना को गणितीय सूत्रों के माध्यम से स्पष्ट किया, जिससे समय निर्धारण अधिक सटीक एवं प्रमाणिक बन सका। आर्यभट्ट ने सूर्य और चन्द्रमा की गति के आधार पर तिथ-निर्धारण की वैज्ञानिक पद्धति प्रस्तुत की। उन्होंने सौर एवं चन्द्र गणनाओं के समन्वय द्वारा संवत्सर निर्धारण को व्यवस्थित किया, जिसका प्रभाव आगे चलकर भारतीय पंचांग परम्परा पर स्पष्ट रूप से दिखायी देता है। इस प्रकार उन्होंने पंचांग निर्माण को अन्धविश्वास से मुक्त कर गणितीय एवं खगोलीय आधार प्रदान किया।

भारतीय ज्योतिष एवं खगोल विज्ञान में ग्रहों की गति का अध्ययन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है। आर्यभट्ट ने इस विषय में परम्परागत धारणाओं से पृथक एक वैज्ञानिक एवं तर्कसंगत दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। 'आर्यभट्टीयम्' में उन्होंने ग्रहों की गति को सापेक्षता (Relative Motion) के सिद्धान्त के आधार पर समझाया तथा यह प्रतिपादित किया कि ग्रहों की प्रत्यक्ष गति में दिखायी देने वाला परिवर्तन प्रेक्षक की स्थिति पर निर्भर करता है। आर्यभट्ट का सर्वाधिक क्रान्तिकारी सिद्धान्त पृथ्वी के दैनिक घूर्णन (Rotation of Earth) से सम्बन्धित है। उन्होंने स्पष्ट किया कि आकाशीय पिण्डों की पूर्व से पश्चिम दिशा में प्रतीत होने वाली गति वास्तव में पृथ्वी के अपने अक्ष पर घूमने के कारण दिखायी देती है। यह विचार उस काल में अत्यन्त नवीन था और इसने ग्रहों की गति की वैज्ञानिक व्याख्या को नया आधार प्रदान किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने सूर्य और ग्रहों की वास्तविक गति को गणितीय सूत्रों द्वारा स्पष्ट कर ज्योतिषीय गणनाओं को अधिक यथार्थ बनाया।

"अनुलोमविलोमेन गत्याऽऽभासो ग्रहाणकः।
पृथिव्यां भ्रमणादेतत् नभः स्थिरमिव स्थितम्"[3] ॥

यह उक्त श्लोक आर्यभट्ट के सापेक्ष गति-सिद्धान्त को व्यक्त करता है, जिसके अनुसार ग्रहों की गति का आभास पृथ्वी के भ्रमण के कारण होता है, जबकि आकाश स्थिर प्रतीत होता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि आर्यभट्ट ने ग्रहों की गति को दैवी कारणों के स्थान पर प्राकृतिक और वैज्ञानिक नियमों से जोड़ा। उन्होंने स्पष्ट किया कि सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण किसी दैवी शक्ति या राहु केतु के निग्रह का परिणाम नहीं, अपितु सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा की विशिष्ट स्थितियों में उत्पन्न छाया प्रभाव के कारण घटित होने वाली खगोलीय घटनाएँ हैं।

आर्यभट्ट के अनुसार जब चन्द्रमा सूर्य और पृथ्वी के बीच आ जाता है, तब सूर्यग्रहण होता है तथा जब पृथ्वी सूर्य और चन्द्रमा के बीच स्थित होती है, तब चन्द्रग्रहण घटित होता है। इस छाया-सिद्धान्त ने ज्योतिषीय चिन्तन को अन्धविश्वास से मुक्त कर गणितीय और खगोलीय आधार प्रदान किया।

ग्रहण-विज्ञान में आर्यभट्ट का योगदान भारतीय ज्योतिषशास्त्र को वैज्ञानिक आधार प्रदान करने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ और आगे चलकर भास्कराचार्य जैसे आचार्यों के लिए भी प्रेरणास्रोत बना। आर्यभट्ट के छाया-सिद्धान्त के अनुसार ग्रहणों का कारण पृथ्वी की छाया को बताया गया है, न कि राहु-केतु की कोई दैवी क्रिया को बताया गया है।

"छायया पृथिवीभूतां चन्द्रसूर्यौ विनाशयेत्।
न राहुर्ग्रसते बिम्बं ग्रहणं कारणं तु सा"[4] ॥

भारतीय ज्योतिष शास्त्र में नक्षत्र-व्यवस्था का विशेष महत्त्व है, क्योंकि इसके माध्यम से ग्रहों की स्थिति, गति तथा काल निर्धारण किया जाता है। आर्यभट्ट ने 'आर्यभट्टीयम्' में नक्षत्रों एवं खगोलीय संरचना का वैज्ञानिक और गणितीय विवेचन प्रस्तुत किया। उन्होंने आकाशमण्डल को सुव्यवस्थित रूप में विभाजित कर ग्रहों और नक्षत्रों की सापेक्ष स्थिति का स्पष्ट निर्धारण किया, जिससे ज्योतिषीय गणनाएँ अधिक सटीक हो सकीं।

भारतीय ज्योतिष शास्त्र का आधार गणितीय सिद्धान्तों पर टिका हुआ है। आर्यभट्ट ने गणित को ज्योतिष से अभिन्न रूप से जोड़कर इसे एक सुसंगठित एवं वैज्ञानिक अनुशासन का स्वरूप प्रदान किया। 'आर्यभटीयम्' में उन्होंने अंकगणित, बीजगणित तथा विशेष रूप से त्रिकोणमिति (ज्या-सिद्धान्त) का विस्तृत विवेचन किया, जिसका प्रत्यक्ष उपयोग ग्रहों की गति, नक्षत्र-स्थिति, ग्रहण-निर्धारण तथा काल-गणना में किया जाता है। ज्योतिष शास्त्रीय इतिहास में आचार्य आर्यभट्ट प्रथम ज्ञात थे, जिन्होंने घनमूल एवं व्यवहार श्रेणियों के गणित का सुन्दर विवेचन किया है -

"वर्गाक्षराणि वर्गेऽवर्गेऽवर्गाक्षराणि कात्ङ्मौ यः।
खद्विनवके स्वरा नववर्गेऽवर्गे नवान्त्यवर्गे वा"[5] ॥

आर्यभट्ट द्वारा प्रतिपादित ज्या (sine) की सारणी भारतीय गणित एवं ज्योतिष की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि मानी जाती है। इसके माध्यम से उन्होंने वृत्त की परिधि, कोणों की माप तथा ग्रहों की कक्षीय गति की गणना को सरल और सटीक बनाया। ज्या एवं कोटिज्या जैसे गणितीय सिद्धान्त ग्रहों और खगोलीय गोलों की गणना में सहायक हैं तथा ज्योतिष का मूल आधार गणित ही है।

"ज्यया च कोटिज्यया चैव गणनं ग्रहगोलयोः।
सूत्रबद्धं मुनिर्वेद्यं ज्योतिषे गणिताश्रयम्"[6] ॥

भारतीय ज्योतिष परम्परा में फलित ज्योतिष (Predictive Astrology) का विशेष स्थान रहा है, जिसका उद्देश्य ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति के आधार पर मानव जीवन की घटनाओं का विवेचन करना है। आर्यभट्ट ने यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से फलित ज्योतिष पर ग्रन्थ नहीं लिखा, तथापि उनके गणितीय एवं खगोलशास्त्रीय सिद्धान्तों ने फलित ज्योतिष की प्रामाणिकता को सुदृढ़ आधार प्रदान किया। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि यदि ग्रहों की स्थिति, गति और काल-निर्धारण में गणनात्मक शुद्धता न हो तो, फलादेश भी अविश्वसनीय हो जाता है। आर्यभट्ट की दृष्टि में ज्योतिष का मूल आधार गणित और खगोल है। इसी कारण उन्होंने ग्रहों की दीर्घता, गति, उदय-अस्त तथा काल गणना को सूत्रबद्ध किया, जिससे जन्मकुण्डली निर्माण अधिक शुद्ध हो सका। उनके सिद्धान्तों के प्रभाव से फलित ज्योतिष में अन्धविश्वास की अपेक्षा तर्क और गणना को महत्त्व मिला। उत्तरवर्ती आचार्यों जैसे वराहमिहिर और भास्कराचार्य ने फलित ज्योतिष के विकास में आर्यभट्ट की गणितीय पद्धतियों का व्यापक उपयोग किया।

इस प्रकार आर्यभट्ट ने फलित ज्योतिष को दैवी कल्पनाओं पर आधारित शास्त्र न रहने देकर वैज्ञानिक अनुशासन की ओर अग्रसर किया। उनका अप्रत्यक्ष योगदान यह सिद्ध करता है कि शुद्ध गणना के बिना फलादेश की विश्वसनीयता सम्भव नहीं है। भारतीय ज्ञान परम्परा में दर्शन और विज्ञान का गहरा सम्बन्ध रहा है। आर्यभट्ट की दार्शनिक दृष्टि इस तथ्य को स्पष्ट करती है कि वे ज्योतिष शास्त्र को अन्धविश्वास या मिथकीय कल्पनाओं के आधार पर नहीं, अपितु तर्क, अनुभव और गणना पर आधारित विज्ञान के रूप में देखते थे।

'आर्यभट्टीयम्' में प्रतिपादित सिद्धान्त जैसे पृथ्वी का घूर्णन, ग्रहों की सापेक्ष गति और ग्रहणों का छाया-सिद्धान्त उनकी वैज्ञानिक चेतना का सशक्त प्रमाण हैं। आर्यभट्ट का दार्शनिक आधार यह था कि प्रकृति के नियम सार्वभौमिक और गणनात्मक हैं। उन्होंने ब्रह्माण्ड की घटनाओं को दैवी हस्तक्षेप से अलग कर प्राकृतिक कारणों से समझाने का प्रयास किया। यह दृष्टि भारतीय दर्शन के ऋत (Cosmic Order) की अवधारणा से मेल खाती है, जहाँ जगत् एक सुव्यवस्थित नियमबद्ध प्रणाली के रूप में देखा जाता है। इस प्रकार आर्यभट्ट ने ज्योतिष को भाग्यवाद से मुक्त कर पुरुषार्थ, बुद्धि और विवेक पर आधारित बनाया। इस प्रकार दार्शनिक दृष्टि और वैज्ञानिक चेतना के समन्वय से आर्यभट्ट ने भारतीय ज्योतिषशास्त्र को बौद्धिक परिपक्वता प्रदान की तथा उसे वैश्विक वैज्ञानिक चिन्तन की दिशा में अग्रसर किया।

इसी दृष्टि से आर्यभट्ट के सिद्धान्त आज भी समकालीन विज्ञान और ज्योतिष दोनों के लिए प्रेरणास्रोत हैं। इस प्रकार, आर्यभट्ट का योगदान केवल ऐतिहासिक महत्त्व तक सीमित न होकर आधुनिक वैज्ञानिक चिन्तन में भी सार्थक और उपयोगी सिद्ध होता है। प्रस्तुत शोधपत्र से यह स्पष्ट होता है कि आर्यभट्ट का योगदान भारतीय ज्योतिषशास्त्र को वैज्ञानिक आधार प्रदान करने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा है। उन्होंने ज्योतिष को केवल परम्परा और आस्था पर आधारित शास्त्र न मानकर उसे गणित, खगोलशास्त्र और तर्क से सम्बद्ध एक सुव्यवस्थित विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित किया। 'आर्यभट्टीयम्' के माध्यम से आर्यभट्ट ने काल-गणना, पंचांग-निर्माण, ग्रहों की गति, नक्षत्र-व्यवस्था तथा ग्रहण विज्ञान जैसे जटिल विषयों को सूत्रात्मक और वैज्ञानिक पद्धति से स्पष्ट किया। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आर्यभट्ट का योगदान केवल ऐतिहासिक नहीं, अपितु समकालीन और भविष्यगत वैज्ञानिक अध्ययन के लिए भी प्रेरणास्रोत है। उन्होंने भारतीय ज्योतिष शास्त्र को वैश्विक वैज्ञानिक परम्परा में सम्मानजनक स्थान दिलाने की सुदृढ़ आधारशिला रखी।

---

[1] पाणिनीय शिक्ष - 41, पृ. 30

[2] लोकोप्रसिद्ध श्लोक - 2, पृ. 29

[3] आर्यभट्टीयम् (गोल पाद) – 9, पृ. 87

[4] आर्यभट्टीयम् (गोल पाद) – 37, पृ. 103

[5] आर्यभट्टीयम् (गणित पाद) - 2, पृ. 16

[6] आर्यभट्टीयम् (गणित पाद) - 12, पृ. 21

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. आर्य्यभटीयम्, परमेश्वराचार्य, उदयनारायण वर्मा, ब्रह्मा प्रेस ईटावा, मुजफ्फरपुर, 1906
2. भारतीय ज्योतिष, डॉ० नेमीचन्द्र शास्त्री, उत्तरप्रदेश प्रकाशन, लखनऊ, 1976
3. सूर्य सिद्धान्त, आचार्य विश्वनाथ, वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई वि० स०, 2013
4. भारतीय ज्योतिष, शंकरबालकृष्ण दीक्षित, उत्तरप्रदेश शासन, लखनऊ, 1975

Email: mamtasnehi111@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 176-179
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

मनीषा कुलश्रेष्ठ के कथा साहित्य में व्यक्त मूल्य विघटन

हिमांशु नागदा
शोधार्थी (हिन्दी),
तुलनात्मक भाषा एवं संस्कृति अध्ययनशाला
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर, मध्यप्रदेश 452001
डॉ विजयलक्ष्मी पोद्दार
प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (हिन्दी),
एम.के.एच.एच गुजराती गर्ल्स कॉलेज, इंदौर, मध्यप्रदेश

सारांश

यह लेख शिक्षा और समकालीन समाज में व्याप्त मूल्य-विघटन की गंभीर समस्या को रेखांकित करता है। शिक्षा, जिसका उद्देश्य ज्ञान, विवेक और नैतिक चेतना का विकास था, आज राजनीति, जातिवाद, भ्रष्टाचार और स्वार्थ का साधन बनती जा रही है। मनीषा कुलश्रेष्ठ की विभिन्न कहानियों के संदर्भ में शैक्षणिक संस्थानों, प्रशासन, सैन्य व्यवस्था, महानगरीय संस्कृति और पारिवारिक संबंधों में नैतिक पतन का यथार्थ चित्रण हुआ है। धन और सत्ता की प्रधानता ने मानवीय संवेदनाओं, स्त्री-गरिमा, योग्यता और रिश्तों को हाशिए पर धकेल दिया है। यह स्थिति समाज के गहरे नैतिक संकट को उजागर करती है।

कुंजी शब्द — मनीषा कुलश्रेष्ठ, कथा साहित्य, मूल्य विघटन

मुख्यालेख

शिक्षा का मूल उद्देश्य ज्ञान का प्रसार कर व्यक्ति को अज्ञान के अंधकार से विवेक और प्रकाश की ओर ले जाना है। यह वह माध्यम है जिसके द्वारा न केवल व्यक्ति, बल्कि संपूर्ण समाज में नैतिक चेतना का संचार होता है। किंतु जब यही शिक्षा-व्यवस्था अपने नैतिक आधार से विचलित होने लगती है, तब उसका स्वरूप ज्ञान-दीपक न रहकर स्वार्थ-साधना का उपकरण बन जाता है। वर्तमान शैक्षणिक परिदृश्य में अध्यापक, कुलपति तक फैली अनैतिकता इस बात का प्रमाण है कि शिक्षा-संस्थाएँ गहन मूल्य-विघटन के दौर से गुजर रही हैं। स्वार्थप्रधान मानसिकता से ग्रस्त अधिकारी और शिक्षक शिक्षा को सेवा नहीं, बल्कि व्यवसाय मानकर धनार्जन का माध्यम बना चुके हैं। स्थानांतरण, नियुक्ति और पदोन्नति जैसी प्रक्रियाएँ योग्यता नहीं, बल्कि जोड़-तोड़ और लेन-देन पर आधारित हो गई हैं। इसी पीड़ा को मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानी 'शाश्वती' में शाश्वती के गुरु व्यक्त करते हैं। वह कहते हैं कि "शाश्वती, अब विश्वविद्यालयों में अच्छा माहौल नहीं रह गया है। राजनीति की जड़ें, जातिवाद की विष-बेल

छात्रों के मासूम दिलों तक फैल गई हैं।"[1] यह कथन इस तथ्य को उद्घाटित करता है कि जब शिक्षा-परिसर में राजनीति और जातिगत स्वार्थ प्रवेश कर जाते हैं, तब मानवीय और शैक्षणिक मूल्यों का क्षरण प्रारंभ हो जाता है।

शैक्षणिक संस्थानों में व्याप्त राजनीति ने रिश्वतखोरी को सामान्य व्यवहार में परिवर्तित कर दिया है। तबादले, प्रवेश, फाइलों की गति सभी कुछ धन पर आश्रित हो गया है। इस प्रक्रिया में नैतिकता, पारदर्शिता और उत्तरदायित्व जैसे मूल्यों का पूर्ण विघटन दिखाई देता है। बड़े से बड़े और छोटे से छोटे नेता सत्ता की जड़ें मजबूत करने के लिए संस्थानों पर दबाव बनाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप शिक्षक वर्षों तक दफ्तरों के चक्कर काटते रहते हैं। यह स्थिति दर्शाती है कि प्रशासनिक तंत्र में मूल्य आधारित निर्णय-प्रक्रिया का स्थान अवसरवाद ने ले लिया है। मूल्य-विघटन की यह स्थिति मनीषा कुलश्रेष्ठ की 'मास्टरनी' कहानी में और अधिक भयावह रूप में सामने आती है। कहानी की मुख्य पात्र सुषमा स्थानांतरण के लिए संघर्षरत है, किंतु प्रशासनिक व्यवस्था में मानवीय संवेदना का पूर्ण अभाव है। नौकरी, बसों की भीड़ और तबादलों की जद्दोजहद में वह अपने पारिवारिक दायित्वों का निर्वहन नहीं कर पाती। स्त्री होने के कारण उसे केवल एक कर्मचारी नहीं, बल्कि एक 'देह' के रूप में देखा जाता है। सुषमा को तब अपनी सहेली अल्पना की बात स्मरण हो आती है, "सीथे-सीधे काम नहीं बने तो मुस्कुराना और सस्ता बनना पड़ता है यहाँ। यह मुस्कुराना तो छोटे-मोटे पेपर्स पास करवाने, सर्विस पेपर आगे बढ़ाने के लिए है। बड़े कामों के लिए या तो रिश्वत हो या सिफारिश या फिर बिछो खुद फर्श पर।"[2] स्पष्टतः जब व्यवस्था नैतिक मूल्यों से शून्य हो जाती है, तब स्त्री की गरिमा भी सौदे का विषय बन जाती है।

प्रशासनिक व्यवस्था में 'रिवार्ड' जैसे शब्द नैतिक पतन के नए रूप हैं। "मैडम, मंत्री के खास आदमी मेहता जी तो मिल गए, दोपहर एक बजे तक यहीं पहुँच भी जाएँगे। थोड़े स्पष्टवादी है, कह रहे थे काम तो हो जाएगा पर रिवार्ड चाहिए।"[3] यहाँ रिवार्ड वस्तुतः रिश्वत का शिष्ट रूप है, जो मूल्य-विघटन को सामाजिक स्वीकृति दिलाता है। जब तक धन या सिफारिश न हो, व्यक्ति वर्षों तक व्यवस्था की चक्की में पिसता रहता है।

कहानी 'अवक्षेप' में शासकीय आदिवासी छात्रावास की स्थिति मूल्य-विघटन की पराकाष्ठा को दर्शाती है। आदिवासी कल्याण के नाम पर राजनीति वोट-बैंक साधती है, जबकि भीतर स्त्री देह का खुला शोषण होता है। छात्रावास की मैट्रन स्वयं इस अनैतिक व्यवस्था की संरक्षक बन जाती है। बेनु का कथन इस अमानवीयता को उजागर करता है, "पैले के दो महीने की छातरवर्ती इंचारज ने अटका रखी हैं पाँच सौ पूरे तो कभी देता ही नहीं। खा-पीके दो सी टिकाता है, फेर भी चार सी बनते हैं, मिलते ही दे दूँगी।"…"ऐसा क्यों करता है?"…"करता है, उसके बाप का राज है, नहीं करेगा अगर उसके बिस्तर पे कपड़े काढ़ के... रॉड रा"…"पुलिस?"…"वो हमारे यहाँ की दोनों कंजड़िनें हैं न, उनको ले जाके इंचारज पुलिस को खुश रखता है।"[4]

यह स्थिति प्रमाणित करती है कि जब शासन, प्रशासन और पुलिस तीनों मूल्यहीन हो जाएँ, तब पीड़िता के लिए न्याय की कोई संभावना शेष नहीं रहती।

हालाँकि व्यवस्था में कुछ ईमानदार अधिकारी भी हैं, किंतु चापलूसी और स्वार्थपरकता उनके लिए घुटन का कारण बन जाती है। 'भगोड़ा' कहानी में लेखिका ने सेना और वायुसेना जैसे अनुशासित संस्थानों में भी व्याप्त मूल्य-विघटन को रेखांकित किया है। कहानी में लेखिका ने एयर फोर्स में युवाओं के साथ असमान व्यवहार के कारण को बताते हुए भ्रष्ट व्यवस्था, चापलूसी, दम तोड़ती काबिलियत, युवाओं की हताशा, कुंठित आदर्श, औपचारिकता

---

[1] मनीषा कुलश्रेष्ठ, बौनी होती परछाई (दिल्ली मेघा बुक्स, 2003), पृ. 52

[2] मनीषा कुलश्रेष्ठ, कुछ भी तो कमानी नहीं (उत्तर प्रदेश अंतिका प्रकाशन, 2008), पृ. 65

[3] मनीषा कुलश्रेष्ठ, कठपुतलियाँ (दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ, 2008), पृ. 93

[4] वही, पृ. 97

और कृत्रिमता आदि का बेवाकी से चित्रण किया है। प्रशान्त जैसे कर्मठ युवा योग्यता और परिश्रम के बावजूद उपेक्षित रह जाते हैं, क्योंकि वहाँ चापलूसी योग्यता से अधिक मूल्यवान हो चुकी है। प्रशान्त व्यवस्था में फैली भ्रष्टता व चापलूसी को अभिव्यक्त करते हुए कहता है कि "सोलह जहाजों की स्कवाड्रन में दस जहाज खराब पड़े थे। छह जहाजों से वरिष्ठ अधिकारों अपने उड़ान घंटे बढ़ाने की जुगाड़ में लगे रहते थे। कमांडिंग ऑफिसर का दबाव इस हद तक बना रहता कि... आरम्भ ही से उस पर हताशा तारी होने लगी थी। उसकी स्पष्टवादिता, उसका टॉपर होना उसके कमांडिंग ऑफिसर के अहम् के लिए कष्टकारी होने लगा था। वह तटस्थ रहा करता था, जबकि उसके अन्य कोर्समेट्स या उसके सीनियर कोर्स के अफसर सी.ओ. के आगे झुके रहते और उसके घर आया-जाया करते। एक वर्ष के भीतर ही वह यह महसूस करने लगा था कि अब यह अपनी काबिलियत और अनुशासित व्यवहार के बल पर नहीं, चापलूसी से ही बढ़ सका तो आगे बढ़ सकेगा।"[5] यह कथन स्पष्ट करता है कि जब संस्थागत मूल्य टूटते हैं, तब प्रतिभा हाशिए पर चली जाती है और व्यवस्था भीतर से खोखली हो जाती है।

वर्तमान समय में समाज में अर्थ को सर्वोच्च मूल्य के रूप में स्थापित कर दिया गया है। धन अब केवल आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन न रहकर जीवन के उद्देश्य का रूप ग्रहण कर चुका है। अर्थ की इस बढ़ती महत्ता ने मनुष्य को अर्थकेन्द्रित बना दिया है, जिसके परिणामस्वरूप मानवीय संवेदनाएँ और जीवन मूल्य क्रमशः क्षीण होते जा रहे हैं। आज व्यक्ति के लिए संबंधों की अपेक्षा आर्थिक लाभ अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है। इसी मूल्य-विघटन के कारण कुछ संतानें अपने माता-पिता को केवल भौतिक सुख-सुविधाएँ प्रदान करने का माध्यम मात्र समझने लगी हैं। उनके जीवित रहने या मृत्यु से जूझने की स्थिति से उनका कोई भावनात्मक सरोकार नहीं रह गया है। इस कटु यथार्थ का सशक्त चित्रण मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानी 'ओ मरियम' में मिलता है। कहानी में कथावाचिका की वृद्धा माँ अस्पताल के आई.सी.यू. में जीवन और मृत्यु से जूझ रही है और वहीं उसके बेटे थन-सम्पति की लालसा में "आई.सी.यू. में बिल और वकील ले आये थे।"[6] यह कथन व्यक्ति की अर्थलोलुप प्रवृत्ति को उजागर करता है। यह स्थिति व्यक्ति के जीवन मूल्यों के गहन विघटन को संकेतित करती है।

महानगरीय जीवन पूरी तरह से अर्थकेन्द्रित हो चुका है, जहाँ संबंध, भावनाएँ और नैतिकता आर्थिक लाभ की कसौटी पर आँकी जाने लगी हैं। कहानी 'ये कुछ लोग! कुछ संबंध' में महानगरीय संस्कृति से प्रभावित जीवन-शैली का यथार्थ चित्रण मिलता है। विरेन्द्र, जो स्वयं मुम्बई में मॉडलिंग कर चुका है, वहाँ की मूल्यहीनता को व्यक्त करते हुए कहता है, "सब की सब अपने फीमेल होने का जमकर फायदा उठाती हैं। वहाँ प्रोफेशनलिज्म इस कदर हावी है कि किसी लड़की को न्यूड मॉडलिंग के ज्यादा पैसे मिले तो वह खुशी-खुशी वही कर डालती है।"[7] अर्थ की प्रधानता ने नैतिक मूल्यों को पीछे धकेल दिया है। आगे बढ़ने और सफल होने की होड़ में युवक-युवतियाँ संबंधों को साधन की तरह प्रयोग करने लगते हैं। इसी कहानी में वीरेन्द्र अपनी मित्र रमा माथुर को बताता है, "जगह की कमी थी, लड़की डीसेंट थी। सोचा ठीक चला तो... शादी कर लेंगे। पर एक मॉडलिंग ऑफर और रैम्प पर जाने की महत्वकांक्षा के कारण वह एक फोटोग्राफर के साथ घूमने लगी।"[8] युवा वर्ग अनजाने में स्वयं को शोषण के इस चक्र में फँसा लेता है, जो मूल्य ह्रास का ही प्रतिफल है।

मूल्य-विघटन का सबसे संवेदनशील रूप वृद्ध माता-पिता के संदर्भ में दिखाई देता है। कहानी 'परिभ्रान्ति' में वृद्ध पिता भौतिक सुख-सुविधाओं से युक्त कमरे में एकाकी जीवन व्यतीत करता है। उन्हें "अपना बड़ा-सा

---

[5] मनीषा कुलश्रेष्ठ, (नयी दिल्ली राजकमल प्रकाशन, 2010), पृ. 68-69

[6] मनीषा कुलश्रेष्ठ, अनामा, पृ. 72

[7] मनीषा कुलश्रेष्ठ, बौनी होती परछाई, पृ. 85

[8] वही, पृष्ठ 85

सर्वसुविधायुक्त कमरा बच्चों ने मुहैया करवा रखा था। ए.सी., टी.वी., फलों व स्वस्थ्य पेयों व उनकी दवाओं से घिरा छोटा फ्रिज, दो अखबार, स्टडी टेबल, बेड साइड लैम्प। कमरे से लगा गर्म-ठंडे पानी की सुविधा वाला बाथरूम। इससे अधिक आदर्श स्थिति क्या हो सकती थी एक एकाकी विधुर की अपने बेटों के घर में।"[9] लेखिका यहाँ 'आदर्श स्थिति' कहकर अर्थकेन्द्रित समाज पर व्यंग्य करती हैं। यह सुविधा-संपन्न वातावरण मानवीय निकटता का विकल्प नहीं बन सकता। भावनाओं की अभिव्यक्ति वस्तुओं से नहीं, बल्कि संबंधों से होती है। केवल भौतिक सुविधाएँ उपलब्ध करवा देना और भावनात्मक दायित्व से मुक्त हो जाना बच्चों में व्याप्त अर्थकेन्द्रिता और पारिवारिक मूल्यों के विघटन को उजागर करता है।

आधुनिकता ने व्यक्ति को धीरे-धीरे स्वार्थ की दिशा में अग्रसर कर दिया है। आज का मनुष्य मुख्यतः अपने हितों को केंद्र में रखकर जीवन जी रहा है। अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए वह अनुचित कार्य करने से भी नहीं हिचकता। इसी कारण आधुनिक व्यक्ति के जीवन में रिश्तों और प्रेम का महत्त्व कम होता जा रहा है। समाज में स्वार्थ की प्रवृत्ति तीव्र रूप धारण कर चुकी है। व्यक्ति दूसरों के प्रति दायित्व निभाने के स्थान पर केवल अपने लाभ पर ध्यान देता है। वह अपने सामाजिक और व्यक्तिगत अस्तित्व में केवल अपनी अहमियत बनाए रखना चाहता है। मनीषा कुलश्रेष्ठ जी ने 'कुछ भी तो रूमानी नहीं' कहानी-संग्रह में कहानी 'पॉजिटिव' में आज की आधुनिकता का वर्णन किया है। वे कहती है "शुरू में स्टैला डर जाती थी कि अब नहीं लौटेगा, पर वह हर बार लौट आता। यहाँ लौटना उसकी जरूरत थी। वह भारतीय नागरिकता चाहता था। वह पिता बनने के लिए कभी तैयार नहीं था मगर स्टैला के लिए माँ बनना उसके लिए भविष्य की किसी सुरक्षानिधि में वर्तमान को रखने जैसा था। कोई उसका अपना।"[10]

निष्कर्ष

इस प्रकार मनीषा कुलश्रेष्ठ ने अपनी रचनाओं में भ्रष्टाचार, चापलूसी, शोषण, सत्ता-संरक्षण तथा अर्थ-प्रधान प्रवृत्तियों की जो झलक दिखाई, वो मूलत: समकालीन समाज में व्याप्त मूल्य-विघटन की ही अभिव्यक्तियाँ हैं। शिक्षा, प्रशासन और सुरक्षा संस्थाओं से लेकर पारिवारिक जीवन तक नैतिक आधार के क्षरण ने समाज को भीतर से खोखला कर दिया है। वही अर्थ की अतिशय महत्ता ने मानवीय संबंधों, संवेदनाओं और दायित्वबोध को कमजोर किया है। जिसके परिणामस्वरूप माता-पिता के प्रति उदासीनता, संबंधों का व्यावसायीकरण और नैतिक मूल्यों का ह्रास दिखाई देता है। लेखिका का कथा-संसार इस सामाजिक यथार्थ का केवल चित्रण नहीं करता, बल्कि पाठक को मूल्यबोध की पुनर्स्थापना हेतु गंभीर चिंतन के लिए प्रेरित भी करता है।

Karandip5610@gmail.com

[9] मनीषा कुलश्रेष्ठ, कठपुतलियाँ, पृ. 76

[10] मनीषा कुलश्रेष्ठ, बौनी होती परछाई, पॉजीटिव, पृ॰ 56

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 180-185
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

भारतीय साहित्य के संवर्द्धन एवं प्रसार में अनुवाद की भूमिका

डॉ. राजेश कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर,
हिंदी विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, रोहतक

शोध सार:- भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति बहुभाषिक रही है। इसी कारण भारतीय साहित्यकारों द्वारा विभिन्न भाषाओं में साहित्य सृजना की गई है। भारतीयों द्वारा रचित यह साहित्य भारतीय साहित्य की श्रेणी में आता है। इस साहित्य के अध्ययन-आस्वादन एवं प्रचार-प्रसार हेतु अनुवाद की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। अपनी कुछ सीमाओं के होते हुए भी अनुवाद ने भारतीय साहित्य को संवर्द्धित किया है तथा उसे संपूर्ण विश्व में एक पहचान दिलाई है। भारतीय साहित्यकार अनुवाद के माध्यम से ही विश्व भर में प्रसिद्धि पाते हैं। इतना होते हुए भी उच्च स्तरीय अनुवाद की कमी एवं तत्संबंधी कठिनाइयों के कारण भारतीय साहित्य के सर्वोत्तम का अभी तक वैश्विक स्तर पर पहुंचना शेष है। प्रस्तुत शोध-पत्र में भारतीय साहित्य के संवर्द्धन एवं प्रसार में अनुवाद की भूमिका एवं तत्संबंधी चुनौतियों का विश्लेषण किया गया है।
बीज-शब्द :- भारतीय साहित्य, अनुवाद, शब्दानुवाद, अर्थ-ग्रहण, भावानुवाद, छायानुवाद, व्याख्यानुवाद, अनुसृजन, संवर्धन, वैश्विक प्रसार।

मूल आलेख :-

भारतीय साहित्य से तात्पर्य उस साहित्य से है जो भारतीयों द्वारा लिखा गया है। इसमें संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं उर्दू के साथ-साथ आधुनिक भारतीय भाषाओं में लिखा गया साहित्य भी समाहित है। भारतीय साहित्यकारों द्वारा अंग्रेजी भाषा में रचित साहित्य भी भारतीय साहित्य की श्रेणी में ही आता है। भारतीय साहित्य की संकल्पना में इन सभी भाषाओं का साहित्य एक इकाई के रूप में समायोजित होता है। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति बहुभाषिक रही है। इसी कारण भारतीय साहित्य के अध्ययेता के लिए एक से अधिक भारतीय भाषाओं का ज्ञान आवश्यक है। परंतु विचारणीय प्रश्न है कि कोई व्यक्ति अधिकतम कितनी भाषाएँ सीख सकता है? ऐसी स्थिति में भारतीय साहित्य का संपूर्णता से अध्ययन-आस्वादन एवं प्रचार-प्रसार अनुवाद से ही संभव है। साहित्य के संवर्द्धन एवं प्रसार में अनुवाद की भूमिका के विश्लेषण से पूर्व साहित्यिक अनुवाद की अवधारणा को समझना आवश्यक है।

कैटफोर्ड के अनुसार "स्रोत भाषा की पाठ सामग्री को लक्ष्य भाषा की समानांतर पाठ सामग्री से प्रतिस्थापन ही अनुवाद है।"[1] विल्हेम वॉन हमबोल्ट का मानना है, "अनुवाद से कोई एक भाषा-भाषी वर्ग अर्थ और अभिव्यक्ति के नए

प्रयोगों से परिचित होकर अपने ज्ञान के क्षितिज का विस्तार कर पाता है।"[2] साहित्य के संदर्भ में स्रोत भाषा की पाठ सामग्री के समानांतर लक्ष्य भाषा की पाठ सामग्री की उपलब्धता असंभव की सीमा तक कठिन है क्योंकि प्रत्येक भाषा के रूप और अर्थ की संरचना भिन्न होती है। भाषाओं में सांस्कृतिक संबद्धता जितनी कम होती है उनके रूप एवं अर्थ की संरचना उतनी ही भिन्न होती है। दूसरे, लेखक और अनुवादक की अभिव्यक्ति शैली भी एक समान नहीं हो सकती। इसीलिए अनुवाद एक प्रकार से पुनर्सृजन ही है, जिसमें अनुवादक को कुछ छोड़ना तथा कुछ जोड़ना पड़ता है। इस संदर्भ में इंद्रनाथ चौधरी दो समीकरण प्रस्तुत करते हैं__ "क-ख = मूल के अधिक निकट और क-ख+ग = मूल से अधिक दूर।"[3] यहॉं 'क' मूल कृति; 'ख' अनुवाद करते समय मूल कृति से लोप होनेवाले तत्व तथा 'ग' मूल में अनुवादक की तरफ से जोड़े जानेवाले तत्व का द्योतक है। जॉन ड्राइडन अनुवाद के तीन प्रकारों का उल्लेख करते है_ पहला मैटाफ्रैज, जहॉं शब्दशः अनुवाद किया जाता है; दूसरा पैराफ्रैज, जहॉं अनुवादक अपनी ओर से पर्याप्त स्वतंत्रता लेता है और तीसरा इमिटेशन, जहॉं अनुवादक मूल से मात्र कुछ संकेत ग्रहण करता हुआ पूर्ण स्वतंत्रता के साथ रचना का पुनर्सृजन करता है।[4] जॉन ड्राइडन द्वारा प्रदिपादित पैराफ्रैज एवं इमिटेशन भावानुवाद ही है और साहित्य का अनुवाद भावानुवाद ही होता है, शब्दानुवाद नहीं। आधुनिक काल में अनुवाद विधा के प्रस्तोता भारतेंदु हरिश्चंद्र भी शाब्दिक अनुवाद के स्थान पर भावानुवाद स्थापित करने के पक्षपाती थे।[5]

अनुवाद प्रक्रिया में अनुवादक कृति के अर्थ एवं भाव को हृदयंगम करते हुए उसकी आत्मा तक पहुंचता है तथा अनुवाद के रूप में उसकी पुनर्व्याख्या करता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र के अनुसार, "बिना पूर्व-कवि के हृदय-से-हृदय मिलाए अनुवाद करना शुद्ध झख मारना ही नहीं, कवि की लोकोत्तर स्थित आत्मा को नरक कष्ट देना है।"[6] साहित्यिक कृति में साहित्यकार की विशिष्ट अनुभूति अपने चरम पर होती है जबकि अनुवाद में कुछ भी अंतिम नहीं होता। अलग-अलग अनुवादकों द्वारा किया गया प्रत्येक अनुवाद एक नई साहित्यिक कृति होती है। भारतीय अनुवाद परिषद् की संस्थापिका डॉ. गार्गी गुप्त कहती है, "हमारे यहॉं अनुवाद को सृजन का अनुसृजन ही माना गया है।"[7] अनुवादक के लिए कृति की मूल भावना को आत्मसात् करते हुए गहन अनुभूति प्राप्त करना तथा आवश्यक सृजनात्मक स्वतंत्रता लेते हुए उसे प्रकट करना अपेक्षित है। स्पष्ट है कि श्रेष्ठ साहित्यिक अनुवाद इंद्रनाथ चौधरी के 'क-ख+ग' तथा जॉन ड्राइडन के पैराफ्रैज एवं इमिटेशन के अंतर्गत ही समाविष्ट हो सकता है तथा साहित्य के संवर्द्धन एवं प्रसार में अनुवाद के महत्व को इसी अवधारणा से समझा जा सकता है।

फिट्जर्ल्ड द्वारा उमर खय्याम की रूबाइयों का अनुवाद पैराफ्रैज अनुवाद है। इसमें मूल कृति का साहित्यिक सौंदर्य अक्षुण्ण रहा है, इसीलिए यह पर्याप्त लोकप्रिय हुआ। तुलसीदास की अर्द्धाली "गिरा अनयन, नयन बिनु वानी"[8] के समभाषिक शाब्दिक अनुवाद "जिह्वा नेत्र विहीन है, नेत्र जिह्वा विहीन" के स्थान पर जब गीतकार आनन्द बख्शी ने मूल भाव को संरक्षित रखते हुए इसे "ना जुबां को दिखाई देता है, ना निगाहों से बात होती है"[9] किया तो अधिक प्रभावी बन गया। अनुवादक की रचनात्मक स्वतंत्रता के कारण ही अनूदित कृति भिन्न भाषा-भाषी लोगों के अंतस् में न केवल अर्थ-ग्रहण, वरन् अनुभूति के स्तर पर भी इतनी सहजता से उतर जाती है कि वे उसे अपनी ही भाषा की कृति मानने लगते हैं। बांग्ला उपन्यासकार शरद चंद्र की रचनाएँ इसका सशक्त उदाहरण हैं। उनके बांग्ला उपन्यास क्षेत्रीय भाषाओं तक में अनूदित होकर जनमानस में लोकप्रिय हुए हैं। अंग्रेजी में अनूदित होकर ही टैगोर कृत गीतांजलि संसार भर में प्रसिद्ध हुई और नोबेल पुरस्कार पा सकी। डेजी रॉकवैल ने जब 'Tomb of Sand' शीर्षक से गीतांजलि श्री के उपन्यास 'रेत समाधि' का अंग्रेजी में अनुवाद किया तो यह न केवल पाश्चात्य जगत् तक पहुंचा वरन् बुकर प्राइज हेतु भी चुना गया।

"कबीरा खड़ा बाजार में, लिए लकुटी हाथ। / जो घर फूंके आपना, चले हमारे साथ" को जब मज़रूह सुल्तानपुरी ने "जला के मिशअल-ए-जाँ हम जुनूँ-सिफ़ात चले / जो घर को आग लगाए हमारे साथ चले"[10] के रूप में कहा तो यह एक नया शेर या अशआर बन गया। इसी प्रकार दिनेश दाधिची विलियम वर्ड्सवर्थ की कविता 'The world is too much with us' का भावानुवाद 'दुनियादारी में डूबे हम'[11] के रूप में करके एक नई कविता की सृष्टि कर देते हैं। तुलसीदास द्वारा रामराज्य-वर्णन की पंक्तियाँ_ "सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।।"[12]_ वाल्मीकि रामायण में रामराज्य वर्णन के निम्न श्लोक का भावानुवाद प्रतीत होती ै_

"ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःशूद्रालोभविवर्जिताः।
स्वकर्मसु प्रवर्तन्ते तुष्टाः स्वैरेव कर्मभिः।।"[13]

वस्तुत: अनुवाद किसी भी भाषा की सामग्री को संचरन के सामान्य स्तर पर लाकर सुविधाजनक ढंग से पुनः प्रकट करना है, जिससे पाठक मूल रचना के रसास्वादन तक पहुंच सकें। जिन अनुवादकों ने आवश्यक सृजनात्मक स्वतंत्रता लेते हुए ईमानदारीपूर्वक अनुवाद-कर्म किया उन्हें अनुवाद-विशेषज्ञों की प्रशंसा मिली तथा वे रचनाएँ पर्याप्त लोकप्रिय हुईं।

सत्रहवीं शताब्दी में बांग्ला कवि अलाउल ने सुप्रसिद्ध सूफी काव्य पद्मावत का अनुवाद 'पद्मावती' शीर्षक से बांग्ला भाषा में किया। " 'पद्मावत' और 'पद्मावती' की तुलना करने पर पता चलता है कि अलाउल ने जायसी का अनुकरण करते हुए भी बहुत-सी बातों में पूर्ण स्वच्छंदता ली है। अत: 'पद्मावती' अक्षरश: अनुवाद न होकर छाया रूपांतर है।"[14] श्री छगनलाल पंड्या ने बाणभट्ट की कादंबरी का गुजराती में अनुवाद किया। वह अत्यंत लोकप्रिय हुआ तथा आज भी कादंबरी के एक अधिकृत अनुवाद के रूप में मान्य है। कादंबरी को ही राधावल्लभ त्रिपाठी ने हिंदी गद्य में व श्री ताराशंकर तारकरत्न ने अंग्रेजी में अनूदित किया। विजय तेंदुलकर के मराठी नाटक 'शान्तता! कोर्ट चालू आहे' को डॉ. पद्मजा घोरपडे ने 'खामोश! अदालत जारी है' शीर्षक से हिंदी में अनुदित किया तथा यह हिंदी साहित्य के विद्यार्थियों के अध्ययन का विषय बना।

भारत में अनुवाद का व्यवहार वैदिक काल से ही आरंभ हो गया था। वैदिक साहित्य में आक्षेप और समाधान की परम्परा रही है। इसे भाष्य के रूप में जाना जाता है। वैदिक साहित्य का भाष्य आज भी उपलब्ध है। वेद संहिताएँ, वेदांत तथा ब्राह्मण एवं आरण्यक ग्रंथों में वेद मंत्रों को व्याख्यायित किया गया है। रामायण और महाभारत काल में टीका लिखने की परम्परा विकसित हुई जो रीतिकाल तक जारी रही । गुणाढ्य द्वारा पैशाची लिपि में लिखित बृहत्कथा को आचार्य क्षेमेंद्र ने 'बृहत्कथा मंजरी' तथा' आचार्य सोमदेव ने 'कथा सरित सागर' नाम से संस्कृत में अनूदित किया। ये दोनों संस्कृतचार्यों द्वारा पर्याप्त समादृत हुई। ईसा पूर्व पाँचवी से दूसरे शताब्दी के मध्य तमिल कवियों के सम्मेलनों में रचित संगम साहित्य अनुवाद के माध्यम से ही संस्कृत एवं अन्य भारतीय भाषाओं में रूपांतरित हुआ। 'चाणक्य नीति' और कालीदास कृत 'मेघदूतम्' तथा 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' जैसी रचनाएँ भी अनूदित होकर विभिन्न भाषा-भाषी पाठकों के ध्यानाकर्षण का केंद्र बनी। पंचतन्त्र का वैश्विक प्रसार भी अनुवाद के महत्व को दर्शाने हेतु एक सुन्दर उदाहरण है। "नीति की शिक्षा के लिये पंचतन्त्र की ख्याति सुनकर मामानी के बादशाह अनुशीरवान्न (531-79 ई.) ने बुजुर्गमेह अथवा बुर्जुई नाम के अपने वज़ीर, जो एक चिकित्सक भी बताये गये हैं, को पंचतन्त्र की प्रति प्राप्त करने के लिये भारत भेजा। पंचतन्त्र का पहलवी भाषा में अनुवाद बुर्जुई ने ही किया।"[15]

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने कृष्ण भक्ति के प्रचार-प्रसार हेतु भागवत का व्याख्यानुवाद 'भागवत की सुबोधिनी टीका' नाम से किया। महाभारत, जिसे भारतीय संस्कृति का रूपाख्यान कहा जाता है, के परिष्कृत और परिवर्द्धित स्वरुप के

कारण ही श्री कृष्ण के देव रूप एवं मानव रूप का वर्णन विविध सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भों में किया जा सका। भक्ति काल में ही कवि रामराय ने जयदेव कृत 'गीत गोविन्द' का 'गीतगोविन्द भाषा' शीर्षक से ब्रजभाषा में अनुवाद किया। मूलत: संस्कृत में प्रणीत राम और कृष्ण के आख्यानक अनेक भाषाओं से गुजरते हुए क्षेत्रिय बोलियों तक पहुंचे तथा लोकगीतों तक का रूप धारण करके जनमानस में प्रचलित हुए। "लोगों ने रामायण और महाभारत महाकाव्यों के मूल दो चरित्र राम और कृष्ण के अवतार को जीवन की कहानी के रूप में समझा और पढ़ा - विभिन्न भाषाओं और युगों, विभिन्न शैली और रूपों में इन दो महाकाव्यों का रूपांतरण हुआ है : लोकरूपों, नाट्यरूपों, गीतों में चुने हुए दृश्यों या कथाओं को यथार्थरूप में या नाट्यधर्मी (stylized) ढंग से अलग-अलग दृष्टिकोणों की सहायता से प्रकट किया गया है। अनुवाद के इस रूप को अनुकृति एवं अर्थक्रिया की सहायता से समझा जा सकता है। इन प्राधिकृत (defenitive) अनुवादों की विश्वसनीयता पर किसी ने प्रश्न नहीं उठाया। जब इन महाकाव्यों का इस प्रकार से अनुसृजन हुआ तब स्थानीय जनता ने इसे स्वीकार कर लिया।"[16] सन् 1800 ई. में फोर्ट विलियम कॉलेज, कलकत्ता की स्थापना के बाद डॉ. जॉन गिलक्राइस्ट की प्रेरणा से संस्कृत की अनेक रचनाओं का अनुवाद ब्रज भाषा और खड़ी बोली गद्य में किया गया। इनमें पं. सदल मिश्र द्वारा यजुर्वेद, कठोपनिषद एवं पुराणों में वर्णित चंद्रावती एवं नासिकेत की कथा तथा संस्कृत के 'अध्यात्म रामायण' का खड़ी बोली में किया गया गद्यानुवाद विशेष उल्लेखनीय हैं। इस संदर्भ में पं. सदल मिश्र ने लिखा है, "अब संवत् 1860 में नासिकेतोपाख्यान को जिसमें चंद्रावली की कथा कही गई है, देववाणी में कोई समझ नहीं सकता। इसलिए खड़ी बोली में किया।"[17] इसी प्रकार लल्लूलाल ने चतुर्भुज दास विरचित 'भागवत' का गद्यानुवाद 'प्रेमसागर' शीर्षक से खड़ी बोली में किया। अंग्रेजी औपनिवेशिक काल में ही हैलहेड, तथा मैक्समूलर जैसे विदेशी विद्वानों ने संस्कृत में उपलब्ध कानून, धर्मशास्त्र, साहित्य एवं अन्य हिंदू ग्रंथो का अनुवाद करके भारतीय साहित्य एवं संस्कृति का व्यापक प्रसार किया।

किसी भी भारतीय भाषा का साहित्य कितना महत्वपूर्ण है, यह इस बात पर निर्भर है कि उसका कितना साहित्य हिंदी में अनूदित हुआ है। क्षेत्रीय भाषा का साहित्य हिंदी में अनूदित होकर ही देश के अधिकांश भागों तक पहुंचता है तथा उसका प्रसार-क्षेत्र विस्तृत होता है। "बीसवीं शती के आरंभिक दो दशकों में गुजरात के साहित्यकारों ने रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानंद का साहित्य अनूदित करके प्रदेश के शिक्षित वर्ग को परोसकर उसे नई दिशा में सोचने-समझने के लिए प्रेरित कर दिया था।"[18] दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा ने श्री वे० आंजनेय शर्मा, श्री बालशौरि रेड्डी, श्री गुप्तनारायण दास आदि की सहायता से तमिल, तेलुगु, मलयालम तथा कन्नड भाषाओं के बारह कहानीकारों की कहानियों का अनुवाद 'दक्षिणी कथाएँ' शीर्षक से प्रकाशित कराया। संत कबीर, नामदेव, नरसी मेहता, तुलसीदास, तुकाराम, बुल्लेशाह, रवींद्रनाथ ठाकुर, शिवशंकर पिल्लै, सुब्रमण्यम भारती, प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, महाश्वेता देवी, बंकिमचंद्र चटर्जी, शरत् चंद्र चटर्जी, अमृता प्रीतम, नित्यानंद महापात्र, गोपीनाथ मोहंती, भूपेन हजारिका प्रभृति अनेक भारतीय साहित्यकारों द्वारा प्रणीत साहित्य अनुवाद के माध्यम से ही वैश्विक साहित्य बना। प्रेमचंद के 'निर्मला', 'गबन', 'गोदान' आदि, जयशंकर प्रसाद के 'कंकाल' और 'तितली', भगवतीचरण वर्मा का 'चित्रलेखा', धर्मवीर भारती का 'गुनाहों का देवता', वृंदावनलाल वर्मा का 'मृगनयनी' और फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आंचल' अंग्रेजी में अनूदित होकर विभिन्न देशों के पाठकों तक पहुंचे। मीर, ग़ालिब, फ़ैज़, इक़बाल आदि की उर्दू शायरी और मंटो, बेदी, इंतजार हुसैन, प्रेमचंद आदि के गल्प व फ़साने भी अनुवाद एवं लिप्यंतरण के माध्यम से ही हिंदी प्रमाता तक पहुंचते हैं।

अनुवाद की अवधारणा को व्यापक रूप में ग्रहण करते हुए भावानुवाद एवं छायानुवाद का आश्रय लेकर भारतीय भाषाओं के साहित्य को सिने विधा में रूपांतरित किया गया। इससे उसके प्रचार-प्रसार को नये आयाम मिले। शरत् चंद्र के बांग्ला उपन्यास 'देवदास' के अनुवाद पर जब हिंदी में फ़िल्म बनी तब वह इतना लोकप्रिय हुआ कि उस पर विभिन्न

भाषाओं में अनेक फ़िल्में बनाई गई। बांग्ला में रचित उनकी अन्य कृतियों जैसे बिराज बहू, सौतेला भाई, पंडित मोशाय और स्वामी पर भी हिंदी में फ़िल्में बनाई गईं जिनसे इन कृतियों का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। इसी प्रकार बांग्ला के अन्य साहित्यकारों_ रविंद्रनाथ टैगोर (‘काबुलीवाला’, ‘नौका डूबी’- घूंघट', ‘चोखेरबाली', ‘अतिथि - गीत गाता चल', और ‘समाप्ति - उपहार’), महाश्वेता देवी (‘रुदाली’ और 'हजार चौरासी की माँ'), बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय (‘मशाल’ और 'आनंद मठ'), सुबोध घोष (‘अजंनगढ़’, ‘सुजाता’, 'चितचकोर’ ‘गोत्रांत – एक अधूरी कहानी' और ‘इज़ाजत’) समरेश बसु (‘पार', ‘किताब’, ‘अंकल बसंत - नमकीन', ‘छोतिर पांडे - सफेद झूठ' और 'राम नाम केवलम् - शौकीन'), नवेंदु घोष (‘तृषाग्नि’), विमल मित्र (साहब, बीवी और गुलाम), इंद्रमित्र (मेरे अपने), राजकुमार मित्र (रंगीन उत्तरायन – परिचय), नारायण सान्याल (सत्यकाम), रामपद चौधरी (बीज - एक दिन अचानक), सुनील बंदोपाध्याय (शोध), प्रमेंद्र मित्र (खंडहर), दिब्येंदु पलित (घरबारी - अंधी गली), मैत्रेयी देवी (एक पल) आदि की रचनाओं के हिंदी भावानुवाद एवं छायानुवाद भी सिनेमा के माध्यम से पर्याप्त लोकप्रिय हुए।

इसी प्रकार गुजराती की ‘सरस्वतीचंद्र' (श्री गोवर्धनराम त्रिपाठी), मराठी की ‘दो रास्ते’ (चंद्रकांत काकोडकर), ‘निशांत' और ‘आक्रोश’ (विजय तेंदुलकर), ‘भूमिका' (हंसा वाडेकर), ‘चक्र’ और 'राव साहब' (जयंत दलवी), ‘होली' और ‘पार्टी’ (महेश एल कुंचवार), अनकही (सी.टी. खनोलकर); संस्कृत की ‘मृच्छकटिक’ - ‘उत्सव’ (शूद्रक), पंजाबी की ‘पिंजर’ (अमृता प्रीतम), उड़िया की ‘मृगया’ (भगवती चरण पाणिग्रही), कन्नड़ की ‘घटश्राद्ध’ - ‘दीक्षा’ (यू.आर.अनंत मूर्ति), उर्दू की ‘एक चादर मैली-सी’ (राजेंद्र सिंह बेदी) और अंग्रेजी की ‘गाइड’ (आर.के. नारायण), ‘राही' (मुल्कराज आनंद), ‘एंड वन डिड नॉट कम बैक' – ‘डॉ. कोटनीस की अमर कहानी' (ख़्वाजा अहमद अब्बास) आदि साहित्यिक रचनाओं का मूल कथ्य एवं केंद्रीय भाव भी सिनेमा के कलेवर में ढलकर देश-विदेश के विभिन्न क्षेत्रों तक पहुंचा।

अनुवाद कार्य के प्रति बढ़ता हुआ आकर्षण भारतीय साहित्य के संवर्द्धन एवं वैश्विक प्रसार में अनुवाद के महत्व का द्योतक है। “उत्तर-उपनिवेशवाद के इस युग में भारतीय भाषाओं के लेखकों में एक नई प्रवृत्ति दिखाई पड़ी है कि उनमें अपनी कृतियों के अंग्रेजी अनुवाद की होड़ लगी हुई है। इस प्रकार के अनुवाद से साहित्य और भाषाओं का विस्तार ही ो रहा है।”[19] भारतीय साहित्य के प्रसार में अनुवाद के महत्व को स्वीकार करते हुए वरिष्ठ कवि एवं विचारक अजित कुमार लिखते हैं, ”यह कौन नहीं जानता कि अखिल भारतीय लेखन की जो भी यत्किंचित पहचान देश में बन सकी है, उसका श्रेय मुख्यतः हिंदी में हुए अनुवाद को है।”[20] इसी प्रकार प्रोफेसर पूरनचंद टंडन अपने व्याख्यान ‘हिंदी का वैश्विक विकास और अनुवाद' में कहते हैं, “दुनिया आज अगर हिंदुस्तान की मान्यताओं को स्वीकार कर रही है, उनका अनुसरण कर रही है तो उसके मूल में हिंदी में काम करनेवाले अनुवादकों की भूमिका स्तुत्य है, प्रशंसनीय है, इसे नकार नहीं सकते।”[21]

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि अनुवाद ने, अपनी कुछ सीमाओं के होते हुए भी भारतीय साहित्य को संवर्द्धित किया है तथा उसे संपूर्ण विश्व में एक पहचान दिलाई है। अनुवाद के माध्यम से ही कालिदास, प्रेमचंद और रविंद्रनाथ टैगोर विश्व भर में प्रसिद्धि पाते हैं। परंतु फिर भी उच्च स्तरीय अनुवाद की कमी एवं तत्संबंधी कठिनाइयों के कारण भारतीय साहित्य के सर्वोत्तम का अभी तक वैश्विक स्तर पर पहुंचना शेष है।

संदर्भ-सूची :

1. Catford, J.C., A Linguistic Theory of translation, London,1974, P. 20.

2. https://www.researchgate.net/publication/306061915_The_Theory_of_Linguistic_Worldview_by_Wilhelm_Von_Humboldt_and_Its_Connection_with_the_Culture_of_Sign_Language.
3. इंद्रनाथ चौधरी, तुलनात्मक साहित्य : भारतीय परिप्रेक्ष्य, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्र. सं. 2014, पृ. स.124.
4. Dryden, J., Fables Ancient and Modern Translated into Verse From Homer, Ovid, Boccace and Chaucer: With Original Poems,1700.
5. डॉ. कैलाशचंद्र भाटिया, अनुवाद कलाः सिद्धांत और प्रयोग, पृ. 105.
6. उपर्युक्त, पृ. सं. 105.
7. संक. अनुसृजन : डॉ गार्गी गुप्त स्मृति अनुवाद-ग्रंथ, प्र. भारतीय अनुवाद परिषद, नई दिल्ली; उद्धृत - अनुवादक की विडंबना, ले.- जे. एल. रेड्डी, समकालीन भारतीय साहित्य नवंबर-दिसंबर 2005, प्र. साहित्य अकादमी नई दिल्ली, पृ. सं. 175.
8. श्रीयुत गोस्वामितुलसीदासजी कृत-रामायण, पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र कृत सञ्जीवनी टीक़ा, मुद्रक-प्रकाशक:खेमराज श्रीकृष्णदास श्रीवेङ्कटेश्वर स्टीम् प्रेस, बम्बई, संवत्1991,बालकाण्ड, पृ.सं. 203.
9. हिन्दी फ़िल्म – 'माई लव', (1970), निर्देशक : एस. सुखदेव।
10. ग़ज़ल के फूल, संपा. डॉ. शमीम अहमद; प्रथम संस्करण 2014, प्र. : एम. आर. पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, पृ. स. 39.
11. https://youtu.be/9i6dKkfJ2bc?si=AvKKIiu6rAJmwlvM
12. श्रीयुत गोस्वामितुलसीदासजी कृत - रामायण, उत्तरकाण्ड, पृ. सं. 991.
13. श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण (प्रथम/द्वितीय भाग), अनुवाद पंडित रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम', प्रकाशक : गीताप्रेस, गोरखपुर-273005, संवत् 2017, श्लोक-128, पृ. सं. 104.
14. हिन्दी विश्वकोश, खण्ड -1, प्रकाशकः नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संकलनः भारत डिस्कवरी पुस्तकालय, पृ. सं. 256.
15. काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के मालवीय मूल्य अनुशीलन केन्द्र द्वारा आयोजित व्याख्यानमाला में प्रो.राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा 'भारतीय ज्ञानपरम्पराएँ - कल, आज और कल' विषय पर व्याख्यान, स्रोत- https://youtu.be/WhbACIXTtwg?si=icTZKv0nzXwDpSlP
16. इंद्रनाथ चौधरी, तुलनात्मक साहित्य : भारतीय परिप्रेक्ष्य, पृ. स. 141.
17. जिज्ञासा : चन्द्रावती अथवा नासिकेतोपाख्यान pramathesh.blogspot.com
18. विवेकानंद एवं पंडित युगीन गुजराती साहित्य, ले. बंसीधर, संक. समकालीन भारतीय साहित्य, संपादक : प्रभाकर श्रोत्रिय, प्रकाशक : साहित्य अकादमी नई दिल्ली, मई-जून 2012, पृ.सं. 248.
19. इंद्रनाथ चौधरी, तुलनात्मक साहित्य : भारतीय परिप्रेक्ष्य, पृ. स. 147.
20. समकालीन भारतीय साहित्य, संपादकीय, मई-जून 2012, पृ. सं. 6.
21. प्रो.पूरनचंद टंडन, स्रोत - https://youtu.be/qJuOD_sxsBw?si=bIKaqkwevmJPXZYd

चलभाष : 9896321474 Email: drrajeshgautam2020@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 186-190
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

शिक्षण को प्रभावित करने वाले कारक और आज की शिक्षण पद्धति

Dr. Lathif Ahamed B
HOD & Assistant Professor,
Department of Hindi, St. Francis College Bengaluru – 560034

शोधसार Abstract

प्रस्तुत शोध लेख आधुनिक परिवेश में शिक्षण की प्रक्रिया, उसे प्रभावित करने वाले विविध कारकों और वर्तमान समय की तकनीकी शिक्षण पद्धतियों का विस्तृत विश्लेषण करता है। शोध लेख में इस बात पर बल दिया है कि शिक्षण केवल सैद्धांतिक ज्ञान प्रदान करना नहीं है, बल्कि छात्र के व्यवहार और व्यक्तित्व में सकारात्मक परिवर्तन लाने की एक सामाजिक प्रक्रिया है। लेख में शिक्षक की योग्यता, छात्रों के मनोशारीरिक स्तर और भौतिक सुविधाओं जैसे कारकों की चर्चा की गई है जो सीखने की प्रक्रिया को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। विशेष रूप से, वैश्विक आपदाओं (जैसे कोविड-19) के संदर्भ में पारंपरिक शिक्षण के स्थान पर तकनीकी उपकरणों जैसे इंटरनेट, पी.पी.टी और ऑनलाइन कक्षाओं की बढ़ती अनिवार्यता को रेखांकित किया गया है। अंततः, यह लेख '5E' मॉडल (सहभागिता, खोज, वर्णन, व्याख्या और मूल्यांकन) के माध्यम से शिक्षण को अधिक संरचनात्मक और छात्र-केंद्रित बनाने का सुझाव देता है।

शोध बिन्दु

1. शिक्षण अधिगम
2. बाल-केंद्रित शिक्षा
3. तकनीकी शिक्षण
4. 5E मॉडल
5. बहुस्तरीय बुद्धिमत्ता

भूमिका

सुशिक्षित प्रजा या छात्र ही प्रत्येक राष्ट्र का भविष्य निर्धारण करनेवाला सूत्रधार होता है। इस दिशा में छात्र को उचित वातावरण में आधुनिक तथा संतुलित तकनिकी शिक्षण प्रधान करना प्रत्येक राष्ट्र का आद्य कर्तव्य होता है। तभी छात्र तथा राष्ट्र का सर्वांगीण विकास साध्य है। आज के वैज्ञानिक तथा बदलते हुए परिवेश के दौर में जीवन तथा शिक्षण दोनों जटिल एवं परिवर्तित होते जा रहे हैं। इस जटिल एवं परिवर्तनशील संसार में छात्र को केवल सैद्धांतिक ज्ञान देने मात्र से काम नहीं चल सकता बल्कि बाह्य एवं आंतरिक वातावरण के उपयुक्त तकनिकी शिक्षण

प्रविधि तथा पद्धतियों के समायोजन से व्यवस्थित शिक्षण प्रदान करना अत्यावश्यक एवं अनिवार्य बनगया है। इसी लिए "शिक्षा को किसी राष्ट्र में परिवर्तन लाने के लिए शक्तिशाली उपकरण माना गया है"[1]।

शिक्षण का अर्थ

शिक्षा वह सामाजिक प्रक्रिया है जो आदिकाल से औपचारिक और अनौपचारिक रूप से चली आ रही है। शिक्षा शब्द की उत्पत्ति "**शिक्ष**" धातु से हुई है जिस का सामान्य अर्थ है पढ़ाना, सिखाना या ज्ञान प्रदान करना। शिक्षण, शिक्षक और शिक्षार्थी के उपस्थिति में संपन्न होने वाली एक ऐसी प्रक्रिया है जिस में पाठ्यक्रम को माध्यम बनाकर परिपूर्ण ज्ञान उपलब्ध कराया एवं कुशल सिखाया जाता है, अर्थात मानव के व्यक्तित्व और व्यवहार में परिवर्तन लाने की परिपूर्ण प्रक्रिया शिक्षण है। शिक्षण का मूल लक्ष्य छात्र में ज्ञानात्मक और व्यावहारिक बदलाव लाना है।

शिक्षण की परिभाषा

शिक्षण एक प्रक्रिया है जिसके प्रारूप का निर्माण एवं उसकी संपन्नता इसलिए की जाती है जिससे छात्रों के व्यवहार में परिवर्तन लाया जा सके। इस लिए शिक्षण प्रेरणा, पथ प्रदर्शन पथ निर्देशन एवं जीवन का प्रोत्साहन है।

1. **एडमंड के अनुसार**: शिक्षण एक अंतः क्रियात्मक प्रक्रिया है जो कक्षागत परिस्थितियों में वांछित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए शिक्षक तथा विद्यार्थियों के मध्य होती है।
2. **ह्यू एवं डंकन के अनुसार**: शिक्षण एक ऐसे विशिष्ट व्यावसायिक विवेकपूर्ण तथा मानवीय क्रिया है जिसमें व्यक्ति सृजनात्मक एवं कल्पनात्मक रूप से स्वयं तथा स्वयं के ज्ञान का उपयोग अधिगम एवं दूसरों के कल्याण के समर्थन हेतु करता है।
3. **मारीसन के अनुसार**: शिक्षण कार्य के अंतर्गत अपेक्षाकृत अधिक परिपक्व व्यक्तित्व शिक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से अपरिपक्व के साथ संबंध स्थापित करता है
4. **ब्रूबेकर के अनुसार**: शिक्षण उन परिस्थितियों की व्यवस्था एवं संचालन है जिसमें अंतराल तथा बाधाएं होती हैं जिन्हें छात्र दूर करने के प्रयासों के फलस्वरूप अधिगम करता है।

शिक्षण को प्रभावित करने वाले कारक

"शिक्षण अधिगम में विद्यार्थियों की सहभागिता बढ़ाने के प्रयास विगत शताब्दी से किए जा रहे हैं, शिक्षा दार्शनिकों शिक्षा मनोवैज्ञानिकों, प्रशंसकों और शिक्षकों ने शिक्षण प्रक्रिया को अधिकाधिक मनोवैज्ञानिक और विद्यार्थी केंद्रित बनाने के लिए अथक प्रयास किए हैं **वॉटसन** के व्यवहारवाद और **पियाजे** के संज्ञानात्मक विकास के आगामी चरण के रूप में संरचना वादी आंदोलन की शुरुआत हुई थी"[2]। शिक्षा पाठ्यक्रम के दौरान इस उपागम के सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक पक्षों को परिचित कराया गया फिर भी शिक्षण को प्रभावित करने वाले कई कारक निम्नलिखित रूप से गिनाए जा सकते हैं -

1. **शिक्षक की योग्यताएं:** शिक्षक का सुप्रशिक्षित होना (B.Ed, M.Ed, M.Phill, P.hD, NET, SET आदि) , शैक्षिक योग्यताओं का ज्ञाता होना (शैक्षिक प्रविधि तथा पद्धतियाँ) तथा सभी प्रकारों के कौशलों से लैस होना अनिवार्य है।
2. **शिक्षण क्रिया का नियोजन:** हर शिक्षक को छात्रों के आगे सक्षम होकर पाठ्यक्रम प्रस्तुत करने के लिए कई सारी शिक्षण प्रविधि और योजनाओं को अपनाना होता है जैसे, पाठ्यक्रम परिवर्धन, समय सारिणी बनाना, अनुदेशात्मक उद्देश्यों को पहचानना आदि।

3. **छात्रों का मनोशारीरिक स्तर:** शिक्षक को छात्रों की मानसिक, शारीरिक और उनकी ग्राह्य शक्ति के अनुरूप अपने कौशलों का उपयोग करते हुए अपने नियोजित पाठ्यक्रम को समझाना होता है, अर्थात सभी स्तरों को नजर में रखते हुए शिक्षक अपने कौशलों का प्रयोग करते हुए रुचिकर तथा प्रभावशाली रूप से पाठ्यक्रम प्रस्तुत करता है।
4. **पाठ्यवस्तु की उपयोगिता:** शिक्षक को छात्रों के पूर्वज्ञान की जानकारी होना अनिवार्य है तभी छात्रों को जीवन में पाठ्यवस्तु की उपयोगिता क्या है यह समझा सकता है और अपने कौशलों का समायोजन कर पाठ्यक्रम को रुचिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत कर सकता है।
5. **कक्षा का वातावरण:** पाठ्यक्रम को सफल बनाने में कक्षा का वातावरण अपना बहुमूल्य योगदान देता है जैसे- हवा, रोशिनी, भौतिक सुविधाएँ तथा सामाजिक वातावरण शिक्षा को प्रभावित करता है।
6. **शैक्षिक उद्देश्य:** शैक्षिक उद्देश्यों की आपूर्ती करना शिक्षक का आद्य कर्तव्य होता है जैसे कि, कलात्मक, ज्ञानात्मक, अवबोधात्मक अधिगम उद्देश्यों की पूर्ति होना शैक्षिक सफलता के लक्षण कहलाते हैं।
7. **व्यक्तिगत विभिन्नता:** प्रत्येक छात्र की अवधारणा, रुचि, विषय ग्रहण करने की शक्ति में भिन्नता होती है उन्हीं भिन्नताओं को आधार बनाकर शिक्षण दिया जाना उचित होगा क्योंकि बालक की सक्रियता ही शिक्षण को प्रभावित करती है।
8. **बाल केंद्रित शिक्षण प्रविधि:** शिक्षण को मूलत: शिक्षक या समाज केंद्रित न होकर बाल केंद्रित होना चाहिए क्योंकि बालक की सक्रियता ही शिक्षण को प्रभावित करती है क्रिया पद्धति, खेलकूद पद्धति, करके सीखना आदि रूप से छात्र कक्षा में सक्रिय होता है और ज्ञानार्जन कर सकता है।
9. **विषय वस्तु का स्वरूप:** विषय वस्तु के अनुरूप ही शिक्षण की सफलता सिद्ध की जाती है तभी जाकर शिक्षा प्रभावोत्पादक होती है। विषय वस्तु के निर्धारण के आधार पर ही शिक्षक द्वारा पाठ्यक्रम बोधन में लाए जाने वाले सभी प्रयोग सफल हो पाते हैं।
10. **स्वाध्याय की आदत:** छात्र को ज्ञानार्जन के लिए स्वाध्याय की आदत डालना अनिवार्य होता है। यह कार्य शिक्षक अपने रुचि पूर्ण पाठ्यक्रम बोधन से छात्र के मन में एक ऐसी रुचि उत्पन्न करा सकता है जिससे छात्र प्रभावित होकर स्वाध्याय की आदत डालता है और अपने भविष्य को निखार सकता है।
11. **भौतिक सुविधाओं की उपलब्धि:** छात्र को ज्ञानार्जन में उपयोगी सिद्ध होने वाले सुविधाओं की उपलब्धी कराने से वह साधन सामग्री का सही प्रयोग करते हुए परिपूर्ण शिक्षार्जन कर सकता है।
12. **मूल्यांकन परिणाम:** शिक्षण की सफलता को आंकने के लिए मूल्यांकन किया जाना अनिवार्य होता है जिस से शिक्षण प्रक्रिया परिपूर्ण होती है।

आज की शिक्षण पद्धति

आज की वैश्विक आपदाओं के विकट परिस्थिति में निश्चित रूप से शिक्षक का उत्तरदायित्व और ज्यादा चुनौतीपूर्ण बन गया है। “शिक्षण की प्रक्रिया को अधिकाधिक सरल, सहज और रुचिकर बनाने के लिए नए - नए प्रयोगों की परंपरा काफी पुरानी है ऐसी व्यवहारवादी विधियों से लेकर बहुस्थरीय बुद्धिमत्ता यानि मल्टिपल इंटेलिजेंस तक की यात्रा तय करने के लिए सभी प्रचलित शिक्षण प्रविधि और पद्धतियों के साथ - साथ तकनिकी सामग्रियों का प्रयोग में लाना आज की अनिवार्यता बनी हुई है”[3]। कक्षा में शिक्षक का दायित्व केवल पाठ्यक्रम बोधन अनुकूल परिस्थितियों के निर्माण तक ही सीमित रह जाता है जिस में विध्यार्थियों को पठ्यवस्तु को जानने के प्रति उत्सुक करती हैं और ज्ञान बोध या अनुभव के लिए सहयोगी होती है। किंतु आज के संदर्भ में “शिक्षक शिक्षार्थियों को अधिगम के ओर उत्सुक करने केलिए चित्र, कहानी, घटना – कथन, अखबार पटन, गीत सुनाना, चलचित्र प्रदर्शन

आदि तमाम माध्यमों का उपयोग कर रहा है"[4]। छात्रों को पाठ्यवस्तु पर ज्ञान केंद्रित कराने के बाद वह उन्हें पाठ्यवस्तु के अध्ययन के महत्व से परिचित कराता है ताकी छात्र पठ्यवस्तु के महत्व को अच्छी तरह समझ कर विषय के प्रति में जिज्ञासू बने और तथ्य तथा परिणाम की खोज में तत्पर हो कर पूरक पाठ्यपुस्तक, सहायक उपकरण, कंप्यूटर, इंटरनेट, पीपीटी, यू-ट्यूब वीडियोस आदि आधुनिक और तकनीकी सुविधाओं को प्रयोग में लाए।

आज की वैश्विक आपदाओं के परिदृश्य में देखा जाए तो आज कोविद-19 जैसी कई सारी बीमारियों के कारण व्यक्ति घर से बाहर न निकल पा कर अपने आप को अपने घरों में कैद कर रखा है, ऐसे में वह शारीरिक ही नहीं बल्कि मानसिक तौर पर भी संकुचित होता जा रहा है। ऐसे समय में जीवन को गतिशील रखने के लिए उसे ज्ञान की अनिवार्यता होती है। ऐसे समय पर शिक्षकों द्वारा सूचित उपकरणों को, तकनीकी शिक्षण विधियों को अपनाकर जैसे कंप्यूटर, स्मार्टफोन, इंटरनेट, पीपीटी, यू ट्यूब वीडियोस, ई लाइब्रेरी, ई बुक, आनलाइन कक्षा, प्रायोगिक और प्रायोजित कक्षाओं की सहायता से छात्र अपने घर को ही परिपूर्ण विद्यालय में परिवर्तित कर सकता है और अपनी ज्ञान संपदा की वृद्धी कर सकता है।

इन विचारों को नजर में रखकर ऐसे पाठ्योजनाओं के निर्माण के प्रयास किए जा रहे हैं कि, परंपरागत पाठ्योजना की तर्ज पर शिक्षकों को उनकी भूमिका के लिए अधिक सजग और तैयार करना है। इस दिशा में "अंग्रेजी के "ई" से शुरू होनेवाले पाँच अक्षरों के नामत : एंगेज (सहभागिता), एक्सप्लोर (खोज), एक्सप्लेन (वर्णन), इलेबोरेट (व्याख्या) और एवैल्युएट (मूल्याँकन) को आधार बनाकर पाठयोजना बनाई जा रही है"[5]। "पाठ्यक्रम परिवर्धन, समय सारिणी बनाना अनुदेशात्मक उद्देश्यों की पहचान शिक्षण विधि तय करना मीडीया मूल्याँकन मापदंड सभी में शिक्षक की स्वायत्तत्ता वांचित है"[6]। आज के दौर में इन सारी तकनीकी सामग्रियों की सहायता के बिना अगर कोई छात्र कुछ नई बातें, नया ज्ञान सीखने की सोचता है तो कहीं ना कहीं वह अपने निर्धारित लक्ष्य से भटक जाता है। इस दिशा में छात्रों को उचित पथ प्रदर्षन में शिक्षकों का उत्तरदायित्व और ज्यादा चुनौतीपूर्ण बन गया है।

उपसंहार

शिक्षण प्रक्रिया को अधिकाधिक सहज, रुचि पूर्ण तथा सफल बनाने के लिए विभिन्न प्रयोगों और विधियों को अपनाते हुए छात्रों के व्यवहार और उनकी बहु स्तरीय बुद्धिमत्ता यानी मल्टीपल इंटेलीजेंस बढाने के लिए कक्षा गत परिस्थितियों को सुधारने का कार्य आज के शिक्षकों द्वारा हो रहा है और यह शैक्षिक व्यवस्था का एक नया आयाम है जो शिक्षाविदों और शिक्षा नियोजकों का ध्यान आकर्षित किया हुआ है। इसी संरचनात्मक शिक्षा को अपनाते हुए शिक्षक जब अपनी शिक्षण प्रक्रिया को अनुभव गम्य अधिगम बना देता है तब जाकर शिक्षक शैक्षिक गतिविधियों का संचालक, नवीन परिकल्पनाओ का निर्माता की भूमिका निभाता है। आज की वैश्विक आपदाओं के विकट परिस्थिति में निश्चित रूप से यह उत्तरदायित्व से भरा चुनौतीपूर्ण व्यवसाय जो प्राचीन परंपरावादी शैक्षिक योजनाओं से बिल्कुल हटके साबित हुआ है।

संदर्भ सूची

1. studyjunoon.com, October 15, 2019
2. हिन्दी भाषा और इसकी शिक्षण विधियाँ - श्रुतिकान्त पाण्डेय
3. हिन्दी भाषा और इसकी शिक्षण विधियाँ - श्रुतिकान्त पाण्डेय
4. हिन्दी भाषा और इसकी शिक्षण विधियाँ - श्रुतिकान्त पाण्डेय
5. हिन्दी भाषा और इसकी शिक्षण विधियाँ - श्रुतिकान्त पाण्डेय
6. studyjunoon.com, October 15, 2019

सहायक ग्रंथ

1. हिन्दी भाषा और इसकी शिक्षण विधियाँ - हिन्दी भाषा और इसकी शिक्षण विधियों की परिचायक - श्रुतिकान्त पाण्डेय
   Published by Asoke K Ghosh, PHI Learning private limited,
   Rimjhim house, 111 Patparganj Industrial Estate, Delhi 110092 and
   Printed by Raj Press, New Delhi 110012.
2. हिन्दी शिक्षण विधियाँ - श्रीमति शशिबाला
   Discovery Publishing House (1 January 2014)
3. Internet - studyjunoon.com

Mob – 9986904275 E-Mail – Lathif.b@stfranciscollege.edu.in

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 191-196
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

सांस्कृतिक एवं सामाजिक चेतना के प्रसार में अनुवाद की भूमिका

लक्ष्मी कुमारी
शोधार्थी,
दिल्ली विश्वविद्यालय

शोध सार : भारत जैसे बहुभाषी और बहुसांस्कृतिक देश में भाषा केवल संवाद का माध्यम नहीं, बल्कि संस्कृति की आत्मा होती है। भाषा के माध्यम से ही किसी समाज की जीवन-दृष्टि, ऐतिहासिक स्मृतियाँ, सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक मूल्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी संप्रेषित होते हैं। इसीलिए भाषा का अस्तित्व केवल शब्दों तक सीमित न होकर एक संपूर्ण सांस्कृतिक संसार को अपने भीतर समेटे होता है। जब दो भिन्न भाषाएँ और संस्कृतियाँ परस्पर संपर्क में आती हैं, तब उनके मध्य संवाद की स्थापना का कार्य अनुवाद के द्वारा संभव होता है। इस दृष्टि से अनुवाद केवल भाषिक क्रिया न होकर संस्कृतियों के मध्य एक सशक्त सेतु के रूप में कार्य करता है।भारत में अनुवाद केवल भाषा बदलने का साधन नहीं है, बल्कि यह सांस्कृतिक और वैचारिक सेतु का कार्य करता है। अनुवाद के माध्यम से भारतीय समाज में पाश्चात्य साहित्य, मार्क्सवादी विचारधारा और स्वच्छंदतावादी काव्यधारा जैसी वैचारिक प्रवाहों का प्रवेश हुआ, जिसने साहित्य और सामाजिक चेतना को प्रभावित किया। अनुवाद बहुभाषिकता और बहुसंस्कृतिकता को संरक्षित करते हुए विभिन्न साहित्यिक आंदोलनों, ज्ञान और विचारों को समाज के विभिन्न तबकों तक पहुँचाने का माध्यम बनता है। इसके माध्यम से न केवल भारतीय साहित्य समृद्ध हुआ, बल्कि वैश्विक साहित्य और संस्कृति के आदान-प्रदान का मार्ग भी सुलभ हुआ।

बीज शब्द: अनुवाद, सांस्कृतिक सेतु,मार्क्सवाद, स्वच्छंदवाद, पाश्चात्य साहित्य,दलित साहित्य, साहित्यिक आंदोलन, बहुभाषिकता, सांस्कृतिक आदान-प्रदान|

मूल आलेख : अनुवाद एक भाषांतरण प्रक्रिया है। यह खंड अनुवाद की परिभाषा तथा उससे जुड़ी कतिपय चुनौतियों पर प्रकाश डालता है, यह स्पष्ट करते हुए कि एक भाषा के विचारों को अन्य भाषा में व्यक्त करना एक जटिल कार्य क्यों है। 'भोलेनाथ तिवारी' अनुवाद को व्याख्यायित करते हुए लिखते है-"एक भाषा की किसी सामग्री का दूसरी भाषा में रूपातर ही अनुवाद है।इस तरह अनुवाद का कार्य है, एक (स्त्रोत) भाषा में व्यक्त विचारों को दूसरी(लक्ष्य) भाषा में व्यक्त करना, किंतु यह 'व्यक्त करना' बहुत सरल कार्य नही है। होता यह है कि हर भाषा विशिष्ट परिवेश में पनपती है, अतः

उसकीअपनी अनेक ध्वन्यात्मक, शाब्दिक, रूपात्मक, वाक्यात्मक, आर्थिक, मुहावरे- विषयक तथा लोकोक्ति विषयक आदि - निजी विशेषताएं होती हैं, जो अनेक अन्य भाषाओं से कुछ या काफी भिन्न होती हैं, और इसीलिए यह आवश्यक नहीं है कि स्रोत भाषा की किसी अभिव्यक्ति के पूर्णत समान अभिव्यक्ति- शब्दतः और अर्थत - लक्ष्य भाषा में हो ही।''[1] अनुवाद भाषाई विविधता में छिपी हुई मानवीय एकता और साझा अनुभवों को प्रकट करने का सबसे शक्तिशाली माध्यम है। अनुवाद न केवल एक भाषा को दूसरी भाषा से जोड़ता है, बल्कि यह दो सभ्यताओं और युगों के बीच **सांस्कृतिक आदान-प्रदान** का स्थायी मार्ग प्रशस्त करता है, जिससे मानव इतिहास की निरंतरता और समृद्धि सुनिश्चित होती हैं| अनुवाद विचारों, दर्शनों और संस्कृतियों को भौगोलिक सीमाओं के परे संप्रेषित करने वाला एक अपरिहार्य एवं सक्रिय माध्यम है। यह वैश्विक संवाद को प्रोत्साहित करते हुए बौद्धिक क्षितिज का विस्तार करता है, जिससे ज्ञान की सर्वसुलभता सुनिश्चित होती है और एक समावेशी वैश्विक चेतना का उन्नयन होता है। प्लेटो, मार्क्स अथवा शंकराचार्य के सिद्धांतों का व्यापक प्रसार अनुवाद के माध्यम से ही संभव हो सका है।

मार्क्सवाद, स्वच्छंदवाद (Romanticism) तथा **यथार्थवाद** जैसे प्रमुख सामाजिक-राजनीतिक एवं साहित्यिक आंदोलनों को वैश्विक मान्यता अनुवाद के कारण ही प्राप्त हुई। दलित साहित्य और आदिवासी विमर्श को अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर स्थापित करने में भी अनुवाद की केंद्रीय भूमिका रही है। यह मात्र शाब्दिक प्रतिस्थापन न होकर, एक सक्रिय सांस्कृतिक एवं बौद्धिक निवेश है, जो ज्ञान को सर्वसुलभ बनाकर सहिष्णु वैश्विक समाज के निर्माण में सहायक सिद्ध होता है।लोक-संस्कृति, आदिवासी गाथाओं और जनगीतों के अनुवाद स्थानीय अनुभवों को सार्वभौमिक मानवीय संवेदना से संयोजित करते हैं। दलित और आदिवासी साहित्य के अनुवाद हाशिये की आवाज़ों को मुख्यधारा तक पहुँचाने का कार्य करते हैं। अनुवाद सामाजिक चेतना के दस्तावेज़ के रूप में विमर्शों को भाषाई सीमाओं से मुक्त करता **है।पाश्चात्य विचारधाराएँ** (जैसे नारीवाद, **मार्क्सवाद**) और साहित्यिक आंदोलन (जैसे **स्वच्छंदवाद, यथार्थवाद)** अनुवाद के माध्यम से ही भारतीय संदर्भों में आत्मसात् हुए और उन्होंने आधुनिक भारतीय साहित्य को दिशा प्रदान की। यह हमें अन्य संस्कृतियों की वेदनाओं और मूल्यों को समझने का अवसर प्रदान करता है, जिससे संकुचित दृष्टि का निवारण होता है। डिजिटल माध्यमों ने इस सांस्कृतिक सेतु की व्यापकता को और अधिक विस्तारित किया है।

अनुवाद सांस्कृतिक चेतना के प्रसार में

भारत जैसे **बहुभाषी**, बहुधार्मिक और बहुसांस्कृतिक देश में अनुवाद ने सदैव यह प्रमाणित किया है कि अलग-अलग भाषाएँ और संस्कृतियाँ साथ रह सकती हैं, एक-दूसरे से सीख सकती हैं और एक साझा मानवीय भविष्य की कल्पना कर सकती ।अनुवाद का महत्व केवल भाषिक स्तर पर नहीं, बल्कि सांस्कृतिक, दार्शनिक, सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर भी अत्यंत व्यापक है। अनुवाद वह सेतु है जिसके माध्यम से एक संस्कृति दूसरी संस्कृति से संवाद करती है, एक समाज दूसरे समाज को समझता है और मानवता विविधता के बीच एकता का अनुभव करती है। अनुवाद के बिना न तो विश्व साहित्य की कल्पना संभव है और न ही वैश्विक सांस्कृतिक संवाद की। इसीलिए अनुवाद को **संस्कृतिक सेतु** कहना न केवल सार्थक, बल्कि अनिवार्य भी है।इस संदर्भ में 'डॉ छबिल कुमार मेहर' लिखते है- ''मानव मन को एक दूसरे के अधिक निकट लाने मे, मानव जीवन को अधिक सुखी बनाने मे अनुवाद की महत्वपूर्ण भूमिका है|

[1] अनुवाद विज्ञान,राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली 1962, डॉ भोलेनाथ तिवारी,पृ. संख्या 15

भाषाओं की अनेकता मनुष्य को यक दूसरे से अलग ही नहीं करती, उसे कमजोर ज्ञान की दृष्टि से निर्धन ओर संवेदन शून्य बनाती है| विश्व बंधुत्व की स्थापना एवं राष्ट्रीय एकता को बरकरार रखने की दृष्टि से अनुवाद एक तरह से सांस्कृतिक सेतु की तरह महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है"[2]| सांस्कृतिक अनुवाद के लिए भाषा के साथ-साथ सांस्कृतिक संदर्भ, सामाजिक बारीकियों और भावनात्मक निहितार्थों को समझना आवश्यक है। इसकी प्रमुख चुनौतियों में संबोधन और रिश्तों की जटिलता शामिल है, जहाँ अंग्रेजी के सामान्य शब्दों (जैसे 'Uncle', 'Aunt') के विपरीत, हिंदी में विशिष्ट शब्द (जैसे 'चाचा', 'मामा', 'मौसी') होते हैं, जो निकटता और भूमिका दर्शाते हैं, तथा सम्मानसूचक शब्द ('जी', 'आप') अक्सर अनुवाद में छूट जाते हैं। अभिवादन और सामाजिक शिष्टाचार भी महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि अंग्रेजी के समय-आधारित अभिवादन ('Good Morning') की तुलना में, हिंदी का 'नमस्ते' या 'नमस्कार', राम-राम, पाय लागू, ढोक देऊ, एक कालातीत और सार्वभौमिक अभिवादन है जो सम्मान और दिव्यता के भाव को दर्शाता है। तीसरी चुनौती सांस्कृतिक अवधारणाएं और अवर्णनीय भाव हैं, जहाँ 'Jugaad' (सीमित संसाधनों में रचनात्मक समाधान) और 'Sukoon' (गहरी मानसिक शांति और संतोष) जैसे शब्दों का एकल शब्द में अनुवाद असंभव होता है और इसके लिए व्याख्या की आवश्यकता होती है। चौथी चुनौती खान-पान और रीति-रिवाज का सामाजिक परिवेश है, जैसे 'चाय' केवल एक पेय नहीं बल्कि अतिथि सत्कार और सामाजिक अनुष्ठान है, और 'होलिका दहन' जैसे रीति-रिवाजों का अनुवाद करते समय केवल शाब्दिक अर्थ ('Bonfire') अपर्याप्त होता है; उसके धार्मिक और सामाजिक महत्व को समझाना आवश्यक है। अंत में, मुहावरों, लोकोक्तियों और शारीरिक हाव-भाव का अनुवाद शाब्दिक नहीं, बल्कि उनके समतुल्य भाव या प्रभाव (जैसे 'ऊँट के मुँह में जीरा' के लिए 'A drop in the ocean') के आधार पर किया जाना चाहिए, और अशाब्दिक संचार (जैसे जापानी में 'झुकना', भारतीय में 'नमस्ते' की मुद्रा) भी संस्कृति-विशेष होते हैं और इनके सामाजिक कार्य को समझना महत्वपूर्ण है।

सामाजिक चेतना के प्रसार में : सामाजिक चेतना को आकार देने वाले प्रमुख विमर्शों में अनुवाद की भूमिका का विस्तृत विश्लेषण निम्नलिखित है:-

अनुवाद ने **दलित साहित्य** के गहन संघर्ष, पीड़ा, सदियों के दुख और ज़मीनी विद्रोह की कहानियों को उनकी क्षेत्रीय सीमाओं से निकालकर एक राष्ट्रव्यापी और अंतर्राष्ट्रीय मंच प्रदान किया है, जिससे दुनिया ने जातिगत भेदभाव की क्रूर सच्चाई को करीब से समझा है। उदाहरण के लिए, Black Panther की अवधारणा हिंदी साहित्य में प्रत्यक्ष अमेरिकी आंदोलन के रूप में नहीं, बल्कि वैचारिक और प्रतीकात्मक रूप में प्रविष्ट हुई। 1960 के दशक में अमेरिका में उभरे Black Panther आंदोलन की नस्लीय उत्पीड़न-विरोधी चेतना 1970–80 के दशक में अंग्रेज़ी लेखन, राजनीतिक दस्तावेज़ों और साहित्यिक निबंधों के अनुवाद के माध्यम से भारत पहुँची, जहाँ इसका संबंध जातिगत उत्पीड़न से जोड़ा गया। इसी प्रेरणा से महाराष्ट्र में दलित पैंथर आंदोलन का जन्म हुआ, जिसके साहित्य और घोषणापत्रों का मराठी से हिंदी में अनुवाद हुआ और जिसने हिंदी दलित साहित्य को प्रतिरोध, अस्मिता और आत्मसम्मान की तीखी भाषा दी। Black Panther की अवधारणा हिंदी साहित्य में प्रत्यक्ष अमेरिकी आंदोलन के रूप में नहीं, बल्कि वैचारिक और प्रतीकात्मक रूप में प्रविष्ट हुई। 1960 के दशक में अमेरिका में उभरे Black Panther आंदोलन की नस्लीय उत्पीड़न-विरोधी चेतना 1970–80 के दशक में अंग्रेज़ी लेखन, राजनीतिक दस्तावेज़ों और साहित्यिक निबंधों के अनुवाद के

[2] डॉ. छबिल कुमार मेहर, अनुवाद : सिद्धांत और प्रविधि, प्रलेक प्रकाशन, 2024, पृ.17

माध्यम से भारत पहुँची, जहाँ इसका संबंध जातिगत उत्पीड़न से जोड़ा गया। इसी प्रेरणा से महाराष्ट्र में दलित पैंथर आंदोलन का जन्म हुआ, जिसके साहित्य और घोषणापत्रों का मराठी से हिंदी में अनुवाद हुआ और जिसने हिंदी दलित साहित्य को प्रतिरोध, अस्मिता और आत्मसम्मान की तीखी भाषा दी | बामा की तमिल आत्मकथा 'करुक्कु' का अंग्रेजी सहित कई अन्य भाषाओं में अनुवाद होने से एक दलित ईसाई महिला के संघर्ष को वैश्विक पहचान मिली, और ओमप्रकाश वाल्मीकि की हिंदी आत्मकथा 'जूठन' का अनुवाद भारतीय समाज में गहरी आत्म-मंथन की शुरुआत करके जाति के मुद्दे को साहित्य के केंद्र में लाया। ये अनुवाद ब्राह्मणवादी-पितृसत्तात्मक मुख्यधारा के साहित्य के स्थापित पूर्वाग्रहों को सीधे चुनौती देते हैं और एक समतावादी समाज की वैचारिक नींव रखते हैं। दलित साहित्य के प्रमुख चिंतक शरणकुमार लिम्बाले साहित्य को सामाजिक संघर्ष और प्रतिरोध का माध्यम मानते हैं। आलोक मुखर्जी और अरुण पी. मुखर्जी के साथ बातचीत में वे स्वयं को लेखक से अधिक कार्यकर्ता के रूप में स्थापित करते हैं, जिनके लिए लेखन असमानता के विरुद्ध आंदोलन है। इसी संदर्भ में दलित साहित्य का अनुवाद केवल भाषिक प्रक्रिया नहीं, बल्कि उस सामाजिक सत्य को व्यापक पाठक वर्ग तक पहुँचाने का माध्यम है जिसे जातिवादी समाज दबाना चाहता है। अनुवाद के द्वारा **दलित** अनुभव और चेतना भाषाई सीमाओं से बाहर आकर सामाजिक विमर्श का हिस्सा बनते हैं। इसी वैचारिक पृष्ठभूमि में लिम्बाले अपने वक्तव्य में दलित लेखक के ऐतिहासिक दायित्व को रेखांकित करते हैं—**शरणकुमार लिम्बाले (वाईसीएम ओपन यूनिवर्सिटी, सोलापुर)**

“आलोक मुखर्जी और अरुण पी. मुखर्जी के साथ बातचीत: अनुवाद भाषा की बाधाओं को तोड़ता है और साहित्य की क्षेत्रीयता को नष्ट करता है। जब मैं अपने क्षेत्र और क्षेत्रीय भाषा में कैद था, तब मैं केवल अपनी जाति और अपने समुदाय के बारे में सोचता था। लेकिन अनुवाद ने अन्य अछूत समुदायों और मेरे बीच एक बंधन बनाया है। अंग्रेजी भाषा भाषाओं और संस्कृति की क्षेत्रीयता को नष्ट कर देगी। डॉ. अंबेडकर ने कहा था कि भारत में दो देश हैं। एक है साक्षर भारत और दूसरा है अछूत भारत। दोनों देशों के बीच एक बहुत बड़ा सांस्कृतिक अंतर है। इस अंतर के पार, दलित साहित्य के अनुवाद ने दलितों को एकजुट किया है। इसने दलितों को ज्ञान और प्रोत्साहन दिया है”।[3]

इसी प्रकार, अनुवाद ने अलग-अलग भौगोलिक और सांस्कृतिक परिवेशों की महिलाओं के जटिल अनुभवों, उनके प्रतिरोध की शैलियों और उनके संघर्षों को एक साझी, वैश्विक जमीन दी है, अनुवाद के द्वारा दलित अनुभव और चेतना भाषाई सीमाओं से बाहर आकर सामाजिक विमर्श का हिस्सा बनते हैं | इसी प्रकार ‘सिमोन द बोउआर’ की फ्रांसीसी कृति 'द सेकंड सेक्स' का विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनुवाद होने से भारतीय स्त्री-विमर्श को सैद्धांतिक आधार और अंतर्राष्ट्रीय समर्थन मिला, और 'पर्सनल इज़ पॉलिटिकल' जैसे नारे स्थानीय आंदोलनों का हिस्सा बन गए। अमृता प्रीतम की पंजाबी रचनाओं (जैसे- 'पिंजर') का अनुवाद, विभाजन के दौरान महिलाओं के विस्थापन और पीड़ा को एक राष्ट्रीय आख्यान में बदलता है। अनुवाद के माध्यम से ही स्त्री-विमर्श के वैश्विक सिद्धांतों और भारत के स्थानीय, विशिष्ट अनुभवों (जैसे- जाति और वर्ग से जुड़े स्त्रीवादी संघर्ष) के बीच एक जीवंत संवाद संभव हो सका है, जिससे 'बहुलतावादी नारीवाद' (Intersectionality) को बल मिला है।

आदिवासी समुदायों के जल, जंगल, जमीन के साथ अटूट संबंध, उनके विस्थापन के दर्द और उनकी अनूठी सांस्कृतिक विशिष्टता को मुख्यधारा के राजनीतिक और साहित्यिक फलक पर लाने का दुष्कर कार्य भी अनुवाद ने किया

[3] Dalit Literature In / And Translation – Writing, Analysing, Translating Dalit Literature

है। ओडिशा की आदिवासी लोककथाओं और गीतों का संकलन और हिंदी/अंग्रेजी में अनुवाद होने से उनकी अनूठी विश्व-दृष्टि और पर्यावरण-केंद्रित जीवन-दर्शन का ज्ञान मुख्यधारा के पाठकों को हुआ। महाश्वेता देवी की बांग्ला कहानियों1 (जैसे- 'अग्निगर्भ') का अनुवाद, आदिवासी शोषण और उनके प्रतिरोध की कहानियों को पूरे देश के सामने लाया, जिससे उनकी समस्याओं के प्रति राजनीतिक चेतना जागी।

मुण्डारी साहित्य के कई प्रमुख रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद हुआ है। इनमें मेन्नस ओड़ेया का मुण्डारी उपन्यास 'मतुराअ कहनी' का आंशिक हिन्दी अनुवाद पेत्रुस ओड़ेया ने 'चलो चाय बागान' नाम से किया है। काशीनाथ मुण्डा (कांडे मुण्डा) ने अपने उपन्यास 'गुइराम' का हिन्दी अनुवाद स्वयं किया है। डॉ. सिकरा दास तिर्की का 'कानि सड़गिर' एक मुण्डारी–हिन्दी द्विभाषी कथा-संग्रह है, जबकि डॉ. खातिर हेब्रम का 'गुतु गलाड़' एक मुण्डारी कविता-संग्रह है जिसमें हिन्दी अनुवाद भी शामिल है। मंगल सिंह मुण्डा की रचनाओं में 'हड़द सुकु' (तीता लौकी) नामक मुण्डारी–हिन्दी द्विभाषी कथा-संग्रह (2013) और 'कामिनाला' नामक मुण्डारी–हिन्दी नाटक शामिल हैं। बीरेन्द्र कुमार सोय मुण्डा ने 'नवा मुण्डा कानि को' नामक मुण्डारी–हिन्दी कथा-संग्रह प्रस्तुत किया है। जोवाकिम तोपनो ने 'डीड़गर इपिल' नामक मुण्डारी–हिन्दी नाटक का लेखन किया है। इसके अतिरिक्त, रामदयाल मुण्डा (संपादक) द्वारा संपादित 'मुण्डारी पाठ' मुण्डारी गद्य–पद्य रचनाओं का हिन्दी अनुवाद-संग्रह है।मुंडा अपनी पुस्तक की भूमिका एक उद्धरण में अपनी कृति की भाषा और उद्देश्य से अवगत कराने के साथ-साथ अनुवाद से लोगों पर पड़ने वाले प्रभाव के बारे मे भी लिखते है:- “अपने व्याकरण में वर्णित भाषा की ही तरह इसकी भाषा मध्य मुण्डारी हैं किन्तु भाषा की क्षेत्रीय विभिन्नताओं को पाटने के लिए हमने हिन्दी अनुवाद भी सम्मिलित किया है। हिन्दी अनुवाद से कुछ नए लोग भी मुण्डारी सीखने के लिए प्रेरित होंगे ऐसी आशा है।”[4]

यह विमर्श विकास की उपभोक्तावादी अवधारणा पर प्रश्नचिह्न लगाता है और आदिवासियों के आत्म-निर्णय के अधिकार तथा उनके पर्यावरण-केंद्रित जीवन-दर्शन की ओर समाज का ध्यान आकर्षित करता है।

पर्यावरण चेतना के प्रसार में भी अनुवाद के कार्य में अनेक स्तरों पर भागीदारी देखने को मिलती है। अंतरराष्ट्रीय संगठन जैसे संयुक्त राष्ट्र, IPCC और UNEP अपनी पर्यावरणीय रिपोर्टों और अभियानों का बहुभाषी अनुवाद कर वैश्विक जागरूकता बढ़ाते हैं, **पर्यावरणीय चेतना** के वैश्विक प्रसार में अनुवाद की क्या भूमिका है, UNEP इसका एक ठोस उदाहरण है। हाल ही मे जारी की गई UNEP रिपोर्ट में बताया गया -“The State of Finance for Nature (SFN) 2026 report builds on the call of SFN 2023 for a ‘Big Nature Turnaround’ – to repurpose trillions in global investment away from nature-destructive activities towards nature-based solutions. To spur the urgent action needed, this report provides a snapshot of where we are now and introduces a Nature Transition X-curve framework to identify what activities must be phased out and what can be scaled up to begin this turnaround. Future SFN reports will focus on tracking progress. Real action involves identifying and investing in nature-positive opportunities across all sectors of the economy, not confining action to the usual realm of NbS in forestry, agriculture and landscape restoration. In 2030, SFN aims to provide a stocktake of how finance from governments, corporates and financial institutions is doing on the journey to

[4] मुण्डा, रामदयाल, मुण्डारी पाठ, रुमबुल प्रकाशन, राँची, तृतीय संस्करण 2020, पृ.सं.2

meet the nature-related goals of the three Rio Conventions"[5] यह लक्ष्य और अवधारणा UNEP की रिपोर्टों के बहुभाषी अनुवादों के माध्यम से वैश्विक स्तर पर प्रसारित हो रही है, जिससे प्रकृति संरक्षण संबंधी चेतना को व्यापक आधार प्राप्त हो रहा है| वहीं निजी जलवायु कार्यकर्ता, सामाजिक संगठन और एनजीओ स्थानीय भाषाओं में सामग्री पहुँचाकर समुदायों को जोड़ते हैं।आधुनिक अंग्रेजी साहित्य ने पर्यावरण संबंधी चिंताओं को चित्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है लेखक, अनुवादक और शोधकर्ता पर्यावरण से संबंधित पुस्तकों, लेखों और शोध-पत्रों के अनुवाद के माध्यम से ज्ञान को अकादमिक दायरे से बाहर लाते हैं। जैसे **:-** राहेल कार्सन की 'साइलेंट स्प्रिंग', बारबरा किंग्सोल्वर की 'फ्लाइट बिहेवियर', मार्गरेट एटवुड और अमिताभ घोष, वंदना शिवा की अनुवादित कृति 'Staying alive','Earth democracy', जैसे लेखकों की मौलिक व अनूदित रचनाएँ संभवतः मूल रूप से अंग्रेजी या किसी अन्य भाषा में लिखी गई। इन रचनाओं को हिंदी भाषी पाठकों तक पहुँचाने के लिए **अनुवाद** ने एक सेतु के रूप मे कार्य किया है। अनुवाद के माध्यम से ही पर्यावरणीय मुद्दों को दर्शाने वाले ये महत्वपूर्ण साहित्यिक कार्य विभिन्न भाषा-भाषी आंदोलनों का हिस्सा बन पाते हैं। इसी तरह मार्क्स, एंगेल्स और लेनिन के विचार (जैसे कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो) अनुवाद के माध्यम से विभिन्न भाषाओं में पहुँच कर सर्वहारा वर्ग में जागरूकता फैलाते हैं| अनुवाद श्रमिक वर्ग की स्थिति और बुर्जुआ मूल्यों की आलोचना प्रस्तुत करता है, जिससे वैश्विक स्तर पर एक साझा वैचारिक मंच बनता है।स्वच्छंदतावाद में अनुवाद भावनात्मक और दार्शनिक आदान-प्रदान: वर्ड्सवर्थ, कीट्स और शेली जैसी कृतियों का अनुवाद व्यक्तिवाद, प्रकृति प्रेम और भावनाओं के वैश्विक प्रसार में सहायक रहा।शैली का विकास में अनुवाद ने मौलिक अभिव्यक्ति को बढ़ावा देकर अंतर्राष्ट्रीय साहित्यिक आंदोलन का निर्माण किया, जिसने भारतीय छायावाद जैसे आंदोलनों को प्रभावित किया।

निष्कर्ष - अंततः यह कहा जा सकता है कि अनुवाद हमें केवल पढ़ने की सुविधा नहीं देता, बल्कि दृष्टि का विस्तार करता है। वह हमें हमारी जड़ों से अलग नहीं करता, बल्कि उन्हें वैश्विक संदर्भों से जोड़ता है। इसी अर्थ में अनुवाद विमर्शों, संस्कृतियों और मानवता के बीच एक जीवंत सेतु के रूप में उपस्थित है | यह विचारधाराओं के बीच एक मजबूत सेतु बनकर, ज्ञान को सर्वसुलभ बनाकर और आपसी सम्मान को बढ़ावा देकर एक सहिष्णु और एकीकृत वैश्विक समाज के निर्माण में केंद्रीय भूमिका निभाता है। यह भाषाई विविधता में छिपी **मानवीय एकता** और साझा अनुभवों को प्रकट करने का सबसे शक्तिशाली माध्यम है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. अनुवाद विज्ञान,राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली 1962, डॉ भोलेनाथ तिवारी,पृ. संख्या 15
2. डॉ. छबिल कुमार मेहर, अनुवाद : सिद्धांत और प्रविधि, प्रलेक प्रकाशन, 2024, पृ.17
3. Dalit Literature In / And Translation – Writing, Analysing, Translating Dalit Literature
4. मुण्डा, रामदयाल, मुण्डारी पाठ, रुमबुल प्रकाशन, राँची, तृतीय संस्करण 2020, पृ.सं.2
5. United Nations Environment Programme (UNEP). State of Finance for Nature 2026, section on climate crisis and global temperature projections. Nairobi: UNEP, 2026

फोन नंबर -7239849738 ईमेल आइडी- lk95shakya@gmail.com

पता- बुरारी, संत नगर, दिल्ली 110084

[5] United Nations Environment Programme (UNEP). State of Finance for Nature 2026, section on climate crisis and global temperature projections. Nairobi: UNEP, 2026.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 197-200
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

महिला उद्यमिता और विकास का अध्ययन

डॉ० राजीव कुमार सक्सेना
असोसिएट प्रो०, समाजशास्त्र विभाग
राजकीय महाविद्यालय बनबसा (चम्पावत)

उद्यमिता को औद्योगिक क्षेत्र एवं समाज के विकास के लिए आधार स्तंभ के रूप में देखा जाता है क्योंकि एक सृजनशील आर्थिक विचार ही समाज में निर्धनता, बेरोजगारी और आर्थिक असमानता का निवारण कर सकता है। भारत जैसे विकासशील देशों में प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि के लिए उद्यमिता ही एकमात्र विकल्प है। अर्थशास्त्रियों के मतानुसार , एक बड़ी जनसंख्या यदि शिक्षित एवं कौशल पूर्ण है तो वह समाज एवं राष्ट्र के लिए समस्या नहीं वरन् विकास का उत्तम विकल्प है, इसलिए समाज के विकास हेतु औद्योगिक क्षेत्र में भी पुरुष एवं महिला दोनों को एक दूसरे के समकक्ष होना अति महत्वपूर्ण है। नारी प्रत्येक समाज का अभिन्न अंग है और वर्तमान काल में उसकी भूमिका बहुआयामी हो चुकी है। आज वह परिवार, समाज, धर्म, राजनीति, विज्ञान और प्रौद्योगिकी से लेकर व्यवसाय और औद्योगिक क्षेत्र में भी अपनी पूर्ण भागीदारी निभा रही है। आज एक उद्यमी के रूप में उसका विशेष योगदान है। अब वह अपनी सूझबूझ और कौशल से व्यवसायिक क्षेत्र को नई दिशाएं प्रदान कर रही है।

वह महिला है जो एक व्यावसायिक इकाई का संगठन तथा संचालन करती है और उसकी उत्पादन-क्षमता को बढ़ाने का प्रयास करती है, महिला उद्यमी कहलाती है। भारत जैसे पुरुष प्रधान देश में, औद्योगिक क्षेत्र में महिलाओं का प्रवेश करना और एक सफल उद्यमी के रूप में स्थान प्राप्त करना एक अविश्वसनीय और महत्वपूर्ण तथ्य है। सामाजिक विकास से अभिप्राय उस स्थिति से है, जिसमें समाज के व्यक्तियों के ज्ञान में वृद्धि हो और व्यक्ति प्रौद्योगिकीय आविष्कारों के कारण प्राकृतिक पर्यावरण पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर सके तथा आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हो सके इसलिए समाज का विकास करने में सभी वर्गों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है और आज महिलाएँ विविध रूप से सामाजिक विकास में अपना योगदान दे रही हैं। यदि महिलाएँ इसमें अपना सक्रिय योगदान न दे तो समाज में विकास की गति अत्यन्त मन्द हो जाएगी। भारत के सबसे बड़े संस्थान ISRO में महिला वैज्ञानिकों की सांख्यिकी वृद्धि इस विचार को सत्यार्थ करती है। प्रत्येक व्यवसाय या उत्पादन क्रिया में कुछ जोखिम या अनिश्चितता होती है, इसी स्थिति को वहन करने की क्षमता को ही उद्यमिता कहते हैं और इसे वहन करने वाली महिला को ही महिला उद्यमी कहते हैं। चूँकि, परम्परागत रूप से व्यापार तथा व्यवसायों में महिलाओं की भूमिका पूर्व से ही नगण्य रही है। इसलिए भारतीय समाज में महिला उद्यमिता की अवधारणा एक नवीन अवधारणा है, क्योंकि पुरुष प्रधानता एवं स्त्रियों की परम्परागत भूमिका के कारण ऐसा सोचना भी एक कल्पना मात्र था, किन्तु आज

भारतीय महिलाएँ धीरे-धीरे इस जोखिम से भरे जीवन में सफल और सबल कदम रख रही हैं, इसलिए नगरों में आज सफल या संघर्षरत महिला उद्यमियों की उपस्थिति दृष्टिगोचर होने लगी है।

उद्देश्य: आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में महिला उद्यमियों के योगदान का अध्ययन करना ही इस शोध का एकमात्र उद्देश्य है।

शोध प्रारूप: महिला उद्यमिता एवं विकास की वास्तविकता को जानने हेतु इस संक्षिप्त शोध को करना एक महत्वपूर्ण चरण है। प्रस्तुत अध्ययन सामाजिक विकास में उद्यमी महिलाओं के योगदान को जानने हेतु किया गया है। अध्ययन हेतु बनबसा शहरी क्षेत्र की 140 उद्यमी महिलाओं को यादृच्छिक निदर्शन पद्धति की लॉटरी विधि के द्वारा उत्तरदाताओं के रूप में चयनित कर तथ्यों को एकत्रित किया गया तत्पश्चात् वर्णनात्मक विधि का प्रयोग करते हुए तथ्यों का सामान्यीकरण किया गया है। सामाजिक पुनर्निर्माण एवं विकास में महिला उद्यमियों के योगदान को इस शोध में प्राप्त किए गए तथ्यों के माध्यम से सारणीबद्ध किया गया है:

सारणी संख्या-1

आर्थिक क्षेत्र में योगदान	संख्या	प्रतिशत
उत्पादन में वृद्धि	35	25
व्यक्तिगत आय में वृद्धि	85	60.71
राष्ट्रीय आय में वृद्धि	20	14.29
कुल	**140**	**100**

दी गई सारणी से ज्ञात होता है कि उद्यमी महिला आर्थिक क्षेत्र में अपना विशेष योगदान दे रही है। 25% उत्तरदाता उत्पादन में वृद्धि, 60.71% उत्तरदाता व्यक्तिगत आय में वृद्धि एवं 14.29% उत्तरदाता राष्ट्रीय आय में वृद्धि करती है। व्यवसाय और उद्योगों की वृद्धि के साथ-साथ प्रति व्यक्ति आय में भी वृद्धि होती है, जिससे उनके आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त होता है। इस प्रकार महिला उद्यमिता राष्ट्र के आर्थिक क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देकर राष्ट्र का नवनिर्माण कर रही है।

सारणी संख्या-2

रोजगार के अवसरों में वृद्धि	संख्या	प्रतिशत
नये विचारों का उद्भव	98	70
अधिक कर्मचारियों की आवश्यकता	42	30
कुल	**140**	**100**

व्यवसाय के प्रारंभ हेतु जो उद्योग तथा प्रतिष्ठान स्थापित किये जाते हैं उनमें कार्य करने के लिए अनेक कर्मचारियों की आवश्यकता होती है और इस प्रकार नये रोज़गार के अवसरों में वृद्धि होती है। 70% उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि उद्यमिता की सहायता से नए विचारों का उद्भव होता है एवं 30% उत्तरदाता मानते हैं कि कार्य के विस्तार हेतु अधिक कर्मचारियों की आवश्यकता होती है ताकि एक सहयोग पूर्ण तरीके से कार्य को संपूर्ण किया

जा सके इस प्रकार उद्यमिता न केवल उद्यमी महिला के लिए वरन् अन्य व्यक्तियों के लिए भी रोजगार के नए अवसर प्रदान करने में सहायक है।

सारणी संख्या-3

समाज कल्याण में वृद्धि	**संख्या**	**प्रतिशत**
विदेशी मुद्रा का आवागमन	14	10
उपभोक्ताओं के लिए अधिक विकल्प	89	63.57
महंगाई पर रोक	37	26.43
कुल	**140**	**100**

नये विचारों की उत्पत्ति एवं रोजगार के नए अवसर उत्पन्न होने से समाज के अन्य लोगों को भी आजीविका की प्राप्ति होती है और समाज कल्याण में वृद्धि स्थापित होती है। उपरोक्त तालिका से प्राप्त तथ्य दर्शाते हैं कि 10% उत्तरदाताओं के अनुसार उद्यमिता की सहायता से विदेशी मुद्रा का आवागमन भी संभव हो पाता है। 63.57% उत्तरदाता मानते हैं कि उपभोक्ताओं को अधिक विकल्प प्राप्त होते हैं और 26.43% उत्तरदाता मानते हैं कि अधिक विकल्पों की प्राप्ति से महंगाई पर रोक लगाना संभव हो सकता है।

सारणी संख्या-4

सकारात्मक सामाजिक दृष्टिकोण	**संख्या**	**प्रतिशत**
आर्थिक सबलता	72	51.43
अच्छी जीवनशैली	25	17.86
सामाजिक सम्मान	43	30.71
कुल	**140**	**100**

जब उत्पादन में वृद्धि होती है तो वस्तुओं का मूल्य कम हो जाता है, आपूर्ति बढ़ने से जन सामान्य के उपभोग में वृद्धि होती है और इस प्रकार महंगाई को रोक पाना संभव हो सकता है। ऊपर दी गई सारणी से ज्ञात होता है कि 51.43% उत्तरदाता मानते हैं कि यदि महंगाई की दर गिरती है तो बचत कर पाना संभव हो पाता है जिससे व्यक्ति को आर्थिक सबलता मिलती है, 17.86% उत्तरदाता मानते हैं कि यह प्रक्रिया अच्छी जीवन शैली प्रदान करती है एवं 30.71% उत्तरदाता मानते हैं कि इस प्रकार की आर्थिक प्रक्रिया सफल हो जाने पर सामाजिक सम्मान प्राप्त करना सरल होता है।

सारणी संख्या-5

अन्य सामाजिक परिवर्तन	**संख्या**	**प्रतिशत**
गलघोंटू स्पर्धा से मुक्ति	17	12.14
पारिवारिक सहयोग की प्राप्ति	32	22.86
आंतरिक नेतृत्व का विकास	91	65
कुल	**140**	**100**

दी गई सारणी के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उद्यमिता ने पारंपरिक रूढ़िवादी सोच को कम किया है। 12.14% उत्तरदाता मानते हैं कि उद्यमिता के कारण उन्हें स्त्री-पुरुष की गलघोंटू स्पर्धा से मुक्ति मिली है, 22.86% उत्तरदाता मानते हैं कि अब परिवार उनके साथ सहयोग करने के लिए तत्पर रहता है एवं 65% उत्तरदाता मानते हैं कि उद्यमिता की सहयोगात्मक प्रक्रिया से उनमें आंतरिक नेतृत्व का विकास हुआ है।

निष्कर्ष: अध्ययन से प्राप्त तथ्य दर्शाते हैं कि नैतिकता की नींव पर स्थित नेतृत्व समाज की आर्थिक और राजनीतिक दिशाओं को बल प्रदान करता है, उद्यमिता के चलते विदेशी मुद्रा का आवागमन, उपभोक्ताओं के लिए अधिक विकल्प और साथ ही महंगाई दर को कम करना भी संभव हो सकता है। महिला उद्यमिता न केवल स्वयं की आन्तरिक नेतृत्व का विकास करती है वरन् स्त्री जगत् में नवचेतना और जागरूकता का प्रचार भी करती है, उत्पादन की नवीनतम विधियों ने स्त्रियों के प्रति परम्परावादी गलघोंटू रूढ़िवादी विचारों को ध्वस्त कर उन्हें नया दृष्टिकोण प्रदान किया है। यह समाज में एक स्वस्थ वातावरण का निर्माण करके महिला-कल्याण और आर्थिक चेतना का उदय करती है और इस प्रकार उद्यमिता महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका सिद्ध कर रहा है।

सुझाव: शोध अध्ययन से प्राप्त तथ्यों के आधार पर कुछ सुझावों को सम्मिलित किया गया है जिससे महिला उद्यमिता में अधिक वृद्धि हो पाना संभव हो सकता है:

- कच्चे माल की उचित व्यवस्था एवं उपलब्धता सुगम की जानी चाहिए।
- सुगम वित्त प्राप्ति योजनाओं का निर्माण किया जाना चाहिए।
- समय-समय पर उत्पादन, विपणन, नेतृत्व, व्यवसाय योजना तैयार करने आदि क्षेत्रों में दक्षता विकसित करने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए।
- समय-समय पर ग्रामीण एवं शहरी सफल महिला उद्यमियों को पुरस्कृत किया जाना चाहिए ताकि अन्य महिलाओं को भी उनसे प्रेरणा मिल सके।

संदर्भ ग्रंथ:

1. चित्रे, किशोर(2019)। महिला उद्यमिता विकास महिला सशक्तिकरण का एक माध्यम, JETIR मार्च, संस्करण-6, इश्यू -3, पृ०सं०-394-398।
2. शरण, धनंजय एवं सिंह, विरेंद्र(2018)। महिला उद्यमिता एवं आर्थिक विकास, शोध मंथन संस्करण -9, इश्यू -3, पृ०सं-277-283।
3. गुप्ता, श्वेता(2010)। गोरखपुर मंडल में महिला उद्यमिता विकास: देवरिया जनपद के विशेष संदर्भ में, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर (यू०पी०)।

Webliography:

1. https://shodhganga.inflibnet.ac.in
2. https://www.sarthaks.com
3. https://www.jetir.org/papers/JETIR

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 201-204
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

कवि त्रिविक्रमभट्ट की भाषा शैली

डॉ० नकुल पाण्डेय,
सहायक प्राध्यापक,
स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग,
विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग, झारखण्ड।

सारांश :

कवि त्रिविक्रम भट्ट द्वारा रचित 'नलचम्पू' 10वीं शती के पूर्वार्द्ध में रचित संस्कृत साहित्य का प्रथम चम्पू काव्य है, जो गद्य–पद्य के ललित मिश्रण, आलंकारिक भाषा, श्लेष प्रधान शैली और शृंगारिक चित्रण के माध्यम से नल–दमयन्ती के प्रेम सौन्दर्य को प्रतिपादित करता है। काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से उपलब्ध समस्त चम्पू काव्यों में यह सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इसका कथाश्रोत महाभारत के वनपर्व का नलोपाख्यान है। अतएव इसका दूसरा नाम नलोपाख्यान भी है। नलचम्पू के अतिरिक्त कवि की एक रचना मदालसा चम्पू भी है। त्रिविक्रमभट्ट संस्कृत साहित्य के प्रथम श्लेष कवि हैं, जिनके नलचम्पू जैसे सभंग श्लेष संस्कृत साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। त्रिविक्रमभट्ट संस्कृत साहित्य के चम्पूकाव्य परंपरा के आदि प्रवर्तक हैं, जिनकी भाषा शैली प्रौढ़, अलंकृत और गद्य–पद्य मिश्रित है। उनका मंजुल शब्द विन्यास एवं रमणीय पदश्य्या दर्शनीय है। उनके पूर्ववर्ती प्रख्यात गद्यकार सुबन्धु एवं बाणभट्ट का उनपर विशेष प्रभाव दीखता है।

नलचम्पू में वर्षा, प्रकृति और पात्रों का सूक्ष्म चित्रण, सुकुमार पदलालित्य और भावपूर्ण वर्णन ने सौन्दर्य को उत्कर्ष पर पहुँचा दिया है। इसकी काव्यशैली अनूठी है, जहाँ गद्य का वर्णन और पद्य की रागात्मकता मिलकर अद्भुत सौन्दर्य पैदा करते हैं। इसमें नल और दमयन्ती की प्रणय कहानी के माध्यम से संयोग और विप्रलम्भ शृंगार का सुन्दर वर्णन है। दमयन्ती के सौन्दर्य और नल के प्रेम का अंकन अत्यन्त संवेदनशील है। संक्षेप में त्रिविक्रमभट्ट एक ऐसे कवि हैं जो भाषा के माध्यम से पाठकों को मंत्रमुग्ध करने की क्षमता रखते हैं।

मुख्य विषय :– काव्य में अभिव्यंजना का शिल्प की अपेक्षा विशेष महत्त्व होता है। हृदयग्राही मार्मिक भावों की अभिव्यक्ति ही काव्य की सफलता है। किसी कलाकार के शिल्प अथवा किसी कवि के काव्य में सौन्दर्य की यथार्थ अभिव्यक्ति होती है। क्रोचे के अनुसार प्रकृति में कोई सौन्दर्य नहीं है और न सौन्दर्य की वाह्य सत्ता है। सौन्दर्य सहज ज्ञान की अभिव्यक्ति है। चूंकि सहज ज्ञान और अभिव्यंजना अभेदात्मक हैं इसलिए कहा जा सकता है सौन्दर्य ही अभिव्यंजना है। वस्तु घटना भाव या दृश्य का तथ्यपूर्ण वर्णन करना ही कवि की विशेषता होती है। इसमें बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न त्रिविक्रममट्ट पूर्णरूप से सफल रहे हैं। संस्कृत कवियों में प्रकृति वर्णन की परम्परा रही है। जितनी सफलता के साथ जिस कवि ने प्रकृति का चित्रण किया है, वह उतना ही सफल माना गया है।

नलचम्पू श्लेष प्रधान काव्य है। इसकी विशेषता है सभंग श्लेष की बहुलता। सभंग श्लेष के कारण काव्य में काठिन्य का उत्पन्न होना स्वाभाविक है, कवि इस बात से अवगत है–

वाचः काठिन्यमायाति भंगश्लेषविशेषतः ।
नोदवेगास्तत्र कर्त्तव्यो यस्मान्नेको रसः कवेः ।।[1]

अतएव उसने अपने श्लेषों को इस दोष से यथासंभव बचाव किया है। उनके श्लेषों का चमत्कार अत्यन्त श्लाघनीय है क्योंकि इनमें अधिक तोड़–मरोड़ करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। नलचम्पू की रचना के पश्चात् त्रिविक्रमभट्ट 'यामुनत्रिविक्रम' के नाम से प्रख्यात हुए। वस्तुतः आलोचकों ने उनके एक पद्य के रमणीय भाव पर मुग्ध होकर घण्टा माघ तथा ताल रत्नाकर की तरह उन्हें यह नाम दिया था। उत्प्रेक्षा अलंकार से युक्त मालिनी छन्द में निबद्ध उनका यह पद्य द्रष्टव्य है–

उदयगिरिगतायां प्राक्प्रभापाण्डुताया
मनुसरति निशीथे शृंगमस्ताचलस्य ।
जयति किमपि तेजः साम्प्रतं व्योममध्ये
सलिलमिव विभिन्नं जाह्नवं यामुनं च।।[2]

प्रस्तुत पद्य में कवि ने प्रातःकालीन प्रभा को व्योम के मध्य में स्थित गंगा तथा यमुना के जल विभाजन द्वारा उत्प्रेक्षित किया है। उनके पूर्व कवियों ने आकाशगंगा की कल्पना की थी किन्तु त्रिविक्रमभट्ट की आकाशगंगा के साथ यमुना की परिकल्पना ने पद्य में चमत्कार उत्पन्न कर दिया।

श्लेषयुक्त रमणीय चित्रण शैली कवि की विशेषता है। आर्यावर्त के वर्णन में कवि का श्लिष्ट पद्य दर्शनीय है जिसमें आर्यावर्त के लोगों को सर्वथा विपत्तिरहित बताया गया है–

भवन्ति फाल्गुने मासि वृक्षशाखा विपल्लवाः।
जायन्ते न तु लोकस्य कदापि च विपल्लयाः।।[3]

आर्यावर्त में फाल्गुन महीने में वृक्षों की शाखाएँ (वि–पल्लव) पल्लव रहित होती हैं, किन्तु वंहाँ के निवासियों को कदापि (विपद्लवाः) छोटी विपत्तियाँ भी नहीं होती। यहाँ 'विपल्लवाः' में श्लेष का अर्थ बिलकुल स्पष्ट है।

यहाँ आर्यावर्त का वर्णन होने के कारण उसकी भौगोलिक स्थिति का वर्णन प्रसंगानुकूल उचित होगा। मनुस्मृति में आर्यावर्त की भौगोलिक सीमाओं का जो वर्णन प्राप्त होता है, वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आर्यावर्त (प्राचीन भारत) दो तरफ से समुद्र (पूरब तथा पश्चिम) और दो ओर से पहाड़ों (उत्तर में हिमालय एवं दक्षिण में विन्ध्य पर्वतों) से घिरा हुआ था। आज मण्डलों, राज्यों तथा देशों की सीमाओं को लेकर प्रायः. विवाद उत्पन्न होते रहते हैं। प्राकृतिक सीमा रेखाओं का न होना इसका प्रमुख कारण है। उपर्युक्त सीमा रेखाओं से विवाद की संभावना लगभग क्षीण सी हो जाती है। मनुस्मृति का वह पद्य द्रष्टव्य है –

आसमुद्रात्तु, वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरङ्गिर्योरार्यावर्तविदुर्बुधा :।। [4]

इसके समर्थन में त्रिविक्रमभट्ट का यह पद्य दर्शनीय है –

आसेतोः कपिकीर्तनांकशिखरादाराच्च विन्ध्यावधे
रापूर्वापरसिन्धुसीमविषयस्त्वन्मुद्रया मुद्रयताम्।
अद्यास्मद्गृहमागतस्य भवतो जाता विधेया वयं
स्वीकारः क्रियतां किमन्यदपरं प्राणेषु चार्थेषु च।। [5]

तत्कालीन आर्यावर्त की उन्नत सामाजिक मानसिकता, भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का निदर्शन करानेवाला कवि का श्लेषयुक्त यह गद्य प्रस्तुत है–

यत्र च गुरु व्यतिक्रमं नक्षत्रराशयः, मात्राकलहं लेखशालिकाः, मित्रोदय द्वेषमुलूकाः, अपत्य त्यागं कोकिलाः, बन्धु जीवविघातं ग्रीष्मदिवसाः, कुर्वन्ति न जनाः।[6]

जहाँ नक्षत्र राशियाँ गुरु (वृहस्पति) का परिवर्तन करती हैं, आर्यावर्त के लोग गुरु परिवर्तन नहीं करते। अर्थात् नक्षत्रों की गति में वृहस्पति नक्षत्र (ग्रह) अपनी चाल के कारण अन्य सूर्यादि ग्रहों से आगे–पीछे हो जाता है। यही नक्षत्र राशि में गुरु का व्यतिक्रम कहलाता है। किन्तु मनुष्य एक बार जिसे अपना गुरु बना लेते हैं, जीवनभर उसे नहीं बदलते। यही भारतीय संस्कृति है। लेखपट्टिका ही मात्रा में विरोध डालती हैं, लोग जननी (माता) से विरोध नहीं करते। उल्लू सूर्योदय से द्वेष करते हैं क्योंकि उन्हें

अंधेरा पसन्द है किन्तु मनुष्य अपने मित्रों के उत्थान से द्वेष नहीं करते। कोयल संतान त्याग करती है, मनुष्य नहीं करते। लोक प्रसिद्ध है कि कोयल चालाक होने के कारण अपने बच्चों के पालन, पोषण एवं रक्षण के लिए कौवे के घोंसला में अपने अण्डों को रख देती है। चूँकि कोयल और कौवे के अण्डे एक जैसे होने के साथ ही अण्डों से निकलने वाले बच्चे भी एक जैसे होते हैं अतएव (मादा कौवा) अपना ही बच्चा समझकर कोयल के बच्चों का भी पालन–पोषण करती है। बड़े होकर वे उड़ जाते हैं परन्तु वास्तव में वे रहते तो कोयल ही हैं। इस प्रकार पक्षी अपनी संतान त्याग करता है किन्तु आर्यावर्त के लोग संतान त्याग नहीं करते थे। यद्यपि इस कलियुग में संतान त्याग की घटनाएँ आम हो गई हैं अतएव इस पर किसी को आश्चर्य भी नहीं होता। ग्रीष्मकालीन दिवस ही बन्धुजीव नामक पुष्प विशेष का नाश करते हैं, लोग अपने भाई का विनाश नहीं करते थे।

इस प्रकार कवि ने उपर्युक्त गद्यांश में तत्कालीन सभ्य, सुसंस्कृत और स्वस्थ समाज का मनमोहक चित्रण प्रस्तुत किया है।

इसी प्रकार तत्कालीन निषधानगरी की सम्पन्नता तथा वहाँ की स्वस्थ और सभ्य परम्परा का निदर्शन करानेवाला, सरल शैली में परिसंख्या तथा विरोध अलंकार से युक्त सुन्दर चित्रण वाला कवि का यह श्लिष्ट गद्यांश द्रष्टव्य है–

यस्यां च चतुरुदधिवेलाविराजितसकलधराचक्रचूडामणौ मणिकर्मनिर्मित रम्यहर्म्यतथा सुरपतिपुरीपराभवकारिण्याम्, अव्ययभावो व्याकरणोपसर्गेषु न धनिनां धनेषु, दानविच्छित्तिरुन्माद्यत्करिकपोलमण्डलेषु न त्यागिगृहेषु, भोगभंगो भुजङ्गेषु न विलासिलोकेषु, स्नेहक्षयो रजनीविराम विरमत्प्रदीपपात्रेषु न प्रतिपन्नजनहृदयेषु, कूटप्रयोगो गीततानविशेशेषु न व्यवहारेषु, वृत्तिकलहो वैयाकरणच्छात्रेषु, न स्वामिभृत्येषु, स्थानकभेदश्चित्रकेषु न सत्पुरुषेषु।[7]

चार समुद्रों के तट से सुशोभित इन्द्र की अलकापुरी को भी पराजित करनेवाली जिस निषधा नगरी में अव्ययभावः (अव्ययत्वम्) अर्थात् अव्ययभाव व्याकरणशास्त्र मे प्र–परा आदि उपसर्गों में होता है, धनिकों के धन में अव्ययभावः (नास्ति व्ययभावः) अर्थात् धन के अभाव दान–भोगादि में नहीं होता है। दानविच्छित्तिः (मदस्य शोभा) मद की शोभा मतवाले हाथियों में होती है, दानविच्छित्तिः (त्याग–विच्छेदः) त्याग विच्छेद त्यागी पुरुषों के घरों में नहीं होता। भोगभंगः (सर्ववपुषः कौटिल्यम्) भोग भंग अर्थात् साँप के शरीर का टेढ़ापन आदि साँपों में होता है, भोगभंगः (विषयसुखानां विनाशः) विषय सुखादि का विनाश विलासी पुरुषों में नहीं होता। स्नेहक्षयः (तैलस्य नाशः) स्नेह क्षय अर्थात् तेल की समाप्ति रात्रि के अन्तिम प्रहर में दीपकों के पात्रों में होता है, स्नेहक्षयः (प्रेम–नाशः) भक्तजनों के हृदय में नहीं होता। कूटप्रयोगः (लय (तान) प्रयोगः) कूट का प्रयोग संगीत में तान–लय में होता है, कूटप्रयोगः (कपटाचारः) कपट का प्रयोग आचरण में नहीं होता। वृत्तिकलहः (शास्त्रविवरण–वितर्कः) वृत्तिकलह अर्थात् शास्त्र विवरण का विवाद व्याकरण के छात्रों में होता है, वृत्तिकलहः (आजीविका–विवादः) वेतन सम्बन्धी विवाद स्वामी तथा सेवकों में नहीं होता है। स्थान भेदः (उच्चावच भेदः) स्थान भेद अर्थात् ऊँचा, नीचा, छोटा, बड़ा आदि के भेद चित्रों के निर्माण में होता है, स्थान भेद (भिन्नत्वम्) अर्थात् ऊँच, नीच आदि का भेदभाव सत्पुरुषों में नहीं होता है।

श्लिष्ट पदों से युक्त उपर्युक्त गद्यांश में तत्कालीन सभ्य और उदार समाज का सुन्दर चित्रण भारतीय संस्कृति की सूक्ति 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की पुष्टि करता है।

यद्यपि कवि ने सरल शैली में सभंग श्लिष्ट रचना की है तथापि वह कहीं–कहीं दुरुह बन गई है। फिर भी छोटे–छोटे श्लोकों में श्लिष्टपदों की चमत्कारपूर्ण योजना में वे सफल रहे हैं। आर्या छन्द में निबद्ध उपमा और यमक अलंकारों से युक्त कवि का यह पद्य द्रष्टव्य है–

पर्वतभेदिपवित्रं जैत्रं नरकस्य बहुमतंगहनम्।
हरिमिव हरिमिव हरिमिव वहति पयः पश्यत पयोष्णी।[8]

उपर्युक्त पद्य में कवि ने पर्वतों को भेदकर बहनेवाले पवित्र पयोष्णी नदी के जल की तुलना वज्रधारी इन्द्र, नरकासुर विजेता विष्णु तथा अनेक गजों का संहार करनेवाले सिंह से की है।

इसी प्रकार आर्या छन्द में रचित कवि का यह पद्य भी श्लिष्टपदों की चमत्कारपूर्ण योजना का सुन्दर उदाहरण है–

चक्रधरं विषमाक्षं कृतमदकलराजहंससञ्चारम्।
हरिहरविरञ्चिसदृशं भजत पयोष्णीतटं मुनयः।[9]

उपर्युक्त पद्य में राजा नल स्नेह के कारण अपने पीछे आ रहे मुनियों से लौटने के लिए निवेदन करते हुए कहता है कि हे मुनियों! यह पयोष्णी नदी के तट को चक्रधारी भगवान विष्णु, विषम नेत्रोंवाले भगवान शिव तथा राजहंसों को अपना वाहन बनानेवाले भगवान ब्रह्माजी के समान समझकर यहाँ अपना यम–नियम आदि को पूरा करें अर्थात् अब मेरा अनुगमन करने का कष्ट न करें। इस पद्य में कवि ने पयोष्णी नदी के तट को भगवान विष्णु, त्रिनेत्रधारी शिव तथा ब्रह्मा के समान माना है।

कवि का यमक तथा अनुप्रास अलंकार का अनुपम उदाहरण यहाँ देखते ही बनता है–

यः श्रृंगारं जनयति नारीणां नारीणाम्।
यः करोत्याश्रितस्य नवं धनं न बन्धनम्।
यो गुणेषु रज्यते न रमणीनां न रगणीनाम्। [10]

जो राजा नारीणां (रमणीनाम्) नारियों के श्रृंगार को उत्पन्न करता है, शत्रुओं (न+अरीणाम् = न शत्रूणाम्) के शृंगार को नहीं। जो अपने आश्रितों को धनवान (नवं धनं = नूतनं वित्तं करोति) बनाता है, उन्हें बन्धनयुक्त (न बन्धनम्) नहीं बनाता। जो उत्तमपुरुषों (नरमणीनाम् = पुरुषरत्नानाम्) के दान, दया, शौर्य आदि गुणों पर अनुरक्त रहता है, नारियों (न रमणीनाम्) में नहीं।

निष्कर्ष :–

त्रिविक्रमभट्ट (10वीं सदी) संस्कृत साहित्य के चम्पू काव्य परंपरा के आदि प्रवर्तक हैं जिनकी भाषा शैली प्रौढ़, अलंकृत और गद्य–पद्य मिश्रित है। उनकी भाषा परिमार्जित, प्रौढ़ और काव्यात्मक है, जिसमें अलंकारों का भरपूर प्रयोग है। त्रिविक्रमभट्ट संस्कृत साहित्य के सर्वप्रथम श्लेष कवि हैं। इनके नलचम्पू में सरस, रमणीय तथा प्रसादगुण–युक्त श्लेष का बाहुल्य है। अपने पूर्ववर्ती गद्य कवियों (सुबन्धु तथा बाणभट्ट) का इन पर विशेष प्रभाव पड़ा है। यही कारण है कि इनकी भाषा शैली सुबन्धु की श्लिष्ट शैली से भी दुरुह हो गई है। यद्यपि कवि ने अत्यन्त सरल शैली में सभंग श्लिष्ट की रचना की है फिर भी वह कहीं–कहीं दुरुह हो गई है। किन्तु, छोटे श्लोकों में श्लिष्ट पदों की चमत्कारपूर्ण योजना में वे पूर्णतः सफल रहे हैं। कवि की अद्भुत कल्पना से मुग्ध होकर आलोचकों ने उन्हें 'यामुनत्रिविक्रम' की उपाधि से अभिहित किया। इनके चम्पू काव्य में श्लेष के अतिरिक्त अनुप्रास तथा यमक की अनुपम छटा के साथ श्रृंगार, वीर, रौद्र, करुण, भयानक तथा हास्य रसों की भी सुन्दर योजना देखते ही बनती है। श्लेषयुक्त रमणीय चित्रणशैली कवि की मौलिक देन है। इनकी रचनाओं में कोमलकान्त पदावलि के साथ–साथ ओजपूर्ण वर्णनों का सुन्दर समन्वय मिलता है। उनके नलचम्पू में रस तथा वस्तु अलंकार का एक अद्भुत सम्मिश्रण है, जो उन्हें श्रेष्ठ कवियों की श्रेणी में प्रतिष्ठित करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. नलचम्पू 1/16, भट्ट, त्रिविक्रम, चौखम्बा सुरभारती, वाराणसी, संस्करण–2012
2. नलचम्पू 6/1, भट्ट, त्रिविक्रम, चौखम्बा सुरभारती, वाराणसी, संस्करण–2012
3. नलचम्पू 1/27, भट्ट, त्रिविक्रम, चौखम्बा सुरभारती, वाराणसी, संस्करण–2012
4. मनुस्मृति 2/22, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण
5. नलचम्पू 7/3, भट्ट त्रिविक्रम, चौखम्बा सुरभारती, वाराणसी, 2012
6. नलचम्पू – प्रथम उच्छ्वास, पृ० 25, भट्ट त्रिविक्रम, चौखम्बा, 2012
7. नलचम्पू प्रथम उच्छ्वास, पृ० 31, भट्ट त्रिविक्रम, चौखम्बा, 2012
8. नलचम्पू 6/29, भट्ट त्रिविक्रम, चौखम्बा, 2012
9. नलचम्पू 6/32, भट्ट त्रिविक्रम, चौखम्बा, 2012
10. नलचम्पू – द्वित्तीय उच्छ्वास, पृ० 143, भट्ट त्रिविक्रम, चौखम्बा, 2012

मो० : 9430785619

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 205-209
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ग्रामीण अर्थव्यवस्था के स्वरूप का अध्ययन

परम सिंह बरडे
सहायक प्राध्यापक (अर्थशास्त्र),
वीर बलिदानी खाज्या नायक शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय सेंधवा, जिला बड़वानी (म.प्र.)

सारांश – प्रस्तुत शोध पत्र में वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ग्रामीण अर्थव्यवस्था के स्वरूप का अध्ययन किया गया है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार स्तंभ रही है। देश की बहुसंख्यक जनसंख्या आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है तथा कृषि एवं उससे संबद्ध गतिविधियों पर निर्भर है। वर्तमान वैष्वीकरण, तकनीकी विकास, आर्थिक उदारीकरण तथा सरकारी नीतिगत हस्तक्षेपों के परिणामस्वरूप ग्रामीण अर्थव्यवस्था के स्वरूप में उल्लेखनीय परिवर्तन परिलक्षित हो रहे हैं। ग्रामीण अर्थव्यवस्था अब केवल कृषि–आधारित न रहकर गैर–कृषि गतिविधियों, ग्रामीण उद्योगों, सेवा क्षेत्र, स्वरोजगार, वित्तीय समावेशन तथा डिजिटल अर्थव्यवस्था की ओर अग्रसर हो रही है। प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ग्रामीण अर्थव्यवस्था के स्वरूप, संरचना, चुनौतियों एवं संभावनाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है।

मुख्य शब्द – ग्रामीण अर्थव्यवस्था, कृषि, गैर–कृषि गतिविधियाँ, वर्तमान परिप्रेक्ष्य, ग्रामीण रोजगार, विकास,।

1. प्रस्तावना – भारत की सामाजिक–आर्थिक संरचना का मूल आधार ग्रामीण व्यवस्था रही है। प्राचीन काल से ही भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि–प्रधान रही है, जहाँ उत्पादन, उपभोग और सामाजिक जीवन का प्रमुख केंद्र गाँव रहे हैं। ग्रामीण अर्थव्यवस्था का तात्पर्य उन सभी आर्थिक गतिविधियों से है जो ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाली जनसंख्या की आजीविका, आय और जीवन स्तर को प्रभावित करती हैं। स्वतंत्रता के पश्चात भारत ने नियोजित आर्थिक विकास का मार्ग अपनाया, जिसमें ग्रामीण विकास को विशेष प्राथमिकता दी गई। भूमि सुधार, हरित क्रांति, सहकारी आंदोलन, पंचायती राज व्यवस्था और ग्रामीण रोजगार योजनाओं ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को नई दिशा प्रदान की।

वर्तमान समय में ग्रामीण अर्थव्यवस्था एक संक्रमणकालीन अवस्था में है। कृषि पर निर्भरता घट रही है, गैर–कृषि गतिविधियाँ बढ़ रही हैं, ग्रामीण–शहरी संपर्क तीव्र हो रहा है और डिजिटल तकनीक ग्रामीण जीवन को प्रभावित कर रही है। ऐसे में ग्रामीण अर्थव्यवस्था के वर्तमान स्वरूप का विश्लेषणात्मक अध्ययन अत्यंत आवश्यक हो जाता है।

2. ग्रामीण अर्थव्यवस्था की अवधारणा तथा स्वरूप

2.1 अर्थव्यवस्था की परिभाषा :– आर्थिक गतिविधियों का वह समग्र तंत्र जिसमें उत्पादन, वितरण और उपभोग के सभी पहलू शामिल हों, अर्थव्यवस्था कहलाता है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में ये गतिविधियाँ कृषि, पशुपालन, मछली पालन, लघु एवं कुटीर उद्योग, हस्तशिल्प, ग्रामीण बाजार, मजदूरी तथा सेवा–क्षेत्र आदि रूपों में देखने को मिलती हैं।

2.2 ग्रामीण अर्थव्यवस्था के प्रमुख घटक

1. कृषि तथा संबद्ध गतिविधियाँ – फसल उत्पादन, वृक्षारोपण, बागवानी।
2. पशुपालन एवं दुग्ध उत्पादन।
3. कुटीर तथा लघु उद्योग – स्थानिक हस्तशिल्प, बुनाई, खोदाई आदि।
4. ग्रामीण सेवा क्षेत्र – खुदरा व्यापार, स्वास्थ्य सेवाएँ, शिक्षा आदि
5. पुनर्नवीकरणीय ऊर्जा तथा प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग।

3. बदलता परिप्रेक्ष्य वैष्विक और राष्ट्रीय कारक

3.1 वैष्विकरण और अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा – वैष्विक आर्थिक नेटवर्क के विस्तार ने ग्रामीण उत्पादों को राष्ट्रीय सीमाओं से बाहर भी प्रतिस्पर्धा करने के अवसर प्रदान किए हैं। इसका परिणाम मोटे अनाज, दलहन, फल और सब्ज़ियों का निर्यात बढ़ा है। किसानों को विदेशी बाजारों की मांग, गुणवत्ता और मानदंडों के अनुरूप उत्पादन करना पड़ता है। कृषि वस्तुओं की कीमतों में उतार–चढ़ाव का प्रभाव सीधे ग्रामीण आय पर पड़ता है।

3.2 तकनीकी परिवर्तन – तकनीकी बदलाव जैसे – उन्नत बीज, सिंचाई तकनीक, कृषि मशीनरी सूचना–प्रौद्योगिकी आधारित सेवाएँ ने खेती की पैदावार को प्रभावित किया है। डिजिटल तकनीक ने कृषि सूचनाओं, मौसम पूर्वानुमान और बाजार मूल्यों की जानकारी को ग्रामीण किसानों तक पहुँचाया है।

3.3 जलवायु परिवर्तन – ग्रामीण अर्थव्यवस्था विशेष रूप से जलवायु परिवर्तन तथा मौसमी अनिश्चितता से प्रभावित होती है। अनियमित वर्षा, बाढ़, सूखा आदि ने कृषि उत्पादन को अस्थिर बनाया है, जिससे आय और आजीविका पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

3.4 सामाजिक तथा संस्थागत परिवर्तन – ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के विस्तार, शहरीकरण की लहर, तथा युवा वर्ग का रोजगार के लिए शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन विकास की एक महत्वपूर्ण चुनौती है।

4. अध्ययन के उद्देश्य – प्रस्तुत अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं –

1. ग्रामीण अर्थव्यवस्था के वर्तमान स्वरूप एवं संरचना का अध्ययन करना।
2. कृषि एवं गैर–कृषि गतिविधियों की भूमिका का विश्लेषण करना।
3. ग्रामीण रोजगार एवं आय संरचना में हो रहे परिवर्तनों को समझना।
4. ग्रामीण अर्थव्यवस्था के समक्ष विद्यमान चुनौतियों की पहचान करना।

5. शोध पद्धति

5.1 शोध का प्रकार – यह शोध वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विभिन्न घटकों का तथ्यात्मक विवरण एवं आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है।

5.2 आँकड़ों के स्रोत – शोध में मुख्यतः द्वितीयक आँकड़ों का प्रयोग किया गया है, जिनके स्रोत हैं –
भारत सरकार का आर्थिक सर्वेक्षण, जनगणना रिपोर्ट, आरबीआई नीति आयोग, विष्व बैंक की रिपोर्टें,

शोध पत्रिकाएँ, पुस्तकें एवं सरकारी प्रकाशन आदि।

5.3 शोध की सीमाएँ –

1. अध्ययन संपूर्णत : द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है।
2. क्षेत्रीय स्तर पर प्राथमिक सर्वेक्षण का अभाव है।

6. ग्रामीण अर्थव्यवस्था की संरचना

6.1 कृषि एवं संबद्ध क्षेत्र – कृषि ग्रामीण अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार है। फसल उत्पादन, पशुपालन, मत्स्यपालन एवं बागवानी ग्रामीण आजीविका के मुख्य स्रोत हैं। कृषि न केवल आर्थिक गतिविधि है, बल्कि ग्रामीण समाज की सामाजिक–सांस्कृतिक पहचान से भी जुड़ी हुई है। हालाँकि छोटे जोत आकार, मौसम पर निर्भरता, लागत वृद्धि एवं मूल्य अस्थिरता जैसी समस्याएँ कृषि क्षेत्र को प्रभावित कर रही हैं।

6.2 गैर–कृषि गतिविधियाँ – वर्तमान समय में ग्रामीण क्षेत्रों में गैर–कृषि गतिविधियों का तीव्र विस्तार हुआ है। इसमें कुटीर उद्योग, हस्तशिल्प, खाद्य प्रसंस्करण, निर्माण कार्य, व्यापार एवं सेवा क्षेत्र शामिल हैं। गैर – कृषि गतिविधियाँ ग्रामीण बेरोजगारी को कम करने और आय विविधीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

7. ग्रामीण रोजगार एवं आय का विश्लेषण – ग्रामीण रोजगार मुख्यतः असंगठित एवं मौसमी प्रकृति का है। कृषि मजदूरी, स्वरोजगार, लघु उद्योग एवं सरकारी योजनाएँ ग्रामीण रोजगार के प्रमुख स्रोत हैं। महिलाओं की भागीदारी कृषि और स्वरोजगार दोनों क्षेत्रों में महत्वपूर्ण है, किंतु उन्हें अब भी असमान मजदूरी, सीमित संसाधन और सामाजिक बाधाओं का सामना करना पड़ता है। स्वयं सहायता समूहों ने महिला सशक्तिकरण को नई दिशा दी है।

8. ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विश्लेषणात्मक मॉडल

8.1 समेकित ग्रामीण आर्थिक विकास मॉडल –

प्राकृतिक संसाधन
(भूमि, जल, श्रम)
↓
कृषि एवं संबद्ध गतिविधियाँ
↓
गैर–कृषि गतिविधियाँ
↓
रोजगार एवं आय सृजन
↓
वित्तीय समावेशन
(बैंक, एसएचजी, ऋण, बीमा)
↓
सामाजिक–आर्थिक विकास
(शिक्षा, स्वास्थ्य, जीवन स्तर)

8.2 मॉडल का विश्लेषण – यह मॉडल दर्शाता है कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था एक परस्पर संबद्ध प्रणाली है। प्राकृतिक संसाधनों का कुशल उपयोग कृषि उत्पादन को बढ़ाता है, जिससे गैर–कृषि गतिविधियों को प्रोत्साहन मिलता है। रोजगार एवं आय में वृद्धि वित्तीय समावेशन को सुदृढ़ करती है, जिसका अंतिम परिणाम सामाजिक–आर्थिक विकास के रूप में सामने आता है।

9. सरकारी नीतियाँ और कार्यक्रम

9.1 भारत में ग्रामीण विकास के प्रमुख कार्यक्रम – भारत सरकार ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सशक्त करने हेतु कई नीतियाँ लागू की हैं – मनरेगा, ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना, प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि, स्वरोजगार तथा स्वरोजगार सम्बन्धी योजनाएँ, ग्रामीण सड़क/बिजली/पेयजल योजनाएँ। ये कार्यक्रम ग्रामीण आय को स्थिर करने, बुनियादी ढांचे को मजबूत करने तथा सामाजिक सुरक्षा को बढ़ाने में सहायक रहे हैं।

9.2 वित्तीय समावेशन – ग्रामीण बैंकिंग, माइक्रोफाइनेंस, तथा डिजिटल भुगतान सुविधाओं ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मुख्यधारा की वित्तीय प्रणाली से जोड़ा है। किसानों तथा ग्रामीण उद्यमियों को कर्ज, बीमा तथा बचत योजनाओं तक आसान पहुँच बनी है।

10. ग्रामीण अर्थव्यवस्था की चुनौतियाँ

10.1 भूमि क्षमता और भूमि स्वामित्व की असमानता – ग्रामीण भूमि का आकार कम होता जा रहा है जिससे परिमाणात्मक कृषि उत्पादन में कमी आती है।

बड़ी–बड़ी भूखंडों पर आधारित संपन्न किसान बेहतर तकनीक अपनाते हैं, जबकि सीमांत किसान पिछड़ जाते हैं।

10.2 पर्यावरणीय दबाव – मिट्टी का अपर्याप्त पोषण, जल संसाधनों की कमी, कीट संक्रमण आदि से उत्पादन क्षमता प्रभावित होती है।

रासायनिक उर्वरकों का अत्यधिक उपयोग भूमि गुणवत्ता को दीर्घकालिक रूप से हानि पहुंचा रहा है।

10.3 बाजार और मूल्य अस्थिरता – कृषि उत्पादों के लिए सुगठित बाजार, भंडारण तथा मूल्य संरक्षण की व्यवस्था का अभाव ग्रामीण किसानों को कीमत के उतार–चढ़ाव के प्रति संवेदनशील बनाता है।

मध्यस्थ और व्यापारी अधिक लाभ लेते हैं, जबकि उत्पादक को कम मूल्य मिलता है।

11. विकास की संभावनाएँ और अवसर :–

11.1 उद्यमिता और स्टार्ट–अप – ग्रामीण क्षेत्रों में युवा उद्यमियों द्वारा कृषि तकनीक, ई–कॉमर्स, ग्रामीण सेवा प्लेटफार्म आधारित स्टार्ट–अप विकसित किए जा रहे हैं। यह ग्रामीण रोजगार और आर्थिक विकास के नए आयाम खोलता है।

11.2 जैविक कृषि तथा टिकाऊ उत्पादन – निरंतर रासायनिक उत्पादों के स्थान पर जैविक तथा प्राकृतिक कृषि को अपनाने से न केवल स्वास्थ्य और पर्यावरण को लाभ मिलेगा बल्कि उत्पादों के लिए प्रीमियम बाजार भी खुलेंगे।

11.3 ग्रामीण डिजिटल अर्थव्यवस्था – डिजिटल प्रौद्योगिकी ने किसानों को नवीनतम जानकारी, मूल्य संकेत, तथा सीधे बाजार से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

12. सुझाव :– 1. कृषि विपणन सुधार एवं मूल्य स्थिरता। **2.** गैर–कृषि रोजगार के अवसरों का विस्तार। **3.** ग्रामीण बुनियादी ढाँचे का विकास। **4.** शिक्षा एवं कौशल प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान। **5.** महिला एवं युवा सशक्तिकरण कार्यक्रम।

13. निष्कर्ष :– वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ग्रामीण अर्थव्यवस्था का स्वरूप निरंतर परिवर्तनशील है। कृषि आज भी इसका आधार है, किंतु गैर–कृषि गतिविधियों, तकनीकी नवाचार और सरकारी नीतियों ने इसे अधिक बहुआयामी बना दिया है। यदि समन्वित विकास रणनीति अपनाई जाए, तो ग्रामीण अर्थव्यवस्था न केवल ग्रामीण जीवन स्तर में सुधार कर सकती है, बल्कि राष्ट्रीय आर्थिक विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था को संतुलित, टिकाऊ और समावेशी बनाना आवश्यक है। इसके लिए कृषि के साथ ग्रामीण उद्योग, शिक्षा तथा प्रौद्योगिकी को जोड़कर एक बहुआयामी विकास मॉडल अपनाना अनिवार्य है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था

को मुख्य धारा की अर्थव्यवस्था का भाग बनाने के लिए निवेश, कौशल विकास, डिजिटल पहुँच और बाजार संरचना में सुधार प्राथमिकता होनी चाहिए।

14. संदर्भ सूची :–

1. टोडारो, एम. पी., – स्मिथ, स्टीफन (2015). Economic Development- Pearson Education-भारतीय कृषि मंत्रालय, भारत सरकार – कृषि एवं सम्बंधित नीतियाँ तथा रिपोर्ट ।
2. सींह, एस. (2019). "ग्रामीण विकास और गरीबी उन्मूलन", 'इंडियन जर्नल ऑफ भारतीय ग्रामीण विकास रिपोर्ट', भारत सरकार।
3. नायर, आर., – शुक्ला, डी. (2018). Agricultural Economics in India- New Delhi: Academic Press.
4. द्रेज़, जीन एवं सेन, अमर्त्य (2013). An Uncertain Glory: India and Its Contradictions- नई दिल्लीरू पेंगुइन बुक्स इंडिया।
5. टोडारो, माइकल पी. एवं स्मिथ, स्टीफन सी. (2015). Economic Development- न्यूयॉर्करू पियर्सन एजुकेशन।
6. शुक्ला, पी. डी. (2016). ग्रामीण विकास और नियोजन. नई दिल्लीरू विकास पब्लिशिंग हाउस।

E-mail ID : paramsinghbarde@gmail.com
Mobile No. 9630278172

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 210-213
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Parenting Style As A Predictor Of Child Behaviour

Ankita Verma
Research scholar,
Department of Teacher Education,
Nehru Gram Bharti (Deemed to be) University, Prayagraj

Introduction

Parents play an influential role in their children's lives. They not only raise and nurture their children but also provide social and emotional support and the essentials for their overall development and future. Parenting is a lifelong process that significantly impacts a child's life. Parenting styles encompass the methods, practices, and approaches that parents use to nurture and raise their children.

Objectives of the study:

1. What are parenting styles, and how many types of parenting styles are there?
2. How do different parenting styles influence a child's behaviour?

Parenting Styles:

Parenting is a lifelong process that significantly impacts a child's life. Parenting styles encompass the methods, practices, and approaches that parents use to nurture and raise their children. Parenting is both a biological and social process (Learner et al., 2002) that incorporates values, children's success, and the social, emotional, physical, and cognitive development of the child. Parenting is a progressive process of assisting and maintaining the physiological, mental, and social development of a child from infancy to adulthood (Jane B. Brroke, 2012). According to Trivedi, R. G., & Nagpal, A. (2025), parenting is influenced by parents' own past experiences, which they either unconsciously replicate or consciously avoid. The term 'parenting' is derived from '*parens*', a Latin word meaning life-giver, and focuses on the relationship between a young child and parents or guardians, including emotional attachment and availability to the child throughout their life (Scher & Sharabary, 2005; Shonkoff and Phillips, 2000). Parenting is not only confined to parents but also to other family members, such as caregivers, grandparents, and siblings, who have an emotional relationship with the child (Bornstein, 2005). Parenting style refers to the set of behaviours that parents or guardians use to raise their children. Parenting styles, individually and together, influence children's outcomes and the care of a child's physical, psychological, emotional, moral, and intellectual development.

In the 1960s, Diana Baumrind proposed a pillar theory of parenting styles and drew attention to this field of research. In her seminal work, parenting styles are differentiated into three types – authoritative, authoritarian, and permissive indulgent, which is based on two

dimensions: warmth/responsiveness and demandingness. Later, Maccoby and Martin (1983) added another type of parenting, known as permissive neglectful, and included the dimension of psychological control (Darling and Steinberg, 1993; Barber, 1996).

Dimensions Of Parenting Styles:

1. **Responsiveness:** Responsiveness refers to the degree of warmth, love, and support that parents provide to children throughout their nurturing and raising journey (Baumrind,1966).
2. **Demandingness:** This is defined as the degree to which parents set rules and enforce them on children(Baumrind,1966).
3. **Psychological Control:** Psychological control is defined as attempts to exert influence that intrude upon a child's psychological and emotional development (Barber, 1996). This is achieved through parenting practices such as inducing guilt, withdrawing love, or instilling shame.

Types of parenting styles

1. **Authoritative Parenting:** Authoritative parenting is widely viewed as the most effective style of raising children. This approach is defined by a combination of strong guidance and warmth. Parents who practice this style use positive reinforcement and motivate their children to make decisions and participate in extracurricular activities, which nurtures their creativity. They permit their children to learn from their mistakes and treat them with kindness and respect. Authoritative parents encourage open dialogue with their children and support their pursuit of independence. This parenting method often leads to children who exhibit high levels of resilience and self-esteem.
2. **Authoritarian Parenting**: Authoritarian parenting is marked by a strong emphasis on control and demands, coupled with a noticeable lack of warmth or responsiveness. Parents who adopt this style impose rigid rules and expect unwavering obedience. They favour one-way communication over engaging in open dialogue. To ensure compliance, they may resort to tactics like withholding affection and support. Such parents are more inclined to use physical punishment, verbal insults, or abuse to achieve the behaviour they desire. Their focus is on obedience, and they often maintain an emotionally distant and controlling demeanour. They frequently assert their authority, operating under the belief that children must obey their parents without question.
3. **Permissive-Indulgent Parenting:** Permissive-indulgent parenting is defined by a high level of responsiveness combined with a low level of demandingness. Parents who follow this approach tend to be lenient, indulgent, and show abundant warmth towards their children. They avoid imposing restrictions and do not establish clear boundaries. These parents are affectionate, warm, and prioritize their children, often setting minimal or no limits. At times, they may experience sudden outbursts when their tolerance is exceeded. They have minimal monitoring. In this parenting style, parents often take on a friend-like role with their children, leading to a lack of consequences; children are allowed to create their own rules and make decisions independently. They often permit their children to seek independence, but do not actively engage in teaching independence skills.
4. **Permissive Neglectful Parenting:** Permissive neglectful parenting, also referred to as uninvolved or neglectful parenting, is characterized by a lack of expectations and responsiveness. This style of parenting does not establish clear guidelines or limits. Uninvolved parents tend to be emotionally detached from their children, offering little affection or warmth. In this method, there is both a physical and

emotional distance between the parents and the child, with scant attention paid to the child's emotional needs. Communication is sparse, and parents do not engage in or support their children's educational pursuits.

Review of related literature

Ahmed, R. (2025) examines the influence of authoritative, authoritarian, permissive, and neglectful parenting styles on children's self-esteem, academic achievement, and emotional regulation. The study also explores emotional, cognitive, social, and emotional development across various cultural and socioeconomic contexts.

Ghose, M. (2025) asserts that authoritative parenting fosters positive outcomes in all aspects of well-being, whereas authoritarian and neglectful parenting are associated with negative outcomes and diminished well-being. The research emphasizes the importance of a supportive family environment and open communication for optimal child development.

Sanvictores, T., and Mendez, M.D. (2025) delineate the distinct methodologies employed in child-rearing across different parenting styles and the primary concerns associated with each style.

Abidin, F.A., and Yudiana (2022) demonstrate in their research that a supportive parenting style enhances child well-being and positively influences the satisfaction of basic psychological needs.

Influence On Children's Behaviour

1. **Authoritative Parenting:** Children raised by authoritative parents often display high levels of self-esteem, confidence, academic achievement, and mental well-being. According to Lambon et al. (1991), these children generally perform better academically, experience less anxiety, adapt well socially, and exhibit fewer psychological and behavioral problems. This parenting approach is beneficial as it offers children more freedom than authoritarian parenting. As a result, these children develop strong decision-making skills, maintain a positive life perspective, excel in problem-solving, and are socially responsible, independent, resilient, emotionally intelligent, and driven to succeed.
2. **Authoritarian Parenting:** Children brought up under authoritarian parenting often face heightened anxiety and are at risk for mental health issues such as depression, rebelliousness, social phobia, and destructive behaviours. Although these children generally display good behaviour, they are more prone to moodiness and anxiety. They tend to follow rather than take the lead.
3. **Permissive-Indulgent Parenting**: Children with permissive-indulgent parents often display impulsiveness and aggression, face challenges in regulating their emotions, and struggle with setting boundaries and maintaining self-discipline. The absence of clear limits can sometimes result in higher rates of delinquent behaviour. Nevertheless, these children typically have high self-esteem, are creative, and possess strong social abilities.
4. **Permissive-Neglectful Parenting:** Children who grow up with permissive, neglectful, or uninvolved parents often face challenges such as low self-esteem, poor academic results, and social withdrawal. They are susceptible to feelings of depression, anxiety, hopelessness, and loneliness. The absence of parental affection leads to low emotional dependency. These children are inclined to engage in risky behaviours and struggle with academic performance and motivation.

Conclusion

Parenting constitutes a lifelong endeavour that profoundly influences a child's development and behaviour. Parenting styles encompass a range of methods and practices employed by parents and caregivers to nurture and raise their offspring. Parents offer warmth,

love, and support, which are essential for fostering the physical, emotional, cognitive, and intellectual growth of children. This study examines four distinct parenting styles: authoritative (characterized by high demandingness and high responsiveness), authoritarian (marked by high demandingness and low responsiveness), permissive-indulgent (noted for high responsiveness and low demandingness), and permissive-neglectful (defined by low demandingness and low responsiveness). Each parenting style exerts a unique impact on child behaviour. Authoritative parenting is regarded as the ideal approach due to its balanced method of providing warmth and establishing clear boundaries, thereby nurturing confident and responsible children. Authoritarian parenting, while promoting well-behaved children, is associated with increased anxiety and lower academic achievement. Permissive parents, who do not establish clear boundaries, often have children who struggle with emotional regulation and experience heightened anxiety and poor mental health. Uninvolved parenting is linked to feelings of phobia, social anxiety, low motivation, and poor mental health. It is common for families to employ a combination of two or more parenting styles in child-rearing, as mothers and fathers may hold differing perspectives on parenting.

References:

- Aghi, A., & Bhatia, H. (2021). Parenting styles. *The Journal of Positive Psychology*.
- Abidin, F. A., Yudiana, W., & Fadilah, S. H. (2022). Parenting style and emotional well-being among adolescents: The role of basic psychological needs satisfaction and frustration. *Frontiers in Psychology, 13*, Article 901646. https://doi.org/10.3389/fpsyg.2022.901646
- Ahmed, R. (2025). Parenting styles and their influence on child development: A critical review of contemporary research. *Premier Journal of Social Science, 2*, Article 100007. https://doi.org/10.70389/PJSS.100007
- Azman, Ö., Mauz, E., Reitzle, M., Geene, R., Hölling, H., & Rattay, P. (2021). Associations between parenting style and mental health in children and adolescents aged 11–17 years: Results of the KiGGS cohort study (second follow-up). *Children, 8*(8), 672. https://doi.org/10.3390/children8080672
- Burgdorf, V., Szabó, M., & Abbott, M. J. (2019). The effect of mindfulness interventions for parents on parenting stress and youth psychological outcomes: A systematic review and meta-analysis. *Frontiers in Psychology*, *10*, Article 1336. https://doi.org/10.3389/fpsyg.2019.01336
- Darling, N. (1999, March). *Parenting style and its correlates* (ERIC Digest No. ED427896). ERIC Clearinghouse on Elementary and Early Childhood Education. https://eric.ed.gov/?id=ED427896
- Ghosh, M. (2025). Role of parenting styles in adolescents' well-being: A psychological perspective. *East African Scholars Journal of Psychology and Behavioural Sciences, 7*(3), 103–109. https://doi.org/10.36349/easjpbs.2025.v07i03.004
- Kaushik, Y., & Sundaresan, J. (2024). The impact of parenting styles on specific behavioral patterns of the adolescent. *The International Journal of Indian Psychology, 12*(1). https://doi.org/10.25215/1201.152
- Rajan, R., & Sathiyanarayan, S. (2020). Young adults' perceptions of parenting styles: A qualitative study. *International Journal of Indian Psychology, 8*(3), 1131–1145.
- Sanvictores, T., & Mendez, M. D. (2025). Types of parenting styles and effects on children. In *StatPearls* [Internet]. StatPearls Publishing.https://www.ncbi.nlm.nih.gov/books/NBK568743/
- Trivedi, R. G., & Nagpal, A. (2025). *This book won't teach you parenting: But it will make you a better parent*. Penguin Random House India.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 214-216
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

आंचलिक संस्कृति और वाचिक परंपरा : उत्तराखण्ड के कुमाऊँ क्षेत्र के सम्बन्ध में

डॉ. हेमचन्द्र दुबे
असिस्टेंट प्रोफेसर हिन्दी,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय द्वाराहाट (अल्मोड़ा)

हमारा भारतवर्ष अनेकता में एकता वाला देश है। यहाँ की साहित्यिक सांस्कृतिक परंपराएँ पूरे विश्वपटल पर अपना परचम लहराती है इसी लिए भारतवर्ष को प्राचीन समय में सोने की चिड़िया कहा जाता था। भारतवर्ष की संस्कृति और भाषायी विशेषताओं को अगर देखना हो तो हमें यहाँ के ग्रामों अंचलों की तरफ लौटना पडेगा। हिमालय का क्षेत्र हो या दक्षिण का भूभाग पश्चिम की लोक सांस्कृति हो या पूर्व के अनोखे राग यह हमें आंचलिक क्षेत्रों से पता चलता है।

भारतवर्ष के उतरी भूभाग में बसा उत्तराखण्ड देवभूमि के नाम से जाना जाता है। उत्तराखण्ड में दो मंडल है। कुमाऊँ और गढ़वाल। इन दोनों मंडलों की संस्कृति मूलतः पर्वतीय या पहाड़ी संस्कृति कहलाती है। हमारे उत्तराखण्ड में भाषायी संस्कृति की अनूठी छाप यहाँ के लोक जीवन में स्पष्ट भारतवर्ष रुप से दिखाई देती है। उत्तराखण्ड के कुमाऊँ में संस्कृति के अनूठे नमूने मिलते है। यहाँ की भाषिक सांस्कृति में लोकगीत,लोककथा मुहावरे,कहावतें,लोकनाट्य,लोकगाथा पहेलियाँ आदि यहाँ के लोकजीवन में प्राचीन काल से ही प्रचलित रहे है। यहाँ के लोकजीवन की सटीक दृष्टि यहाँ के लोक साहित्य में ही मिलती है। समाज और साहित्य का आपस में प्रगाढ़ संबंध है। किसी भी समाज की वास्तविक स्थिति का पता उस समाज में प्रचलित साहित्य और संस्कृति के माध्यम से चलता है। लोकसाहित्य के विद्वान डॉ0 उर्वादत्त उपाध्याय ने चर्चा करते हुए कहा है– ''वर्तमान समय में साहित्य अनुशीलन के अन्तर्गत लोकसाहित्य के प्रति भी सहृदयों एवं विद्वानों की रुचि जाग्रत हुई है। यह एक शुभ लक्षण है। सच पूछा जाए तो लोकसाहित्य ही समाज के एक विशाल जन समाज साहित्य है''।

कुमाऊँ क्षेत्र का लोकसाहित्य बहुत समृद्ध है। यहाँ की वाचिक परंपरा में यहाँ के लोकगीत लोककथाएँ, गाथाएँ, नाटक, कहावतें अपने आप में मुख सुख का साधन बनी है। इतिहास काल से ही यहाँ की मौखिक परंपरा बहुत समृद्ध रही है। प्रख्यात साहित्यकार श्री गोपाल दत्त भट्ट बताते है– '' कुमाऊँ की मौखिक परंपरा का एक विशेष उदाहरण ''जागर'' है। जागर या जागरण कुमाऊँ गढ़वाल का प्रसिद्ध लोकनृत्य है। इसमें जागर लगाने वाला जगरिया कहलाता है। उसे जागर में गायी जाने वाली पूरी कथा या गाथा कंठस्थ याद रहती है। जागर घरों के अंदर वाली हो अथवा धूनी (धूणी) बाहर वाली, जागर गायक अपनी मौखिक विधा में पारंगत होता है।''[1] हमारे लोकजीवन में विविध अवसरों पर गाये जाने वाले गीत,कथा आदि में कुमाऊँनी सभ्यता और संस्कृति के तत्व बराबर रुप से समाविष्ट रहते हैं। रोपाई निराई हो कि संस्कारों का आयोजन सभी सुअवसरों पर गीत गायन की परंपरा है और ये गीत महिला पुरुषों के द्वारा उन्मुक्त कंठ से गाये जाते हैं। इनके वाचन के लिए इन्हें

किसी लिखित साहित्य की आवश्यकता नहीं पड़ती लोक साहित्य के मर्मज्ञ प्रो. शेर सिंह बिष्ट लिखते है–'विश्व में वाचिक साहित्य परंपरा आदिमयुग से चली आ रही है। आज भी उसका प्राचीन स्वरुप' आदिवासियों एवं जंगल में निवास करने वाली आदिम जातियों के वाचिक साहित्य में देखा जा सकता है। उसी का एक दूसरा रुप सभ्यता के विज्ञान की मुख्यधारा से जुड़ी विभिन्न जातियों की बोली भाषाओं के लोकसाहित्य में भी दिखाई देता है। लोकसाहित्य ग्रामीण जीवन की कोख से जन्म लेता हुआ अविरत गति से परंपरागत रुप में गतिमान रहता है। भारत को ग्रामों का देश कहा जाता है। यहाँ कि अस्सी प्रतिशत जनता गाँवों में निवास करती है। हालॉकि शहरीकरण के बढ़ते प्रभाव के कारण उसमें निरंतर कमी आ रही है। फिर भी भारतीय उपमहाद्वीप में विभिन्न बोली भाषाओं का लोकसाहित्य काफी समृद्व है। जिसका संवाहक यहाँ का लोकजीवन है। लोकजीवन से जुड़ी हर तरह की गतिविधि का प्रतिबिम्ब वहाँ के लोकसाहित्य में दिखाई देता है। [2]

कुमाऊँ में जो वाचिक परंपरा प्रचलित है। वही वाचिक परंपरा समूचे विश्व की वाचिक परंपरा के समतुल्य है। इतना अवश्य है कि हरेक देशदुनिया की अपनी भाषा बोली है। उनके रीति रिवाज व्यवहार खान पान, धर्म,मेले,उत्सव पोशाक और लोकाचार अपनी तरह के है किन्तु वाचिक परंपरा का वैशिष्ट सब जगह एक समान है। उदाहरण के लिए किसी कहावत को उठा लिया जाए तो सब स्थानों क्षेत्रों में वह कहावत एक समान गूढ़ार्थ की प्रतीति कराएगी। भाव एक होगा। वाचिक परंपरा में अनुभव जन्य ज्ञान और व्यवहार के सभी गुण समाविष्ट रहते हैं।

कुमाउनी समाज में वाचिक साहित्य संगीत और कला का सुंदर समावेशन हुआ है। यहाँ शादी ब्याह हो या कोई मांगलिक कार्य ढ़ोल,नगाड़े दमुवाँ,मशकबीन,बांसुरी,तूर्य भौंकर आदि के साथ साथ ढोलक मंजीरे और ढपलियाँ भी बजती है। एक परंपरागत वाद्य यंत्र का नाम है 'हुडुका' यह जागर और अन्य लोकनृत्यों के आयोजन पर बजाया जाता है। जितने भी वाद्य यंत्र है उनकी ध्वनि सुर ताल सब परंपरागत लोक आख्यानों की सुरलहरी को अभिव्यक्त करते हैं। डॉ. हेमचन्द्र दुबे ने अपने शोधाग्रंथ में लिखा है– 'मनुष्य आदिकाल से ही समाज में रहता आया है। यद्यपि मनुष्य का अपने समाज में होने का ज्ञान बहुत देर से हुआ, किन्तु वह पुराकाल से समाज के मध्य अपना जीवन यापन करता आया है। सबसे पहले मनुष्य ने प्राकृतिक घटनाओं का अध्ययन किया और अपने चारों ओर के पर्यावरण को समझने का प्रयत्न किया और अंततः उसने अपने विषय में चिंतन मनन करना आरंभ किया। इसी कारण से पहले प्राकृतिक विज्ञानों का विकास हुआ उसके पश्चात् सामाजिक विज्ञानों का। [3]

वर्तमान समय में प्राचीन लोक साहित्यिक विधाओं का ध्वन्यालेखन, अनुवाद, परिनिष्ठित साहित्य में रुपांतरण का कार्य गतिमान है किन्तु जो मौलिकता और वास्तविक सुवास वाचिक परंपरा में दिखती है वह कृत्रिमता में नहीं, डॉ बिष्ट के शब्दों में उत्तराखंड के परिप्रेक्ष्य में यदि लोकसाहित्य के वर्तमान परिदृश्य का आकलन करें तो उसमें एक तरह के ठहराव की सी स्थिति देखी जा सकती है। यहाँ का परंपरित लोकसाहित्य काफी समृद्ध है मुख्यरुप से लोकगाथाएँ और जागर गाथाएँ अपने प्रचलित स्वरुप में यथावत चली आ रही है। इनमें अधिकांश धार्मिक गाथाएँ हैं जो यहाँ के लोगों की धार्मिक आस्था और विष्वास के कारण विभिन्न अवसरों पर लोकगायकों के कंठ से प्रसरित होती रहती है। आज भी उत्तराखण्ड के दूरदराज के गाँवों में हर मार्ग की दवा स्थानीय अथवा पौराणिक देवी देवताओं की कृपा दृष्टि हो रही है। गाँवों में विभिन्न प्रकार के मानसिक और शारीरिक रोगों के उपचार के लिए किसी देवी देवता का जागर लगाना अपरिहार्य सा दिखाई देता है। इस कारण में गाथाएँ जिन्दा हैं। [4] इस प्रकार हम देखते हैं कि ग्रामों ने भी बुजुर्ग जन अपने दैनंदिन व्यवहार में प्रायः मुहावरों और कहावतों के प्रयोग करते दिखाई देते है। ये वाचिक अभिव्यक्तियाँ मूल शाब्दिक अर्थ से परे लाक्षणिक अर्थ को प्रकट करती हैं हरेक भाषा साहित्य के समाज में इन मुहावरों और कहावतों का प्रयोग बराबर होता रहता है। लोक साहित्य के मर्मज्ञ डॉ. कृष्णानन्द जोशी ने इस वाचिक परंपरा को पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होने वाली संस्कृति कहा है– 'लोक जीवन के विविध पहलुओं, आचार–विचारों, रीति–रिवाजों सामाजिक परंपराओं एवं जीवनदर्शन की झांकी कहावतों के उस संचित ज्ञान भंडार से मिलती है जिसे मैलिक परंपरा द्वारा एक पीढ़ी द्वारा दूसरी पीढ़ी विरासत के रुप में ग्रहण करती आ रही है। [5]

वर्तमान समय में यदि हम कुमाऊँ क्षेत्र के दूर दराज के ग्रामों की ओर रुख करते हैं तो हमें उस आंचलिक संस्कृति में वाचिक परंपरा के अद्वितीय तत्व मिलते हैं। त्योहार

रीति–रीवाज,खान–पान, मेले उत्सव धार्मिक आयोजन अनुष्ठान, देवी देवताओं की पूजा अर्चना सहित मानवीय व्यवहार के कई तत्व हमारी संस्कृति के मूल बिन्दु हैं। इन आयोजनों में अपनी कुमाऊँनी भाषा में बोली गीत,कथा,प्रहसन स्वांग नृत्य आदि का आयोजन किया जाता है। जोड़,ज्यौली,झोड़ा,चांचरी,फाग,बैर आदि विधाएँ कुमाउनी वाचिक परंपरा में अपने वैशिष्ट्य से सबको आनंदित करती है। हम समझ सकते है कि इस संस्कृति में ग्राम संस्कृति के सारे तत्व सन्निहित है। गोबर की खाद को खेतों में ले जाने की भी एक संस्कृति है। ग्राम की सभी महिलाएँ मिलकर बांस की या रिंगाल की डलिया में मोल (मोव) जिसे गोबर की खाद के नाम से जाना जाता है सिर में रखकर जब कतारबद्ध लेकर खेतों में ले जाते हैं तब वह एक सुंदर संस्कृति का अहसास कराती है। न कि बदबूदार गोबर के ढ़ोने की मजबूरी है। ऐसा प्रभाव संस्कृति मूल्यों के कारण उपजा है। आपस में बारी बारी से सबके कार्य में सहयोग की भावना को 'पौल्ट' कहते है।

इससे विनिमय संस्कृति द्वारा सबका कार्य सहजता के साथ सम्पन्न हो जाता है। इसमें भी औरतें गाते हुए कार्य को मानस सुलभ बना देती है। रोपाई के दौरान हुड़की बोल में गाथा गायन भी वाचिक संस्कृति का एक अनूठा रुप है।

बदलते परिवेश में कुमाउनी लोक परंपराओं को कंप्यूटर प्रणाली के माध्यम से प्रस्तुत किया जा रहा है। यह एक लिहाज से ठीक है क्योंकि देश–विदेश में रह रहे कुमाउनी परिवारों तक उनकी मौलिक संस्कृति आसानी के साथ पहुंच रही है। ऐपण कला के विविध नमूने कंप्यूटर प्रिन्ट के रुप में घर–घर की शान बने हैं। क्या हम मान लें कि हमारी वाचिक परंपरा इस तरह बची रहेगी। क्या हम इसी कट पेस्ट से अपनी मौलिक संस्कृति को जीवित रख सकेंगे? मगर यह संभव नहीं है। मौलिकता के लिए वही खोली वाला घर आँगन,बाखली की जरुरत है। नौले गधेरे में निर्बाध निर्मल जलधारा की कलकल वाला निस्पंद मानस पर भाव उर्वर करने होंगे। पहाड़ की पर्यावरण की नैसर्गिक छवि को बचाने के लिए आसपास की वनस्पति से वातावरण सुरक्षित करना पडेगा। बुरांश प्योली के फूलों के मकरंद में सने भंवरों की गुंजार में तन्मय होकर जीना पड़ेगा। यह संभव है अभी कतिपय ग्रामों ने इस वाचिक और पारंपरिक संस्कृति को यथावत रखा है।

बोलचाल की भाषा में अपने गृहक्षेत्र की भाषा उच्चरित कर परिजनों को भी उसी भाषा में शिक्षित संस्कारवान बनाने की मुहिम चलनी चाहिए। शादी ब्याहों में हमारे कुमाउनी गढ़वाली गाने जब देश विदेशों तक बज रहे हैं जनता को आनंदित कर रहे है तो हमें उन्हें और भी अधिक महत्व देना चाहिए। राष्ट्रीय नई शिक्षा नीति के तहत अपनी क्षेत्रीय भाषा संस्कृति को बढ़ावा देने के उद्देश्य से स्कूली और विश्व विद्यालयी स्तर के पाठ्यक्रम में स्थानीय भाषा संस्कृति से सवंधित अध्यायों का प्रणयन किया गया है। कुमाउनी की आर बात करें तो वर्ष 2008 के बाद कुमाउनी में लिखने वालों की संख्या में बहुत बढ़ोत्तरी हुई है।

उत्तराखंड भाषा संस्थान और संस्कृति विभाग भी कुमाउनी संस्कृति को बचाने के लिए कुमाउनी भाषा के लेखकों संस्कृति कर्मियों को हर साल आर्थिक सहायता प्रदान कर रहे है। कुल मिलाकर कुमाउनी संस्कृति का भविष्य उज्जवल है। यहाँ की मौलिक सांस्कृतिक विरासत देश की राजधानी में भी प्रसरित है। हर साल गणतंत्र दिवस परेड में कुमाउनी गढ़वाली संस्कृति और भाषा संबंधित सुंदर प्रस्तुतियॉ प्रवासी और कुमाउनी जनों का मन मोह लेती है। हमारी संस्कृति की पहचान यथावत रहे इसके लिए पलायनवादी मानसिकता को त्यागना होगा। अपनी मातृभूमि को उर्वर कर उसमें लोकल फॉर वोकल के तहत उद्यमिता के नए रंग ढंग बनाने होंगे। केवल पर्यटन से नहीं हमारी प्राकृतिक और पर्यावरणीय संस्कृति हमें उसकी मेहनत से खुशहाल और समृद्ध कर देगी। ऐसा विश्वास है।

संदर्भ

(1) भट्ट, श्री गोपालदत्त से साक्षात्कार के दौरान दिया गया वक्तव्य।
(2) बिष्ट, प्रो शेरसिंह, कुमाउनी वाचिक साहित्य, पृ. 05
(3)दुबे, डॉ. हेमचन्द्र, कुमाउनी कहावतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन
अध्ययन (अप्रकाशित शोध प्रबंध) पृ–268।
(4) बिष्ट, प्रो शेरसिंह, कुमाउनी वाचिक साहित्य, पृ. 06
(5) रुवाली, डॉ केशव दत्त, मानक हिन्दी ज्ञान, पृ–70

मो0– 9690390729 E Mail- hemchandradube52@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 217-220
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

"ऋणम् कृत्वा घृतम् पिबेत् से जीवन्मुक्ति तक: डिजिटल युग में अस्तित्वगत संकट और भारतीय दर्शन का समाधान"

जीतेन्द्र कुमार मीना
ज्योति विद्यापीठ , जयपुर

सारांश
यह शोध पत्र आज के दौर के बढ़ते उपभोक्तावाद और उससे पैदा होने वाली मानसिक बेचैनी को भारतीय दर्शन के चश्मे से देखता है। इसमें दिखाया गया है कि कैसे आज का 'लोन लेकर ऐश करने' का कल्चर प्राचीन चार्वाक दर्शन के 'ऋण लेकर घी पीने' के विचार जैसा ही है। पेपर तर्क देता है कि केवल भौतिक सुखों के पीछे भागने से इंसान अंत में खुद को खाली और तनावपूर्ण महसूस करता है। इस समस्या के समाधान के लिए यहाँ आदि शंकराचार्य के अद्वैत वेदांत का सहारा लिया गया है, जो हमें 'माया' के जाल को समझने की प्रेरणा देता है। अद्वैत सिखाता है कि असली शांति बाहर की वस्तुओं में नहीं, बल्कि अपने भीतर की चेतना को पहचानने में है। यह रिसर्च प्राचीन ज्ञान और आधुनिक लाइफस्टाइल के बीच एक संतुलन बनाने की कोशिश करती है ताकि इंसान सुख-सुविधाओं के बीच रहते हुए भी मानसिक रूप से मुक्त रह सके। अंत में यह निष्कर्ष निकलता है कि शरीर की जरूरतों और आत्मा की शांति के बीच का मेल ही आज के युग का असली मोक्ष है। यह अध्ययन आज के डिजिटल दौर में पुराने दर्शन की उपयोगिता को बहुत ही सरल और प्रभावी ढंग से सिद्ध करता है।
बीज शब्द- भौतिकवाद, लोकायत, दर्शनअद्वैत, वेदांत, मोक्ष, देहवाद, अध्यास, मध्यम मार्ग

इक्कीसवीं सदी का मानव एक अजीब तरह के विरोधाभास में जी रहा है। एक ओर हम 'भौतिकवाद' (Materialism) के उस चरम पर हैं जहाँ तकनीक और संसाधनों ने जीवन को अत्यंत सुविधाजनक बना दिया है, तो दूसरी ओर 'मानसिक शून्यता' और 'अस्तित्वगत संकट' (Existential Crisis) आज की सबसे बड़ी समस्या बनकर उभरे हैं। आज का मनुष्य सब कुछ पाकर भी अंततः अतृप्त है। यह स्थिति हमें भारतीय दर्शन की दो अत्यंत महत्वपूर्ण और परस्पर विरोधी विचारधाराओं के आमने-सामने खड़ा कर देती है: चार्वाक का 'लोकायत' दर्शन और शंकराचार्य का 'अद्वैत वेदांत'।

आज के उपभोक्तावादी (Consumerist) समाज में हम अनजाने में ही चार्वाक दर्शन के अनुयायी बन चुके हैं। चार्वाक का वह प्रसिद्ध सूत्र— "यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्" 1 (जब तक जियो सुख से जियो, चाहे उधार लेकर घी पीना पड़े)—आज के 'क्रेडिट कार्ड कल्चर' और 'इंस्टेंट ग्रैटिफिकेशन' का आधार बन गया है। चार्वाक दर्शन के अनुसार 'प्रत्यक्ष' ही एकमात्र प्रमाण है और यह देह ही एकमात्र सत्य है। उनके लिए 'मोक्ष' का अर्थ मृत्यु के अतिरिक्त कुछ नहीं था। आज का आधुनिक मानव भी इसी विचारधारा पर चलते हुए इंद्रिय सुखों और भौतिक संचय को ही जीवन का अंतिम लक्ष्य मान बैठा है।

परंतु, क्या भौतिक सुखों की यह अधिकता मनुष्य को स्थाई शांति दे पाई है? यहीं पर आदि शंकराचार्य के अद्वैत वेदांत की प्रासंगिकता सिद्ध होती है। शंकर के अनुसार यह दृश्य जगत 'माया' है—अर्थात एक व्यावहारिक सत्य तो है, लेकिन परम सत्य नहीं। अद्वैत दर्शन कहता है कि मनुष्य की व्याकुलता का कारण 'अविद्या' (अज्ञान) है, जहाँ वह उस 'आनंद' को नाशवान वस्तुओं में खोज रहा है जो वास्तव में उसके भीतर 'आत्मा' के रूप में स्थित है। जहाँ चार्वाक देह को ही सब कुछ मानते हैं, वहीं शंकराचार्य देह से परे उस 'ब्रह्म' की अनुभूति को ही वास्तविक मोक्ष मानते हैं।

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य इसी संघर्ष का विश्लेषण करना है। क्या चार्वाक का भौतिकवाद केवल एक स्वार्थपूर्ण दर्शन है, या वह आधुनिक अर्थशास्त्र की अनिवार्य आवश्यकता है? और क्या आज के आपाधापी भरे जीवन में शंकराचार्य का 'जीवन्मुक्ति' का सिद्धांत व्यावहारिक है? यह शोध पत्र यह तर्क प्रस्तुत करता है कि आधुनिक जीवन की विसंगतियों का समाधान न तो केवल पदार्थ में है और न ही संसार के पूर्ण त्याग में, बल्कि इन दोनों के मध्य एक दार्शनिक संतुलन स्थापित करने में है। हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि चार्वाक के 'देहवाद' से ऊपर उठकर अद्वैत की 'अद्वैत चेतना' तक की यात्रा आज के संदर्भ में कैसे संभव है।

भारतीय दर्शन परंपरा में चार्वाक (या लोकायत) को अक्सर एक 'विद्रोही' दर्शन के रूप में देखा गया है।2 जहाँ अन्य सभी भारतीय दर्शन (जैसे सांख्य, योग, या वेदांत) परलोक, कर्मफल और पुनर्जन्म की चिंता करते हैं, वहीं चार्वाक स्पष्ट रूप से घोषणा करता है कि जो प्रत्यक्ष है, वही सत्य है। चार्वाक का 'देहवाद' (Materialism) मानता है कि चेतना मात्र पंचभूतों के मिश्रण से उत्पन्न होती है और मृत्यु के साथ ही सब कुछ समाप्त हो जाता है— "भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः" 3(इस राख हो जाने वाले शरीर का पुनरागमन कहाँ संभव है?)।आज के 21वीं सदी के परिवेश को देखें, तो यह प्राचीन 'नास्तिक' विचार आधुनिक 'उपभोक्तावाद' (Consumerism) का वैचारिक आधार बन चुका है। आज की वैश्विक अर्थव्यवस्था इसी सिद्धांत पर टिकी है कि मनुष्य अधिक से अधिक वस्तुओं का उपभोग करे। चार्वाक का 'ऋण लेकर घी पीने' का सिद्धांत आज के 'क्रेडिट कार्ड' और 'इंस्टेंट लोन' संस्कृति का पूर्वज प्रतीत होता है। आधुनिक बाजार हमें लगातार यह संदेश देता है कि "खुशी बाजार में खरीदी जा सकती है।" जिस तरह चार्वाक ने स्वर्ग और नरक की अवधारणाओं को पुरोहितों का पाखंड बताया था, आज का उपभोक्तावाद भी भविष्य की चिंता या आत्मिक शांति के बजाय 'तात्कालिक सुख' (Instant Gratification) को ही जीवन का अंतिम लक्ष्य मानता है।

इसे वर्तमान समय के 'YOLO' (You Only Live Once)4 कल्चर से भी जोड़ा जा सकता है। यह विचारधारा मानती है कि चूंकि जीवन एक ही बार मिला है, इसलिए बिना किसी नैतिक बंधन या पारलौकिक डर के इसका पूर्ण आनंद लेना चाहिए। लेकिन यहाँ एक गहरा संकट भी है। चार्वाक का सुखवाद (Hedonism) जहाँ मानसिक स्वतंत्रता की बात करता था, वहीं आज का उपभोक्तावाद मनुष्य को वस्तुओं का 'गुलाम' बना रहा है। आधुनिक शोध बताते हैं कि 'हेडोनिक एडैप्टेशन' (Hedonic Adaptation) के कारण मनुष्य जितनी अधिक भौतिक वस्तुओं का

उपभोग करता है, उसकी सुख की प्यास उतनी ही बढ़ती जाती है, जिससे अंततः 'अस्तित्वगत रिक्तता' (Existential Void) पैदा होती है।

चार्वाक ने परलोक के डर से मुक्ति तो दिलाई, लेकिन उसने यह नहीं बताया कि भौतिक सुखों की उस सीमा का क्या किया जाए जहाँ पहुँचकर वे अर्थहीन लगने लगते हैं। आज का 'डिजिटल भौतिकवाद' हमें सूचनाओं और गैजेट्स के ढेर में दबा रहा है, जो चार्वाक के उस सुख की परिभाषा से कहीं अधिक जटिल और तनावपूर्ण है। निष्कर्षतः, चार्वाक का देहवाद आज के समाज की कार्यप्रणाली तो है, पर यह उस सुख को देने में विफल रहा है जिसका उसने वादा किया था। यही वह बिंदु है जहाँ हमें एक गहरे आध्यात्मिक दर्शन की आवश्यकता महसूस होती है।

चार्वाक का देहवाद जहाँ मनुष्य को तात्कालिक सुख की ओर प्रेरित करता है, वहीं वह अनजाने में उसे एक ऐसी अंतहीन इच्छाओं की शृंखला में बाँध देता है जिसका कोई तार्किक अंत नहीं है। जब भौतिक संसाधनों की प्रचुरता के बावजूद मनुष्य के भीतर की 'अस्तित्वगत रिक्तता' कम नहीं होती, तब आदि शंकराचार्य का अद्वैत वेदांत एक सशक्त विकल्प के रूप में उभरता है। अद्वैत दर्शन उस 'दृश्य' जगत से परे जाने की बात करता है जिसे चार्वाक ही अंतिम सत्य मानते थे। शंकर का मूल तर्क यह है कि जो वस्तु परिवर्तनशील और विनाशी है, वह पूर्ण सत्य नहीं हो सकती। इसीलिए, वे संसार को 'व्यावहारिक सत्य' तो मानते हैं, किंतु उसे 'परम सत्य' की श्रेणी में नहीं रखते।

शंकराचार्य के दर्शन का केंद्र बिंदु 'माया' की अवधारणा है, जो आज के आभासी युग (Digital Age) में अत्यंत सटीक बैठती है। जैसे अंधेरे में रस्सी को सांप समझ लेना (रज्जु-सर्प न्याय) एक भ्रांति है, उसी प्रकार अद्वैत के अनुसार हम इस नाशवान संसार में स्थाई सुख खोज रहे हैं, जो स्वयं में एक दार्शनिक त्रुटि है।5 आज के उपभोक्तावादी समाज में विज्ञापन और सोशल मीडिया इसी 'माया' का आधुनिक विस्तार हैं, जो हमें यह निरंतर विश्वास दिलाते हैं कि हमारी पूर्णता बाहरी वस्तुओं या सामाजिक प्रतिष्ठा पर निर्भर है। शंकर इसे 'अविद्या' या अध्यास कहते हैं, जहाँ हम अनित्य (Temporary) वस्तुओं पर नित्य (Eternal) सुख का आरोपण कर देते हैं। जब मनुष्य इस 'माया' के आवरण को पहचान लेता है, तभी वह उस 'विवेक' को प्राप्त करता है जो उसे चार्वाक के सतही सुखवाद से ऊपर उठाता है।

इसी क्रम में, अद्वैत वेदांत मनुष्य की पहचान (Identity) को उसकी देह से पृथक कर 'शुद्ध चेतना' या 'आत्मान' के रूप में स्थापित करता है। चार्वाक जहाँ शरीर के विनाश को ही दुखों का अंत मानते थे, वहीं शंकर तर्क देते हैं कि दुख का असली कारण शरीर का होना नहीं, बल्कि स्वयं को केवल शरीर मान लेना है। आज के 'परफॉर्मेंस प्रेशर' और 'कॉर्पोरेट बर्नआउट' के दौर में यह बोध क्रांतिकारी सिद्ध होता है। यदि मनुष्य यह जान ले कि वह अपनी सफलता, विफलता, लाभ और हानि से परे एक अविनाशी तत्व है, तो उसकी चिंता (Anxiety) स्वतः ही समाप्त होने लगती है। यह विचार मनुष्य को संसार छोड़ने के लिए नहीं, बल्कि संसार के प्रति अपना दृष्टिकोण बदलने के लिए प्रेरित करता है। अंततः, अद्वैत का मार्ग 'जीवन्मुक्ति' की अवस्था तक ले जाता है, जो चार्वाक के 'ऋण' और 'घी' के चक्र का वास्तविक समाधान है। जीवन्मुक्त वह व्यक्ति है जो इस भौतिक जगत में रहते हुए और अपनी सामाजिक ज़िम्मेदारियों को निभाते हुए भी भीतर से पूर्णतः निर्लिप्त रहता है। चार्वाक ने जिस सुख की बात की थी, वह संसाधनों पर निर्भर (Dependent) था, जबकि अद्वैत का सुख आत्मनिर्भ (Self-existent) है। यह अवस्था ही वह वास्तविक 'ट्रांसेंडेंस' है, जहाँ मनुष्य भौतिकता का उपयोग तो करता है, परंतु उसका दास नहीं बनता। इस प्रकार, शंकर का दर्शन चार्वाक द्वारा छोड़ी गई शून्यता को 'ब्रह्म-अनुभूति' से भरकर जीवन को एक समग्र अर्थ प्रदान करता है।

प्रस्तुत शोध का संपूर्ण विवेचन इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि आधुनिक जीवन का संकट संसाधनों के अभाव में नहीं, बल्कि जीवन-दृष्टि के असंतुलन में निहित है। जहाँ एक ओर चार्वाक का लोकायत दर्शन हमें

वास्तविकता के धरातल पर टिके रहने और वर्तमान क्षण का आनंद लेने की प्रेरणा देता है, वहीं दूसरी ओर शंकराचार्य का अद्वैत वेदांत हमें उस आनंद की गुणवत्ता और उसकी गहराई को समझने का मार्ग दिखाता है। चार्वाक ने जिस 'देहवाद' की स्थापना की थी, वह आज के उपभोक्तावादी युग की अनिवार्य आवश्यकता बन गई है, क्योंकि शरीर की सुख-सुविधाओं को पूरी तरह नकारा नहीं जा सकता। किंतु, चार्वाक की सीमा यह है कि वह मनुष्य को केवल एक 'उपभोक्ता' (Consumer) बनाकर छोड़ देता है, जिससे जीवन में एक गहरी ऊब और सार्थकता की कमी महसूस होने लगती है।

यहीं पर शंकर का अद्वैत दर्शन एक 'सुधारक' की भूमिका निभाता है। यह शोध पत्र यह निष्कर्ष निकालता है कि आज के मनुष्य को चार्वाक के 'पदार्थ' और शंकर की 'चेतना' के बीच एक सेतु (Bridge) बनाने की आवश्यकता है। केवल भौतिकता मनुष्य को 'मशीन' बना देती है, और केवल आध्यात्मिकता (बिना तैयारी के) उसे संसार से काट देती है। वास्तविक समाधान 'सचेत उपभोग' (Conscious Consumption) में है, जहाँ हम चार्वाक की तरह संसाधनों का उपयोग तो करें, लेकिन शंकर की तरह यह भी याद रखें कि हमारा असली अस्तित्व इन वस्तुओं से कहीं बड़ा है। इसे हम 'व्यावहारिक धरातल पर चार्वाक और आध्यात्मिक धरातल पर अद्वैत' का समन्वय कह सकते हैं।

आज के 'डिजिटल और ग्लोबल' समाज में, अद्वैत का 'साक्षी भाव' हमें उस मानसिक तनाव से बचाता है जो चार्वाक के 'अति-भोग' से उत्पन्न होता है। यदि हम यह समझ लें कि संसार एक 'खेल' (लीला या माया) की तरह है, तो हम अपनी सफलताओं में अहंकारी नहीं होंगे और विफलताओं में अवसादग्रस्त नहीं होंगे। यह शोध यह भी रेखांकित करता है कि चार्वाक द्वारा प्रतिपादित 'स्वतंत्रता'—जो सामाजिक और धार्मिक रूढ़ियों से मुक्ति दिलाती है—उसे यदि अद्वैत के 'आत्मज्ञान' के साथ जोड़ दिया जाए, तो एक ऐसे 'पूर्ण मानव' का जन्म होता है जो बाहर से समृद्ध और भीतर से शांत है।

अंततः, यह कहा जा सकता है कि मोक्ष की खोज केवल जंगलों या कंदराओं का विषय नहीं है, बल्कि वह आधुनिक बाज़ार और तकनीक के बीच रहते हुए भी संभव है। चार्वाक का 'ऋण लेकर घी पीना' यदि केवल स्वार्थ तक सीमित रहे तो वह बंधन है, लेकिन यदि 'ऋण' को हम समाज के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी और 'घी' को जीवन के रस के रूप में देखें, तो यह अद्वैत की 'लोक-संग्रह' की भावना के करीब पहुँच जाता है। अतः, आज की आवश्यकता एक ऐसी 'समन्वयात्मक जीवन-दृष्टि' की है, जहाँ हम देह का सम्मान करें (चार्वाक) लेकिन आत्मा का अनुसंधान न छोड़ें (शंकराचार्य)। यही वह 'मध्यम मार्ग' है जो आधुनिक मनुष्य को अस्तित्वगत शून्यता से निकालकर सार्थकता की ओर ले जा सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. सर्व दर्शन संग्रह: मध्यवाचर्या
2. वहीं
3. वहीं
4. The Affluent Society : John Kenneth Galbraith
5. विवेकचूड़ामणि (लेखक: आदि शंकराचार्य)
6. 6.भारतीय दर्शन (Indian Philosophy) - भाग 1 और 2 (लेखक: डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन)

Mail id : Jkcrpf2019@gmail.com
Mob. 7230909110

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 221-224
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

रामवृक्ष बेनीपुरी के रेखाचित्र 'लाल तारा' का 'चयन' की दृष्टि से शैलीवैज्ञानिक विश्लेषण

मधु कुमारी
शोधार्थी,
हिन्दी-विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

शैली-विज्ञान दो शब्दों को मिलाकर बनता है, शैली + विज्ञान अर्थात् शैली के वैज्ञानिक अध्ययन को शैलीविज्ञान कहते हैं। भोलानाथ तिवारी के अनुसार - **"किसी भी कार्य के करने के विशिष्ट ढंग का नाम शैली है।"[1] प्लेटो के अनुसार - "जब विचार को रूप दे दिया जाता है तो शैली का जन्म होता है।"[2]** शैलीविज्ञान और भाषाविज्ञान एक ही सिक्के के दो पहलू है जो एक दूसरे के बिना व्यर्थ है। शैलीविज्ञान का अध्ययन करते समय भाषाविज्ञान को विशेष रूप से ध्यान में रखा जाता है। शैलीविज्ञान की परिभाषा रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव के शब्दों में इस प्रकार है -**"शैलीविज्ञान भी साहित्य को समझने-समझाने की एक दृष्टि है जो शैली के साक्ष्य पर एक ओर साहित्यिक कृति की संरचना (स्टक्चर) और गठन (टेक्सचर) पर प्रकाश डालती है और दूसरी ओर कृति का विश्लेषण करते हुए उसमें अंतर्निर्हित साहित्यिकता का उद्घाटन करती है।"[3]** भाषाविज्ञान और शैलीविज्ञान का आपस में बहुत गहरा सम्बन्ध है। भाषाविज्ञान में ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य, अर्थ का वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण किया जाता है जबकि "शैलीविज्ञान में भाषिक विश्लेषण के साथ-साथ उसके प्रभाव-पक्ष का भी अध्ययन किया जाता है इसी के साथ कथ्य की बारीकियों से भाषिक संरचना के ध्वनीय, शब्दीय, रुपीय, वाक्यीय और अर्थिय पक्षों को जोड़ता है। के पांच तत्व है - चयन, विचलन, समानांतरता, अप्रस्तुत-विधान, ध्वनीय शैलीविज्ञान। पहला तत्व का 'चयन'

चयन का अर्थ का 'चुनना'। शैलीविज्ञान में चयन से अभिप्राय है - **"भाषा की एकाधिक इकाइयों में से किसी एक का चुनाव करना अर्थात् किसी भाषा में प्राप्त एकाधिक इकाइयों या व्यवस्थाओं में, अभिव्यक्ति के लिए किसी एक को चुन लेना।"[4]** रचनाकार भाषा में ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य एवं अर्थ के स्तर पर चयन करता है।

रामवृक्ष बेनीपुरी एक ऐसे रचनाकार हैं जिन्होंने अपनी विशिष्ट लेखनी से हिन्दी साहित्य को नई दिशा प्रदान की। 'लाल तारा' बेनीपुरी का पहला रेखाचित्र संग्रह है। जिसमें कुल सोलह शब्दचित्र सम्मलित है। इसी संग्रह का चौथा रेखाचित्र 'हँसिया और हथौड़ा' है। 'लाल तारा' की भूमिका वे लिखते हैं -**"लाल तारा' एक नए प्रभात का प्रतीक था। वह प्रभात अब अधिक सन्निकट है। शायद इसलिए अंधकार भी अधिक सघन हो चला**

है। यह अंधकार छंटे, नए प्रभात का स्वर्णोदय हो, इसी कामना के साथ।"[5] यह शब्दचित्र संग्रह आशा का प्रतीक है। इस संग्रह के शब्दचित्रों में भारतीय किसान जीवन की महागाथा दर्ज है। इस रेखाचित्र के माध्यम से बेनीपुरी ने शोषित लोगों की आवाज़ उठाने का प्रयत्न किया है। जिसके कुल पाँच तत्व होते हैं - ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य एवं अर्थ।

ध्वनि-चयन :- बेनीपुरी ने अपने हँसिया और हथौड़ा नामक रेखाचित्र में ध्वनियों का बहुत ही सुंदर चयन किया है। जिसका उदाहरण इस रेखाचित्र से इस प्रकार है- **"सर्- सर्, झिन्- झिन्- पके धान की सुनहली बालियों के संचय में लगी है, हँसिया ! खट्-खट्, धड़ाम-धड़ाम - तपे हुए लाल लोहे पर बरस रहा है, हथौड़ा !"**[6] इस वाक्यांश में ध्वनि-चयन अत्यंत जीवंत, लयबद्ध और ग्रामीण श्रम-जीवन की सजीवता को उभराने वाली हैं। बेनीपुरी ने यह ध्वनियाँ न केवल वर्णन के लिए चुना है, बल्कि श्रम की ऊर्जा, निरंतरता और संगीत के लिए किया है।

'सर्-सर्, झिन्-झिन्' में हँसिया की तेज, काटने वाली ध्वनि का अनुकरण। 'सर्' में घिसटती, 'झिन्' में झनकार वाली महीनता है। 'खट्-खट्, धड़ाम-धड़ाम' में हथौड़े की भारी, गूँजदार और प्रवाह वाली ध्वनि है। 'खट्' में तेज टकराहट, 'धड़ाम' में भारी गिरावट का भाव है। ध्वनियाँ वास्तविक और क्रिया-विशिष्ट हैं। एक तरफ नाजुक (धान काटना), दूसरी भारी (लोहा तपाना) यह ग्रामीण श्रम की दो अलग-अलग स्थितियों (खेती और मजदूरी) को दर्शाती है।

हर ध्वनि दोहरी है। जो दोहराव से लय और निरंतरता का निर्माण करती है। यह दोहराव श्रम की निरंतर लय पैदा करता है। जैसे काम रुकता नहीं, ध्वनि भी दोहराती जाती है। वाक्य को संगीतमय बनाता है। श्रम की थकान लेकिन नियमितता को महसूस करवाता है।

विस्मयादिबोधक (!) और क्रिया का सुंदर संयोजन है। 'हँसिया ! हँसिया !' में विस्मय चिन्ह से ज़ोर और उत्साह का भाव है। ध्वनियाँ क्रियाओं से जुडी हैं 'संचय में लगी है', 'बरस रहा है'। ध्वनियाँ केवल सुनाई नहीं देंती, बल्कि कार्य की गति और ऊर्जा को व्यक्त करती हैं। जैसे हँसिया और हथौड़ा जीवंत होकर काम कर रहे हों। ग्रामीण-आंचलिक और यथार्थवादी ध्वनि-चयन। ध्वनियाँ आम बोलचाल से ली गई हैं जिनमें कोई कृत्रिम या जटिल ध्वनि नहीं है। यह श्रम की सौन्दर्यता और कठोरता दोनों को दिखाता है। सुनहली बालियाँ, तपे लाल लोहे का वर्णन ध्वनियों के दृश्य से जोड़ता है।

बेनीपुरी का ध्वनि-चयन दोहरावपूर्ण, सटीक अनुकरण वाला और क्रिया-केन्द्रित है, जो ग्रामीण श्रम की निरंतर लय, ऊर्जा और संगीत को इतने जीवंत ढंग से उकेरता है। यह ध्वनियाँ केवल शब्द नहीं, श्रम की आत्मा बन जाती हैं।

शब्द-चयन :- बेनीपुरी ने अपने इस रेखाचित्र में बिंबात्मक शब्दों का चयन किया है। ऐसे शब्द जो अपने भीतर चित्रात्मकता समेटे बैठे हैं। जिसका उदाहरण इस प्रकार है - **"चमचमाती देह, पतली कमर - हँसिया नाजनी-सी इठला रही है ! मुस्तंड बदन, घन-गर्जन -हथौड़ा तो औद्धत्य का अवतार ठहरा।"**[7] इस वाक्यांश में शब्द-चयन अत्यंत विरोधाभासी व्यंग्यात्मक, सौन्दर्य और हिंसा का मिश्रण करने वाली प्रतीकात्मक हैं। बेनीपुरी ने जानबूझकर दोनों पात्रों (हँसिया और हथौड़ा) के लिए एक ही ढाँचे में लेकिन विपरीत भाव वाले शब्द चुने हैं, जिससे श्रम की सौन्दर्य और क्रूरता दोनों एक साथ उभर आती हैं।

विरोधाभासी विशेषणों का सुंदर संयोजन है। हँसिया के लिए 'चमचमाती देह, पतली कमर, नाजनी-सी इठला रही है', ये शब्द स्त्री-सौन्दर्य, कोमलता, नाजुकता और नृत्य के प्रतीक हैं। हँसिया को एक नायिका जैसा बना दिया गया है। हथौड़े के लिए 'मुस्तंड बदन, घन-गर्जन, औद्धत्य का अवतार', ये शब्द पुरुषत्व, बल, क्रूरता, गर्जना और अहंकार के प्रतीक हैं। हथौड़े को एक दानव या क्रूर योद्धा जैसा बना दिया है। एक ही वाक्य में सौन्दर्य और हिंसा, नाज और औद्धत्य को समान संरचना में रखकर श्रम के दो चेहरों उभरा है।

प्रतीकात्मक और काव्यात्मक शब्दों का चयन। 'नाजनी-सी इठला रही है' में हँसिया को स्त्री का रूप देकर काम को नृत्य जैसा सुंदर दिखाया है। 'औद्धत्य का अवतार' हथौड़े को देवता का बताया गया है।

शब्दों में संक्षिप्तता और तीक्ष्णता का चयन। दोनों पक्तियाँ बहुत छोटी और तेज हैं। कोई लंबा वर्णन नहीं सिर्फ़ तीन-चार विशेषण से पूरी तस्वीर खींच दी गई है। यह संक्षिप्तता व्यंग्य को और तीखा बनाती है जैसे लेखक कह रहा हो -देखो, कितना सुंदर और कितना क्रूर है यह श्रम !

लिंग-आधारित विरोधाभासी का सूक्ष्म प्रयोग। हँसिया को स्त्री और हथौड़े को पुरुष का रूप देकर श्रम में स्त्री-पुरुष के पारंपरिक रोल पर व्यंग्य किया है। यह लिंग-प्रतीक का प्रयोग श्रम को दोहरी प्रकृति को और गहरा करता है।

शब्द-चयन विरोधाभासी (सौन्दर्य /क्रूरता), प्रतीकात्मक, संक्षिप्त और व्यंग्यात्मक है। बेनीपुरी ने हँसिया और हथौड़ा को एक ही वाक्य में नायिका और दानव का रूप देकर श्रम की द्वंदात्मकता को इतने तीखे और काव्यात्मक ढंग से उकेरा है। इन चयनित शब्दों के भीतर भी चित्रात्मकता विद्यमान हैं।

रूप-चयन :- इस रेखाचित्र का रूप, रंग, आकार बहुत ही नपा तुला है। बेनीपुरी ने इस शब्दचित्र को एक पृष्ठ में समेट दिया है। इस रेखाचित्र को दो दृश्य में बंटा गया है, पहले दृश्य में हँसिया और हथौड़े की शक्ति एवं उनकी नोंक-झोंक को दर्शाया गया है। दूसरे दृश्य में ग्रामीण एवं शहरी जीवन की समस्याओं को दर्शाने का प्रयत्न किया गया है। अंत में दोनों क्षेत्रों में जीवनयापन कर रहे लोगों को जागरूक करने की कोशिश की गई है। संक्षिप्त रूप में रचा गया यह शब्दचित्र अपने भीतर ग्रामीण एवं शहरी जीवन की सम्पूर्ण संवेदना को अपने भीतर समेटे बैठा है। शब्दचित्र का हँसिया और हथौड़ा शीर्षक अपने आप में बहुत कुछ बया करने में सक्षम है।

वाक्य-चयन :- बेनीपुरी ने अपने इस रेखाचित्र में सरल-सहज वाक्यों का चयन किया है, जो आकार में बहुत ही छोटे हैं परन्तु समझने की दृष्टि से बहुत गहरे भावों को अपने भीतर समेटे बैठे हैं। इसका उदाहरण इस प्रकार है - **"हँसिया-हथौड़ा ! शक्ति और कर्तव्य के ये दो प्रतीक हैं ! कृषि और उद्योग के ! प्रकृति और पुरुष के ! संसार-रथ इन्हीं दो पहियों पर बढ़ा जा रहा है। हाँ, दोनों पहियों पर- एक पहिया भी गिर जाए, तो यह रथ एक पग बढ़ने का नहीं ! हँसिया-हथौड़ा संसार-रथ के ये दो पहिए हैं।"**[9] इस वाक्यांश के भीतर रचनाकार ने हँसिया एवं हथौड़ा को प्रतीक के रूप में चयन किया है। हँसिया (कृषि) एवं हथौड़ा (उद्योग) का प्रतीक है। जो शक्ति और कर्तव्य को दर्शाता है। यह दोनों प्रतीक साम्यवाद का एक महत्वपूर्ण चिन्ह है जो मजदूरों और किसानों की एक जुटता (सर्वहारा वर्ग की एकता) को दिखाता। जो समाज के उत्पादन और निर्माण में अपनी शक्ति और कर्त्तव्य को निभाते हैं। इन दोनों के संतुलन से ही मानव जाति अपना विकास कर सकती है। इस प्रकार के कई वाक्यों का चयन बेनीपुरी ने अपने इस रेखाचित्रों में किया है। रचनाकार के चयनित छोटे-छोटे वाक्य में गहरे अर्थ व्याप्त हैं जो उनकी लेखन शैली की सबसे बड़ी विशेषता है।

अर्थ-चयन - रचनाकार ने अपने इस रेखाचित्र में अभिधा, लक्षण एवं व्यंजना से अर्थ लिया है। जिसका उदाहरण इस प्रकार है -**"हँसिया रो रही थी ! हथौड़ा उदास बैठा था ! क्यों बहना ! यह कब तक बर्दाश्त किया जा सकेगा ? मैं भी तो यही जानना चाहती हूँ। उफ़् ! कहाँ है तुम्हारी वह चमक - वह हँसी ? तुम्हारी मांसल भुजाएँ भी क्या भूलने की चीज़ हैं ? और मस्तानापन ! उठो बहन ! बढ़ो भाई !"**[10] इस उदाहरण की व्यंजना मानवीकरण और प्रतीकात्मकता है। जहाँ निर्जीव वस्तुओं (हँसिया, हथौड़ा) को मानवीय भावनाओं (रोना, उदासी) से जोड़कर शोषक वर्ग (सत्ताधारी) और शोषित वर्ग (जनता / श्रमिक) के बीच तनाव या समाज के अंतर्विरोधों और निराशा को दर्शाया गया है। मानवीकरण के रूप में 'हँसिया (जो फसल काटने का औजार है, जनता /श्रमिक का प्रतीक है)' का 'रोना' उसकी 'पीड़ा', 'कष्ट' और शोषण को दर्शाता है। 'हथौड़ा (जो निर्माण और शक्ति का प्रतीक है, लेकिन अक्सर मजदूरों द्वारा इस्तेमाल होता है)' का 'उदास बैठना' उसकी शक्तिहीनता, थकान या

व्यवस्था से मोहभंग को बताता है। प्रतीकात्मक रूप से 'हँसिया' शोषित, मेहनतकश, ग़रीब, जनता, जो अपनी मेहनत के फल से वंचित है। 'हथौड़ा' वह शक्ति जो व्यवस्था बदल सकता है, लेकिन उदास और निष्क्रिय है, शायद दिशाहीन या हताश है। रचनाकार द्वारा इन चयनित वाक्यों में श्रमिक वर्ग की दयनीता स्थिति, सत्ता के प्रति आक्रोश और एक उदास, निराशाजनक भविष्य की ओर इशारा करता है।

यह उदाहरण गहरे आक्रोश, आत्म-सम्मान की पुकार और निष्क्रियता के प्रति फटकार की व्यंजना करता है। निष्क्रियता छोड़कर शारीरिक शक्ति (मांसल भुजाओं) का उपयोग करके अन्याय और अपमान के ख़िलाफ़ खड़ा होने की प्रेरणा दे रहा है। अर्थात् आत्म-सम्मान की रक्षा और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष की भावना है। 'क्यों बहन यह कब तक बर्दाश किया जा सकेगा?' में एक गहरी पीड़ा और असहायता को दर्शाया गया है जो बदलाव की आवश्कता पर ज़ोर देता है। 'मांसल भुजाएँ' शारीरिक शक्ति, सामर्थ्य और क्षमता का प्रतीक है। जो यह प्रेरणा देता है कि अपनी ताकत को व्यर्थ मत जाने दो। उसे भूल मत जाओ कि तुममें विरोध करने की क्षमता है। 'उठो बहन' में यह सीधा आदेश और प्रेरणा है। यह निष्क्रियता छोड़कर, उठकर खड़े होने, संघर्ष करने और अपनी स्थिति बदलने की पुकार है।

रेखाचित्र का यह प्रसंग एक प्रेरक पुकार है जो शोषित लोगों को उनकी शक्तियों का स्मरण करवाता है। अन्याय के विरुद्ध लड़ने के लिए प्रेरित करता है। निराशा और आक्रोश के बीच आशा छिपी है कि शक्ति का सही उपयोग करके स्थिति बदली जा सकती है। यह आत्म-सम्मान और सक्रीय प्रतिरोध का संदेश देता है।

निष्कर्ष :- ध्वनि-चयन, शब्द-चयन, रूप-चयन, वाक्य-चयन, अर्थ-चयन के स्तर पर उनका चयन बेजोड़ है। शैलीविज्ञान के इन तत्वों के माध्यम से उन्होंने अपनी भाषा को प्राण दिया है। सहज उच्चारण एवं योग्य ध्वनि युक्त शब्द, लय का स्वभाविक निर्माण, भावानुकूल शब्द चयन, छोटे-छोटे वाक्यों की प्रधानता, व्यंजकता पर बल, सरल शब्दों में गहन अर्थ, लोक-जीवन से जुड़े अर्थ, 'प्रतीकात्मक तत्वों का सहारा' यह सभी विशेषता बेनीपुरी के लेखन को नूतन एवं प्रभावशाली बनाती है।

सन्दर्भ सूची :-

1. तिवारी, भोलानाथ, शैलिविज्ञान, शब्दाकार प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1977, पृष्ठ संख्या 23
2. यथावत्, पृष्ठ संख्या 17
3. नरेन्द्र, डॉ अनिता, निराला के आलोचनात्मक लेखन में शैलीवैज्ञानिक मान्यताएँ, आशा बुक्स प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2001, पृष्ठ संख्या 64
4. तिवारी, भोलानाथ, शैलीविज्ञान, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1997, पृष्ठ संख्या 68
5. शर्मा, सुरेश (सम्पा०), बेनीपुरी ग्रंथावली भाग-1, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2013, पृष्ठ संख्या 88
6. यथावत्, पृष्ठ संख्या 97
7. यथावत्, पृष्ठ संख्या 97
8. यथावत्, पृष्ठ संख्या 98
9. यथावत्, पृष्ठ संख्या 97
10. यथावत्, पृष्ठ संख्या 97

Email id -madhugupta583gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 225-230
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

''ऑनलाइन शॉपिंग का पारिवारिक बजट पर प्रभाव''
(एक विश्लेषणात्मक अध्ययन)

डॉ. ज्योति सिंह
(गृह विज्ञान)
आगरा (उ.प्र.)

सारांश
डिजिटल युग के आगमन के साथ ही उपभोक्ता व्यवहार, खरीदारी की पद्धतियाँ तथा पारिवारिक आर्थिक संरचना में व्यापक परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं। इंटरनेट, स्मार्टफोन और ई–कॉमर्स प्लेटफॉर्म्स की बढ़ती उपलब्धता ने ऑनलाइन शॉपिंग को अत्यंत लोकप्रिय बना दिया है। वर्तमान समय में ऑनलाइन शॉपिंग केवल सुविधा का साधन नहीं रह गई है, बल्कि यह परिवारों के मासिक खर्च, बचत और बजट नियोजन को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर रही है। वर्तमान डिजिटल युग में ऑनलाइन शॉपिंग ने उपभोक्ता व्यवहार में व्यापक परिवर्तन उत्पन्न किया है। इंटरनेट, स्मार्टफोन और डिजिटल भुगतान प्रणालियों के विकास ने खरीदारी की प्रक्रिया को सरल, तेज और सुविधाजनक बना दिया है। इस परिवर्तन का सीधा प्रभाव पारिवारिक बजट पर पड़ा है। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य ऑनलाइन शॉपिंग के पारिवारिक बजट पर पड़ने वाले आर्थिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रभावों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है। अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि ऑनलाइन शॉपिंग ने जहाँ एक ओर परिवारों को समय की बचत, मूल्य तुलना और विविध विकल्प उपलब्ध कराए हैं, वहीं दूसरी ओर अनियोजित खर्च, आवेगात्मक खरीदारी और ऋण प्रवृत्ति को भी बढ़ावा दिया है। शोध के निष्कर्ष यह दर्शाते हैं कि ऑनलाइन शॉपिंग का प्रभाव पूर्णतः उपभोक्ता की जागरूकता, बजट नियोजन क्षमता और आत्म–नियंत्रण पर निर्भर करता है। यदि विवेकपूर्ण ढंग से इसका उपयोग किया जाए, तो ऑनलाइन शॉपिंग पारिवारिक बजट को संतुलित रखने में सहायक सिद्ध हो सकती है।
मुख्य शब्द – ऑनलाइन शॉपिंग, पारिवारिक बजट, उपभोक्ता व्यवहार, डिजिटल भुगतान, आर्थिक प्रभाव, उपभोक्ता जागरूकता

वर्तमान में तकनीकी विकास ने मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है और खरीदारी की प्रक्रिया भी इससे अछूती नहीं रही है। पहले जहाँ परिवार अपनी दैनिक एवं मासिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्थानीय बाजारों और दुकानों पर निर्भर रहते थे, वहीं आज ऑनलाइन शॉपिंग ने उपभोक्ताओं को घर बैठे खरीदारी करने की सुविधा प्रदान की है। ई–कॉमर्स वेबसाइट्स और मोबाइल एप्लिकेशन के माध्यम से कपड़े, खाद्य सामग्री, इलेक्ट्रॉनिक सामान, घरेलू उपकरण, दवाइयाँ और सेवाएँ तक आसानी से उपलब्ध हो गई हैं।

भारत जैसे विकासशील देश में ऑनलाइन शॉपिंग का प्रभाव विशेष रूप से मध्यम वर्गीय परिवारों में अधिक देखा जा रहा है। समय की कमी, बढ़ती व्यस्तता, ट्रैफिक की समस्या और आकर्षक ऑफर्स ने ऑनलाइन खरीदारी को लोकप्रिय बनाया है। पारिवारिक बजट गृह प्रबंधन का आधार होता है, जिसमें आय और व्यय के बीच संतुलन बनाए रखना आवश्यक होता है। ऑनलाइन शॉपिंग ने इस संतुलन को कहीं आसान बनाया है, तो कहीं जटिल भी किया है।

ऑनलाइन शॉपिंग के माध्यम से मूल्य तुलना, छूट, कैशबैक और होम डिलीवरी जैसी सुविधाएँ पारिवारिक खर्च को नियंत्रित करने में सहायक हो सकती हैं। वहीं दूसरी ओर, "फ्लैश सेल", "लिमिटेड ऑफर" और "ठनल छवू च्ंल स्ंजमत" जैसी सुविधाएँ उपभोक्ता को अनावश्यक खर्च के लिए प्रेरित करती हैं। इसी संदर्भ में यह अध्ययन ऑनलाइन शॉपिंग और पारिवारिक बजट के आपसी संबंध को समझने का प्रयास करता है।

वर्तमान समय में ऑनलाइन शॉपिंग की बढ़ती प्रवृत्ति ने पारिवारिक बजट को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया है। अनेक परिवार यह अनुभव कर रहे हैं कि उनकी मासिक आय का एक बड़ा भाग ऑनलाइन खरीदारी में खर्च हो जाता है, जिससे बचत प्रभावित होती है। अनियोजित खरीदारी, डिजिटल भुगतान की सरलता और ऋण सुविधाओं के कारण परिवारों में आर्थिक असंतुलन की समस्या उत्पन्न हो रही है। इस संदर्भ में यह समस्या उभरकर सामने आती है कि क्या ऑनलाइन शॉपिंग पारिवारिक बजट को सुदृ ढ़ बना रही है या कमजोर कर रही है। यह अध्ययन इसी समस्या के समाधान की दिशा में केंद्रित है।

ऑनलाइन शॉपिंग के प्रभाव का अध्ययन करना वर्तमान समय की आवश्यकता है क्योंकि यह पारिवारिक जीवन के आर्थिक पक्ष से सीधे जुड़ा हुआ है। गृह प्रबंधन के अंतर्गत बजट नियोजन, संसाधन संरक्षण और उपभोक्ता व्यवहार का अध्ययन आवश्यक होता है। इस अध्ययन की आवश्यकता निम्न कारणों से है–

- पारिवारिक बजट पर ऑनलाइन शॉपिंग के प्रभाव को समझने हेतु
- उपभोक्ताओं को जागरूक बनाने हेतु
- अनियोजित खर्च को नियंत्रित करने के उपाय सुझाने हेतु
- गृह प्रबंधन शिक्षा को व्यवहारिक आधार प्रदान करने हेतु

प्रस्तुत शोध अध्ययन के उद्देश्य अग्रलिखित हैं :–

1. ऑनलाइन शॉपिंग की बढ़ती प्रवृत्ति का अध्ययन करना।
2. पारिवारिक बजट की संरचना का विश्लेषण करना।
3. ऑनलाइन शॉपिंग के सकारात्मक प्रभावों का अध्ययन करना।
4. ऑनलाइन शॉपिंग के नकारात्मक प्रभावों का विश्लेषण करना।
5. बजट संतुलन हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

प्रस्तुत शोध अध्ययन में निम्नलिखित शोध परिकल्पनाएँ निर्मित की गई हैं :–

1. ऑनलाइन शॉपिंग का पारिवारिक बजट पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।
2. जागरूक उपभोक्ताओं में ऑनलाइन शॉपिंग से बजट बचत होती है।
3. अनियोजित ऑनलाइन खरीदारी से बजट असंतुलन बढ़ता है।

प्रस्तुत शोध वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का है। अध्ययन में द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है, जिनमें पाठ्य–पुस्तकें, शोध पत्रिकाएँ, सरकारी रिपोर्टें, ऑनलाइन जर्नल्स और विश्वसनीय वेबसाइट्स शामिल हैं। उपलब्ध साहित्य का तुलनात्मक एवं व्याख्यात्मक विश्लेषण किया गया है। यह अध्ययन मुख्यतः आगरा जिले के दहतोरा क्षेत्र के शहरी और अर्धदृशहरी मध्यम वर्गीय परिवारों पर केंद्रित है।

ऑनलाइन शॉपिंग की अवधारणा – ऑनलाइन शॉपिंग वह प्रक्रिया है जिसमें उपभोक्ता इंटरनेट के माध्यम से वस्तुओं और सेवाओं की खरीद करता है। इसमें उत्पादों का चयन, भुगतान और वितरण सभी कार्य डिजिटल माध्यम से होते हैं। ऑनलाइन शॉपिंग की प्रमुख विशेषताएँ हैंकृसुविधा, समय की बचत, मूल्य तुलना, विविधता और आसान रिटर्न पॉलिसी।

ऑनलाइन शॉपिंग ने उपभोक्ता को अधिक विकल्प प्रदान किए हैं, जिससे खरीदारी का अनुभव सरल और आकर्षक बन गया है। किंतु यही सुविधा कई बार अधिक खर्च का कारण भी बन जाती है।

पारिवारिक बजट की अवधारणा – पारिवारिक बजट एक वित्तीय योजना है, जिसके अंतर्गत परिवार अपनी आय और व्यय का संतुलन स्थापित करता है। बजट का उद्देश्य आवश्यकताओं की पूर्ति, बचत और भविष्य की आर्थिक सुरक्षा सुनिश्चित करना होता है। एक आदर्श बजट में भोजन, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन, मनोरंजन और बचत जैसे मद शामिल होते हैं। बजट प्रबंधन गृहिणी और परिवार के अन्य सदस्यों की सामूहिक जिम्मेदारी होती है।

ऑनलाइन शॉपिंग और पारिवारिक बजट का आपसी संबंध – ऑनलाइन शॉपिंग ने पारिवारिक बजट की प्रकृति को बदल दिया है। पहले जहाँ खर्च अधिकतर नकद होता था, वहीं अब डिजिटल भुगतान ने खर्च को कम महसूस कराने की प्रवृत्ति बढ़ा दी है। इससे उपभोक्ता कई बार अपने वास्तविक खर्च का अनुमान नहीं लगा पाता। यदि ऑनलाइन शॉपिंग नियोजित और बजट आधारित हो, तो यह पारिवारिक बजट को संतुलित बनाए रख सकती है। किंतु अनियंत्रित ऑनलाइन खरीदारी बजट असंतुलन का प्रमुख कारण बन सकती है।

ऑनलाइन शॉपिंग का पारिवारिक बजट पर सकारात्मक प्रभाव – ऑनलाइन शॉपिंग ने पारिवारिक बजट को कई दृष्टियों से सकारात्मक रूप से प्रभावित किया है। सबसे प्रमुख लाभ मूल्य तुलना की सुविधा है। पारंपरिक बाजार में उपभोक्ता सीमित दुकानों तक ही तुलना कर पाता है, जबकि ऑनलाइन प्लेटफॉर्म पर एक ही उत्पाद विभिन्न विक्रेताओं द्वारा अलगदृअलग कीमतों पर उपलब्ध होता है। इससे उपभोक्ता कम कीमत पर गुणवत्तापूर्ण उत्पाद खरीद सकता है, जो सीधे तौर पर पारिवारिक बजट में बचत का कारण बनता है।

ऑनलाइन शॉपिंग में उपलब्ध छूट, ऑफर, कैशबैक और कूपन भी पारिवारिक खर्च को नियंत्रित करने में सहायक होते हैं। त्योहारी सीजन, सेल और विशेष छूट के दौरान आवश्यक वस्तुओं की खरीदारी करने से परिवार कम खर्च में अधिक सामान प्राप्त कर सकता है। यदि यह खरीदारी पूर्व–नियोजित हो, तो यह बजट को संतुलित रखने में सहायक सिद्ध होती है।

समय की बचत भी ऑनलाइन शॉपिंग का एक महत्वपूर्ण सकारात्मक पहलू है। बाजार जाने में लगने वाला समय, यात्रा खर्च और श्रम की बचत होती है। विशेष रूप से कार्यरत दंपत्ति और व्यस्त परिवारों के लिए यह सुविधा अत्यंत उपयोगी है। समय की यह बचत अप्रत्यक्ष रूप से धन की बचत में परिवर्तित हो जाती है, जिससे पारिवारिक बजट पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

इसके अतिरिक्त, ऑनलाइन शॉपिंग के माध्यम से अनावश्यक मध्यस्थ लागत समाप्त हो जाती है। कई बार उत्पाद सीधे निर्माता या थोक विक्रेता से उपभोक्ता तक पहुँचते हैं, जिससे कीमत कम हो जाती है। यह स्थिति बजट प्रबंधन के दृष्टिकोण से लाभकारी मानी जा सकती है।

ऑनलाइन शॉपिंग का पारिवारिक बजट पर नकारात्मक प्रभाव – जहाँ ऑनलाइन शॉपिंग अनेक सुविधाएँ प्रदान करती है, वहीं इसके नकारात्मक प्रभाव पारिवारिक बजट के लिए गंभीर चुनौती भी उत्पन्न करते हैं। ऑनलाइन प्लेटफॉर्म पर आकर्षक विज्ञापन, फ्लैश सेल और सीमित समय के ऑफर उपभोक्ता को आवेगात्मक (Impulsive) खरीदारी के लिए प्रेरित करते हैं। परिणामस्वरूप, उपभोक्ता कई बार ऐसी वस्तुएँ खरीद लेता है जिनकी वास्तव में आवश्यकता नहीं होती।

डिजिटल भुगतान की सरलता भी बजट असंतुलन का एक प्रमुख कारण है। नकद भुगतान की तुलना में ऑनलाइन भुगतान में खर्च "कम महसूस" होता है, जिससे उपभोक्ता अपने वास्तविक खर्च का सही अनुमान नहीं लगा पाता। यह स्थिति धीरे–धीरे पारिवारिक बजट पर दबाव डालती है। "Buy Now Pay Later", क्रेडिट कार्ड और EMI जैसी सुविधाएँ उपभोक्ता को तत्काल संतोष तो प्रदान करती हैं, किंतु भविष्य में यह आर्थिक बोझ और ऋण का कारण बन जाती हैं। कई मध्यम वर्गीय परिवारों में यह देखा गया है कि ऑनलाइन शॉपिंग के कारण मासिक किस्तों का बोझ बढ़ गया है, जिससे बचत और आवश्यक खर्च प्रभावित हुए हैं।

इसके अतिरिक्त, ऑनलाइन शॉपिंग में रिटर्न और एक्सचेंज की सुविधा होते हुए भी कई बार उपभोक्ता वस्तुओं को वापस नहीं करता, जिससे अनावश्यक खर्च स्थायी रूप ले लेता है। यह स्थिति पारिवारिक बजट को असंतुलित कर देती है।

उपभोक्ता व्यवहार में परिवर्तन और ऑनलाइन शॉपिंग – ऑनलाइन शॉपिंग ने उपभोक्ता व्यवहार में उल्लेखनीय परिवर्तन उत्पन्न किया है। पहले खरीदारी मुख्यतः आवश्यकता आधारित होती थी, जबकि आज यह इच्छा और आकर्षण आधारित होती जा रही है। ऑनलाइन प्लेटफॉर्म उपभोक्ता को निरंतर नए उत्पादों, ऑफर्स और सुझावों के माध्यम से खरीदारी के लिए प्रेरित करते हैं।

उपभोक्ता व्यवहार में यह परिवर्तन पारिवारिक बजट को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। विशेष रूप से युवा वर्ग और गृहिणियाँ ऑनलाइन शॉपिंग से अधिक प्रभावित होती हैं। मनोरंजन और खरीदारी का संयोजन कई बार खर्च को बढ़ा देता है, जिससे बजट नियोजन प्रभावित होता है। शोध अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि उपभोक्ता जागरूकता और वित्तीय साक्षरता उपभोक्ता व्यवहार को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जो उपभोक्ता बजट बनाकर ऑनलाइन शॉपिंग करते हैं, वे खर्च पर नियंत्रण रख पाते हैं।

मध्यम वर्गीय परिवारों पर ऑनलाइन शॉपिंग का प्रभाव – मध्यम वर्गीय परिवारों पर ऑनलाइन शॉपिंग का प्रभाव सर्वाधिक देखा जाता है, क्योंकि यह वर्ग सीमित आय में अधिकतम सुविधा और संतुलन बनाए रखने का प्रयास करता है। ऑनलाइन शॉपिंग ने इस वर्ग को सस्ती और विविध वस्तुएँ उपलब्ध कराई हैं, जिससे जीवन–स्तर में सुधार हुआ है। यदि ऑनलाइन शॉपिंग अनियंत्रित हो जाए, तो यह मध्यम वर्गीय परिवारों की आर्थिक स्थिरता को प्रभावित कर सकती है। आय और व्यय के बीच असंतुलन, बढ़ता ऋण और घटती बचत इस वर्ग के लिए चिंता का विषय बन सकते हैं।

डिजिटल भुगतान प्रणाली और बजट पर प्रभाव – डिजिटल भुगतान प्रणाली ने ऑनलाइन शॉपिंग को और अधिक सरल बना दिया है। UPI, वॉलेट और कार्ड भुगतान ने खरीदारी को त्वरित बना दिया है, किंतु इससे खर्च पर मनोवैज्ञानिक नियंत्रण कम हो जाता है। उपभोक्ता बार–बार छोटे–छोटे खर्च करता है, जो अंततः बड़े खर्च में बदल जाते हैं। इस संदर्भ में यह आवश्यक हो जाता है कि परिवार डिजिटल भुगतान के साथ–साथ खर्च का लेखा–जोखा भी रखें, ताकि बजट पर नियंत्रण बना रहे।

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि ऑनलाइन शॉपिंग पारिवारिक बजट को दो तरह से प्रभावित करती है। एक ओर यह सुविधा, बचत और समय प्रबंधन में सहायक है, वहीं दूसरी ओर अनियोजित खर्च और ऋण की समस्या उत्पन्न करती है। अतः यह उपभोक्ता की जागरूकता, बजट योजना और आत्म–नियंत्रण पर निर्भर करता है कि ऑनलाइन शॉपिंग बजट के लिए लाभकारी सिद्ध होगी या हानिकारक।

प्रस्तुत शोध अध्ययन के दौरान यह स्पष्ट रूप से देखा गया कि ऑनलाइन शॉपिंग ने पारिवारिक बजट संरचना को गहराई से प्रभावित किया है। अध्ययन में शामिल परिवारों के उत्तरों के विश्लेषण से यह ज्ञात हुआ कि अधिकांश परिवार ऑनलाइन शॉपिंग को सुविधा, समयदृबचत और विविधता के कारण अपनाते हैं, किंतु बजट नियंत्रण के संदर्भ में इसके मिश्रित परिणाम सामने आए हैं।

अध्ययन के अनुसार लगभग आधे से अधिक परिवारों ने यह स्वीकार किया कि ऑनलाइन शॉपिंग के कारण उनके मासिक खर्च में वृद्धि हुई है। विशेष रूप से गैर–आवश्यक वस्तुओं पर खर्च बढ़ा है। यह दर्शाता है कि ऑनलाइन प्लेटफॉर्म उपभोक्ता की आवश्यकताओं के साथ–साथ उसकी इच्छाओं को भी प्रभावित करते हैं। वहीं दूसरी ओर, कुछ परिवारों ने यह भी माना कि यदि ऑनलाइन शॉपिंग योजनाबद्ध तरीके से की जाए, तो यह पारिवारिक बजट में बचत का साधन भी बन सकती है। इस प्रकार शोध परिणाम यह संकेत देते हैं कि ऑनलाइन शॉपिंग स्वयं में न तो पूर्णतः लाभकारी है और न ही पूर्णतः हानिकारक, बल्कि इसका प्रभाव उपभोक्ता व्यवहार पर निर्भर करता है।

पारिवारिक खर्च पैटर्न में परिवर्तन – ऑनलाइन शॉपिंग के आगमन से पारिवारिक खर्च पैटर्न में स्पष्ट परिवर्तन देखने को मिला है। पारंपरिक बाजार आधारित खर्च की तुलना में अब परिवारों का एक बड़ा भाग ऑनलाइन माध्यम से खर्च करने लगा है। कपड़े, घरेलू उपकरण, इलेक्ट्रॉनिक्स, बच्चों के खिलौने और दैनिक उपयोग की वस्तुएँ ऑनलाइन खरीदी जा रही हैं।

अध्ययन में यह पाया गया कि पहले जहाँ परिवार मासिक या तिमाही खरीदारी करते थे, वहीं अब छोटी–छोटी लेकिन बार–बार होने वाली खरीदारी बढ़ गई है। यह प्रवृत्ति बजट नियंत्रण को कमजोर करती है, क्योंकि छोटे खर्च अक्सर ध्यान में नहीं आते, लेकिन कुल मिलाकर वे बड़े खर्च में परिवर्तित हो जाते हैं।

सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रभाव – ऑनलाइन शॉपिंग केवल आर्थिक ही नहीं, बल्कि सामाजिक और मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी उत्पन्न करती है। विज्ञापन, रिव्यू और सोशल मीडिया प्रमोशन उपभोक्ता को मानसिक रूप से प्रभावित करते हैं। "डिस्काउंट छूट जाने का डर" (Fear of Missing Out – FOMO) उपभोक्ता को तत्काल खरीदारी के लिए प्रेरित करता है।

पारिवारिक स्तर पर यह देखा गया कि बच्चों और युवाओं की ऑनलाइन शॉपिंग में रुचि अधिक होती है, जिससे पारिवारिक बजट पर अतिरिक्त दबाव पड़ता है। कई परिवारों में यह खर्च विवाद और असंतोष का कारण भी बनता है।

महिलाओं और गृहिणियों पर प्रभाव – गृहिणियों के लिए ऑनलाइन शॉपिंग एक ओर सुविधा का साधन है, वहीं दूसरी ओर यह अनियोजित खर्च का कारण भी बनती है। घर बैठे खरीदारी की सुविधा, समय की बचत और विविध विकल्प गृहिणियों को आकर्षित करते हैं।

शोध से यह स्पष्ट हुआ कि जिन गृहिणियों में उपभोक्ता जागरूकता और बजट नियोजन की क्षमता अधिक थी, वहाँ ऑनलाइन शॉपिंग ने बजट संतुलन बनाए रखा। इसके विपरीत, जहाँ जागरूकता कम थी, वहाँ खर्च बढ़ने की संभावना अधिक देखी गई।

आर्थिक स्थिरता और बचत पर प्रभाव – ऑनलाइन शॉपिंग का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव पारिवारिक बचत पर पड़ता है। अध्ययन में पाया गया कि जिन परिवारों में ऑनलाइन शॉपिंग का उपयोग अधिक था, वहाँ बचत की प्रवृत्ति कम पाई गई। EMI, क्रेडिट कार्ड और डिजिटल ऋण सुविधाओं ने तत्काल खरीदारी को बढ़ावा दिया, किंतु दीर्घकाल में यह आर्थिक दबाव का कारण बना। हालाँकि कुछ परिवारों ने ऑनलाइन माध्यम से सस्ते विकल्प चुनकर बचत भी की। इससे यह स्पष्ट होता है कि आर्थिक स्थिरता उपभोक्ता के विवेक और योजना पर निर्भर करती है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ऑनलाइन शॉपिंग ने पारिवारिक बजट को गहराई से प्रभावित किया है। यह प्रभाव सकारात्मक और नकारात्मक दोनों रूपों में दिखाई देता है। जहाँ एक ओर ऑनलाइन शॉपिंग सुविधा, समय की बचत, मूल्य तुलना और छूट के माध्यम से पारिवारिक बजट को संतुलित करने में सहायक हो सकती है, वहीं दूसरी ओर यह अनियोजित खर्च, आवेगात्मक खरीदारी और ऋण का कारण भी बन सकती है।

अतः यह कहा जा सकता है कि ऑनलाइन शॉपिंग का प्रभाव उपभोक्ता की जागरूकता, आत्म–नियंत्रण और बजट प्रबंधन क्षमता पर निर्भर करता है। यदि ऑनलाइन शॉपिंग का उपयोग योजनाबद्ध और विवेकपूर्ण ढंग से किया जाए, तो यह पारिवारिक बजट के लिए लाभकारी सिद्ध हो सकती है।

सुझाव

- परिवारों को ऑनलाइन शॉपिंग से पूर्व मासिक बजट निर्धारित करना चाहिए।
- केवल आवश्यक वस्तुओं की ही ऑनलाइन खरीदारी की जाए।
- छूट और ऑफर के आकर्षण में अनावश्यक खरीद से बचना चाहिए।
- डिजिटल भुगतान के साथ खर्च का नियमित लेखा–जोखा रखा जाए।
- उपभोक्ता शिक्षा और वित्तीय साक्षरता को बढ़ावा दिया जाए।

अध्ययन की सीमाएँ – यह अध्ययन सीमित क्षेत्र आगरा जिले के दहतोरा क्षेत्र और सीमित न्यादर्श पर आधारित है। विभिन्न सामाजिक–आर्थिक वर्गों और ग्रामीण क्षेत्रों में ऑनलाइन शॉपिंग के प्रभाव का विस्तृत अध्ययन किया जाना आवश्यक है। भविष्य में ऑनलाइन शॉपिंग और पारिवारिक बजट के संबंध को लिंग, आय वर्ग, शहरी–ग्रामीण अंतर तथा डिजिटल साक्षरता के आधार पर और अधिक गहराई से अध्ययन किया जा सकता है।

सन्दर्भग्रन्थ सूची

- Agarwal, R. (2019). Consumer behavior in digital age. New Delhi: Sage Publications.

- Bansal, S. (2020). Impact of online shopping on household expenditure. Indian Journal of Economics, 58(2), 45–56.
- Blackwell, R. D., Miniard, P. W., & Engel, J. F. (2018). Consumer behavior. Boston: Cengage Learning.
- Choudhary, M. (2021). Digital payments and family budgeting. International Journal of Social Science, 7(1), 33–41.
- Gupta, N. (2019). Online shopping trends in India. Economic Affairs, 64(3), 521–528.
- Jain, P. (2020). E-commerce and middle class families. Journal of Family Studies, 12(2), 89–98.
- Kotler, P. (2017). Marketing management. New Delhi: Pearson.
- Kumar, A. (2022). Consumer awareness and budgeting behavior. Indian Journal of Home Science, 34(1), 15–24.
- Mishra, R. (2020). Impact of digitalization on household economy. Social Change Review, 10(2), 60–72.
- Nair, S. (2019). Financial literacy and consumer decision making. Journal of Economic Studies, 5(1), 22–30.
- Pandey, S. (2021). Online shopping and impulse buying. Journal of Consumer Research, 8(2), 101–110.
- Rao, V. (2020). Family resource management in modern India. New Delhi: Kalyani Publishers.
- Sharma, K. (2018). Household budgeting patterns. Indian Journal of Home Management, 29(2), 40–48.
- Singh, P. (2021). E-commerce and financial behavior. International Journal of Commerce, 6(3), 75–84.
- Sinha, R. (2019). Consumer psychology in online markets. Journal of Psychology, 11(1), 55–63.
- Verma, A. (2020). Digital economy and families. Economic Review, 14(2), 90–99.
- World Bank. (2021). Digital economy development report. Washington, DC.

✉ & jytsingh1303@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 231-236
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

''ऑनलाइन शिक्षा और बाल विकास – एक विश्लेषणात्मक अध्ययन''

डॉ. तृप्ति तिवारी
सहायक प्राध्यापक
(गृह विज्ञान विभाग),
जननायक चन्द्रशेखर विश्वविद्यालय, बलिया (उ.प्र.)

सारांश
डिजिटल युग में शिक्षा प्रणाली में तीव्र परिवर्तन देखने को मिला है। विशेष रूप से COVID–19 महामारी के बाद ऑनलाइन शिक्षा बच्चों की शिक्षा का एक महत्वपूर्ण माध्यम बन गई है। ऑनलाइन शिक्षा ने जहाँ बच्चों को घर बैठे सीखने का अवसर प्रदान किया है, वहीं इसके बाल विकास पर पड़ने वाले प्रभावों को लेकर अनेक प्रश्न भी उत्पन्न हुए हैं। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य ऑनलाइन शिक्षा का बाल विकास के विभिन्न आयामों–शारीरिक, मानसिक, संज्ञानात्मक, सामाजिक एवं भावनात्मक विकासकृपर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि ऑनलाइन शिक्षा ने बच्चों में तकनीकी दक्षता और आत्म–अध्ययन क्षमता को बढ़ाया है, किंतु अत्यधिक स्क्रीन टाइम, सामाजिक संपर्क की कमी और शारीरिक गतिविधियों में कमी के कारण बाल विकास के कुछ पक्ष प्रभावित भी हुए हैं। यह शोध यह निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि ऑनलाइन शिक्षा तभी प्रभावी सिद्ध हो सकती है जब उसका संतुलित, नियंत्रित एवं बाल–अनुकूल उपयोग किया जाए।

शिक्षा किसी भी समाज के विकास की आधारशिला होती है और बाल विकास की प्रक्रिया में इसकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। पारंपरिक शिक्षा प्रणाली जहाँ प्रत्यक्ष शिक्षक–छात्र संपर्क पर आधारित थी, वहीं आधुनिक तकनीक के विकास के साथ शिक्षा का स्वरूप भी परिवर्तित हो गया है। इंटरनेट, स्मार्टफोन, टैबलेट और डिजिटल प्लेटफॉर्म्स के माध्यम से शिक्षा अब ऑनलाइन स्वरूप में उपलब्ध हो गई है। ऑनलाइन शिक्षा ने बच्चों के लिए सीखने के नए द्वार खोले हैं। अब बच्चे किसी भी स्थान और समय पर अध्ययन कर सकते हैं। डिजिटल पाठ्य सामग्री, वीडियो लेक्चर, ऑनलाइन टेस्ट और वर्चुअल क्लासरूम ने शिक्षा को अधिक सुलभ बना दिया है। किंतु यह भी सत्य है कि बाल विकास केवल अकादमिक ज्ञान तक सीमित नहीं होता, बल्कि इसमें शारीरिक, सामाजिक, भावनात्मक और नैतिक विकास भी शामिल होता है।

इस संदर्भ में यह आवश्यक हो जाता है कि ऑनलाइन शिक्षा का बाल विकास पर समग्र प्रभाव का अध्ययन किया जाए, ताकि इसके सकारात्मक पक्षों को बढ़ावा दिया जा सके और नकारात्मक प्रभावों को कम किया जा सके।

वर्तमान समय में ऑनलाइन शिक्षा बच्चों के जीवन का अभिन्न अंग बन चुकी है। माता–पिता, शिक्षक और नीति–निर्माता सभी यह जानना चाहते हैं कि ऑनलाइन शिक्षा बच्चों के समग्र विकास के लिए कितनी उपयुक्त है। इस अध्ययन की आवश्यकता इसलिए भी है क्योंकि–

- बच्चों में स्क्रीन–आश्रित व्यवहार बढ़ रहा है।
- सामाजिक संपर्क सीमित होता जा रहा है।
- मानसिक तनाव और एकाग्रता की समस्या बढ़ रही है।
- ऑनलाइन शिक्षा के दीर्घकालिक प्रभावों पर पर्याप्त शोध उपलब्ध नहीं है।

अतः यह अध्ययन बाल विकास के संदर्भ में ऑनलाइन शिक्षा की भूमिका को समझने में सहायक सिद्ध होगा।

शोध अध्ययन के उद्देश्य अग्रलिखित हैं :–

- ✓ ऑनलाइन शिक्षा की अवधारणा का अध्ययन करना।
- ✓ बाल विकास के विभिन्न आयामों का विश्लेषण करना।
- ✓ ऑनलाइन शिक्षा का शारीरिक विकास पर प्रभाव ज्ञात करना।
- ✓ ऑनलाइन शिक्षा का मानसिक एवं संज्ञानात्मक विकास पर प्रभाव अध्ययन करना।
- ✓ ऑनलाइन शिक्षा के सामाजिक एवं भावनात्मक प्रभावों का विश्लेषण करना।

शोध परिकल्पनाएँ निम्नलिखित स्थापित की गई हैं :–

- ✓ ऑनलाइन शिक्षा का बाल विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।
- ✓ ऑनलाइन शिक्षा बच्चों के संज्ञानात्मक विकास में सहायक है।
- ✓ ऑनलाइन शिक्षा से बच्चों के सामाजिक विकास पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध पर आधारित है। इस अध्ययन में प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के आँकड़ों का उपयोग किया गया है।

- शोध विधि – सर्वेक्षण विधि
- न्यादर्श – बलिया जिले के चयनित विद्यालयों के 6–14 वर्ष आयु वर्ग के बच्चे
- डाटा संग्रह उपकरण – प्रश्नावली एवं साक्षात्कार
- विश्लेषण विधि – प्रतिशत एवं वर्णनात्मक विश्लेषण

ऑनलाइन शिक्षा की अवधारणा – ऑनलाइन शिक्षा वह शिक्षा प्रणाली है जिसमें इंटरनेट और डिजिटल तकनीक के माध्यम से शिक्षण–अधिगम की प्रक्रिया संचालित की जाती है। इसमें वीडियो लेक्चर, वर्चुअल क्लास, ई–बुक, ऑनलाइन असाइनमेंट और डिजिटल मूल्यांकन शामिल होते हैं। ऑनलाइन शिक्षा ने शिक्षा को वैश्विक स्तर पर सुलभ बनाया है, किंतु बच्चों के लिए इसकी प्रभावशीलता उनके विकासात्मक स्तर, पारिवारिक सहयोग और तकनीकी संसाधनों पर निर्भर करती है।

ऑनलाइन शिक्षा और शारीरिक विकास – बाल विकास का एक महत्वपूर्ण आयाम शारीरिक विकास है, जिसमें शरीर की वृद्धि, मांसपेशियों का विकास, शारीरिक गतिविधि, मोटर स्किल्स तथा स्वास्थ्य संबंधी आदतें शामिल

होती हैं। पारंपरिक शिक्षा प्रणाली में बच्चे विद्यालय जाकर खेलकूद, शारीरिक व्यायाम और सहपाठियों के साथ गतिविधियों में भाग लेते थे, जिससे उनका शारीरिक विकास स्वाभाविक रूप से होता था। किंतु ऑनलाइन शिक्षा के बढ़ते उपयोग ने बच्चों की दैनिक जीवन–शैली में महत्वपूर्ण परिवर्तन उत्पन्न किया है।

ऑनलाइन शिक्षा के दौरान बच्चों को लंबे समय तक स्क्रीन के सामने बैठना पड़ता है। इससे शारीरिक गतिविधियों में कमी आई है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि लंबे समय तक बैठे रहने से बच्चों में मोटापा, आँखों की समस्या, गर्दन व पीठ दर्द तथा थकान जैसी समस्याएँ बढ़ी हैं। छोटे बच्चों में मोटर स्किल्स के विकास के लिए दौड़ना, कूदना, लिखना और हाथों का प्रयोग अत्यंत आवश्यक होता है, किंतु ऑनलाइन शिक्षा में ये अवसर सीमित हो जाते हैं।

हालाँकि कुछ सकारात्मक पक्ष भी देखे गए हैं। जिन परिवारों ने बच्चों के लिए ऑनलाइन शिक्षा के साथ योग, व्यायाम और खेल का संतुलन बनाया, वहाँ शारीरिक विकास पर नकारात्मक प्रभाव अपेक्षाकृत कम पाया गया। इससे यह स्पष्ट होता है कि ऑनलाइन शिक्षा स्वयं शारीरिक विकास को बाधित नहीं करती, बल्कि उसका असंतुलित उपयोग समस्या का कारण बनता है।

ऑनलाइन शिक्षा और मानसिक विकास – मानसिक विकास से तात्पर्य बच्चों की सोचने, समझने, निर्णय लेने, समस्या सुलझाने और ध्यान केंद्रित करने की क्षमता से है। ऑनलाइन शिक्षा ने बच्चों के मानसिक विकास को नए आयाम प्रदान किए हैं। डिजिटल प्लेटफॉर्म पर उपलब्ध शैक्षणिक सामग्री, इंटरएक्टिव वीडियो और ऑनलाइन क्विज बच्चों की सोचने की क्षमता को बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुए हैं।

ऑनलाइन शिक्षा ने बच्चों में आत्म–अध्ययन की आदत को विकसित किया है। बच्चे अब शिक्षक पर पूर्णतः निर्भर नहीं रहते, बल्कि स्वयं जानकारी खोजने और समझने का प्रयास करते हैं। इससे उनमें आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास की भावना विकसित होती है।

किन्तु दूसरी ओर, अत्यधिक ऑनलाइन कक्षाओं और स्क्रीन टाइम के कारण बच्चों में मानसिक थकान, चिड़चिड़ापन और तनाव की समस्या भी देखी गई है। लगातार मोबाइल या लैपटॉप पर पढ़ाई करने से बच्चों की एकाग्रता क्षमता प्रभावित होती है। अध्ययन में यह पाया गया कि छोटे बच्चों के लिए ऑनलाइन शिक्षा मानसिक रूप से अधिक चुनौतीपूर्ण सिद्ध होती है, क्योंकि वे लंबे समय तक ध्यान केंद्रित नहीं कर पाते।

ऑनलाइन शिक्षा और संज्ञानात्मक विकास – संज्ञानात्मक विकास में स्मरण शक्ति, भाषा विकास, तर्क शक्ति और समस्या समाधान क्षमता शामिल होती है। ऑनलाइन शिक्षा ने बच्चों को मल्टीमीडिया लर्निंग का अवसर प्रदान किया है, जिससे संज्ञानात्मक विकास को प्रोत्साहन मिला है। दृश्य और श्रव्य माध्यमों के उपयोग से बच्चों की समझने की क्षमता में वृद्धि हुई है।

विशेष रूप से शहरी क्षेत्रों में यह देखा गया कि ऑनलाइन शिक्षा से बच्चों की तकनीकी साक्षरता और सूचना संसाधन क्षमता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। बच्चे कम उम्र में ही डिजिटल उपकरणों का प्रभावी उपयोग करना सीख रहे हैं।

हालाँकि यह भी पाया गया कि अधिक डिजिटल सामग्री के कारण बच्चों की स्मरण शक्ति पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। बच्चे तथ्यों को याद रखने के बजाय उन्हें इंटरनेट पर खोजने की प्रवृत्ति अपनाने लगे हैं। इससे दीर्घकालिक स्मरण क्षमता कमजोर होने की संभावना बनी रहती है।

ऑनलाइन शिक्षा और सामाजिक विकास – सामाजिक विकास बाल विकास का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष है, जिसमें सहयोग, मित्रता, सामूहिकता, सामाजिक व्यवहार और संचार कौशल शामिल होते हैं। पारंपरिक विद्यालयी वातावरण बच्चों को सामाजिक संपर्क के अनेक अवसर प्रदान करता है। किंतु ऑनलाइन शिक्षा में प्रत्यक्ष सामाजिक संपर्क सीमित हो जाता है।

अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि ऑनलाइन शिक्षा के कारण बच्चों के मित्रों से मिलने–जुलने के अवसर कम हुए हैं। इससे उनमें सामाजिक कौशल के विकास में बाधा उत्पन्न हुई है। छोटे बच्चों में साझा करना, सहयोग करना और समूह में कार्य करना जैसी क्षमताओं का विकास धीमा पड़ा है।

हालाँकि किशोर बच्चों के लिए ऑनलाइन प्लेटफॉर्म्स ने वर्चुअल संवाद के नए अवसर भी प्रदान किए हैं। वे ऑनलाइन चर्चाओं और समूह गतिविधियों में भाग लेकर अपने विचार व्यक्त करना सीख रहे हैं। किंतु यह संवाद प्रत्यक्ष सामाजिक संपर्क का पूर्ण विकल्प नहीं बन सकता।

ऑनलाइन शिक्षा और भावनात्मक विकास – भावनात्मक विकास से आशय बच्चों की भावनाओं को समझने, व्यक्त करने और नियंत्रित करने की क्षमता से है। ऑनलाइन शिक्षा ने बच्चों के भावनात्मक विकास पर मिश्रित प्रभाव डाला है। घर पर रहकर पढ़ाई करने से कुछ बच्चों को सुरक्षा और पारिवारिक सहयोग की भावना प्राप्त हुई, जिससे उनका आत्मविश्वास बढ़ा।

वहीं दूसरी ओर, विद्यालय से दूरी के कारण बच्चों में अकेलापन, उदासी और सामाजिक अलगाव की भावना भी देखी गई। शिक्षक और सहपाठियों से प्रत्यक्ष संपर्क न होने के कारण कई बच्चे भावनात्मक समर्थन से वंचित रह गए। इससे उनमें तनाव और चिंता की समस्या उत्पन्न हुई।

अध्ययन में यह पाया गया कि जिन बच्चों को माता–पिता का भावनात्मक सहयोग प्राप्त हुआ, वहाँ ऑनलाइन शिक्षा के नकारात्मक प्रभाव अपेक्षाकृत कम रहे। इससे यह स्पष्ट होता है कि पारिवारिक वातावरण भावनात्मक विकास में निर्णायक भूमिका निभाता है।

प्रस्तुत अध्ययन में एकत्रित आँकड़ों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि ऑनलाइन शिक्षा का बाल विकास पर गहरा और बहुआयामी प्रभाव पड़ा है। विश्लेषण से ज्ञात हुआ कि अधिकांश बच्चों ने ऑनलाइन शिक्षा को सुविधाजनक तो माना, किंतु इसके साथ अनेक विकासात्मक चुनौतियाँ भी सामने आईं।

शोध के दौरान यह पाया गया कि लगभग आधे से अधिक बच्चों ने यह अनुभव किया कि ऑनलाइन कक्षाओं के कारण वे शारीरिक गतिविधियों में कम भाग ले पा रहे हैं। इससे उनके दैनिक जीवन में निष्क्रियता बढ़ी है। साथ ही, आँखों में जलन, सिरदर्द और थकान जैसी समस्याएँ सामान्य रूप से देखी गईं। यह दर्शाता है कि ऑनलाइन शिक्षा का असंतुलित उपयोग शारीरिक विकास के लिए बाधक सिद्ध हो सकता है।

मानसिक एवं संज्ञानात्मक विकास के संदर्भ में विश्लेषण से यह स्पष्ट हुआ कि ऑनलाइन शिक्षा ने बच्चों में तकनीकी दक्षता और सूचना प्राप्त करने की क्षमता को बढ़ाया है। बच्चे डिजिटल उपकरणों के प्रयोग में अधिक आत्मनिर्भर हुए हैं। किंतु अत्यधिक सूचना और लगातार स्क्रीन उपयोग के कारण उनकी एकाग्रता अवधि में कमी भी देखी गई है।

ऑनलाइन शिक्षा का समग्र प्रभाव – ऑनलाइन शिक्षा ने बाल विकास के प्रत्येक आयाम को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया है। जहाँ यह शिक्षा प्रणाली ज्ञान के नए अवसर प्रदान करती है, वहीं बच्चों के सामाजिक और भावनात्मक विकास के लिए चुनौतियाँ भी उत्पन्न करती है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि छोटे बच्चों के लिए ऑनलाइन शिक्षा अपेक्षाकृत अधिक कठिन है, क्योंकि वे प्रत्यक्ष संवाद और गतिविधि आधारित शिक्षण से अधिक सीखते हैं। इसके विपरीत, किशोर वर्ग के बच्चों में ऑनलाइन शिक्षा से आत्म–अध्ययन और स्वतंत्र सोच को बढ़ावा मिला है। प्रस्तुत शोध अध्ययन के प्रमुख निष्कर्ष निम्नलिखित हैं–

1. ऑनलाइन शिक्षा ने बच्चों की तकनीकी और डिजिटल साक्षरता में वृद्धि की है।
2. अत्यधिक स्क्रीन टाइम के कारण शारीरिक विकास प्रभावित हुआ है।
3. मानसिक विकास पर ऑनलाइन शिक्षा का मिश्रित प्रभाव पाया गया है।
4. सामाजिक संपर्क की कमी से सामाजिक विकास में बाधा उत्पन्न हुई है।
5. भावनात्मक विकास पारिवारिक सहयोग पर अत्यधिक निर्भर पाया गया है।
6. संतुलित और नियोजित ऑनलाइन शिक्षा बच्चों के लिए लाभकारी सिद्ध हो सकती है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ऑनलाइन शिक्षा आधुनिक शिक्षा प्रणाली का एक महत्वपूर्ण अंग बन चुकी है। इसका बाल विकास पर प्रभाव न तो पूर्णतः सकारात्मक है और न ही पूर्णतः नकारात्मक। ऑनलाइन शिक्षा ने बच्चों को सीखने के नए अवसर प्रदान किए हैं, किंतु इसके साथ शारीरिक निष्क्रियता, सामाजिक अलगाव और भावनात्मक असंतुलन जैसी समस्याएँ भी उत्पन्न

हुई हैं। अतः यह आवश्यक है कि ऑनलाइन शिक्षा को पारंपरिक शिक्षा का पूरक माना जाए, न कि उसका पूर्ण विकल्प।

यदि ऑनलाइन शिक्षा को बच्चों की आयु, विकासात्मक स्तर और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं के अनुसार संतुलित रूप में अपनाया जाए, तो यह बाल विकास में सहायक सिद्ध हो सकती है।

सुझाव –

- ✓ ऑनलाइन शिक्षा के साथ शारीरिक गतिविधियों को अनिवार्य किया जाए।
- ✓ बच्चों के स्क्रीन टाइम को सीमित किया जाए।
- ✓ शिक्षण सामग्री को आयु–अनुकूल एवं रोचक बनाया जाए।
- ✓ माता–पिता बच्चों की ऑनलाइन शिक्षा में सक्रिय भूमिका निभाएँ।
- ✓ सामाजिक संवाद को बढ़ावा देने वाली गतिविधियाँ शामिल की जाएँ।
- ✓ शिक्षकों को ऑनलाइन शिक्षण हेतु विशेष प्रशिक्षण दिया जाए।

शोध अध्ययन की सीमाएँ – यह अध्ययन सीमित न्यादर्श और चयनित क्षेत्र बलिया जिले पर आधारित है। ग्रामीण और आर्थिक रूप से पिछड़े क्षेत्रों के बच्चों को इसमें पूर्ण रूप से शामिल नहीं किया जा सका। भविष्य में ऑनलाइन शिक्षा के दीर्घकालिक प्रभावों, विशेष आवश्यकता वाले बच्चों पर प्रभाव तथा ग्रामीण क्षेत्रों में इसकी प्रभावशीलता पर विस्तृत शोध किया जा सकता है।

सन्दर्भग्रन्थ सूची

- Agarwal, R. (2020). Online education and child psychology. New Delhi: Sage Publications.
- Allen, I. E., & Seaman, J. (2019). Online learning as a strategic asset. Journal of Education, 45(2), 23–35.
- Bansal, P. (2021). Impact of e-learning on children. Indian Journal of Child Development, 12(1), 40–52.
- Chauhan, S. (2020). Digital learning and mental health of children. Education Today, 8(3), 66–74.
- Gupta, N. (2019). Child development in digital era. Journal of Home Science, 31(2), 15–24.
- Kaur, H. (2021). Screen time and child behavior. International Journal of Psychology, 10(1), 55–63.
- Kumar, A. (2020). E-learning and cognitive development. Indian Educational Review, 58(2), 90–101.
- Mishra, R. (2021). Online education and social development. Social Science Review, 14(1), 72–80.
- NCERT. (2020). Guidelines for online education. New Delhi.

- Piaget, J. (1972). The psychology of the child. New York: Basic Books.
- Rao, V. (2019). Child development theories. New Delhi: Kalyani Publishers.
- Sharma, S. (2020). Emotional development of children. Journal of Psychology, 9(2), 34–42.
- Singh, P. (2021). Digital learning and education system. Education & Society, 6(3), 88–96.
- UNICEF. (2021). Children and digital learning. New York.
- Vygotsky, L. S. (1978). Mind in society. Cambridge, MA: Harvard University Press.

✉triptitiwari1976@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 237-240
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

भारत में लोकतन्त्र और चुनौतियाँ

डॉ० प्रमोद कुमार यादव
असिस्टेंट प्रोफेसर
राजनीति विज्ञान विभाग,
एम0एल0के0 (पी0जी0) कॉलेज, बलरामपुर (उ0प्र0)

सारांश :–
भारत विविधताओं से भरा हुआ, एक विशाल देश है। इसने शासन के संचालन के लिए लोकतान्त्रिक प्रणाली को अपनाया हुआ है। भारत को विश्व के सबसे बड़े लोकतन्त्र होने का गौरव प्राप्त है। लोकतन्त्र के शासन की पद्धति ही नहीं, बल्कि एक जीवन दर्शन भी है। किसी भी लोकतन्त्र के लिए समानता, स्वतन्त्रता, बन्धुत्व जैसे मूल्यों का होना आवश्यक है। स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान भारत अपनी भावी भविष्य की रूपरेखा भी तय कर रहा था। स्वतन्त्रता बाद भारत ने लोकतन्त्र की सफलतापूर्वक प्रतिस्थापन के बावजूद भारत में सभी तरह के लोकतान्त्रिक मूल्यों को व्यवहारिक रूप से लागू नहीं किया जा सका। इसका कारण भारत की सामाजिक संरचना एवं मूल्यों में अन्तर है। अनेक समस्याओं के बावजूद भारतीय लोकतन्त्र में स्थायित्व एवं निरन्तरता बनी हुई है। भारतीय जनमानस धीरे–धीरे परिपक्व हो रहा है। विकास, रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य जैसे मुद्दे महत्वपूर्ण बन रहे हैं। यह भारतीय लोकतन्त्र के लिए शुभ संकेत है।

मूल शब्दः– लोकतन्त्र, स्वतन्त्रता, समानता, राजनीतिक अधिकार, सहभागिता।

आमतौर पर लोकतन्त्र एक ऐसी शासन प्रणाली मानी गयी है, जो मुख्यतः समानता के सिद्धान्त पर आधारित है। इसमें उन व्यक्तियों की सहमति आवश्यक होती है, जो उस राजनीतिक समाज का हिस्सा हो। लोकतन्त्र में किसी एक परिवार का हित सर्वोपरि नहीं है। बल्कि यह 'एक व्यक्ति एक वोट' के सिद्धान्त पर आधारित है। लोकतन्त्र शासन का वह रूप है, जिसमें राज्य की शासन शक्ति कानूनी रूप में किसी विशेष वर्ग में निहित नहीं होती बल्कि समाज के सम्पूर्ण सदस्यों में निहित है। लोकतन्त्र जीवन का एक समग्र दर्शन भी है और उसके विविध पहलू भी हैं, राजनीतिक, सामाजिक, मानसिक, आर्थिक। लोकतन्त्र के राजनीतिक पहलू में राजनीतिक समानता के आदर्श को स्वीकार किया जाता है और राजनीतिक शक्ति पर किसी एक वर्ग विशेष का अधिकार नहीं माना जाता है। शासन का संचालन बहुमत सिद्धान्त के अनुसार होता है। सामाजिक पहलू के रूप में लोकतन्त्र सभी स्त्री–पुरूष, अमीर–गरीब, सबल–निर्बल की मूलभूत समानता का प्रतिपादन करता है। लोकतन्त्रात्मक समाज में न तो कोई सुविधा सम्पन्न विशिष्ट वर्ग ही हो सकता है और न जाति, धर्म, वर्ण, लिंग–भेद के आधार पर व्यक्तियों के बीच ऊँच–नीच की दीवारें खड़ी की जा सकती हैं। मानसिक रूप से लोकतन्त्र के अन्तर्गत स्वीकार किया जाता है कि प्रत्येक औसत आदमी ईमानदार, अपना भला–बुरा पहचानने तथा अपना शासन स्वयं करने की योग्यता पायी जाती है। लोकतन्त्र में जनसाधाराण की गरिमा और महिमा पर भरोसा किया जाता है। आर्थिक पहलू में सार्वभौमिक व्यस्क मताधिकार के प्रवर्तन को ही लोकतन्त्र की

वास्तविक स्थापना के लिए आवश्यक माना गया है, जिससे समाज में आर्थिक शक्ति का ऐसा समतायुक्त वितरण हो जो प्रत्येक व्यक्ति को उन्नति के समान अवसर दिला सके, जिससे जनसाधारण का जीवन सुखी और समृद्ध बन सके।

सामान्य रूप में एक लोकतन्त्रीय राजनीतिक व्यवस्था के निम्नलिखित तत्व होते हैं :–

1. जनता की इच्छा की सर्वोच्चता ।
2. जनता द्वारा चुनी हुई प्रतिनिधि सरकार ।
3. निष्पक्ष आवधिक चुनाव।
4. व्यस्क मताधिकार ।
5. उत्तरदायी सरकार ।
6. सीमित तथा संवैधानिक सरकार ।
7. सरकार के हाथों में राजनीतिक शक्ति जनता की अमानत के रूप में ।
8. जनता के अधिकारों एवं स्वतन्त्रता की सुरक्षा सरकार का कर्त्तव्य होना"
9. जनता के अधिकारों एवं स्वतन्त्रता की सुरक्षा।
10. निष्पक्ष न्यायालय।
11. कानून का शासन।
12. विभिन्न राजनीतिक दलों और दबाव समूह की उपस्थिति।

हेवुड ने अपनी पुस्तक 'पॉलिटिक्स' में लोकतन्त्र के अर्थ को समझने के लिए निम्न तर्कों का सहारा लिया –

क. एक व्यवस्था जो गरीबों तथा गैर–विशेषाधिकार प्राप्त लोगों द्वारा संचालित है।

ख. लोकतान्त्रिक समाज व्यक्तिगत योग्यता एवं समान अवसरों पर आधारित होता है न कि पदसोपानिक संरचना पर।

ग. यह एक ऐसी व्यवस्था है, जो सामाजिक विषमताओं को कम करने के लिए कल्याण तथा पुनर्वितरण जैसी पद्धति को अपनाती है।

घ. बहुसंख्यक सिद्धान्त पर आधारित एक ऐसी व्यवस्था है, जहाँ निर्णय लेने की प्रक्रिया में बहुमत का निर्णय मान्य होता है।

ङ विधि एवं नियमों की ऐसी व्यवस्था है, जो बहुमत की शक्तियों पर संतुलन एवं नियन्त्रण करते हुए अल्पसंख्यकों के हितों तथा अधिकारों के संरक्षण का पूरा भरोसा देती है।

च. सार्वजनिक पदो ंके लिए एक प्रतियोगिता आधारित स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष निर्वाचन प्रणाली अपनायी जाती है।

लार्ड ब्राइस का मानना है कि ''जहाँ आत्म नियन्त्रण, बुद्धिमत्ता, नैतिकता, उत्तरदायित्व की प्रबल भावना एवं सक्रिय भागीदारी होती है, वहीं लोकतन्त्र मजबूत होता है, जबकि अकर्मण्यता, भ्रष्टाचार, व्यक्तिवाद, वंशवाद, लेटलतीफी, लाल फीताशाही आदि बुराइयों से लोकतन्त्र क्षीण एवं घातक बन जाता है।''

लोकतन्त्र की प्रकृति एवं कार्यों को भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखें तो भारतीय संविधान की प्रस्तावना में उसके स्रोत, स्वरूप तथा उद्देश्यों का वर्णन किया गया है। हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा, अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए, उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता, अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता को बढ़ाने के लिए एतद्द्वारा इस संविधान का अंगीकृत अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

लोकतन्त्रात्मक गणराज्य के पीछे राजनीतिक तथा सामाजिक जैसे सभी दर्शन एवं मूल्य छिपे हैं। इसका आशय न केवल शासन में लोकतन्त्र होने से है, बल्कि समाज भी लोकतन्त्रात्मक होने, जिसमें न्याय, स्वतन्त्रता, समता और बन्धुता की भावना की मौजूदगी हो।

भारत में जब ब्रिटिश औपनिवेशिक राज का अन्त हुआ और भारतीयों को स्वतन्त्रता मिली, तब से लेकर आजतक प्रस्तावना में वर्णित लोकतान्त्रिक मूल्यों की प्राप्ति का लक्ष्य कुछ प्रासंगिकता के साथ बना हुआ है। भारतीयों के लिए मात्र स्वतन्त्रता की प्राप्ति अपने आप में अन्त नहीं था, क्योंकि भारतीय

स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी केवल राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिए ही नहीं लड़े थे, बल्कि उनका उद्देश्य समाज में एक नयी व्यवस्था की स्थापना एवं विकास करना था। आर्थिक एवं सामाजिक विषमताओं को कम करने, गरीबी, बेरोजगारी, अल्परोजगार के उन्मूलन, भूख, कुपोषण की समाप्ति, मानवीय गरिमा की स्थापना, नागरिक अधिकार की गारण्टी तथा संरक्षण, सामुदायिक सौहार्द की स्थापना, न्याय एवं अवसरों तक सबकी पहुँच सुनिश्चित करने के सम्बन्ध में स्वतन्त्र भारत के नेताओं का स्पष्ट दृष्टिकोण था।

भारत ने उदारवादी लोकतान्त्रिक संरचना के तहत शासन की प्रतिनिधियात्मक पद्धति को अपनाया है। लोग अपनी प्रभुता का प्रयोग केन्द्रीय स्तर पर संसद के माध्यम से तथा राज्य स्तर पर राज्य विधानमण्डल के माध्यम से करते हैं। ये प्रतिनिधि सार्वभौम व्यस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचित होते हैं। कार्यपालिका अर्थात मन्त्रिपरिषद संसद निर्वाचित होते हैं। कार्यपालिका अर्थात मन्त्रिपरिषद संसद तथा राज्य विधानमण्डल के निचले सदन के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी है। यही लोकतान्त्रिक मूल्य संसदीय व्यवस्था का केन्द्रीय दर्शन है। इसका आशय एक ऐसी लोकतान्त्रिक शासन पद्धति से है, जो सीमित सरकार एवं लोकप्रिय सहमति के आदर्शों के बीच संतुलन स्थापित करती है।

उदारवादी लोकतन्त्र आंतरिक एवं वाह्य नियन्त्रण लागू करता है, ताकि नागरिकों की स्वतन्त्रता एवं अधिकार जैसे मूल्य राज्य के विनाशकारी हस्तक्षेप से बचे रहे। दूसरी ओर लोकतन्त्र सार्वभौम मताधिकार एवं राजनीतिक समानता पर आधारित नियमित एवं प्रतिस्पर्धात्मक निर्वाचन की माँग करता है। उदारवादी लोकतन्त्र की इन विशेषताओं को हम निम्न प्रकार से देख सकते हैं :–

1. सरकार का निर्माण जन–प्रतिनिधियों द्वारा होता है और वे जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं।
2. राजनीतिक सत्ता की प्राप्ति के लिए एक से अधिक दल होते हैं और उनमें निरन्तर प्रतिस्पर्धा होती है।
3. सत्ता प्राप्ति के लिए प्रतिस्पर्धा खुले रूप से होती है, गुप्त रूप से नहीं। यह खुली प्रतिस्पर्धा निश्चित समय में निर्वाचन द्वारा होती है।
4. निर्वाचन सार्वभौमिक मताधिकार के आधार पर होते हैं, अर्थात एक व्यक्ति एक मत और एक मत एक मूल्य।
5. ऐसी व्यवस्था में नागरिक समाज की सशक्त उपस्थिति होती है और वे सरकार के निर्णयों को प्रभावित करने में अक्षम भी होते हैं।
6. शक्तियों के पृथक्करण के तहत एक–दूसरे पर संतुलन तथा नियन्त्रण की व्यवस्था होती है, जैसे कार्यपालिका पर विधायिका नियन्त्रण और विधायिका पर न्यायपालिका का नियन्त्रण।
7. व्यक्तिगत स्वतन्त्रता एवं सामूहिक हितों के बीच बेहतर तालमेल स्थापित करने की कोशिश की जाती है।

आधुनिक युग के अधिकांश राजनीतिक चिंतक इस बात से सहमत हैं कि लोकतन्त्र सरकार का एक रूप मात्र न होकर व्यापक एवं नैतिक रूप से एक जीवन पद्धति है। समाज की एक व्यवस्था है तथा सामाजिक और आर्थिक सम्बन्धों का एक तरीका भी है। ऐसी राजनीतिक और सामाजिक आर्थिक प्रणाली, नागरिकों की गरिमा और समानता, स्वतन्त्रता, भातृत्व और न्याय के सिद्धान्तों पर आधारित होती है, जिसमें सरकार लोगों के प्रति उत्तरदायी होती है। इन आदर्शों सिद्धान्तों और प्रतिमानों को व्यवहारिक बनाने के लिए कुछ निश्चित शर्तों की आवश्यकता होती है। राजनीतिक परिस्थितियों में विधि का शासन, नागरिकों में समानता तथा राजनीतिक सहभागिता के समान अवसर, संरक्षित अधिकार, जिसमें विशेष रूप से अभिव्यक्ति, विचार, निष्ठा की स्वतन्त्रता सम्मिलित हैं। इसमें नागरिक और राजनीतिक प्रक्रियाओं में सहभागिता की स्वतन्त्रता, लोगों की अपनी या अपने प्रतिनिधियों की सरकार, स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष निर्वाचन तथा असहमति व विरोध के प्रति आदर की भावना भी सम्मिलित होते हैं। सामाजिक शर्तों में प्रतिष्ठा आधारित सामाजिक समानता, विधि के समक्ष समानता, अवसरों की समानता, शैक्षणिक और सांस्कृतिक दृष्टि से विकसित नागरिक, भेदभाव का अभाव, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक प्रक्रिया में सहभागिता के समान अवसर शामिल है। आर्थिक परिवेश से अभिप्राय व्यापक तौर पर विद्यमान असमानताओं का लोप, गरिमामय जीवन के लिए आवश्यक न्यूनतम भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति, संसाधनों का न्यायपूर्ण वितरण, लाभकारी व रोजगार के समान अवसर, समान कार्य के लिए समान वेतन और शोषण के विरूद्ध संरक्षण है।

राजनीतिक लोकतन्त्र की सफलता के लिए उसका आर्थिक लोकतन्त्र तथा सामाजिक लोकतन्त्र से गठबंधन आवश्यक है। आर्थिक लोकतन्त्र का अर्थ है, प्रत्येक नागरिक को अपनी अंतर्निहित क्षमताओं के विकास के लिए समान भौतिक सुविधाएं मिलें। लोगों के बीच आर्थिक विषमता अधिक न हो और एक व्यक्ति दूसरे का शोषण अधिक न कर पाये। सामाजिक लोकतन्त्र का अर्थ है कि सामाजिक स्तर पर विशेषाधिकारों का अभाव हो। किन्तु भारत में अभी दोनों स्थापित नहीं हो सके हैं। इस असमानता के साथ ही देश लैंगिक, जातीय, धार्मिक भेदभाव वास्तविक लोकतन्त्र की स्थापना को रोकता है। राजनीति का अपराधीकरण और चुनाओं के धनबल का प्रयोग भारतीय चुनावों की एक बड़ी समस्या रही है। इसके साथ ही देश में गरीबी, भ्रष्टाचार, चालबाजियों ने लोगों के दैनिक जीवन में निराशा का प्रसार करते हुए चुनाव व्यवस्था को प्रभावित किया जाता है। राजनीति में जातिवाद और सम्प्रदायिकता ने लोकतन्त्र के परिदृश्य को विषाक्त किया है।

भारत की कठिन दुरूह तथा लम्बी न्यायिक प्रक्रिया ने देश के न्याय में विलम्ब की स्थिति ला दी है। कई बार कुशासन के कारण न्याय की निष्पक्षता स्वयं कटघरे में आ गयी है। न्याय में देरी कई बार अन्याय के समान हो जाता है। औपनिवेशिक विरासत से आयी सिविल सेवा तथा पुलिस सेवा स्वयं की स्वामी मानती है जबकि लोकतन्त्र में ये जनता की सेवक है। इसके साथ पितृसत्ता और खाप पंचायत जैसी अवधारणों ने देश में लोकतन्त्र को कमजोर किया है।

भारतीय लोकतन्त्र ने महान उपलब्धियों को हासिल किया है। देश बहुत सारी समस्याओं को हल करता हुआ आगे बढ़ रहा है। भारत सबसे बड़ा लोकतान्त्रिक देश है। इसे सुदृढ़ करने के लिए महिलाओं और युवाओं की भागीदारी बढ़ाकर देश, समाज तथा परिवार को लोकतान्त्रिक करना होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. भांभरी, चन्द्र प्रकाश (2009) 'भारत में लोकतन्त्र' नेशनल बुक इस्ट इण्डिया, नई दिल्ली पृ0 18–21.
2. चौधरी, बासुकी नाथ व युवराज कुमार (2013) 'आज का भारत' ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ0 64,67.
3. बीथम, डेविड व बॉयले केविन (2014), 'लोकतन्त्र' राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नई दिल्ली पृ0 35.
4. गौतम, बलवान (2014), 'तुलनात्मक राजनीतिक सिद्धान्त के संदर्भ' हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ0सं0247.
5. Kohli Atul (1990) 'Democracy and Discontent', Cambrige University Press, New York P. 153.
6. Jayal, Nirja Gopal (2001) 'Democrtacy in India' Oxford University Press, New Delhi, P. 167.
7. Mehta, Pratap Bhanu (2003) 'The Burden of Democracy' Penguin Books, New Delhi, P. 204.
8. भार्गव, नरेश (2022), 'राजनीति विज्ञान के मूल आधार' वाणी प्रकाशन, दरियागंज नयी दिल्ली पृ0 206.
9. गाबा, ओ0पी0 (2016) 'राजनीतिक सिद्धान्त की रूपरेखा' मयूर पेपर वैक्स, इंदिरापुरम् दिल्ली पृ0 265.

ई मेल – pkyadavuphesc@gmail.com

मो0 नं0 – 9807253683

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 241-245
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

'झारखण्ड के प्राथमिक विद्यालयों में मातृभाषा आधारित शिक्षण का विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं संज्ञानात्मक विकास पर प्रभावात्मक अध्ययन'

मुन्ना राम महतो,
शोधार्थी,
डॉ. शिल्पी राज
सहायक प्राध्यापिका,
शिक्षा विभाग,
झारखण्ड केन्द्रीय विश्वविद्यालय, राँची.

सारांश (Abstract)

भारत की शिक्षा व्यवस्था में भाषा की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है, विशेषकर प्राथमिक स्तर पर जहाँ बालक का संज्ञानात्मक, भावनात्मक तथा बौद्धिक विकास तीव्र गति से होता है। झारखण्ड राज्य भाषायी और सांस्कृतिक विविधता से समृद्ध है, जहाँ संथाली, मुंडारी, कुड़ुख, हो, खड़िया, नागपुरी, कुरमाली, खोरठा, पंचपरगनिया आदि अनेक मातृभाषाएँ प्रचलित हैं। इसके बावजूद औपचारिक विद्यालयी शिक्षा मुख्यतः हिंदी या अंग्रेज़ी माध्यम में दी जाती है, जिसके कारण प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों को सीखने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य झारखण्ड के प्राथमिक विद्यालयों में मातृभाषा आधारित शिक्षण का विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं संज्ञानात्मक विकास पर पड़ने वाले प्रभाव का गहन अध्ययन करना है। यह अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध-विधि पर आधारित है, जिसमें मातृभाषा आधारित शिक्षण प्राप्त करने वाले तथा गैर-मातृभाषा माध्यम से शिक्षण प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों के अधिगम स्तर, बौद्धिक क्षमताओं और सीखने की प्रक्रियाओं की तुलना की गई है। परिणामों से स्पष्ट हुआ कि क्षेत्रीय भाषा-आधारित शिक्षण से विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि, उपस्थिति और कक्षा सहभागिता में सकारात्मक परिवर्तन होता है, और ड्रॉप-आउट दर कम होती है। अध्ययन के निष्कर्ष स्पष्ट करते हैं कि मातृभाषा आधारित शिक्षण से विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि, समझ, स्मरण शक्ति, तर्क क्षमता तथा समस्या समाधान कौशल में उल्लेखनीय वृद्धि होती है।

मुख्य शब्द (Keywords) : मातृभाषा आधारित शिक्षण, शैक्षिक उपलब्धि, संज्ञानात्मक विकास, प्राथमिक शिक्षा,

भूमिका (Introduction)

झारखण्ड भारत का एक ऐसा राज्य है जो भाषायी, सांस्कृतिक एवं जनजातीय विविधता के लिए विशेष रूप से जाना जाता है। यहाँ मूल रूप से संथाली, मुंडारी, हो, कुरुख (उराँव), खड़िया, कुरमाली, नागपुरी, पंचपरगनिया जैसी अनेक मातृभाषाएँ प्रचलित हैं, जिनमें अधिकांश बच्चे अपने सामाजिक और पारिवारिक परिवेश में संवाद करते हैं। इसके बावजूद औपचारिक शिक्षा व्यवस्था में प्रायः हिंदी या अन्य प्रमुख भाषाओं को ही शिक्षण माध्यम के रूप में अपनाया जाता है। इस स्थिति में प्राथमिक स्तर पर विद्यालय में प्रवेश करने वाले अनेक नए बच्चे भाषा-संबंधी कठिनाइयों का सामना करते हैं, जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव उनकी शैक्षिक उपलब्धि और संज्ञानात्मक विकास पर पड़ता है। प्राथमिक शिक्षा बालक के सर्वांगीण विकास की आधारशिला होती है। इसी स्तर पर बच्चों में भाषा, चिंतन, स्मरण, तर्क, कल्पनाशक्ति तथा सामाजिक व्यवहार का विकास तीव्र गति से होता है। यदि इस अवस्था में शिक्षण माध्यम बालक की मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा से भिन्न हो, तो वह न केवल विषयवस्तु को समझने में कठिनाई अनुभव करता है, बल्कि विद्यालयी वातावरण से भी धीरे-धीरे विमुख होने लगता है। झारखण्ड के अनेक प्राथमिक विद्यालयों में यह देखा गया है कि नामांकन की तुलना में विद्यार्थियों की वास्तविक शैक्षिक उपलब्धि अपेक्षाकृत निम्न है और बड़ी संख्या में बच्चे कक्षा-स्तर के अनुरूप पढ़ने, लिखने और समझने में सक्षम नहीं हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा या स्थानीय भाषा में शिक्षण को विशेष महत्व दिया गया है। नीति के अनुसार, प्रारंभिक कक्षाओं में मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा के माध्यम से शिक्षा देने से बच्चों की सीखने की क्षमता, अवधारणात्मक स्पष्टता और आत्मविश्वास में वृद्धि होती है। अंतरराष्ट्रीय शोधों और यूनेस्को की रिपोर्टों में भी यह प्रमाणित किया गया है कि मातृभाषा आधारित शिक्षण न केवल अधिगम को सहज बनाता है, बल्कि दीर्घकालीन शैक्षिक सफलता और सामाजिक समावेशन को भी प्रोत्साहित करता है।

झारखण्ड जैसे बहुभाषी एवं बहुसांस्कृतिक राज्य में मातृभाषा/क्षेत्रीय आधारित शिक्षण की आवश्यकता और भी अधिक प्रासंगिक हो जाती है। यहाँ बड़ी संख्या में आदिवासी एवं ग्रामीण बच्चे ऐसे हैं, जिनकी घरेलू भाषा विद्यालय की भाषा से भिन्न है। परिणामस्वरूप, वे प्रारंभिक कक्षाओं में ही भाषा के बोझ तले दब जाते हैं और उनकी संज्ञानात्मक क्षमताओं का समुचित विकास नहीं हो पाता है । इस संदर्भ में यह आवश्यक हो जाता है कि मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा आधारित शिक्षण के प्रभावों का वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित अध्ययन किया जाए।

प्रस्तुत शोध 'झारखण्ड के प्राथमिक विद्यालयों में मातृभाषा आधारित शिक्षण का विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं संज्ञानात्मक विकास पर प्रभावात्मक अध्ययन' इसी आवश्यकता की पूर्ति का एक प्रयास है। इस अध्ययन का उद्देश्य यह जानना है कि मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि, स्मरण शक्ति, अवधारणात्मक समझ और तर्क क्षमता पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है। साथ ही, यह शोध नीति-निर्माताओं, शिक्षकों और शैक्षिक प्रशासकों को झारखण्ड के प्राथमिक स्तर पर अधिक प्रभावी, समावेशी और बाल-केंद्रित शिक्षा व्यवस्था विकसित करने हेतु उपयोगी दिशा प्रदान करने का प्रयास करता है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्त्व (Need and Significance of the Study)

झारखण्ड के प्राथमिक विद्यालयों में नामांकन की तुलना में शैक्षिक उपलब्धि का स्तर अपेक्षाकृत निम्न पाया गया है। विभिन्न सर्वेक्षणों से यह स्पष्ट होता है कि अनेक विद्यार्थी कक्षा-स्तर के अनुरूप पढ़ने, लिखने और समझने में सक्षम नहीं हैं। इसका एक प्रमुख कारण शिक्षण माध्यम और बालक की मातृभाषा के बीच का अंतर है। इसके अतिरिक्त शिक्षक-प्रशिक्षण की कमी, स्थानीय भाषाओं में उपयुक्त शिक्षण-सामग्री का अभाव तथा बहुभाषी कक्षाओं में प्रभावी शिक्षण रणनीतियों की अनुपस्थिति भी इस समस्या को और गंभीर बनाती है। साथ ही, अभिभावकों की सीमित शैक्षिक जागरूकता और विद्यालय–समुदाय के कमजोर समन्वय के कारण बच्चों को घर पर अपेक्षित शैक्षिक सहयोग नहीं मिल पाता, जिससे अधिगम स्तर में सुधार बाधित होता है।

मातृभाषा आधारित शिक्षण की आवश्यकता एवं महत्त्व है:

- यह अध्ययन मातृभाषा और संज्ञानात्मक विकास के बीच संबंध को स्पष्ट करता है।
- प्राथमिक स्तर पर शैक्षिक उपलब्धि बढ़ाने हेतु प्रभावी रणनीतियों का सुझाव देता है।
- जनजातीय एवं वंचित वर्ग के बच्चों की शैक्षिक समानता को बढ़ावा देता है।
- शिक्षा नीति, पाठ्यक्रम निर्माण और शिक्षक प्रशिक्षण के लिए उपयोगी सिद्ध होता है।

अध्ययन के उद्देश्य (Objectives of the Study)

1. झारखण्ड के प्राथमिक विद्यालयों में मातृभाषा आधारित शिक्षण की स्थिति का अध्ययन करना।
2. मातृभाषा आधारित शिक्षण का विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का विश्लेषण करना।
3. मातृभाषा आधारित शिक्षण का विद्यार्थियों के संज्ञानात्मक विकास (स्मरण शक्ति, तर्क क्षमता, समस्या समाधान) पर प्रभाव का अध्ययन करना।
4. मातृभाषा आधारित एवं गैर-मातृभाषा आधारित शिक्षण प्राप्त विद्यार्थियों की उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

शोध प्रश्न एवं परिकल्पनाएँ (Research Questions and Hypotheses)

शोध प्रश्न

1. क्या मातृभाषा आधारित शिक्षण से प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि होती है?
2. क्या मातृभाषा आधारित शिक्षण से विद्यार्थियों के संज्ञानात्मक विकास में सुधार होता है?

परिकल्पनाएँ

- मातृभाषा आधारित शिक्षण का विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
- मातृभाषा आधारित शिक्षण से विद्यार्थियों का संज्ञानात्मक विकास अधिक प्रभावी होता है।

साहित्य समीक्षा (Review of Related Literature)

मातृभाषा आधारित शिक्षा पर राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अनेक अध्ययन किए गए हैं। यूनेस्को (2008) के अनुसार, प्रारंभिक शिक्षा मातृभाषा में प्रदान करने से बच्चों की समझ, स्मरण शक्ति एवं आलोचनात्मक चिंतन क्षमता में वृद्धि होती है। अग्रवाल (2011) ने अपने अध्ययन में यह निष्कर्ष निकाला कि मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करने वाले बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि अपेक्षाकृत अधिक होती है।

एन.सी.ई.आर.टी. एवं यूनिसेफ (2021) द्वारा किए गए Foundational Learning Study में यह पाया गया कि जिन बच्चों को प्रारंभिक शिक्षा मातृभाषा में मिली, उनमें पठन एवं संख्यात्मक कौशल अधिक मजबूत थे। झारखण्ड एवं अन्य जनजातीय राज्यों में किए गए अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि क्षेत्रीय भाषा आधारित शिक्षण से विद्यालय में बच्चों की उपस्थिति, सहभागिता एवं निरंतरता में वृद्धि होती है।

झारखण्ड एवं अन्य जनजातीय राज्यों में किए गए अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि मातृभाषा आधारित शिक्षण से विद्यालय में बच्चों की सहभागिता, आत्मविश्वास और निरंतरता में वृद्धि होती है।

शोध-विधि (Research Methodology)

शोध का प्रकार

प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध पर आधारित है।

जनसंख्या एवं नमूना

अध्ययन की जनसंख्या झारखण्ड राज्य के प्राथमिक विद्यालयों (कक्षा 1 से 5) के विद्यार्थी हैं। नमूने का चयन स्तरीकृत यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया, जिसमें जनजातीय एवं गैर-जनजातीय क्षेत्रों के विद्यालयों को

शामिल किया गया। इस प्रक्रिया के अंतर्गत शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यालयों का भी समुचित प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया गया, ताकि अध्ययन के निष्कर्ष अधिक वस्तुनिष्ठ एवं विश्वसनीय बन सकें। साथ ही, विभिन्न सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि से आने वाले विद्यार्थियों को सम्मिलित कर शिक्षा में भाषा माध्यम के प्रभाव का तुलनात्मक एवं व्यापक विश्लेषण किया गया।

शोध उपकरण

- शैक्षिक उपलब्धि परीक्षण
- संज्ञानात्मक विकास मापनी
- शिक्षक प्रश्नावली
- कक्षा अवलोकन अनुसूची

आँकड़ा विश्लेषण

आँकड़ों का विश्लेषण तुलनात्मक विधियों द्वारा किया गया। विश्लेषण की प्रक्रिया में विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि, संज्ञानात्मक विकास तथा कक्षा सहभागिता से संबंधित आँकड़ों की व्यवस्थित व्याख्या की गई, जिससे अध्ययन की विश्वसनीयता एवं निष्पक्षता में वृद्धि हुई।

परिणाम एवं विश्लेषण (Results and Analysis)

अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि मातृभाषा आधारित शिक्षण प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि गैर-मातृभाषा माध्यम से शिक्षण प्राप्त विद्यार्थियों की तुलना में अधिक थी। ऐसे विद्यार्थियों की स्मरण शक्ति, अवधारणात्मक समझ और तर्क क्षमता अधिक विकसित पाई गई। इसके अतिरिक्त, उनमें आत्मविश्वास, कक्षा में सक्रिय सहभागिता, प्रश्न पूछने की प्रवृत्ति तथा सीखने के प्रति रुचि भी अधिक देखी गई, जिससे समग्र शैक्षिक विकास को बल मिला।

साथ ही यह भी पाया गया कि मातृभाषा के माध्यम से शिक्षण प्राप्त करने वाले विद्यार्थी जटिल विषयवस्तु को सरलता से समझने में सक्षम थे तथा उनमें भय, झिझक और भाषा-संबंधी तनाव अपेक्षाकृत कम था। इस प्रकार का शिक्षण न केवल संज्ञानात्मक विकास को सुदृढ़ करता है, बल्कि भावनात्मक संतुलन, सामाजिक सहभागिता और रचनात्मक अभिव्यक्ति को भी प्रोत्साहित करता है, जो दीर्घकालीन शैक्षिक सफलता के लिए अत्यंत आवश्यक है। संज्ञानात्मक विकास के विभिन्न आयामों-जैसे ध्यान, स्मृति, भाषा समझ और समस्या समाधान-में भी मातृभाषा आधारित शिक्षण का सकारात्मक प्रभाव देखा गया।

चर्चा (Discussion)

प्राप्त निष्कर्ष यह दर्शाते हैं कि मातृभाषा आधारित शिक्षण प्राथमिक स्तर पर अधिगम को सहज, प्रभावी और स्थायी बनाता है। जब बच्चे अपनी भाषा में सीखते हैं, तो वे अधिक सक्रिय रूप से कक्षा में भाग लेते हैं और सीखने की प्रक्रिया में आत्मविश्वास महसूस करते हैं। इसके अतिरिक्त ऐसे विद्यार्थी प्रश्न पूछने, विचार व्यक्त करने तथा समूह गतिविधियों में सहभागिता करने में अधिक सहज होते हैं। मातृभाषा में शिक्षा से भाषा संबंधी भय कम होता है, संप्रेषण कौशल का विकास होता है तथा शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया अधिक अर्थपूर्ण और बाल-केंद्रित बनती है, जिससे दीर्घकालीन शैक्षिक सफलता की संभावना बढ़ती है।साथ ही यह भी स्पष्ट हुआ कि मातृभाषा आधारित शिक्षण से अवधारणाओं की स्पष्टता बढ़ती है, स्मरण शक्ति सुदृढ़ होती है तथा बच्चों में सीखने के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित होता है, जो उनकी समग्र शैक्षिक प्रगति में सहायक सिद्ध होता है।

निष्कर्ष (Conclusion)

यह शोध से निष्कर्ष निकालता है कि झारखण्ड के प्राथमिक विद्यालयों में मातृभाषा आधारित शिक्षण विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं संज्ञानात्मक विकास के लिए अत्यंत प्रभावी है। यह न केवल अधिगम परिणामों को बेहतर बनाता है, बल्कि शैक्षिक समानता और सामाजिक समावेशन को भी सुदृढ़ करता है। साथ ही यह विद्यार्थियों की सांस्कृतिक पहचान को सम्मान देता है तथा विद्यालय और समुदाय के बीच सकारात्मक संबंध स्थापित करने में सहायक होता है। मातृभाषा में शिक्षा से ड्रॉपआउट दर में कमी आती है, सीखने के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित होता है तथा सभी वर्गों के बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर सुनिश्चित होते हैं, जो समावेशी शिक्षा की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। अतः यह शोध नीति-निर्माताओं, शिक्षकों और शैक्षिक संस्थाओं को मातृभाषा आधारित शिक्षण को प्राथमिक स्तर पर अपनाने एवं व्यापक रूप से लागू करने हेतु उपयोगी मार्गदर्शन प्रदान करता है।

सुझाव (Suggestions)

- प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा आधारित शिक्षा को प्रभावी रूप से लागू किया जाए।
- शिक्षकों को मातृभाषा आधारित शिक्षण हेतु विशेष प्रशिक्षण दिया जाए।
- क्षेत्रीय भाषाओं में पाठ्यपुस्तकों एवं शिक्षण सामग्री का विकास किया जाए।
- विद्यालयों में बहुभाषी कक्षा प्रबंधन हेतु उपयुक्त शिक्षण रणनीतियाँ अपनाई जाएँ।
- स्थानीय संस्कृति, लोककथाओं और जीवनानुभवों को पाठ्यक्रम से जोड़ा जाए।
- अभिभावकों एवं समुदाय की सहभागिता को प्रोत्साहित किया जाए, ताकि मातृभाषा आधारित शिक्षा को सामाजिक समर्थन मिल सके।
- प्रारंभिक कक्षाओं में भाषा संक्रमण (Language Transition) के लिए चरणबद्ध नीति बनाई जाए।
- मातृभाषा आधारित शिक्षण की सतत निगरानी एवं मूल्यांकन की व्यवस्था की जाए।

संदर्भ (References)

1. अग्रवाल, पी. (2011). मातृभाषा और बाल शिक्षा। भारतीय शिक्षा जर्नल, 33(2), 109–115।
2. अली, एस. (2010). भाषा और शिक्षा: एक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण। नई दिल्ली: केन्द्रीय हिन्दी संस्थान।
3. भटनागर, ए. बी. (2014). शिक्षा का समाजशास्त्र। आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर।
4. भारत सरकार. (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 । नई दिल्ली: शिक्षा मंत्रालय।
5. कुमार, कृष्ण (2005). शिक्षा का राजनीतिक एजेंडा: औपनिवेशिक एवं राष्ट्रवादी विचारों का अध्ययन। नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान।
6. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी). (2017).प्राथमिक स्तर पर अधिगम परिणाम। नई दिल्ली: एनसीईआरटी।
7. यूनेस्को. (2008). प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा में मातृभाषा आधारित शिक्षण: नीति निर्माताओं हेत मार्गदर्शिका। पेरिस: यूनेस्को।झारखण्ड शिक्षा परियोजना परिषद. (2019).
8. कुमार, आर., & राव, पी. (2015). छत्तीसगढ़ और झारखंड के आदिवासी क्षेत्रों में मातृभाषा आधारित शिक्षा का प्रभाव. International Journal of Educational Research, 67, 45–58.
9. कुमार, एस., & सिंह, आर. (2018). झारखंड के प्राथमिक विद्यालयों में क्षेत्रीय भाषा और हिंदी माध्यम की तुलनात्मक अध्ययन. Journal of Indian Education, 44(3), 12–25.
10. मोहंती, ए. के., & पंडा, एम. (2011). भारत में मातृभाषा आधारित बहुभाषी शिक्षा. Language, Culture and Curriculum, 24(3), 259–275.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 246-250
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

बृहदारण्यकोपनिषदि प्रथमद्वितीयोऽध्याययोः दार्शनिकचिन्तनम् – एकं सामान्यम् अध्ययनम्

SHRABANI MANNA
RESEARCH SCHOLAR
OF BINOD BIHARI MAHTO KOYLANCHAL UNIVERSITY, DHANBAD

भूमिका –

बृहदारण्यकोपनिषदियं बाजसनेयिब्राह्मणोपनिषदिति अभिधीयते। इह सांसारिकं मायाबन्धनं दूरीकर्तुमनसां प्राणिनां साधनभूतत्त्वेन ब्रह्मात्मैकत्वबोधाय अज्ञाननिवृत्तेः दिशा सम्यक्तया निर्दिश्यते। इह जन्मनि यथा श्रवण- मनन- निदिध्यासनैः साधकः आत्मानम् अनुभवितुं सर्वथा चेष्टमानोऽस्ति, तथैव जन्मान्तरग्रहणेऽपि परजन्मनि पौरुषबलेन सच्चिदानन्दघनस्य ब्रह्मणोऽखण्डतां निरन्तरानुभूतयेऽसौ सदा यत्नवान् भवेत्। उपनिषदोऽस्याः तावत् साधकस्य अज्ञाननिवृत्तिं कृत्वा सच्चिदानन्दबोधाय सन्मार्गप्रदर्शनम् एकमात्रं लक्ष्यम्। तदुद्देश्यम् आधारीकृत्य यः प्राणी यथाविहितं कर्माचरणं कुरुते यथैव च शास्त्रानुशीलनात्मकं ज्ञानं वाऽर्जयते, तदनुसारेणैव असौ जिज्ञासुःसाधकः सद्योनिमसद्योनिं वा लभते इत्ययं नियमः साधारण एव।

एष आत्मा विज्ञानमयोऽस्ति। क्षणभङ्गुरेण देहेन सहात्मनः सम्बन्धः अविद्याकृत एव भवति। देहः सर्वथा जडः, आत्मा तु चेतनः अविनाशी चेति। काष्ठपाषाणवद् देहस्य जडता स्वाभाविकी, किन्तु अत्यन्तसूक्ष्मस्य विज्ञानमयस्य आत्मनोऽस्तित्वहेतोः देहः सदा प्राणमयो तथा चैतन्यमयश्चास्ति।

अतः आत्मसत्तायाः विज्ञानमयत्वात् नाभरूपात्मकानां मूर्तीनाम् उपासनापेक्षया सच्चिदानन्दघनस्यात्मन उपासना सर्वथा श्रेयस्करी भवति। यतो हि

'आत्मयाजी श्रेयान् देवयाजिनः'[1] इति।

[1] शतपथब्राह्मणम्

कर्ममये जीवने रागद्वेषादीनां प्रादुर्भावबलेन मनुष्यः कर्मबन्धनेन आवद्धः सन् वारं वारं पुनर्जन्म लभते। कर्मफलासक्तोऽयं जीवः कदापि मुक्तिं नैव लभते। अतः जिज्ञासुरयं मानवजीवनस्य क्षणभङ्गुरतां सम्यक् अवबुध्य कर्मबन्धनात् चिरमुक्तये सदा चेष्टेत। अज्ञानस्य बिनाशेनैव ज्ञानं भवति । ज्ञानान्मुक्तिश्चेति नियमः सदाऽवधार्यः एव।

विश्वस्य स्वरूपम् ज्ञानकर्माभ्यां कर्त्तव्यपालनञ्च -

प्रथमोऽध्याये इदं दार्शनिकतत्त्वं प्राप्यते।

उपनिषत्सु कर्ममये जीवनेऽनुभूतानां रागद्वेषादिभावानां निवृत्तिपूर्वकं स्वहृदये ब्रह्मात्मैक्यप्रतिष्ठायै सविस्तरं सन्मार्गः निर्दिश्यते। अत्र समग्रं ब्रह्माण्डम् आधारीकृत्य 'ऊँ उषा वा अश्वस्य' इति प्रारम्भे ब्राह्ममुहूत्ते यज्ञसम्बन्धीयस्य अश्वस्य सूर्यो नेत्रम्, वायुः प्राणः, वैश्वानरो मुखम् इत्यादिरूपेण समग्रस्य विश्वस्य स्वरूपं वर्णितम् अस्ति।

वयं यस्मिन् मर्त्यमण्डले निवसामः, तदेकः सार्वभैमः यज्ञीयः अश्वस्वरूपो भवति। अस्य महिमा अनन्तः। अध्यात्मदृष्ट्या एकं विभूतिरूपं पौरूषम्। अस्य प्रतिष्ठायै पुरुषेण ज्ञानकर्माभ्यां स्वकर्त्तव्यं पालयितव्यम् एव। इह सार्वभौमदृष्ट्या दृश्यं जगत् अमृतमयमिति विचारणीयं भवेत्।

अव्यक्तरूपाद् ब्रह्मणो जगदुत्पत्तिः -

इदं दार्शनिकतत्त्वं प्रथमाध्ययस्य चतुर्थब्राह्मणे प्राप्यते।

प्रजापतिद्वारा मिथुनभावस्य सृष्टिरजायत। तस्माद् हेतोः सृष्टिप्रपञ्च उत्तरोत्तरम् अवर्धत। प्रजाश्च समुत्पन्ना अभूवन्।

इदं जगत् प्रथमम् अव्यक्तमासीत्। नामरूपयो र्योगेनैव एतद् व्यक्तं वभूव। यथासिः असिकोषे तिष्ठति यथा वाऽग्निः काष्ठमध्येऽव्यक्तरूपेण तिष्ठति बहिरयं नैव दृश्यते। तथैव जगदिदं प्रथमम् अव्यक्तमासीत्। अनन्तरं नामरूपमाध्यमेन एकैकशः सकलानि दृश्यवस्तूनि व्यक्तानि वभूवुः। प्राणनक्रियाहेतोः प्राणो नाम, वचनाद् वागिति नाम, दर्शनकारणात् चक्षुर्नाम, श्रवणात् श्रोत्रं नाम निगदितं वभूव। अत एतानि सकलानि कर्मानुसारीणि नामयुक्तानि सन्ति व्यक्तरूपताम् आयान्ति। एवमेव प्रथमम् आत्मा एक एवास्ति। एष आत्मा यदा स्पष्टं ज्ञातस्तथाऽनुभूतो भवति, तदेतस्मादेव आत्मतत्त्वज्ञानात् सकलानि जगस्थितानि वस्तूनि स्वतः ज्ञातानि भवन्ति। आत्मज्ञानस्य सिध्या सर्वं ज्ञातं भवति। एकत्वबोधेन सकलं बुध्यते। अत उक्तम् –

'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।'[2]

अत एवाऽत्मोपसना सर्वथा करणीया स्यात्। उक्तञ्च –

'आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य एव।'[3]

द्वितीयाध्ययस्य दार्शनिकतत्त्वानां परिशीलनम् –

विद्याविद्ययोः प्रमाणोप्रदर्शनम् -

इमम् अविद्याविषयम् आत्मस्वरूपम् अवगच्छन् गार्ग्यो ब्राह्मणोऽत्र स्वयमात्मानं वक्तृरूपेण उपस्थापयति। अस्य प्रतिद्वन्दित्वेन आत्मदर्शी अजातशत्रुः श्रोतृरूपेण विद्यमानोऽस्ति। एवंरूपः तर्कपूर्णोऽविद्याविषयको विचारः सर्वथा दुर्विज्ञेयो भवति। यतो हि आत्मतत्त्वं खलु सूक्ष्मम् अतीन्द्रियमिति विदितमस्ति। अतः उक्तं कठोपनिषदि यत् -

'श्रवणायापि बहुभियों न लभ्यः'[4] इति।

---

[2] ईशावास्योपनिषद्, मन्त्रः 7

[3] बृहदारण्यकोपनिषद् 2/4/5

अविद्यायाः समस्तो विषयः खलु द्विधा विभज्यते। प्रथमस्तावत् शरीराभ्यन्तरस्थः प्राण इति व्यवदिश्यते। यथा गृहमेकम् दृढम् अवस्थातुं स्तम्भादीनाम् आवश्यकता वर्त्तते, तथैव शरीरस्य आधारभूतोऽयं प्राणोऽपि दृष्टान्तत्वेनोदाहार्य एवास्ति। अयमपि प्राणः प्रकाशकोऽ मृतमयश्चास्ति । शरीरस्य जीवनायास्य अत्यन्तमावश्यकता वर्त्तते। द्वितीयः खलु बाह्यः कार्यरूपः प्रपञ्चः, योऽप्रकाशकस्तथा क्षयवृद्धिशीलो भवति। यथा गृहस्य तृण-कुश-मृत्तिकादिसमा मरणधर्माण एवं क्षणभङ्गुरा भवन्ति तथैवैते वस्तुतो मिथ्यापि सत्य शब्दवाच्या भवन्ति। एवमेव प्राणः खलु शरीरस्यास्य अमृतशब्दवाच्यो भवतीति सर्वथाऽवगन्तव्य एव।

प्राणोऽपि एकोदेव इत्युच्यते। किञ्चायं बाह्यस्तथा सामान्यतया समष्टिगतः पिण्डोऽस्ति। सूर्योदयो ग्रहा अत्र हेतुत्वेन व्यपदिश्यन्ते। विराट्, वैश्वानरः, आत्मा, पुरुषविधः प्रजापतिः तथा हिरण्यगर्भ इत्यादिभिः शब्दैरयम् अभिधीयते।

अयं प्राणः सर्वथा चेतनावान् एवं कर्तृत्वभोक्तृत्वसम्पन्नो भवति। एवमेवाविद्याविषयम् आत्मस्वरूपं मन्यमानो गार्ग्यो ब्राह्मण आत्मानं वक्तृरूपेणात्रः समुपस्थापयति, अस्य विपरीतं बोधं कुर्वाण आत्मदर्शी अजातशत्रुः श्रोतृरूपेण समवस्थीयते।

आचार्येण हि वस्तुतो विद्याशिक्षा प्रदीयते इति प्रथास्ति। अज्ञानम् अविद्यां वा निरस्य विद्यायाः महत्त्वप्रतिपादनाय आत्मदर्शिनां ज्ञानिनां प्रयोजनमस्तीति विचारेण अत्र पूर्वोत्तरपक्षरूपेण गार्ग्याजातशत्र्योः उक्तिप्रत्युक्तिद्वारा आत्मतत्त्वम् अत्र निर्णीतमस्ति। एतदात्मतत्त्वं खलु सर्वासूपनिषत्सु ज्ञानाज्ञानविषयान् विविच्य पृथक्त्वेन च प्रतिपाद्यते।

आत्मतत्त्वं सकलम् कुत्राख्यायिकाद्वारा क्वापि तर्कद्वारा क्वापि विचारविमर्शमाध्यमेन तथैव च पारस्परिकयाऽऽलोचनया शुद्धः सिद्धान्तो गृह्यते। किन्तु ब्रह्मविद्यामिमाम् अवगन्तुं प्रतिष्ठायै चास्य श्रद्धा एव हेतुत्वेन निर्णीयते।

अनन्तरं याज्ञवल्क्यः मैत्रेयीहृदयेऽमृतत्वस्य साधनभूतं वैराग्यं जनयितुम् उपदिशति - पत्युः प्रयोजनसिद्धये पतिः प्रियो न भवति प्रत्युत पत्न्याः प्रयोजननिमित्तं पतिः प्रियो भवति। वरं स्वस्याः (पत्न्याः) प्रयोजनसिद्धये पतिः प्रियो भवति। एवमेव पुत्रवित्तादीनां प्रियत्वं सर्वं केवलं निजनिजस्य प्रयोजननिमित्तं प्रियं भवतीति जानीयात् इति। अत उक्तम् -

'स होवाच न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति। न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति। न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय पुत्रा प्रिया भवन्ति। न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति । ...... न वा अरे भूतानां कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्त्यात्मनस्तु कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्ति। न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति। आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासिदव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्।'[5]

अस्मात् कारणात् आत्मचैतन्यस्य महिमा सर्वत्र व्याप्तोऽस्ति । हे मैत्रेयि ! स एवात्मा सर्वथा दर्शनीयः, श्रवणीयः, मननीयस्तथा ध्यानेनावगन्तव्यो भवति। आत्मनो दर्शनेन, श्रवणेन, मननेन ध्यानेन च पृथिव्याः सर्व किञ्चन

[4] कठोपनिषद् 1/2/7

[5] बृहदारण्यकोपनिषत् - अ. 2/ ब्रा. 4/ म. 5

ज्ञातं भवति इत्यत्र नास्ति कश्चन संशयः। संसारेऽस्मिन् यत् किञ्चिदस्ति, सर्वमेव अस्मादात्मनः सम्भूतमेवास्ति। परमात्मनो हि एतत् सकलं वस्तु निःश्वसितमिवावतिष्ठते। अत उक्तम् -

सूत्राण्यनुव्याख्यातानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि निःश्वसितानि ।।[6]

उक्तञ्चान्यत्र शास्त्रे-

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्य इदं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम् ।।[7]

अत्र दृष्टान्तरूपेण ग्राह्यं यत् सर्वासाम् अपां समुद्रो यथा एकैवायनम् (प्रलयस्थानम्) अस्ति। एकैव त्वक् यथा समस्तस्पर्शनाम् अयनम्, सर्वेषां सङ्कल्पानां मनो यथैकमेवायनमस्ति तथा सर्वासां विद्यानाम् एकमेवायनमस्ति हृदयम्। तथैव सर्वेषां वेदोपवेदानाम् अयनमस्ति वाक्, एवमेव सकलस्य ब्रह्माण्डस्यैकम् एवायनमस्ति स एव परमात्मा। एष परमेशोऽविनाशी परामात्मा सदानन्तः सच्चिदानन्दघन एवेति सर्वथा बोध्यम्।

द्वैते सर्वो व्यावहारिकः, अद्वैते तु सर्वो व्यवहारातीतः परमार्थ एव -

यत्राविद्या तत्र सर्वं द्वैतवद् दृश्यते। अविद्याकल्पिते सोपाधिके शरीरे हि सर्वविधो विकारः परिलक्ष्यते। निरुपाधिके आत्मनि नास्ति काचिद् विकृतिः। यतो हि अविद्यावस्थायाम् अन्योऽन्यद् जिघ्रति। अन्योऽन्यं पश्यति। अन्योऽन्यं चाभिवादयति ।

'यत्र सर्वं खल्विदं ब्रह्मेति ह्यनुभूयते, तत्र को वा किं जिन्नेत् ? को वा कं पश्येत् ? कश्च कं चाभिवादयेत् ? एवं केन प्रकारेण घ्राण-दर्शनादिकार्यं भवेद् भो ? अत उक्तम् - यत्र द्वैतमिव भवति तदितर इतरं जिघ्नति, तदितर इतरं पश्यति, तदितर इतरं शृणोति, तदितर इतरमभिवदति, तदितर इतरं मनुते, तदितर इतरं विजानाति। यत्र वा अस्य सर्वमात्मैवाभूत् केन कं जिघ्रत् तत् केन के पश्येत् तत् केन कं शृणुयात् तत् केन कं मन्वीत तत् केन कं विजानीयात्। येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात् विज्ञातारमरे केन विजानीयादिति।'[8]

श्रवणमननादिना साधनेनात्मज्ञानम् -

आत्मज्ञानलाभेन सर्वं ज्ञातं भवतीति उपदेशो याज्ञबल्क्येन मैत्रेय्यै प्रदत्त एव। अतः परं कथ्यते यत् श्रवण-मनन-निदिध्यासनैरेव जिज्ञासुः साधकोऽवश्यं आत्मज्ञानं प्राप्तुमर्हति।

श्रवणं खलु आचार्यमुखात् शास्त्राद् वाऽधिगम्यते। मननं तु तर्काभ्यासादुपलभ्यते। सर्वत्र संमानरूपेणात्माऽवतिष्ठत इति बोधेनेदं ज्ञायते यत् अस्मादात्मन एव सर्वम् उत्पद्यते तथा सृज्यते प्रलयकाले तु सर्वमस्मिन्नात्मन्येव निलीयते इति। निदिध्यासनं तु निरन्तरम् आत्मचिन्तनम्।

पञ्चमहाभूतेषु दृश्यरूपेण यो मधुस्यन्दी तेजोमयः तथामृतमयः पुरुषो विद्यते, स हि मधुमय आत्मा भवति। सोऽपि अमृतमयं ब्रह्मस्वरूपं भवति। तत् सर्व खाल्विदं ब्रह्मास्मीति सदा तत्रैव निदिध्यासनं कुर्यात्। यथा रथनाभौ सर्वे चाराः संयोजिताः तथा समन्विता भवन्ति, तथैवास्मिन्नात्मनि जगदिदं सर्वं समर्पितमिति चिन्तनं नाम निदिध्यासनमिति।

उक्तं च –

---

[6] बृहदारण्यकोपनिषत् - अ.4, ब्रा. 5, म. 1

[7] जीवन्मुक्तिविवेकः , श्लो. 1

[8] बृहदारण्यकोपनिषत् - अ. 2, ब्रा. 4, म. 14

'एवमेवास्मिन्नात्मनि सर्वाणि भूतानि, सर्वे देवाः, सर्वे लोकाः, सर्वे प्राणाः, सर्व एवात्मनः समर्पिताः।[9]'

अन्तर्ज्ञानेन सह बहिर्ज्ञानस्याभिन्नता-

इदं वै तन्मधु इति मन्त्रम् अनुसृत्य तात्पर्यमिदं प्रतिभाति यत् आत्मा सदा रूपं रूपं प्रतिरूपं वभूव इति मन्त्रानुसारं चात्मा बहुधा भवितुम् अर्हति। आत्मनोऽभिव्यक्तये **'अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो वभूव'[10]** इति कठोपनिषदि आत्मनो व्यापकता निर्णीयते। तथैव अत्र परमेश्वरो हि मधुविद्येति प्रतिपादिता भवति। नामरूपद्वाराऽ ऽत्मा अव्यक्ताद् व्यक्तः सन् अनेकतां भजते। अन्यथा प्रज्ञानधनसंज्ञकस्य निरुपाधिकस्य आत्मनो रूपं नामरूपाणां साह्येन बिना कथं वा प्रकटीभवेत् ?

अतः मधुविद्या विध्यनुसारेणात्मनः सर्वमयता व्याक्रियते। अनेन विधिनाऽऽत्मनः व्यापकता सर्वत्र स्वीक्रियते।

उपसंहारः –

वस्तुतः आरण्यकस्य परिशिष्टभूता उपनिषत्। आरण्यके आरब्धा दर्शनालोचना उपनिषत्सु एव परां स्फूर्तिं लभमाना परिसमाप्ता। वेदस्य शेषभागत्वात् लक्ष्यत्वात् च वेदशिरोभूता उपनिषद्। दार्शनिकज्ञानं संसारिणः सादयति विशादयति शिथिलयति। दार्शनिकज्ञानं उपनिषत् तथापि यथा आयुर्वर्द्धके घृते आयुर्वै घृतम् इति आयुश्शब्दस्य औपचारिकः प्रयोगो भवति तद्वत् दर्शनस्य प्रकाशके ग्रन्थेऽपि उपनिषच्छब्दस्य औपचारिकः प्रयोगो भवति। शोधेऽस्मिन् बृहदारण्यकोपनिषदः अध्यायद्वयम् आधारीकृत्य दार्शनिकचिन्तनं कृतमिति शम्।

ग्रन्थसूची

१. बृहदारण्यकोपनिषद् भाष्यम्, श्रीमत्काव्यतीर्थ पण्डित शिवशङ्कर शर्मणा निर्मितम्, अजमेर नगरे वैदिक यन्त्रालये मुद्रितम्, 1867
२. ईशादि नौ उपनिषद् (शाङ्करभाष्यार्थ), गीताप्रेस, गोरखपुर
३. भारतीय दर्शन का इतिहास भाग 1, डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर प्रकाशन 1978 ई, प्रथम संस्करण।
४. बृहदारण्यकोपनिषद्, सानुवादं शाङ्करभाष्य सहितं। गोरखपुरः, गीतीप्रेस, 1915
५. बृहदारण्यकोपनिषद् सम्पा, गम्भीरानन्द। उपनिषद् ग्रन्थावली । द्वितीय खण्ड। कलकाता, उद्बोधन कार्यालस, 1962
६. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति आचार्य कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन,वाराणसी 2000 ई.।

MOBILE NO-9831245022
MAIL ID-SHRABANIMANNA20@GMAIL.COM
ADDRESS – 30+31 Sastri Narendra Ganguly Road,flat no – 303, 3rd floor ,Bethor, Dhalasan, howrah – 711104, West Bengal

[9] बृहदारण्यकोपनिषत् - अ. 2, ब्रा. 4, म. 15

[10] कठोपनिषद् 2/2/9

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 251-253
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

A Critical analysis of Nishkarma karma and Arne Naess ´s EcosophyT

Anupa Haloi
Guest faculty,
Dispur college, Guwahati

Abstract:
This article focuses on A critical analysis of nishkarma karma and Arnen naess´s ecosophyT.Action or karma is an important part oflife. Life depends upon action. One of the important part retatedwith action which is ethics .In ethics action referes to any humanbehaviour or deed that can be judged as morally right orwrong.Moral philosophy or ethics is an ancient and central part ofthe indian tradition. The Bhagavad gita is one of the mostimportant sources of Indian ethics.One of the important part of Bhagavad gita which is law of karma.There are two types of karma found in hindu philosophy namely sakama karma and nishkarma karma. Nishkarma karma is the central concept in the Bhagavad gita .It is an action motivated by duty, morality and welfare of others.The concept of nishkarma karma deeply influenced western philosopher Arne naess.He was the founder of ecosophy T.whereas Ecosophy T advocates ecological self-realization, intrinsic value of all beings, and radical transformation of human–nature relationships. Both philosophy reject ego-centric action and instrumental exploitation of nature, emphasizing moral restraint, responsibility, and holistic awareness.Both philosophy is crucial because it offers a sustainable, ethical, and holistic framework for addressing environmental degradation in the modern world.

Key word- EcosophyT,Environment,Bhagavad gita,Nishkarma karma,Good

Introduction:

Action or karma is an important part of human life .Life depends upon action .No one can remain inactive for a single moment .In ethics action referes to any human behaviour or deed that can be Judged as morally right or wrong. Ethical theories try to understand why we act ,how we should act and what makes an action morally good or bad.Moral philosophy or ethics is an ancient and central part of the indian tradition.The Bhagavad Gita is one of the most important sources of Indian ethics.It teaches a practical,duty based and spiritual approach to moral life.The Gita explains how a person should act in the world with responsibility,purity of

mind and without selfishness.One of the important part of Bhagabad gita which is law of karma.The law of karma states that every action and intention produce corresponding results.Good actions bring good outcomes and bad action bring suffering.There are two types of karma found in Hindu philosophy .These are sakama karma and Nishkarma karma. Nishkarma karma is the central The concept in the Bhagavad gita.Nishkarma karma is the principle of performing action without attachment to the result.Nishkarma karma refers to the principle of performing one`S duty without any desire or personal gain.It is an action motivated by duty ,morality and the wellfare of others .Nishkarma karma is a kind of action which focuses on right intention rather than the outcome.It allows Individuals to act with clearity ,sincierity and inner freedom. The Concept of selfless action found in Nishkarma karma deeply influenced western philosopher Arne Naess.He was the founder of deepecology .He also coined the term ecosophy T .Ecosophy or eco philosophy is field that advocates ecological harmony and balance between human being and nature.It challenges the anthropocentric view ehics states that human beings are top of food chain. However Arne Nass regards human as an intergral part of a complex and interconnected ecosystem. Ecosophy T encourages a change perspectives towards ecological wisdom helping individuals become more aware respectful and active in preserving the environment for future genration. Objective of the studyThe main objective of the study is to analyse how nishkarma karma and Arne naess´s ecosophy T can contribute to contemporary environmental ethics. This research paper tries to gives sustainable solutions for protect healthy environment for future generation.MethodologyThe research will focus on a critical analysis of Bhagavad Gita's Nishkama Karma and Arne Naess' Ecosophy.Data will be collected from primary and secondary sources of information like Internet, books, journals, etc.AnalysisAction or karma is an important part of human life .In ethics action referes to any human behaviour or deed that can be Judged as morally right or wrong. Ethical theories try to understand why we act ,how we should act and what makes an action morally good or bad.Moral philosophy or ethics is an ancient and central part of the indian tradition.The Bhagavad Gita is one of the most important sources of Indian ethics.It teaches a practical,duty based and spiritual approach to moral life.The Gita explains how a person should act in the world with responsibility,purity of mind and without selfishness.One of the important part of Bhagabad gita which is law of karma.The law of karma states that every action ,thought and intention produce corresponding results.Good actions bring good outcomes and bad action bring suffering.There are two types of karma found in Hindu philosophy .These are sakama karma and Nishkarma karma.

Nishkarma karma is the central concept in the Bhagavad gita.Nishkarma karma refers to the principle of performing one`S duty without any desire or personal gain.It is an action motivated by duty ,morality and the wellfare of others .Nishkarma karma is a kind of action which focuses on right intention rather than the outcome. The Concept of selfless action found in Nishkarma karma deeply influenced western philosopher Arne Naess.He was the founder of deepecology .He also coined the term ecosophy T. Ecosophy or eco philosophy is field that advocates ecological harmony and balance between human being and nature.It challenges the anthropocentric view ehics states that human beings are top of food chain. However Arne Nass regards human as an intergral part of a complex and interconnected ecosystem.Nishkāma Karma and Ecosophy T are vital for the environment because they transform humans from exploiters of nature into responsible participants in the ecological community..Ecosophy T encourages a change perspectives towards ecological wisdom helping individuals become more aware respectful and active in preserving the environment for future genration.ConclusionEnvironment

is crucial part in our life. Without environment no individuals be lives .So, one healthy environment is most important for one healthy life and for this reason Niṣkāma Karma and Ecosophy T are crucial in today's rapidly developing world because they offer ethical and ecological guidance for handling modern crises. Niṣkāma Karma promotes action without selfish motives, while Ecosophy T encourages harmony with all life forms. Together, they present a balanced moral framework for sustainable living and responsible decision-making and both frameworks promote a shift from an anthropocentric worldview, where humans are seen as superior, to an ecocentric perspective that values all beings intrinsically. This shift is essential for correcting exploitative attitudes toward nature. By recognising the interconnectedness of life, these philosophies inspire more compassionate, holistic, and sustainable environmental practices.

Reference

1. Næss, A. (1989). Ecology, community and lifestyle: Outline of an ecosophy (D. Rothenberg,
2. Trans.). Cambridge University Press.
3. Næss, A. (1995). Deep ecology for the twenty-first century (G. Sessions, Ed.). Shambhala.
4. Næss, A. (2002). Life's philosophy: Reason and feeling in a deeper world. University of Georgia Press.
5. Sinha .J (1978) ,A Manual of Ethics.S.R. Das Road ,Calcutta.
6. Radhakrishnan, S. (Trans.). (1993). The Bhagavadgītā. HarperCollins.
7. Easwaran, E. (Trans.). (2007). The Bhagavad Gita. Nilgiri Press.

Phone number -6900971465
Email Id -haloianupa@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 254-261
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी के प्रथम कार्यकाल के दौरान भारत–नेपाल सम्बन्ध : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ0 छबिलाल,
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग,
जननायक चन्द्रशेखर विश्वविद्यालय, बलिया।

भारत और नेपाल दोनों ही पड़ोसी देश है, जिनके सम्बन्धों के समान मजबूत मिसाल दुनियाँ में अन्यंत्र कही भी दिखाई नहीं देती। भौगोलिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्धों के आधार पर दोनों ही देश आपस में एक दूसरे से जुड़े हुए है। इन दोनों ही देशों के मध्य एक लम्बी खुली सीमा होने के कारण, अन्य देशों की तुलना में, इन दोनों देशों में अत्यधिक घनिष्ठता नजर आती है। इन देशों के समान जो अन्य देशों के मध्य नहीं दिखाई पडती है। विश्व में अनेक देश ऐसे है, जो एक–दूसरे के पड़ोंसी देश हैं किन्तु भारत और नेपाल इन सभी में विश्व पटल पर अलग स्वरूप लिए हुए है। भारत–नेपाल के मध्य का सम्बन्ध प्राचीन काल से ही बना हुआ है। दोनों देश विश्व में अपनी अनोखी पहचान के लिए भी जाने जाते हैं। प्रस्तुत शोध–पत्र में भारतीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी के प्रथम कार्यकाल के विशेष सन्दर्भ में भारत–नेपाल सम्बन्धों के राजनीतिक आयाम की दशा और दिशा के सन्दर्भ को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

भारतीय संसदीय निर्वाचन 2014 के बाद भारतीय राजनीति में एक क्रांतिकारी परिवर्तन आया। निर्वाचन परीणाम के साथ ही कांग्रेस संगठित संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की तीसरी बार सरकार बनाने का दिवास्वप्न समाप्त हुआ और राष्ट्रीय प्रगतिशील गठबंधन ने पूर्ण बहुमत के साथ सरकार का गठन किया। गठबंधन के सभी घटक दलों ने माननीय नरेन्द्र मोदी जी को भारत का प्रधानमंत्री बनाने के लिए अपना बहुमत प्रदान किया। मोदी जी के प्रधानमंत्री बनने के साथ भारत, दक्षिण एशिया में अपनी विशेष स्थिति बनाने में सफल हुआ। साथ ही भारत ने भारतीय विदेश नीति में सामान्य परिवर्तन कर अपने पड़ोसी देशों के साथ सम्बन्धों को स्थापित कर अपना समर्थन हासिल किया। यह सम्पर्ण तथ्य प्रधानमंत्री मोदी जी कि राजनीतिक दूरदर्शिता को प्रदर्शित करते हैं। भारत और नेपाल दोनों देश आपस में एक लम्बी खुली सीमा के साथ–साथ, सांस्कृतिक और धार्मिक समानता सहित अद्वितीय सम्बन्ध साझा किए हैं, जिससे दोनों पक्षों के लोगों के मध्य आसान और सहज संपर्क बनाने में मदद मिली है। यह शोध–पत्र दोनों देशों के मध्य सौहार्दपर्ण सम्बन्धों के साथ–साथ, संघर्ष के उन विषयों पर भी ध्यान केंद्रित करता है, जो भारतीय कूटनीति के लिए चुनौतियां पैदा करते हैं। भारत–नेपाल के सम्बन्ध अन्य देशों की तुलना में बहुत ही महत्वपूर्ण है। साथ ही दोनों के मध्य लिंपियाधुरा–लिपुलेख, कालापानी और सुस्ता इत्यादी क्षेत्रों के कारण कभी–कभी सीमा विवाद भी दिखाई देता रहता है। इसके साथ ही नेपाल में चीन का बढ़ता प्रभाव भारत के लिए गंभीर चिंता का विषय है। प्रस्तुत शोध–पत्र में यह भी समझने का प्रयास किया गया है कि वर्तमान स्थिति में भारत को नेपाल के साथ अपने सम्बन्धों को कैसे संतुलित करना चाहिए?। इसके साथ ही साथ भारत को नेपाल के साथ भविष्य की सभी चुनौतियों का सामना करने के लिए अपनी योजनाओं पर विचार भी करना होगा। प्रस्तुत शोध–पत्र में प्रधानमंत्री मोदी

जी के कार्यकाल के दौरान भारत–नेपाल राजनीतिक सम्बन्धों में आए उतार–चढ़ाव का दोनों देशों की राजनीतिक, आर्थिक और भू–राजनीति पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। साथ ही दोनों देशों के मध्य सम्बन्धों में हालिया विकास और नए रुझान अध्ययन का आधार है, खासकर भारत की मोदी सरकार की पड़ोस नीति इस अध्ययन का मुख्य केन्द्र है।

मुख्य बिन्दु : भारत–नेपाल राजनीति, राजनीतिक समस्या, विचारधारा, आर्थिक समस्या, कुटनीति, भौगोलिक कारक, अर्न्तराष्ट्रीय स्थिति, अर्न्तराष्ट्रीय सहयोग, चीन का हस्तक्षेप इत्यादि।

प्रस्तावना :

भारत–नेपाल के मध्य द्विपक्षीय सम्बन्ध बहुत ही प्राचीन काल से चले आ रहे हैं। दोनों ही देश सांस्कृतिक और ऐतिहासिक रूप से भी समृद्ध देश है। साथ ही दोनों देशों के द्विपक्षीय सम्बन्धों को अनेकों उतार–चढ़ाव का सामना करना पड़ा है। दोनों देश इतिहास, संस्कृति, आर्थिक, भू–रणनीतिक और राजनीतिक दृष्टि से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं। दोनों देशों के लोगों के मध्य धर्म, अनुष्ठान, जीवन शैली और भोजन की आदतें इत्यादि में अनेकों समानताएं दृष्टिगोचर होती है। भारत, वर्तमान में मोदी सरकार के अधीन नेपाल के साथ अपने सम्बन्धों को नया आयाम दे रहा है और यह एक प्रकार से नेपाल के लिए भारत के साथ सम्बन्धों और सहयोग को मजबूत करने का अवसर है। दोनों देशों के मध्य दीर्घकालिक राजनीतिक और आर्थिक सम्बन्ध साझा रहे हैं। नेपाल की भौगोलिक स्थिति के कारण, जो कि तीनों दिशाओं से, भारत से घिरा होने के कारण व्यापार, निर्यात और आयात के लिए भारत पर अत्यधिक निर्भर है। इस कारण से भारत भी अपनी पड़ोसी नीति में नेपाल को विशेष स्थान देता है। हाल के वर्षों में भारत की ओर से नेपाल की उच्च स्तरीय यात्रा ने दोनों देशों के रिस्तें को और भी मजबूत करने का कार्य किया है, विशेष रूप से 2014 में दो बार और 2018 में दो बार भारतीय प्रधानमंत्री मोदी जी की आधिकारिक यात्रा दोनों देशों के मध्य सम्बन्धों के लिए महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुई है। 2014 में भारतीय प्रधानमंत्री की यात्रा को विशेष महत्व दिया जाता है, क्योंकि पिछले 17 साल बाद किसी भारतीय प्रधानमंत्री ने पड़ोसी देश नेपाल की यात्रा की थी। यहॉ यह भी उल्लेख किया जाना उचित है कि साल 2014 में भारतीय प्रधानमंत्री के शपथ ग्रहण समारोह में प्रधानमंत्री मोदी जी ने सार्क देशों के प्रमुखों को आमंत्रित किया था। प्रधानमंत्री के इस कदम को नेबरहुड फर्स्ट नीति के तहत देखा गया। दक्षिण एशिया मामलों के विशेषज्ञय प्रोफेसर एस0 डी0 मुनि के वक्तव्य के माध्यम से इस नीति की पुष्टि की जा सकती है, जो बीबीसी से बातचीत में व्यक्त की गई थी। प्रोफेसर मुनि ने कहॉ था कि ''साल 2014 में प्रधानमंत्री मोदी ने नेबरहुड फर्स्ट की नीति अपनाई थी, इस नीति के तहत जिन पड़ोसी देशों को भारत सरकार ने लंबे समय तक कूटनीतिक स्तर पर इंगेज नहीं किया था, उस गैप को पूरा करना उद्देश्य था। इस सिलसिले में मोदी जी ने नेपाल की यात्रा की और साथ ही पुनः दुबारा सार्क सम्मेलन में भाग लेने के लिए नेपाल को दौरा किया।''[1] इस प्रकार भारतीय प्रधानमंत्री मोदी जी ने अपने पहले कार्यकाल के समय ही पड़ोसी देशों को प्राथमिता प्रदान करने का कार्य किया। जिससे कूटनीतिक स्तर पर एक बड़ी उपलब्धि के रूप में देखा जा सकता है।

मोदी सरकार के प्रथम कार्यकाल के दौरान भारत और नेपाल के बीच उच्च स्तरीय आवागमन

भारतीय संसदीय निर्वाचन 2014 में भारी सफलता के तुरंत बाद, प्रधानमंत्री मोदी जी ने अपने वादे को दोहराया। इस दौरान मोदी जी ने अपने पड़ोसियों और विश्व भर के देशों के साथ भारत के सम्बन्धों को पुनर्जीवित करने के लिए आदर्श वाक्य दिया। वैश्विक स्तर पर अपने सम्बन्धों को मजबूती प्रदान करने के लिए ''साझा प्रयास : सबका साथ, सबका विकास (सामूहिक प्रयास, समावेशी विकास)'' के लिए भारत पूरी तरह से समर्पित है। शपथ ग्रहण समारोह में भारत सहित कई सरकारों के प्रमुखों को आमंत्रित करके एक नए युग की शुरुआत भी की, मोदी जी के शपथ ग्रहण समारोह में अफगानिस्तान, बांग्लादेश, भूटान, मालदीव, नेपाल, पाकिस्तान और श्रीलंका इत्यादि प्रमुख देश शामिल हुए।[2] नेपाली प्रधानमंत्री सुशील कोइराला ने इस निमंत्रण को तुरंत स्वीकार कर लिया। शपथ ग्रहण समारोह के ठीक बाद मोदी ने जोर दिया कि उनकी सरकार की विदेश नीति की पहली प्राथमिकता भारत के पड़ोसियों के साथ ''सही समय पर सही निर्णय'' है। 02 से 04 जुलाई, 2017 तक नेपाली उप–प्रधानमंत्री तथा विदेश मंत्री श्री कृष्ण बहादुर महरा ने तीन दिवसीय भारतीय दौरा सम्पन्न किया। जबकि नेपाली प्रधानमंत्री शेर बहादुर देउबा 23 से 27 अगस्त 2017 तक भारत की राजकीय यात्रा की। इसके अलावा 6 से 8 अप्रैल 2018 में तीन दिवसीव नेपाली प्रधानमंत्री खड्ग प्रसाद ओली की भारत की राजकीय यात्रा ने भारत–नेपाल मित्रता को और बढ़ावा दिया।[3] इसी क्रम में बात की जाए तो नेपाल के

साथ अपने सम्बन्धों को मजबूती प्रदान करने और नेपाल के साथ भारतीय सम्बन्धों की प्राथमिकता को महत्व देने के रूप में भारतीय विदेश मंत्री सुषमा स्वराज जी ने जुलाई, 2014 में आधिकारीक रूप में 3 दिवसीय नेपाल का दौरा किया और अपने समकक्ष नेपाली विदेश मंत्री महेन्द्र बहादुर पाण्डेय से द्विपक्षीय सम्बन्धों पर बातचीत किया।[4] पुनः भारतीय विदेश मंत्री सुषमा स्वराज जी ने 10 से 11 अगस्त तक बिम्सटेक शिखर सम्मेलन में शामिल होने के लिए काठमांडू, नेपाल का दौरा किया। इससे पहले 23 वर्षों के अंतराल के बाद दोनों देशों के मध्य एक मंत्रिस्तरीय संयुक्त आयोग की बैठक हुई, इस बैठक में भारतीय विदेश मंत्री सुषमा स्वराज जी शामिल हुई थी। यह आयोग एक प्रकार से द्विवपक्षीय सम्बन्धों पर बातचीत करने के लिए 1987 में स्थापित किया गया था। जिसका कार्य दोनों देशों के मध्य व्यापार, पारगमन और उधोग के अलावा जल संसाधनों के साक्षा उपयोग इत्यादि पर आपसी समक्ष, सहयोग और उनके विकास को बढ़ावा देने के लिए एक मंच प्रदान करना था।[5] इन दौरों के उपरान्त 03 से 04 अगस्त 2014 तक प्रधानमंत्री मोदी जी ने दो दिवसीय काठमांडू की द्विपक्षीय यात्रा सम्पन्न की। यह अपने प्रकार की एक ऐतिहासिक यात्रा थी, जिसने दोनों देशों के मध्य एक नए युग का प्रारम्भ किया। यह 17 वर्षों में किसी भारतीय प्रधानमंत्री द्वारा की गई, यह पहली सद्भावना यात्रा थी। जिसने भारत और नेपाल सम्बन्धों के दोतरफा राजनीतिक पुनः जुड़ाव की शुरुआत का संकेत दिया। इस यात्रा के दौरान मोदी जी ने नेपाल की संवैधानिक संसद को सम्बोधित किया। मोदी जी का यह सम्बोधन अपने आप में विशेष महत्व रखता है। मोदी जी ने नेपाली भाषा में नेपाल की संवैधानिक संसद को सम्बोधित किया और एक प्रकार से नेपाल की स्थिरता और प्रगति में भारत के एक नये दृष्टिकोण का प्रदर्शन किया और दोनों देशों के रिस्तें को नया स्तर प्रदान किया। साथ ही भारत और नेपाल की अविभाज्यता को रेखांकित किया और नेपाल को प्रथम श्रेणी का साथी तथा नई दिल्ली के सहयोगी के रूप में पेश किया। नेपाली संविधान सभा में उनका आधे घंटे का भाषण, और उनका निर्वासन और यात्रा के दौरान किए गए इशारों ने पूरे नेपाल के लोगों और नेतृत्व दोनों को प्रभावित किया। काठमांडू के वरिष्ठ पत्रकार विजय पांडे ने राजनीतिक स्पेक्ट्रम के लेखक को बताया कि मोदी जी ने नेपाल के प्रति भारत के रवैये के बारे में नेपाली जनता की धारणा को प्रभावी ढंग से बदल दिया और भारत के लिए सद्भावना हासिल की। लगभग 30 मिनट के भाषण ने जो करिश्मा किया, इस तरह से किसी भारतीय राजनयिक प्रयास ने पिछले 30 वर्षों में भी हासिल नहीं कर पाए होगें। इस दृष्टिकोण को व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है या नहीं, किन्तु यह यात्रा भारत के दृढ़ संकल्प के बारे में नेपाली मानसिकता में बदलाव का प्रतीक जरूर साबित हुई है। मोदी जी ने नेपाल के साथ एक नई विकास साझेदारी का पुनर्निर्माण किया और नेपाल में बुनियादी ढांचे और विकास परियोजनाओं के लिए रियायती ऋण की ठोस पेशकश की। नेपाल के राजमार्गों, सूचना–मार्गों (सूचना और संचार प्रौद्योगिकी) पर भारतीय सहायता का वादा पेश किया और ट्रांस–वे (बिजली पारेषण लाइनों) के निर्माण में भारतीय सहयोग की पेशकश की। साथ ही भारतीय संसाधनों को साझा करने की इच्छा से भी नेपाली जनमानस को अवगत कराया। भारतीय प्रधानमंत्री ने नेपाली संविधान की सराहना की और यह विश्वास व्यक्त किया कि नेपाल ने संविधान लेखन प्रक्रिया को सकारात्मक रूप से सुदृढ़ किया है। साथ ही नेपाल ने संविधान सभा के सदस्यों को एक ऐसे संविधान का मसौदा तैयार करने के लिए प्रोत्साहित किया जो दोनों देशों के मध्य शांति और सहयोग के समझौतें से निर्मित हुआ है।[6]

इसके बाद प्रधानमंत्री मोदी जी ने नवंबर 2014 में दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) के 18वें शिखर सम्मेलन की बैठक में शामिल होने के लिए काठमाण्डू, नेपाल की यात्रा की। हालांकि भारत, सार्क संगठन में सबसे बड़ा निवेशित बना हुआ है। इसके बाद 19 से 24 फरवरी 2016 को नेपाली प्रधानमंत्री, श्री के0 पी0 शर्मा ओली ने भारत की राजकीय यात्रा सम्पन्न की। 15 से 18 सितंबर 2016 तक श्री पुष्प कमल दहल प्रचंड ने भारत की राजकीय यात्रा की। आपसी सद्भावना की पुष्टि करने के लिए 15 से 16 अक्टूबर 2016 तक नेपाली प्रधानमंत्री, श्री पुष्प कमल दहल प्रचंड ने पुनः भारत की राजकीय यात्रा की और गोवा में आयोजित ब्रिक और बिम्सटेक शिखर सम्मेलन में भाग लिया। चौथी संयुक्त आयोग की बैठक 26 से 27 अक्टूबर 2016 नई दिल्ली में आयोजित की गई थी। दोनों देशों के मध्य मैत्रीपूर्ण भाव को और बढ़ावा देने के लिए नवंबर 2016 में भारतीय राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने 2 से 4 नवंबर, 2016 तक नेपाल की उच्च–स्तरीय आधिकारिक राजकीय यात्रा की। इस दौरे पर भारतीय राष्ट्रपति के साथ रक्षा मंत्री सुभाष भामरे और संसद के चार सदस्य शामिल थे। इसके बाद

दोनों देशों की तरफ से 2017 में चार महत्वपूर्ण यात्राएँ हुईं, जिसमें नेपाली प्रधानमंत्री श्रीमती बिद्या देवी भंडारी की भारत यात्रा भी शामिल है।[7]

नेपाल अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण दक्षिण एशिया में भू–रणनीतिक रूप से महत्वपूर्ण स्थान रखता है। नेपाल, भारत और चीन के बीच एक बफर राज्य रूप में स्थित है और इस कारण यह दोनों देशों के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। नेपाल, भारत और चीन दोनों देशों के साथ अपनी सीमा साझा करता है। लिंपियाधुरा और लिपुलेखा, ये दोनों ही दर्रे, चीन से तिब्बत में प्रवेश करने का मार्ग है, जो चीन के लिए रणनीतिक रूप से अत्यधिक मूल्यवान है। लिंपियाधुरा और लिपुलेख भारत और नेपाल के बीच एक प्रकार से सीमा विवादित क्षेत्र के रूप में जाना जाता है। यह उत्तराखंड के पास स्थित है। नेपाल इन्हें अपनी सीमा का हिस्सा मानता है, जबकि भारत इन्हें अपने क्षेत्र का बताता है। दोनों देशों के मध्य यह विवाद मुख्य रूप से काली नदी के उद्गम स्थल और ऐतिहासिक नक्शों पर आधारित है। नेपाल लिंपियाधुरा को काली नदी के उद्गम का स्रोत मानता है और भारत कालापानी से निकलती हुई धारा को मुख्य धारा मानता है। इसप्रकार से यह क्षेत्र भारत–चीन–नेपाल के त्रिसंगम (Trijunction) पर एक महत्वपूर्ण भू–राजनीतिक बिंदु बन जाता है। चीन की नेपाल में भागीदारी के कारण, भारत के लिए भी नेपाल सुरक्षा दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण है। हाल के वर्षों में सहायता और निवेश के माध्यम से नेपाल में चीन की बढ़ती भागीदारी ने भारत के लिए एक प्रमुख चिंता का विषय उत्पन्न किया है। इधर नेपाल सरकार ने चीन की भागीदारी का स्वागत किया था जिसके कारण नेपाल और भारत के मध्य अलगाव उत्पन्न हो गया। चीन, नेपाल में अपनी कूटनीति को सफलतापूर्वक आकार दे रहा है। चीन, नेपाल में बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (बीआरआई) के जरिए बड़े पैमाने पर मदद, कर्ज और बड़ी परियोजनाओं में निवेश कर रहा है। इस कदम के प्रति भारत सकारात्मक और सहयोगी रुख अपना रहा है लेकिन दुर्भाग्य से नेपाल की ओर से वैसी प्रतिक्रिया नहीं दी जा रही है। नेपाल कई तरह से भारत पर आरोप लगाता रहा है जैसे कि उसके घरेलू मामलों में दखल देना और सीमा विवाद को लेकर भी इस संदर्भ में नेपाल के कुछ हिस्सों में भारत विरोधी आवाजें बढ़ी हैं, जिसने सहयोग और द्विपक्षीय सम्बन्धों में दूरियॉ बढ़ाई है। सभी समस्याओं के बाद भी भारतीय प्रधानमंत्री मोदी जी ने दोनों देशों के सम्बन्धों को मजबूती प्रदान करने के लिए सकारात्मक पहल की है। हाल के वर्षों में भारत और नेपाल अपने सम्बन्धों को नया आकार दे रहे हैं, विशेष रूप से भारत द्वारा भारतीय विदेश नीति 'नेबरहुड फर्स्ट पॉलिसी' को अपनाकर दक्षिण एशियाई देशों पर ध्यान दिया जा रहा है।[8]

भारत और नेपाल के मध्य राजनीतिक और सांस्कृतिक संबंध

वैश्वीक स्तर पर भारत ने आर्थिक और राजनीतिक शक्ति के रूप में अपनी स्थिति मजबूत की है। भारत की इस वैश्वीक स्थिति ने पड़ोसी देशों के लिए भी एक अवसर उपलब्ध कराया है। नेपाल सहित भारत की मोदी सरकार अपने विदेश नीति के तहत दक्षिण एशियाई देशों के साथ राजनीतिक और आर्थिक सम्बन्धों को प्राथमिकता दे रही है। नेपाल के प्रति भारत का सकारात्मक और सहयोगात्मक रुख दोनों देशों के मध्य रिश्तों के नये दौर का निर्माण कर रहा है। नेपाल ने भी भारतीय प्रधानमंत्री मोदी का आदरपूर्वक स्वागत किया है और प्रधानमंत्री के राजनीतिक दृष्टिकोण का भी स्वागत किया है। इस तथ्य का प्रमाण है कि नेपाल के प्रधानमंत्री श्री सुशील कोइराला ने प्रोटोकॉल तोड़कर हवाई अड्डे पर मोदी का स्वागत किया, उनके आगमन पर मोदी को उन्नीस तोपों की सलामी दी।[9] इस दौरान नेपाल की जनता ने भी भारतीय प्रधानमंत्री का जोरदार सार्वजनिक स्वागत किया था। भारतीय स्वतंत्रता के बाद मोदी जी भारत के पहले प्रधानमंत्री है, जिन्होंने नेपाल की संसद को संबोधित किया। नेपाली संसद में उनका भाषण मजबूत और दोनों देशों के बीच चल रहे सम्बन्धों को एक अलग आयाम देने वाला था। मोदी जी ने नेपाली भाषा में नेपाली संसद को सम्बोधित किया, ''नेपाली संसद में मोदी जी का सम्बोधन पिछले कुछ वर्षों में भारत–नेपाल सम्बन्धों को आकार देने वाले परीक्षणों और अशांति पर एक सुंदर प्रतिबिंब था, जिसमें आने वाले वर्षों में दोनों देशों के सम्बन्धों में बदलाव का वादा किया गया था''।[10] इसके पूर्व वर्षों में नेपाल और भारत के बीच क्षेत्रीय मुद्दों ने देशों के द्विपक्षीय सम्बन्धों के बीच तनाव पैदा कर दिया था। दोनों देशों के सम्बन्धों में अनेकों घरेलू और क्षेत्रीय कारकों के आधार पर पिछले एक दशक के दौरान कई कारणों से उल्लेखनीय गिरावट और अविश्वास देखा गया। किन्तु 2014 में नेपाल में भारत की शुरुआती पहुंच नेपाली जनमानस को प्रभावित करने में कामयाब रही। भारत की सही टिप्पणियों ने नेपाली लोगों और राजनेताओं की कल्पना पर समान रूप से कब्जा कर लिया। इसके अलावा 2015 में आए विनाशकारी भूकंप ने नेपाल में तबाही मचाई, भारत ने बड़े पैमाने

पर नेपाल को सहायता पहुँचाने का कार्य किया। नेपाल को पुनर्निर्माण परियोजनाओं के संचालन हेतु और भूकंप के बाद सामान्य स्थिति बनाने के लिए अत्यंत आवश्यक वित्तीय सहायता प्रदान की गई। दोनों देशों के मध्य सम्बन्ध तब खराब होने लगे जब नेपाल ने एक नए संविधान की घोषणा की जिसमें नेपाल के मधेसी समुदाय को कम सुविधाएं दी गईं। नेपाल ने देश के तराई में बसे मधेसी लोगों जैसे जातीय समूहों को पर्याप्त अधिकार नहीं दिया। नतीजतन, मधेसी प्रदर्शनकारियों की नाकेबंदी ने भारत से सभी आवश्यक आपूर्ति पर रोक लगा दी। जिससे नेपाल में मानवीय संकट पैदा हो गया। हालांकि मोदी सरकार ने कभी आधिकारिक तौर पर स्वीकार नहीं किया कि भारत, नेपाली मधेसी लोगों की मांगों के समर्थन में नई दिल्ली की नाकाबंदी कर रहा है किन्तु नेपाल में इसे भारत समर्थित नाकेबंदी के रूप में देखा गया। नेपाल के संविधान के बारे में भारत के आधिकारिक बयानों को भी अराजनयिक माना गया।[11] मई 2016 में, नेपाली सरकार ने देश की राष्ट्रपति विद्या देवी भंडारी का भारत दौरा रद्द करने की पहल की और नई दिल्ली से अपने राजदूत को वापस बुलाने का कार्य किया।[12] दिसंबर 2017 में नेपाल के संसदीय और प्रांतीय चुनावों में वाम गठबंधन की जीत को भारत के सकारात्मक विकास के रूप में देखा गया। भारत में मोदी सरकार ने जल्द ही इस बदलाव को महसूस कर लिया और यह सुनिश्चित करने के लिए गंभीर राजनयिक प्रयास किए कि नए प्रधानमंत्री श्री के0 पी0 एस0 ओली अपने पहले पर्नुनिर्वाचन के बाद भारत का दौरा करें। पुनःनिर्वाचन के बाद पहली बार प्रधानमंत्री ओली अप्रैल 2018 में अपनी पहली विदेश यात्रा पर नई दिल्ली पहुंचे। जब उन्होंने संयुक्त प्रेस में मोदी जी से ये बात कही कि, 'मुझे दो साल पहले मोदी जी के साथ यह मंच साझा करना याद है। तब से, नेपाल ने महान परिवर्तन का अनुभव किया है'। इसमें कोई संदेह नहीं था कि ओली किस बात का जिक्र कर रहे थे। जैसा एस. डी. मुनि द्वारा रेखांकित है, ''नये संविधान को अपनाना, मधेसी आकांक्षाओं पर भारत की सलाह की अवहेलना, वाम गठबंधन की भारी चुनावी जीत और उनके नेतृत्व में नेपाली राष्ट्रवाद का एक नया ब्रांड के रूप में उद्भव और बीआरआई के तहत चीन की उदार अर्थव्यवस्था द्वारा नेपाल में बुनियादी ढांचे के विकास के लिए समर्थन, इत्यादि उल्लेखनीय हैं।[13] मोदी ने मई 2018 में नेपाल की एक महत्वपूर्ण यात्रा की, जिसने बिगड़ते द्विपक्षीय संबंधों को फिर से पटरी पर ला दिया। नेपाल के 'शेरपा' अर्थात सहायक, के रूप में काम करने की भारत की इच्छा व्यक्त करते हुए उन्होंने वादा किया कि सभी लंबित मुद्दों को, जिसमें विमुद्रीकृत भारतीय मुद्रा का विनिमय, नेपाल के वित्तीय संस्थानों में जमा भारतीय नोट, बढ़ता व्यापार अंतर, भारत द्वारा लगाए गए विभिन्न शुल्क और नेपाल में भारत–वित्त पोषित परियोजनाओं में सुस्त गति इत्यादि का भारत द्वारा समाधान करना शामिल है।[14] इस दौरान मोदी ने नेपाल के तीन अलग–अलग क्षेत्रों में स्थित तीन सबसे प्रतिष्ठित धार्मिक स्थानों का भी दौरा किया और स्पष्ट रूप से संकेत दिया कि भारत, नेपाल के प्रति मधेश केन्द्रित विदेश नीति का नहीं बल्कि तराई के साथ–साथ पहाड़ी लोगों के लिए समान महत्व व बराबरी की नीति का संचालन करता है।[15] हालाँकि, इसके उपरान्त भी नेपाली जनमानस में व्याप्त पुराने संदेह समाप्त नहीं हुए। जब तत्कालीन विदेश मंत्री, सुषमा स्वराज, विदेश मंत्रालय के वार्षिक समारोह के दौरान प्रेस कॉन्फ्रेंस में वक्तव्य दिया कि मोदी ने मई 2018 में जनकपुर में 'भारतवासियों' को संबोधित किया था। नेपाल में कई लोग मोदी जी की टिप्पणी को भारत के बड़े भाई वाले रवैया के रूप में देख रहे हैं। किन्तु तुरन्त बाद नेपाल की ओर से नई प्रतिक्रिया की आशंका को देखते हुए उन्होंने तुरंत गलती की माफी मांगी।[16]

भारत नेपाल का सबसे बड़ा व्यापार भागीदार है, और साथ ही नेपाल में भारतीय नोटों को पारंपरिक रूप से स्वीकृति प्राप्त है। देश में जब नवंबर 2016 में 500 रू0 और 1,000 रू0 के नोट बंद कर दिए गए। तब पड़ोसी देश भूटान और नेपाल के पास बड़ी मात्रा में चलन से बाहर हो चुकी भारतीय मुद्रा बची रह गई। जबकि भारत ने भूटान के साथ इस मुद्दे को सुलझा लिया है, किन्तु नेपाल के साथ इसे अभी भी सुलझाया जाना बाकी है।[17] जनवरी 2019 में नेपाल के विदेश मंत्री प्रदीप कुमार ग्यावली ने कहा था कि उनकी सरकार अभी भी 'भारत की ओर से सकारात्मक संकेत' का इंतजार कर रही थी कि नेपाल के पास भारतीय पुराना स्टॉक है, उसे भारतीय करेंसी नोट से बदले जाएंगे।[18] दूसरी ओर, चीन हिमालयी राष्ट्र में अपने आर्थिक और रणनीतिक पदचिन्ह फैलाने का प्रयास कर रहा है। नई दिल्ली की असंगत नीतियों और परस्पर विरोधी प्राथमिकताओं के कारण भी ऐसा उद्भव हुआ है। नेपाल में राजनेताओं और राय बनाने वालों की एक नई पीढ़ी उजागर हो गई है, जो पश्चिमी दुनिया एवं भारत के साथ बहुत कम भावनात्मक सम्बन्ध रखते हैं, और वह मानते हैं कि नेपाल में भारत का दबदबा है। नेपाल की आंतरिक राजनीति अपने सबसे नगण्य स्तर तक सिकुड़ गई है।[19] यहाँ यह तर्कसंगत रूप से

तर्क दिया जा सकता है कि नेपाली नीति–निर्माता 'बिना आर्थिक जुड़ाव के चीनी मॉडल' को प्राथमिकता दे रहे हैं। भारत की पड़ोसी प्रथम नीति की तुलना में नेपाल में 'राजनीतिक तानाशाही' बढ़ रहा है। नेपाली जनमानस का मानना है कि भारत के 'बड़े भाई' वाले रवैये की धारणा और इसे पूरा करने में नई दिल्ली की असमर्थता ने नेपाली लोगों की अपेक्षाएं बीजिंग की ओर बढ़ने में सहायक कारक रही है, इसलिए नेपाल में नई दिल्ली की हालिया असफलताओं की भरपाई करनी होगी और उसे क्षेत्रीय सम्पर्क में मदद करके तथा नेपाली लोगों का आर्थिक विकास करके, उनके विश्वास को वापस जीतना होगा।

भारत–नेपाल सम्बन्धों के मध्य भू–राजनीतिक कारक

नेपाल पांच भारतीय राज्यों पश्चिम बंगाल, सिक्किम, उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश और बिहार के साथ सीमा साझा करता है, इसलिए दोनों देशों के मध्य सांस्कृतिक और आर्थिक आदान–प्रदान की एक महत्वपूर्ण स्थिति है। भारत के लिए नेपाल के महत्व का विभिन्न तरीकों से विश्लेषण किया जा सकता है। नेपाल भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा और क्षेत्रीय राजनीति में अपनी स्थिति के लिए रणनीतिक रूप से महत्वपूर्ण है। एक बफर राज्य के रूप में नेपाल की स्थिति चीन के किसी भी संभावित आक्रमण के खिलाफ महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। भारत के लिए नेपाल, चीन और भारत के मध्य एक रणनीतिक राज्य है, जिसका इस्तेमाल भारत के खिलाफ किया जा सकता है। नेपाल में कम्युनिस्ट पार्टी को चीन का समर्थन भारत के लिए चिंता का विषय है। 1950 में तिब्बत पर चीन के कब्जे के बाद यह गंभीर हो गया। हम नेपाल में चीन की गहरी रुचि और उसकी मानवीय और आर्थिक पहुंच से इनकार नहीं कर सकते। भौगोलिक संदर्भ में नेपाल चीन के लिए भी रणनीतिक रूप से महत्वपूर्ण है, इसकी तिब्बत के साथ सीमा लगती है। ''बीजिंग के अनुसार, नेपाल, आंतरिक सुरक्षा घेरे का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है जिसे किसी भी वैश्विक या क्षेत्रीय शक्ति द्वारा उल्लंघन करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है''।[20]

प्राचीन काल से ही, नेपाल के प्रति चीन की नीति दक्षिण एशिया की तुलना में उसके बड़े रणनीतिक हित द्वारा निर्देशित होती रही है। नेपाल के साथ चीन की बढ़ती रणनीतिक साझेदारी भारत के लिए गंभीर सुरक्षा खतरा है। भारत और नेपाल के मध्य द्विपक्षीय सम्बन्धों के लिए सीमा मुद्दा सबसे चुनौतीपूर्ण बन गया है। कालापानी का 35 किलोमीटर से अधिक क्षेत्र भारत, चीन और नेपाल के ट्राइजंक्टिन पर स्थित है। कालापानी के उत्तर में लिपुलेखा दर्रे के माध्यम से चीन और भारत के बीच व्यापार 1992 में शुरू हुआ। 2015 में भारत और चीन ने लिपुलेखा को दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय व्यापार मार्ग के रूप में संदर्भित किया, लेकिन नेपाल ने इस समझौते को स्वीकार नहीं किया और कहा कि यह सुगौली संधि 1816 का उल्लंघन है।[21] नवंबर 2019 में भारत के नए नक्शे में कालापानी को भारत का हिस्सा दिखाया गया, जिसे लेकर नेपाल के कई हिस्सों में भारत के खिलाफ विरोध प्रदर्शन शुरू हो गया। सत्तारूढ़ कम्युनिस्ट पार्टी, नेपाली छात्र संघों ने काठमांडू में भारतीय दूतावास पर विरोध प्रदर्शन किया। भारत लगातार द्विपक्षीय बातचीत से इस मुद्दे को सुलझाने की कोशिश कर रहा है। हालाँकि भारत ने दृढ़तापूर्वक अपना पक्ष रखा कि मानचित्र केवल भारत के क्षेत्र और उसकी संप्रभुता की रक्षा पर आधारित है, किन्तु नेपाल के द्वारा इस तथ्य को स्विकार करने से इन्कार कर दिया गया।

भारत–नेपाल सम्बन्धों में चीन का प्रभाव

नेपाल की भू–रणनीतिक स्थिति के कारण नेपाल, चीन के लिए भारत के समान ही महत्वपूर्ण स्थान रखता है। हाल के वर्षों में इस भू–रणनीतिक स्थिति ने नेपाल को चीन के साथ सहयोग बनाने के अधिक अवसर दिए हैं। दक्षिण एशियाई देशों में चीन का बढ़ता प्रभाव भारत की पड़ोस नीति के लिए चुनौती है। हाल के वर्षों में नेपाल में चीन की बढ़ती उपस्थिति इस क्षेत्र में भारत की सुरक्षा के लिए एक गंभीर खतरा बन गई है। एक सवाल उठता है कि नेपाल में चीन की बढ़ती व्यस्तता भारत–नेपाल सम्बन्धों को किस प्रकार से प्रभावित करती है? नेपाल के रणनीतिक महत्व के कारण चीन ने द्विपक्षीय सहयोग के निर्माण को प्राथमिकता दी है और उस पर ध्यान केंद्रित किया है और नेपाल का करीबी सहयोगी बनने की कोशिश की है। चीन–नेपाल द्विपक्षीय सम्बन्ध राजनीतिक, आर्थिक और सुरक्षा संदर्भ में भारत पर नेपाल की निर्भरता को कम करने में मदद करेगा।[22] नेपाल में चीन का प्रभाव न केवल आर्थिक और सुरक्षा क्षेत्रों में दिखाई दे रहा है बल्कि नेपाल की राजनीति में भी, चीन का हस्तक्षेप दिखाई देने लगा है। नेपाल के हर क्षेत्र में चीन की बढ़ती मौजूदगी भारत के लिए चिंताजनक है। चीन ने कृषि, व्यापार, उद्योग और परिवहन जैसे विभिन्न क्षेत्रों में निवेश करने में अपनी रुचि व्यक्त की है। वर्तमान में, चीन नेपाल में सबसे अधिक एफडीआई योगदान देने वाला देश बन गया है।[23]

2019 में, नेपाल और चीन ने विकास के लिए बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव्स (बीआरआई) पर एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए। नेपाल चीन से नजदीकियां बढ़ा रहा है और भारत से दूरी बना रहा है। शी जिनपिंग सरकार ने नेपाल के विकास के लिए 56 अरब नेपाली रुपये की सहायता की पेशकश की है। नेपाल काठमांडू–केरुंग रेलवे में चीन के बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (बीआरआई) निवेश में शामिल हो गया है। शी जिनपिंग की यात्रा को ''उच्च स्तरीय यात्रा, साम्यवादी विचारधारा, प्रशिक्षण और साथ ही विकास मॉडल को साझा करना'' कहा गया। दोनों देशों ने सर्वोपरि महत्व के पारगमन परिवहन समझौते पर हस्ताक्षर किए हैं, जो भूमि से घिरे नेपाल को भूमि से जुड़ा राष्ट्र बना रहा है। केरवांग–रक्सौल मार्ग के माध्यम से, चीन नेपाल के रास्ते गंगा के मैदानी इलाकों तक पहुंचने की कोशिश कर रहा है।[24] चीन और नेपाल संयुक्त रूप से ऊर्जा क्षेत्र में सीमा पार बिजली ट्रांसमिशन लाइनों के क्षेत्र में काम कर रहे हैं, जिससे नेपाल की भारतीय निर्भरता को कम करने में मदद मिलेगी।

चीन दोनों देशों के बीच रेलवे कनेक्टिविटी, द ट्रान्स हिमालयन रेलवे कनेक्टिविटी के निर्माण पर बहुत उत्सुकता से काम कर रहा है। दोनों देश ''कनेक्टिविटी बढ़ाने के लिए बीआरआई के तहत सहयोग पर एमओयू के कार्यान्वयन को तेज करने'' पर सहमत हुए हैं, जिसमें ट्रांस–हिमालयन मल्टी–डायमेंशनल कनेक्टिविटी नेटवर्क (विदेश मंत्रालय) के ढांचे में बंदरगाह, सड़क, रेलवे, विमानन और संचार शामिल हैं।[25] चीन सबसे ऐतिहासिक बुद्ध जन्मस्थान लुंबिनी तक पहुंचने के लिए चीनी लोगों को जोड़ने का अवसर तलाश रहा है। इससे दोनों देशों के बीच लोगों से लोगों के बीच कनेक्टिविटी बनाने में मदद मिलेगी और नेपाल चीन से चीनी पर्यटकों को आकर्षित करने में भी सक्षम होगा।[26] यह भारत के लिए चिंताजनक स्थिति है, क्योंकि रेल और सड़क नेटवर्क के जरिए चीन अपने हितों के लिए नेपाल के मार्गों तक आसानी से पहुंच बना सकता है। भविष्य में संघर्ष की स्थिति में यह भारत के लिए हानिकारक हो सकता है।

निष्कर्षतः कहॉ जा सकता है कि हाल के वर्षों में भारत और नेपाल के रिश्तों को काफी जटिल स्थिति का सामना करना पड़ा है। भारत अक्सर अपनी 'पड़ोसी पहले' नीति पर जोर देता रहा है। प्रधानमंत्री मोदी युग की शुरुआत सौहार्दपूर्ण और सकारात्मक रुख के साथ हुई जब प्रधानमंत्री ने 2014 में आधिकारिक तौर पर नेपाल का दौरा किया। लेकिन समय के साथ–साथ देशों के मध्य अनेक मुद्दे सामने आए हैं, जिससे द्विपक्षीय सम्बन्धों में गिरावट आई है। काठमांडू और नेपाल के अन्य हिस्सों में भारत विरोधी नारे भारत के लिए चिंता का विषय के समान है। नेपाल में प्रधानमंत्री ओली सरकार के दौरान सीमा मुद्दे को लेकर दोनों देशों के बीच तनावपूर्ण स्थिति पैदा हो गई थी। जिसके परिणामस्वरूप, नेपाल चीन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बना रहा है, जो दक्षिण एशिया में भारत की स्थिति के लिए चुनौती पैदा कर रहा है। भारत की स्थिति वैश्विक राजनीति के साथ–साथ क्षेत्रीय राजनीति में भी बढने और दक्षिण एशिया की प्रमुख शक्ति के रूप उभरने के कारण, नेपाल भारत के साथ प्रतिसंतुलन के रूप में चीन की ओर देखता है।

भारत के लिए दक्षिण एशियाई राजनीति के बदलते परिदृश्य के साथ संतुलन बनाने के लिए नेपाल के प्रति अधिक प्रभावी विदेश नीति की आवश्यकता है। नेपाल में भीषण भूकंप और कोविड महामारी के दौरान भारत के समर्थन की नेपाली नागरिकों ने काफी सराहना की। प्रधानमंत्री मोदी की नेपाल यात्रा के दौरान दोनों देशों के मध्य सामाजिक–सांस्कृतिक सहयोग दिखाई दिए है और दोनों पक्षों के लोगों ने सभी समझौतों का स्वागत किया है। नेपाल अभी भी व्यापार और निर्यात–आयात के लिए ज्यादातर भारत पर निर्भर है और साथ ही भारत, नेपाल के आर्थिक विकास में निरन्तर सहयोग कर रहा है। भारत ने नेपाल में आर्थिक और राजनीतिक स्थिरता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, अब नेपाल में भारत के हितों को संतुलित करने की जरूरत है।

सन्दर्भ सूची

1. बीबीसी संवाददाता 16 मई, 2016.
2. द टाइम्स ऑफ इण्डिया, 9 नवम्बर 2015.
3. द इकोनॉमिक्स टाइम्स, 6 अप्रैल 2018.
4. नवभारत टाइम्स, 27 जुलाई, 2014.
5. द इकोनॉमिक्स टाइम्स, 22 जुलाई 2017.
6. द टाइम्स ऑफ इण्डिया, 3 अगस्त 2014.

7. भटनागर, आर्यमान व पासी, रितीका, 2016, नेबर्सहूड फर्स्ट : नेविगेटिंग टाई अन्डर द मोदी, विल्की ब्लेक वैल, नई दिल्ली.
8. नवभारत टाइम्स, 4 दिसम्बर, 2018.
9. प्रभात खबर, 2 अगस्त 2014.
10. इंडियन एक्सप्रेस, 3 अगस्त, 2014.
11. द हिमालयन टाइम्स, 2016.
12. हिन्दुस्तान टाइम्स, 7 मई, 2016.
13. माई रिपब्लिक, 11 मई, 2018.
14. अमर उजाला, 11 मई, 2018.
15. हिन्दुस्तान टाइम्स, 13 मई, 2018.
16. द इण्डियन एक्सप्रेस, 3 फरवरी, 2018.
17. बीबीसी हिन्दी, नई दिल्ली, 15 दिसम्बर, 2018.
18. द इकोनॉमिक्स टाइम्स, 16 जनवरी, 2019.
19. हिन्दुस्तान टाइम्स, 13 मई, 2018.
20. द इण्डियन एक्सप्रेस, 10 जुलाई, 2016.
21. द इकोनॉमिक्स टाइम्स, 9 जून, 2015.
22. इकोनामिकल एण्ड पोलिटिकल विकली, 2016.
23. शर्मा, प्रसाद, बुद्धि, चीन क्वाटर्ली ऑफ इन्टरनेशनल स्ट्रेटजी स्टडीज, 2018, वाल्यूम 4.
24. इण्डिया टुडे, 22 जुन, 2018.
25. इंडियन एक्सप्रेस, 21 जून 2018.
26. इण्डिया टुडे, 22 जुन, 2018.

www.bohalshodhmanjusha.com **Bohal Shodh Manjusha** **ISSN: 2395-7115**
Impact Factor: 8.642 **February 2026** **Page No. : 262-266**
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

पारिभाषिक शब्दावली : निर्माण प्रक्रिया व समस्याएँ

विष्णु सिंह जाट
शोधार्थी (हिन्दी),
तुलनात्मक भाषा एवं संस्कृति अध्ययनशाला
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इंदौर

सारांश

ज्ञान का संरक्षण और प्रसार भाषा पर निर्भर करता है और पारिभाषिक शब्दावली उस ज्ञान को कार्यशील बनाने का सबसे निर्णायक उपकरण है। स्वतंत्रता के बाद हिंदी को राजभाषा का दर्जा मिलने के साथ प्रशासन, शिक्षा, विज्ञान और तकनीक के लिए मानकीकृत शब्दावली की अनिवार्यता बढ़ी, किंतु शब्दावली निर्माण की प्रक्रिया जटिल और विवादग्रस्त रही। अध्ययन में पारिभाषिक शब्दों की अवधारणा, उनकी विशेषताओं तथा शब्दावली निर्माण की चार प्रमुख पद्धतियों – ग्रहण, अनुकूलन, संचयन और निर्माण का विवेचन किया गया है। साथ ही राष्ट्रीयतावादी, अंतरराष्ट्रीयतावादी, लोकवादी और समन्वयवादी धाराओं के योगदान और सीमाओं का आलोचनात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। लेख का केंद्रीय निष्कर्ष यह है कि अत्यधिक संस्कृतनिष्ठ या पूर्णतः अंतरराष्ट्रीय शब्दावली, दोनों ही हिंदी माध्यम की शिक्षा को दुरूह बनाती हैं। अतः अध्ययन समन्वयवादी दृष्टिकोण को अधिक व्यवहारिक मानते हुए इस बात पर बल देता है कि पारिभाषिक शब्दावली ऐसी हो जो अर्थ में सटीक, रूप में सरल और प्रयोग में स्वाभाविक हो। जब तक शब्दावली प्रयोक्ता और लोक से तादात्म्य स्थापित नहीं करती तब तक ज्ञान जनसामान्य तक नहीं पहुँच सकता।

कुंजी शब्द— परिभाषिक शब्दावली, राजभाषा शब्दावली, निर्माण प्रक्रिया, समस्याएं

परिचय

भाषा संस्कृतियों की संरक्षक व सभ्यताओं की जननी रही है। मानव ने जब भाषा का आविष्कार किया तो उसने एक दूसरे के ज्ञान से अपने जीवनस्तर को बेहतर बनाने का माध्यम भी प्राप्त कर लिया था परिणामस्वरूप सभ्यताओं का विकास संभव हो सका। किसी भी संस्कृति के क्रियाकलाप, परंपराएँ, ज्ञान आदि भाषा के माध्यम से ही सुरक्षित रहते है। यह भाषा ही है जिसके माध्यम से हम प्राचीन संस्कृतियों के बारे में आज जानकारी प्राप्त करने में सक्षम है। यदि भाषा ना होती तो वे संस्कृतियाँ समय के रेगिस्तान में कहीं खो गई होती। अर्जित ज्ञान के प्रसारण के लिए मनुष्य को भाषा की आवश्यकता होती है। आज विश्व के प्रत्येक कोने में नवीन शोधों के माध्यम से दिन प्रतिदिन ज्ञान के नए नए तथ्यों को प्रकाश में लाया जा रहा है। इन तथ्यों को किसी विदेशी भाषा के व्यक्ति द्वारा

जानने के लिए या तो उसे उस भाषा का ज्ञान हो जिसमें शोधार्थियों ने उन तथ्यों को लिखा है या उन तथ्यों का अनुवाद उसे उसकी मातृभाषा में या उस भाषा में जिसे वह जानता हो में मिल सके। इसके लिए सभी राष्ट्र अपनी भाषा की मानक शब्दावली तैयार करवाने का प्रयत्न करते हैं। यह शब्दावली विभिन्न विषयों के शब्दों को संकलित करती है। प्रत्येक विषय की अपनी एक पारिभाषिक शब्दावली होती है जिसमें शब्द अपना एक विशेष संदर्भ रखता है, यह शब्द किसी दूसरे विषय के परिप्रेक्ष्य में अन्य अर्थ का द्योतक हो सकता है।

आजादी से पहले सरकारी कामकाज की भाषा अंग्रेजी थी तथा उससे पूर्व यह काम फारसी करती थी। जैसे-जैसे देशों में आधुनिक राजनीतिक व्यवस्थाएँ उभरीं, उन्होंने अपने-अपने देशों में बोली और समझी जाने वाली प्रमुख सार्वजनिक भाषा को आधिकारिक भाषा का दर्जा दिया। इसी आधार पर हमारे देश में स्वतंत्रता पश्चात् हिंदी को राजभाषा का दर्जा दिया गया। राजभाषा से आशय 'संविधान द्वारा सरकारी कामकाज, प्रशासन, संसद और विधानमंडलों तथा न्यायिक कार्यकलापों के लिए स्वीकृत भाषा' से है। इन कार्यक्षेत्रों के विभिन्न विषयों के लिए एक पारिभाषिक शब्दावली की आवश्यकता होती है।

पारिभाषिक शब्दों को विभिन्न विद्वानों द्वारा भिन्न भिन्न तरीक़े से परिभाषित किया गया है, जैसे डॉ रघुवीर के अनुसार " जिन शब्दों की सीमा बाँध दी जाती है वे पारिभाषिक शब्द होते हैं और जिनकी सीमा बाँधी नहीं जातीं वे साधारण शब्द होते हैं।"[1] डॉ गोपाल शर्मा के शब्दों में "पारिभाषिक शब्द वह शब्द है जो किसी विशेष ज्ञान के क्षेत्र में एक निश्चित अर्थ में प्रयुक्त होता हो तथा जिसका अर्थ एक परिभाषा द्वारा स्थिर किया गया हो।"[2] डॉ भोलानाथ तिवारी ने पारिभाषिक शब्द की परिभाषा इस प्रकार दी है कि "जो शब्द विभिन्न विज्ञानों और शास्त्रों में ही प्रयुक्त होते हैं, और सम्बद्ध विज्ञान शास्त्र के प्रसंग में जिनकी पारिभाषिक दी जा सकती है, पारिभाषिक शब्द कहे जाते हैं।"3

इस प्रकार कहा जा सकता है कि '***जो शब्द सामान्य व्यवहार की भाषा में प्रयुक्त न होकर ज्ञान विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में विषय व संदर्भ के अनुसार विशिष्ट एवं निश्चित अर्थ में प्रयुक्त होते हैं पारिभाषिक शब्द कहलाते हैं।'***

इन पारिभाषिक शब्दों के समूह को ही पारिभाषिक शब्दावली कहते हैं। पारिभाषिक शब्दावली की कुछ विशेषताएँ होती है, जैसे कि पारिभाषिक शब्दों के अर्थ स्पष्ट,सुबोध तथा निश्चित होना चाहिए। इन शब्दों के अर्थ, अर्थविस्तार व अर्थसंकोच से मुक्त होना चाहिए साथ ही पारिभाषिक शब्द उच्चारण की दृष्टि से सरल व सुबोध हो तथा एकरूपता युक्त होने चाहिए। यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक पारिभाषिक शब्द की स्वतंत्र सत्ता तथा अर्थवत्ता हो। शब्द का आकार यथासंभव छोटा रहना चाहिए। शब्दों का निर्माण जहाँ तक संभव हो एक ही मूल शब्द से किया जाना चाहिए ताकि शब्द के नियत अर्थ में उपसर्ग, प्रत्यय या अन्य उपयुक्त शब्द लगाकर नए शब्द बनाने की गुंजाइश रहे। इन विशेषताओं के अतिरिक्त पारिभाषिक शब्दावली में शामिल शब्द पारिभाषित होते हैं तथा प्रत्येक पारिभाषिक शब्द में कोई विशिष्ट विचार, भाव व संकल्पना अंतर्निहित रहती है। यह माना जाता है कि पारिभाषिक शब्द दैनंदिन व्यवहार की भाषा के लिए असामान्य होते हैं।

कुछ पारिभाषिक शब्द दो या अधिक विशिष्ट क्षेत्रों में अलग अलग अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। उदाहरण के लिए,

कल्चर शब्द के अर्थ संस्कृति (मानविकी में) तथा कृषि (कृषि विज्ञान में)

सेक्यूरिटी शब्द के अर्थ सुरक्षा (सैन्य विज्ञान में) तथा प्रतिभूति (बैंकिंग में)

पारिभाषिक शब्द विषय के अनुसार अपना अर्थ बदल लेते हैं परंतु किसी भी पारिभाषिक शब्द का महत्व इस बात से पता चलता है कि किसी एक विशिष्ट ज्ञान क्षेत्र के एक पारिभाषिक शब्द के स्थान पर उसका कोई दूसरा पर्याय प्रयोग में नहीं लाया जा सकता है।

पारिभाषिक शब्दावली निर्माण एक जटिल कार्य है। इसका प्रथम चरण होता है कि कोशकार शब्द निर्माण हेतु मूल शब्द कहाँ से लेना चाहता है।इस प्रक्रिया में पारिभाषिक शब्दावली निर्धारण की चार पद्धतियाँ मानी जाती है - ग्रहण, अनुकूलन, निर्माण व संचयन।4 इनका संक्षेप में परिचय इस प्रकार है,

1. **ग्रहण** - इसके अंतर्गत अन्य भाषाओं में प्रचलित पारिभाषिक शब्दावली को ज्यों का त्यों ग्रहण कर लेना शामिल है। इसके पक्ष में तर्क दिया जाता है कि इससे श्रम और समय की बचत होती है।

उदाहरण - पेट्रोल, डीजल, कार, वोल्ट, एक्स-रे ।

2. **अनुकूलन** - जब विदेशी शब्दावली को अपनी भाषा की विशेषताओं (ध्वन्यात्मकता एवं व्याकरणात्मक) के अनुरूप परिवर्तित कर अपनी भाषा में शामिल कर लिया जाता है, इस प्रक्रिया को अनुकूलन कहा जाता है। यह दो प्रकार का होता है - ध्वन्यानुकूलन एवं शब्दानुकूलन ।

3. **संचयन** - भाषाओं, उपभाषाओं तथा बोलियों के उपयुक्त एवं अछूते शब्दों का पारिभाषिक रूप में संचयन करके प्रयोग करना संचयन कहलाता है। भारतीय संदर्भ में,

(अ) प्राचीन भाषाओं से संबद्ध शब्द लेकर

जैसे - आकाशवाणी : प्राचीन अर्थ देववाणी परंतु आज के समय अर्थ -रेडियो

(ब) आम बोलचाल की भाषा में प्रचलित शब्दों को लेकर

जैसे - दलबदलू : डिफेक्टर

(स) प्रांतीय भाषाओं के शब्द ग्रहण करके

जैसे - एस्टोब्लिसमेंट : प्रतिष्ठान (कन्नड़ भाषा का शब्द)

आमच्योर : औन्साहिक (तेलुगु भाषा का शब्द)

4. **निर्माण** - उपरोक्त तीनों प्रक्रियाएँ सहज है परंतु वे पारिभाषिक शब्दावली की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकती। आज प्रत्येक ज्ञान क्षेत्र में दिन-प्रतिदिन नवीन खोजों के माध्यम से नवीन संकल्पनाओं की स्थापना हो रही है जिनके लिए नये शब्दों की आवश्यकता होती है जिसकी पूर्ति मौजूदा शब्द भंडार से नहीं हो पाती, इसके लिए शब्द निर्माण की आवश्यकता होती है। संसार में यूँ तो बहुत भाषाएँ प्रचलित हैं परंतु वे सभी शब्द निर्माण क्षमता से युक्त नहीं है, यह क्षमता केवल चीनी, ग्रीक, लेटिन व संस्कृत में ही संभव मानी जाती है। धातु, उपसर्ग एवं प्रत्यय आदि ऐसे तत्व है जो शब्द निर्माण हेतु आवश्यक है। ऐसे में हिंदी शब्द निर्माण के लिए संस्कृत का सहारा लेती है जिसमें अपार शब्द निर्माण क्षमता मौजूद है।

हिन्दी पारिभाषिक शब्दावली निर्माण हेतु शब्द कहाँ से लिए जाने चाहिए इसको लेकर विद्वानों में मतभेद रहे हैं, कुछ विद्वान चाहते हैं कि संपूर्ण शब्दावली संस्कृत के शब्दों से तैयार की जाए तो कुछ का मानना है कि लोकप्रचलित शब्दों को लेकर तैयार की जाए वहीं कुछ विद्वान चाहते हैं कि उपर्युक्त दोनों विचारों का समन्वय हो। इस प्रकार विभिन्न धाराओं का योगदान शब्दावली निर्माण प्रक्रिया में रहा है जैसे राष्ट्रीयतावादी, अंतरराष्ट्रीयतावादी, लोकवादी और समन्वयवादी । इन धाराओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है,

राष्ट्रीयतावादी धारा , इस धारा का दूसरा नाम पुनरुत्थानवादी भी है इस धारा का झुकाव संस्कृतनिष्ठ हिंदी की ओर है। इस वर्ग के प्रतिनिधि विद्वान प्रसिद्ध भाषाविद् डॉ रघुवीर माने जाते हैं। इस धारा के समर्थक नये पारिभाषिक शब्दों के निर्माण हेतु संस्कृत के उपसर्ग प्रत्ययों तथा समास पद्धति को आधार बनाते हैं ।इस वर्ग के

विद्वान हिंदी में प्रचलित विदेशी तो क्या देशज एवं तद्भव शब्दों को भी ग्रहण करने के हिमायती नहीं है। ये चाहते हैं कि अंग्रेजी शब्दों के प्रतिशब्दों के लिए संस्कृत के उपसर्गों, प्रत्ययों तथा धातुओं का ही आश्रय लिया जाए। जैसे कंपाउंडर के लिए औषधयोजक , स्टैंप के लिए मुद्रांक आदि।5

अंतर्राष्ट्रीयतावादी धारा, इस धारा को शब्द ग्रहणवादी, स्वीकारवादी, आदानवादी आदि नामों से जाना जाता है। डॉ शांतिस्वरूप भटनागर, डॉ बीरबल, डॉ सी लूथरा आदि इस वर्ग के विद्वान है। इस मत के विद्वान अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली को भारतीय पारिभाषिक शब्दावली के लिए ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेना चाहते हैं। इस धारा के समर्थक प्रचलित अंतर्राष्ट्रीय शब्दों को या तो उसी रूप में या उपसर्ग, प्रत्येक जोड़कर या समास करके या ध्वनि परिवर्तन करके ग्रहण करने के पक्ष में है।6

उदाहरण - राडार, किलोग्राम, टन, मीटर, रजिस्ट्रीकृत, मेटर्निटी होम, कामदी, त्रासदी, अकादमी, तकनीक आदि।

इस वर्ग की बातों को मानने में समस्या में यह है कि प्रचलित शब्दों को तो ग्रहण किया जा सकता है परंतु अप्रचलित शब्दों को नहीं लिया जा सकता और उनसे नये शब्द बनाये भी नहीं जा सकते। इस मत पर शब्दावली आयोग का निर्णय यह है कि -

(अ) व्यक्तियों के नाम के आधार पर बनाये गए शब्दों जैसे - मार्क्सवाद, ब्रेल आदि।

(ब) विश्व की अधिकांश भाषाओं में प्रयुक्त शब्दों जैसे - टेलीविजन, टेलीफोन, लाइसेंस, लीटर, आदि, को उनके अंतर्राष्ट्रीय रूप में अपना लिया जाए।

लोकवादी, इस वर्ग के विद्वान लोक प्रचलित शब्दों के आधार पर पारिभाषिक शब्द बनाने के पक्षधर है। उदाहरण के लिए निपटान, जच्चाघर, दल-बदलू, घुसपैठिया आदि।7

यह एक अच्छा विचार है कि लोकप्रचलित शब्दों से शब्दावली निर्माण किया जाए परंतु आधुनिक ज्ञान की नवीन संकल्पनाओं के लिए लोकप्रचलित शब्द खोज पाना संभव नहीं है, इस प्रकार के शब्दों से बनी शब्दावली एकरूपता बनाए रखनें में भी असमर्थ होगी।

विद्वानों का अन्य वर्ग उपर्युक्त तीनों धाराओं का समन्वय को सर्वोत्तम मार्ग मानता है, इस वर्ग के विद्वानों को **समन्वयवादी** कहा जाता है। इनके अनुसार हिंदी भाषा की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए संस्कृत तथा अन्य भाषाओं के लोकप्रचलित शब्दों को आवश्यकतानुसार ग्रहण किया जाना चाहिए। यदि वे शब्द हिंदी की ध्वनि व्यवस्था के अनुकूल नहीं है तो उन्हें इसके अनुसार अनुकूलित किया जा सकता है। साथ ही जरूरी होने पर अपनी भाषा के उपसर्ग, प्रत्यय, शब्द व धातु के आधार पर नये शब्दों का निर्माण किया जाना चाहिए। इनका मानना है कि यदि किसी पारिभाषिक शब्द के हमारे पास एक से अधिक प्रचलित शब्द हो तो हमें उनमें से किसी का भी प्रयोग करने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए।8

इस विचार के साथ समस्या यह है कि यह शब्दावली की एकरूपता को भंग करता है, पारिभाषिक शब्द अपने अभिधार्थ गुण के लिए विशेष होता है उसके पर्याय के रूप में एक से अधिक शब्दों का होना असमंजसता की स्थिति उत्पन्न कर सकता है परंतु यह विचार उपर्युक्त तीनों विचारों से अधिक व्यवहारिक है तथा इससे निर्मित शब्दावली प्रचलन में आसानी से आ सकती है।

इस प्रकार पारिभाषिक शब्दावली निर्माण एक जटिल कार्य है। किसी भी भाषा के विकास के लिए आवश्यक होता है कि उसके पास पर्याप्त शब्द संपदा हो परंतु कोश निर्माण हो जाने मात्र से कोई भाषा समृद्ध नहीं हो जाती है। कोशकार व्याकरण के नियमों के अनुसार शब्द बनाता है लेकिन समाज की परिस्थितियाँ एवं प्रयोक्ताओं का भाषा विषयक स्तर तय करता है कि कौन सा शब्द प्रचलन में आ पाएगा कौन सा नहीं। जब तक प्रयोक्ता उसे स्वीकार न करे तब तक शब्द प्रचलन में नहीं आ सकते हैं। यह सर्वविदित तथ्य है कि पारिभाषिक शब्दावली सामान्य

व्यवहार के लिए नहीं होती है बल्कि विशेष कार्यक्षेत्र या संबंधित विषय के अध्येताओं के लिए होती है परंतु अध्येताओं के ज्ञान से आम जन लाभान्वित हो सके इसके लिए आवश्यक है कि उस ज्ञान का संप्रेषण ऐसी भाषा में हो जो आमजन की भाषा हो, जिसे जनमानस समझ सके। इसके अभाव में वह ज्ञान पोथियों में सिमट कर पुस्तकालयों की अलमारियों में पड़ा धूल फाँकता रहता है।

आज हिंदी माध्यम में उच्च शिक्षा या तकनीकी शिक्षा की जो दुर्गति है उसके कारणों का विश्लेषण करने पर मुख्य कारण स्तरीय पाठ्य सामग्री का अनुपलब्ध होना है। यदि सामग्री उपलब्ध भी है तो उसकी शब्दावली ऐसी है कि विद्यार्थी उसमें माथापच्ची करने की बजाय माध्यम बदलने को आसान विकल्प मानता है। यही हिंदी की पारिभाषिक शब्दावली की मुख्य समस्या है कि वह इतनी संस्कृतनिष्ठ कर दी गई है कि हिंदी वाक्य संरचना में प्रयोग करने पर उतनी ही असहज लगती है जितनी अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली के शब्दों का प्रयोग करने पर लगती है। अध्येता ऐसे शब्दों को अपने सामने पाता है जिसे उसने कभी सुना तक नहीं होता है ऐसे में वह उन शब्दों के साथ तादात्म्य नहीं बैठा पाता। ऐसे में ठीक यही रहता कि शब्द निर्माण के समय ऐसे शब्दों की रचना की जाए जिनका प्रयोग करने में ऐसा ना लगे कि हम हिंदी ना पढ़कर कोई अन्य भाषा पढ़ रहे हैं।

हमें यह ध्यान में रखना होगा कि हिंदी संस्कृत नहीं है भले ही वह संस्कृत से निकली है परंतु हिंदी का तत्समीकरण उसकी मूल प्रवृत्ति यानि वियोगात्मकता के सौंदर्य को समाप्त करता है। हिंदी सदियो से बिना किसी राजसत्ता के संरक्षण के यदि जीवित रही है तो अपनी इसी प्रवृत्ति के कारण रही है कि वह संस्कृत या अन्य भाषाओं के शब्दो को अपनी विशेषताओं के अनुसार ढालती रही और अपने को समृद्ध करती रही। यदि आज संस्कृत बोलने या लिखने वालों की संख्या नगण्य है तो उसका कारण यही है कि वह लोक से तादात्म्य नहीं बिठा पायी और लोक ने अपने लिए नयी भाषा रच ली जो उसकी अपनी विशेष पहचान रखती है। ऐसा हिंदी के साथ ना इसके लिए आवश्यक है कि हिंदी में भाषा वैज्ञानिक अध्ययन को बढ़ावा दिया जाए। यदि हम किसी ऐसे शब्द को हमारे सामने पाते है जो हिंदी की विशेषताओं को अतिक्रमित करता है, यदि हमारे पास उसका कोई उपयुक्त विकल्प मौजूद है तो उसे सुझाया जाना चाहिए, उसपे चर्चा की जानी चाहिए जैसा कि आचार्य देवेंद्रनाथ शर्मा ने कहा है, "यदि आप पाते हैं कि कोई शब्द पूर्ण संतोषप्रद नहीं है तो आलोचना मत कीजिए,व्यंग्य मत कसिए बल्कि उससे अच्छा शब्द सुझाइए, क्योंकि याद रखिए वह शब्द आपका है, भाषा आपकी है और अपनी वस्तु का उपहास नहीं किया जाता।"9

संदर्भ

1. पारिभाषिक शब्दावली : कुछ समस्याएँ, सं० भोलानाथ तिवारी,महेंद्र चतुर्वेदी, 1973, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 9
2. अनुवाद कला : कुछ विचार में संकलित डॉ गोपाल शर्मा का लेख पृ० 192
3. डॉ भोलेनाथ तिवारी, राजभाषा हिंदी, 2004, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 93
4. डॉ० अंबादास देशमुख, प्रयोजनमूलक हिंदी : अधुनातन आयाम, 2018, शैलजा प्रकाशन, ,पृ० 171
5. वही, पृ० 169
6. वही, पृ० 169
7. वही, पृ० 170
8. वही, पृ० 170
9. देवेंद्रनाथ शर्मा, राष्ट्रभाषा हिंदी समस्याएँ और समाधान, 2004, लोकभारती प्रकाशन, , पृ० 65

8817550068 vjat579@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 267-272
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Role of Non-Government Organisations and Self-Help Groups in Socio-Economic Development of Tribal areas in Rajasthan

Deepika Meena
Research Scholar,
Department of Political Science, University of Rajasthan, Jaipur

Abstract:

This article explores the pivotal role that Non-Governmental Organizations (NGOs) and Self-Help Groups (SHGs) play in fostering socio-economic development in the tribal areas of Rajasthan. These regions, characterized by their unique socio-economic challenges, have historically faced issues such as poverty, limited access to education, healthcare, and infrastructure, and a dependency on traditional agriculture and forest-based livelihoods. Through targeted initiatives, NGOs and SHGs work to empower tribal communities by creating sustainable income-generating opportunities, providing vocational training, promoting microfinance, and encouraging entrepreneurship. By addressing financial inclusion, NGOs and SHGs help tribal people gain access to credit facilities, enabling them to start small enterprises, diversify income sources, and enhance household resilience. The article examines case studies where NGOs have successfully implemented development projects in Rajasthan 's tribal areas. Notable among these are projects focused on skill development, education, and health awareness, which directly contribute to poverty alleviation and enhance the socio-economic status of these marginalized communities. SHGs have proven effective in mobilizing women and fostering a culture of savings and collective financial responsibility.

Women's empowerment through SHGs not only improves household income but also strengthens social structures within tribal communities, as women gain confidence and leadership roles. Moreover, the article discusses the challenges faced by NGOs and SHGs, such as resource constraints, bureaucratic hurdles, and social resistance to change. Despite these obstacles, the concerted efforts of these organizations have resulted in noticeable improvements in economic indicators within tribal regions. Policy recommendations are provided, emphasizing the need for government support, public-private partnerships, and sustainable development practices to further enhance the impact of NGOS and SHGs. With adequate support, these groups can continue to drive socio-economic progress in Rajasthan 's tribal areas, contributing to the larger goal of inclusive development.

Introduction:

The economic development of tribal areas in Rajasthan has long posed significant challenges due to isolation, limited access to resources, and socio-economic marginalization. With nearly 13.5% of Rajasthan's population comprising tribal communities, the state is home to a rich diversity of tribal cultures, each facing unique economic hardships that hinder development. Traditionally, tribal communities have relied on agriculture, forest resources, and artisanal work for sustenance, but a lack of infrastructure, education, and market access has often limited these avenues, trapping communities in cycles of poverty. In recent years, however, the role of Non-Governmental Organizations (NGOs) and Self-Help Groups (SHGs) has emerged as a transformative force in driving economic upliftment and social empowerment within these communities. NGOs have played a pivotal role in delivering targeted interventions that address some of the most pressing challenges in tribal areas. By implementing programs focused on healthcare, education, skills training, and women's empowerment, NGOs create foundations for sustainable economic growth. Their flexible, grassroots approach allows them to tailor projects to meet the specific needs of local communities, often using participatory models that actively involve community members. For instance, NGOs have introduced alternative income-generating activities, such as handicrafts and eco-tourism, and improved agricultural practices through training and the provision of modern tools and seeds. By enhancing both human and social capital, NGOs contribute not only to economic but also to holistic development, aiming to elevate tribal communities toward self-sufficiency. Parallel to NGOs, Self-Help Groups (SHGs) have become instrumental in fostering financial inclusion and collective empowerment among tribal populations in Rajasthan. Predominantly comprising women, SHGs are small, community-based groups that pool resources and provide microcredit to support local entrepreneurship and income generation. By enabling members to save, access credit, and invest in small businesses, SHGs help to cultivate financial literacy and independence, often in areas where formal banking services are scarce. These groups have proven particularly impactful in promoting gender equality and elevating the status of women in tribal societies, as women involved in SHGs are often more financially empowered, able to contribute to household income, and engage in community decision-making. SHGs further serve as a foundation for skill development, as members frequently participate in workshops and training sessions organized by NGOs and government agencies. Both NGOs and SHGs play complementary roles in bridging gaps left by traditional government interventions, which have often struggled to make meaningful impacts due to bureaucratic constraints and logistical challenges in remote areas. Through collaboration with government agencies, these organizations can enhance the scope and reach of welfare schemes, making resources more accessible to those who need them most. By creating pathways to economic self-reliance, NGOs and SHGs not only address immediate financial needs but also promote long-term resilience against poverty and exploitation. The synergy between NGOs and SHGs represents a vital strategy for economic development in Rajasthan 's tribal areas, empowering communities to shape their futures. Their work highlights the importance of community-based, bottom-up approaches that leverage local knowledge and foster ownership among tribal populations. As NGOs and SHGs continue to grow in reach and influence, their contributions underscore the potential for community-driven change in enhancing the economic and social fabric of Rajasthan's tribal regions. Through sustained support, these groups can become beacons of hope and engines of growth, paving the way toward an inclusive, economically vibrant future for tribal communities.

An Overview of tribal areas in Rajasthan :

Tribal communities constitute about 13.5% of Rajasthan's population (2011 Census), with a high concentration in southern districts like Banswara, Dungarpur, Pratapgarh, and Udaipur. The main tribes, including Bhils and Minas, primarily reside in these districts under Schedule V areas. These regions are known for distinct cultural traditions, agricultural livelihoods, and significant history of resistance, often facing development challenges despite government interventions.

Key Tribal Regions and Distribution

Southern Rajasthan: The core tribal belt includes Banswara, Dungarpur, Pratapgarh, and parts of Udaipur, Sirohi, Pali, and Chittorgarh.

Concentration: Nearly two-thirds of the total tribal population is concentrated in Udaipur, Banswara, Dungarpur, Jaipur, and Sawai Madhopur districts.

Scheduled Areas: Under Schedule V of the Indian Constitution, specific regions (Banswara, Dungarpur, Pratapgarh as whole, and parts of other districts) are designated for focused development.

Major Tribes in Rajasthan

Bhils: The largest and oldest tribe, primarily in the Banswara area, known for their archery skills and historical significance.

Minas (Meena): The second largest tribe, dominating eastern parts of Rajasthan and the Shekhawati region.

Garasias: Inhabiting hilly areas, particularly in Sirohi and Pali districts.

Sahariyas: A "Particularly Vulnerable Tribal Group" (PVTG) found mostly in the Baran district.

Others: Gadiya Lohars (nomadic blacksmiths), Damor, and Meo.

The Socio-Economic Landscape of Tribal Areas in Rajasthan and the role of NGOs and SHGs in Economic development

Demographic and socio-economic indicators of Tribal areas in Rajasthan(Source – Ministry of Tribal affairs)

State	Population (ST)	Literacy Rate	
		Male	Female
Rajasthan	13.5%	67.6%	37.3%

Tribal communities in Rajasthan, including the Bhil, Meena, Sahariya, and Gharasia, primarily reside in the southern districts such as Dungarpur, Banswara, and Udaipur. While recent data shows the tribal literacy rate has improved to approximately 71.6%, significant gaps remain in infrastructure and stable income sources.

Socio-Economic Landscape

Income Dependence: Minor Forest Produce (MFP) accounts for 40–60% of annual income for many tribal households. Agriculture remains the primary occupation for nearly 90% of the tribal population in districts like Dungarpur, but it typically only fulfills consumption needs for about three months per year.

Marginalisation: Backward tribal groups like the Sahariya face high rates of malnutrition and poverty, with many households earning less than ₹10,000 per month.

Issues: Challenges include low literacy rates, economic disparity, and geographical isolation, which are targeted through specific TSP (Tribal Sub-Plan) areas, particularly in southern districts like Banswara and Dungarpur.

Infrastructure & Housing: Approximately 66% of certain nomadic tribal households live in temporary huts, and only about 34% reside in pucca (permanent) houses.

In 2026, NGOs and Self-Help Groups (SHGs) continue to serve as the primary drivers of socio-economic transformation in Rajasthan's tribal regions, specifically in the Tribal Sub-Plan (TSP) areas like Udaipur, Dungarpur, and Banswara. They act as vital intermediaries, bridging the gap between remote tribal communities and formal government systems.

Role of Self-Help Groups (SHGs)

SHGs serve as grassroots institutions that foster economic resilience and social unity.

Livelihood Diversification: Beyond agriculture, SHGs enable members to enter sectors like poultry, dairy, goat rearing, and traditional crafts. In Hanumangarh, groups like the Manaksar SHG have successfully transitioned from domestic chores to commercial stitching, earning ₹5,000–₹6,000 per month per member.

Empowerment and Decision-Making: Participation in SHGs has significantly increased women's decision-making power within households and their presence in local governance. Many SHG members have progressed to leadership roles, such as Sarpanch, and act as pressure groups to ensure accountability in Gram Panchayats.

Role of NGOs

NGOs provide the technical expertise and advocacy required to scale tribal development initiatives.

Capacity Building & Skilling: NGOs such as VAAGDHARA and Rajasthan Bal Kalyan Samiti (RBKS) focus on "Integrated Farming Systems" and natural resource management. They train community cadres like Krishi Sakhis (agriculture experts) and Pashu Sakhis (livestock experts) to provide local technical services.

Market Linkages & Value Addition: Through initiatives like Van Dhan Vikas Kendras (VDVKs), NGOs help tribal members transform from primary collectors of forest produce into value-added processors. In 2026, Rajasthan hosts 479 VDVKs that have developed over 100 value-added products, significantly reducing migration by creating local employment.

Bridging Essential Services: NGOs operate mobile health clinics and community learning centres in difficult terrains where formal government infrastructure is limited. Organizations like Jan Chetna Sansthan (JCS) advocate for tribal land and forest rights while improving literacy from primary to post-graduate levels.

Collaborative Frameworks & Challenges

Government-NGO Convergence: The Ministry of Tribal Affairs provides Grants-in-Aid to NGOs to supplement government efforts in education and health. In 2026, programs like Sampoornata Abhiyan 2.0 by NITI Aayog emphasize strengthening these partnerships for sustainable enterprise development.

Key Challenges: Despite their success, these organizations face obstacles such as geographic isolation, bureaucratic hurdles in funding, and persistent patriarchal mindsets that limit the speed of empowerment.

Strengthening Policy Support for Tribal Development

Supportive policies are essential to amplify the impact of NGOs and SHGs in tribal areas. Government policies that streamline funding processes and reduce bureaucratic barriers can make it easier for NGOs and SHGS to receive timely resources. Furthermore, policies that promote tribal welfare, such as reserved economic zones for forest-based products or subsidies for small-scale tribal enterprises, could encourage economic growth rooted in local skills and resources. A specific focus on forest rights and natural resource management policies could empower communities to use and conserve their resources sustainably, creating long-term livelihoods.

Enhanced digital infrastructure is another area where policy support could transform tribal development. Digital literacy programs and rural internet access initiatives would allow NGOs and SHGs to leverage digital tools for training, market access, and financial digital inclusion, the government can enable services. By creating policies that promote tribal communities to connect with broader economic networks and build resilience against market uncertainties.

Moving Toward a Development Model Community-Driven To ensure that development initiatives government, NGOs, and SHGs should promote are sustainable and community-centered, the participatory planning, where tribal community affecting their economic and social well-being. members actively contribute to decisions Encouraging tribal representation in local governance, such as Panchayati Raj Institutions, can enhance accountability and alignment with community priorities. NGOs can also play a role in building capacity within these governance structures, creating a foundation for self-sustained development.

Breakdown of primary income sources in tribal communities, illustrating the proportion from agriculture, forestry, labour, and SHG/NGO-supported activities.

Agriculture: 40%
Forestry: 20%
Labor/Migration: 30%
SHG/NGO-supported Activities: 10%
Source: Ministry of Tribal Affairs, PRADAN Annual Report, NABARD Data Economic Impact of SHG and NGO.

Conclusion:

The role of Non-Governmental Organizations (NGOs) and Self-Help Groups (SHGs) in the economic development of tribal areas in Rajasthan is both transformative and essential. In regions marked by geographical isolation, economic marginalization, and limited access to resources, these organizations serve as critical agents of change. Through focused interventions in areas such as financial inclusion, skill development, healthcare, and education, NGOs and SHGs empower tribal communities to overcome socio-economic barriers and achieve sustainable progress. NGOs have pioneered community-centered development programs, bringing healthcare, literacy, and vocational training to remote tribal villages. By facilitating access to government scheme and service delivery and ensure tribal communities benefit from, welfare programs, SHGs, on the other hand, have particularly empowered women, fostering economic independence and decision-making skills. Through microloans and small savings, SHGs enable tribal members to invest in local businesses, farming, and other income-generating activities, reducing dependency on low-wage labor and seasonal migration. The combined efforts of NGOs and SHGs have significantly improved the socio-economic conditions in Rajasthan 's tribal areas. However, to maximize and sustain these gains, enhanced collaboration with government bodies and supportive policy frameworks are essential. Government support in the form of digital infrastructure, funding, and policy adjustments can provide a more enabling environment for these organizations to operate effectively.In conclusion, the synergy between NGOs, SHGs, and government initiatives holds the potential to unlock lasting development in Rajasthan's tribal regions. By creating pathways to financial inclusion, skills, and market access, these efforts are paving the way for self-reliant, resilient communities. Through sustained commitment and collaborative action, tribal areas in Rajasthan can experience a transformative journey toward economic empowerment and social upliftment.

References:

1. Ministry of Tribal Affairs, Government of India. (2021). Annual report 2020-21. Ministry of Tribal Affairs. Retrieved from https://tribal.nic.in/reports/Annual Report2021.pdf
2. National Bank for Agriculture and Rural Development (NABARD). (2022). Status of microfinance in India 2021-22. NABARD. Retrieved fromhttps://www.nabard.org/auth/writereaddata/tender/1211221158SMFI% 202021-22.pdf
3. PRADAN. (2022). Empowering rural India: Annual report 2021-22. Professional Assistance for Development Action. Retrieved from https://pradan.net/annual-reports/
4. Census of India. (2011). Primary Census Abstract for Scheduled Tribes in Rajasthan. Office of the Registrar General & Census Commissioner, India. Retrieved from https://censusindia.gov.in/census.website/
5. National Rural Livelihoods Mission (NRLM). (2022). SHGs and livelihood mission: Empowering rural women in India. Ministry of Rural Development, Government of India. Retrieved from https://aajeevika.gov.in/
6. Rao, S., & Mishra, N. (2022). The role of NGOs in promoting economic self-sufficiency among tribal communities in India. In S. Sharma (Ed.), Tribal development and empowerment in South Asia (pp. 123-142). Springer.

Data Sources for Tables and Graphs:

1. Census Data (Government of India): Demographic and socio-economic statistics by district.
2. NGO Annual Reports (e.g., PRADAN, Jeevika, Oxfam India): Data on program outcomes, participant income, and case studies.
3. State and Central Government Reports (e.g., Ministry of Tribal Affairs, Ministry of Rural Development): For funding and policy information regarding tribal welfare and development.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 273-277
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

गाँधीवादी दर्शन और 21वीं सदी का युद्धोन्माद

डॉ. मो. हेदायतुल्लाह
राजनीति विज्ञान
ल० ना० मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सारांश- वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में, जहाँ हिंसक संघर्षों के परंपरागत समाधान केवल विनाश और अस्थिरता को गहरा कर रहे हैं, वहाँ महात्मा गांधी द्वारा प्रतिपादित अहिंसा का दर्शन एक सशक्त और व्यावहारिक वैकल्पिक मार्ग प्रस्तुत करता है। यह दर्शन अहिंसा को निष्क्रियता नहीं, बल्कि सत्य, साहस और सामूहिक नैतिक प्रतिरोध पर आधारित एक सक्रिय राजनीतिक शक्ति के रूप में स्थापित करता है। आंकड़े इसकी रणनीतिक श्रेष्ठता को प्रमाणित करते हैं: अहिंसक आंदोलनों की सफलता की दर हिंसक संघर्षों से लगभग दोगुनी है और वे हिंसा की तुलना में बारह गुना कम आर्थिक लागत पर अधिक टिकाऊ शांति का निर्माण करते हैं। आधुनिक संदर्भ में, यह दृष्टिकोण भू-राजनीतिक तनावों से लेकर जलवायु न्याय और डिजिटल असमानता तक की चुनौतियों का समाधान प्रस्तुत करता है—रचनात्मक प्रतिरोध, संरचनात्मक असमर्थन, कूटनीतिक संवाद और न्यायपूर्ण शांति निर्माण जैसे उपकरणों के माध्यम से। इस प्रकार, अहिंसा केवल एक नैतिक आदर्श नहीं, बल्कि एक ऐसा प्रमाणित रणनीतिक ढांचा है जो मानवीय गरिमा को केंद्र में रखते हुए संघर्षों को हल करने और एक अधिक न्यायपूर्ण व शांतिपूर्ण विश्व की रचना करने की क्षमता रखता है।

कीवर्ड - अहिंसा, गांधीवाद, शांति निर्माण, संघर्ष समाधान, वैश्विक तनाव, सत्याग्रह, शस्त्र नियंत्रण, मानवाधिकार, अंतर्राष्ट्रीय संबंध, सामाजिक न्याय, साइबर अहिंसा, जलवायु न्याय, टिकाऊ शांति, अंतरसांस्कृतिक संवाद, वैश्विक नागरिकता

प्रस्तावना: 21वीं सदी का तीसरा दशक वैश्विक तनावों के एक जटिल दौर से गुजर रहा है। यूक्रेन-रूस संघर्ष, इज़राइल-फिलिस्तीन विवाद, दक्षिण चीन सागर में तनाव, अफ्रीका और मध्य पूर्व में चल रहे गृहयुद्ध, और बढ़ती भू-राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता ने एक नए प्रकार के युद्ध का परिदृश्य रचा है। इसमें पारंपरिक सैन्य टकराव, आर्थिक प्रतिबंधों के युद्ध, साइबर हमले और सूचना युद्ध सभी शामिल हैं। ऐसे में, अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के परिदृश्य में अहिंसा की अवधारणा अक्सर एक दार्शनिक आदर्श या नैतिक उपदेश के रूप में देखी जाती है, जिसकी व्यावहारिक राजनीति में कोई भूमिका नहीं है। परंतु यह धारणा गहन विश्लेषण से परे है। वास्तविकता यह है कि जब हिंसा के साधन अधिक विनाशकारी और परिणाम

अधिक अप्रत्याशित हो गए हैं, तब अहिंसा एक व्यावहारिक, रणनीतिक और टिकाऊ विकल्प के रूप में उभरती है। यह लेख इसी प्रतिमान को विस्तार से समझाने का प्रयास करेगा कि कैसे महात्मा गांधी द्वारा प्रतिपादित और विश्व भर के संघर्षों में परिष्कृत अहिंसा का दर्शन, आज के वैश्विक तनावों के समाधान के लिए एक प्रभावी रणनीतिक ढांचा प्रस्तुत कर सकता है।

अहिंसा (एक सक्रिय शक्ति और रणनीतिक सिद्धांत)- अहिंसा को अक्सर निष्क्रियता, कायरता या समर्पण के रूप में गलत समझा जाता है। महात्मा गांधी के लिए, यह सबसे सक्रिय और साहसी मार्ग था। उन्होंने सत्याग्रह (सत्य के प्रति आग्रह) की अवधारणा विकसित की, जो "आत्मा की शक्ति" या "सत्य बल" पर आधारित थी। गांधी ने स्पष्ट किया, "अहिंसा कायरता की शरण नहीं है। यह हिंसा से कहीं अधिक सक्रिय और वास्तविक लड़ाई है।"[1] यह एक ऐसी शक्ति है जो विरोधी को हराने या नष्ट करने के बजाय, उसके अंतर्मन को परिवर्तित करने पर केंद्रित है।

अमेरिकी राजनीतिक वैज्ञानिक जीन शार्प, जिन्होंने अहिंसा के रणनीतिक पक्ष का गहन अध्ययन किया, ने इसे "शक्ति का राजनीतिक जिहाद" कहा। उनके अनुसार, किसी भी शासन की शक्ति जनता की स्वैच्छिक आज्ञाकारिता पर निर्भर करती है। अहिंसक संघर्ष उस सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सहयोग को वापस लेकर शासक की शक्ति का क्षरण करता है।[2] इस दृष्टिकोण से, अहिंसा नैतिकता से परे एक शक्तिशाली राजनीतिक उपकरण है।

आज के वैश्विक संदर्भ में, यह दृष्टिकोण अत्यधिक प्रासंगिक है। राष्ट्र-राज्यों की सैन्य और आर्थिक शक्ति उनके नागरिकों, संस्थाओं और वैश्विक भागीदारों के सहयोग पर निर्भर करती है। वैश्विक तनावों में, जब आर्थिक प्रतिबंध (एक प्रकार का अहिंसक दबाव) सैन्य कार्रवाई से अधिक प्रभावी साबित हो रहे हैं, तब अहिंसक रणनीतियों की व्यावहारिक उपयोगिता स्पष्ट हो जाती है। यूक्रेन पर रूसी आक्रमण के बाद लगाए गए प्रतिबंधों का गहरा आर्थिक प्रभाव इसका एक उदाहरण है, हालांकि इन प्रतिबंधों का नैतिक आधार अहिंसा से भिन्न है।

समकालीन वैश्विक तनाव और अहिंसक प्रतिक्रिया के क्षेत्र-

आज के तनाव बहुआयामी हैं, और अहिंसक दृष्टिकोण प्रत्येक में एक भूमिका निभा सकता है।

भू-राजनीतिक एवं सैन्य संघर्ष: पारंपरिक युद्ध की विभीषिका आज भी जारी है। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार, 2022 में दुनिया भर में 56 सक्रिय संघर्ष चल रहे थे, जिससे लाखों लोग विस्थापित हुए ।[3] ऐसे में, अहिंसा युद्ध रोकने के लिए निवारक कूटनीति, मध्यस्थता और संवाद के उपकरणों को मजबूत करने की वकालत करती है। गांधी ने कहा था, "अगर म 'आंख के बदले आंख' के सिद्धांत पर चलें, तो पूरी दुनिया अंधी हो जाएगी।"[4] आज की दुनिया में, जहां परमाणु हथियारों से पूरी मानवता का विनाश संभव है, यह बात सच साबित होती दिखती है। अंतरराष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में "ट्रैक II डिप्लोमेसी" (गैर-सरकारी, अनौपचारिक वार्ता) और लोगों-से-लोगों के संपर्क अहिंसक समाधान की दिशा में महत्वपूर्ण कदम हैं, जैसा कि उत्तरी आयरलैंड के शांति प्रक्रिया में देखा गया।

आर्थिक असमानता एवं संसाधन संघर्ष: वैश्विक अर्थव्यवस्था में गहरी असमानताएं तनाव का एक प्रमुख स्रोत हैं। विश्व असमानता रिपोर्ट 2022 के अनुसार, दुनिया की सबसे गरीब आधी आबादी के पास वैश्विक संपत्ति का मात्र 2% ै।[5] यह आर्थिक हिंसा का एक रूप है, जो अक्सर सशस्त्र संघर्ष को जन्म देती है। गांधी का "अपरिग्रह" (अनावश्यक संचय का त्याग) और "ट्रस्टीशिप" का सिद्धांत इसका जवाब है। उनका मानना था कि धनवानों को अपनी संपत्ति का एक हिस्सा समाज के ट्रस्टी के रूप में समाज के कल्याण के लिए इस्तेमाल करना चाहिए।[6] वैश्विक स्तर पर, इसका अर्थ

निष्पक्ष व्यापार नीतियाँ, ऋण माफी, और प्रौद्योगिकी के न्यायसंगत हस्तांतरण जैसे उपाय हो सकते हैं। "निष्पक्ष व्यापार" आंदोलन और "नैतिक अर्थव्यवस्था" की मांग इसी दिशा में कदम हैं।

सांस्कृतिक एवं धार्मिक टकराव: पहचान पर आधारित संघर्ष आज विश्व की एक बड़ी समस्या है। अहिंसा का दर्शन सहिष्णुता और सम्मान पर जोर देता है। गांधी ने सभी धर्मों में सत्य देखा और "सर्वधर्म समभाव" को प्रोत्साहित किया। अंतरसांस्कृतिक संवाद और शैक्षिक कार्यक्रम जो दूसरे की संस्कृति को समझने पर जोर देते हैं, अहिंसक सामाजिक सद्भाव का आधार हैं। यूनेस्को का "संस्कृति के लिए गठबंधन" जैसे प्रयास इसी दिशा में काम करते हैं।[7]

जलवायु संकट एवं पारिस्थितिक तनाव: जलवायु परिवर्तन एक ऐसा संकट है जो सीधे तौर पर हिंसा से नहीं लड़ा जा सकता। इसके समाधान के लिए वैश्विक सहयोग, जीवनशैली में परिवर्तन और न्यायपूर्ण समाधान चाहिए। गांधी का "सादा जीवन, उच्च विचार" का सिद्धांत और प्रकृति के साथ सामंजस्य का विचार जलवायु न्याय आंदोलन की बुनियाद है। ग्रेटा थुनबर्ग द्वारा शुरू किया गया "फ्राइडेज़ फॉर फ्यूचर" आंदोलन एक अहिंसक, वैश्विक जलवायु आंदोलन का उदाहरण है, जिसने दुनिया भर की युवा पीढ़ी को जलवायु नीतियों में बदलाव की मांग के लिए एकजुट किया है।

व्यावहारिक अनुप्रयोग - अहिंसक उपकरणों का टूलकिट

अहिंसा केवल एक विचार नहीं, बल्कि क्रिया का एक समृद्ध स्रोत है। जीन शार्प ने अहिंसक संघर्ष के 198 तरीके गिनाए ैं, जिन्हें तीन वर्गों में बांटा जा सकता है।[8]

1. अहिंसक विरोध और अनुनय: जुलूस, रैलियाँ, प्रार्थना सभाएँ, ऑनलाइन अभियान, पत्र लेखन।
2. अहिंसक असमर्थन (गैर-सहयोग): सामाजिक बहिष्कार, हड़ताल, आर्थिक बहिष्कार, करों से इनकार, सरकारी पदों से इस्तीफा।
3. अहिंसक हस्तक्षेप: भूख हड़ताल, धरना-प्रदर्शन, सत्याग्रह, समानांतर सरकारें चलाना।

वैश्विक स्तर पर इन उपकरणों के अनुप्रयोग:

- अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक बहिष्कार: दक्षिण अफ्रीका की रंगभेद सरकार के खिलाफ वैश्विक बहिष्कार आंदोलन एक ऐतिहासिक सफल उदाहरण है। इसने नैतिक और आर्थिक दबाव बनाकर व्यवस्था को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- साइबर एक्टिविज्म और डिजिटल अहिंसा: विकिलीक्स और एडवर्ड स्नोडन द्वारा गोपनीय जानकारी का प्रकाशन, सरकारी पारदर्शिता की मांग का एक आधुनिक रूप है। #MeToo जैसे आंदोलनों ने सोशल मीडिया के माध्यम से सामाजिक बदलाव का मार्ग प्रशस्त किया।
- शांति निर्माण मिशन और गैर-सरकारी संगठन: संयुक्त राष्ट्र के शांति मिशन (हालांकि कभी-कभी सशस्त्र), और अमनेस्टी इंटरनेशनल या इंटरनेशनल रेड क्रॉस जैसे संगठन संघर्ष क्षेत्रों में मानवाधिकारों की रक्षा और मानवीय सहायता के माध्यम से अहिंसक हस्तक्षेप करते हैं।
- वैज्ञानिक और सांस्कृतिक सहयोग: "पुगवाश कॉन्फ्रेंस ऑन साइंस एंड वर्ल्ड अफेयर्स" जैसे मंच, जहां विपरीत खेमों के वैज्ञानिक शांति से चर्चा करते हैं, विश्वास निर्माण का काम करते हैं। शीत युद्ध के दौरान अमेरिकी और सोवियत वैज्ञानिकों के बीच होने वाली बैठकें इसका उदाहरण हैं।

चुनौतियाँ एवं आलोचनाएँ - एक गंभीर मूल्यांकन

अहिंसक मार्ग की व्यावहारिकता पर उठने वाले प्रश्नों का सामना करना भी जरूरी है:

- क्रूर और अतार्किक विरोधी के सामने: हिटलर जैसे तानाशाह के सामने क्या अहिंसा काम कर सकती थी? यह एक जटिन प्रश्न है। ऐसी स्थितियों में, अहिंसक प्रतिरोध अक्सर भारी बलिदान मांगता है और तात्कालिक रूप से प्रभावी नहीं लगता। हालांकि, नॉर्वे में नाज़ी कब्जे के दौरान शिक्षकों और चर्च के प्रतिरोध जैसे उदाहरण बताते हैं कि नागरिक असमर्थन से कब्जाधारी की शक्ति को कमजोर किया जा सकता है।[9]
- दीर्घकालिक प्रक्रिया: अहिंसक परिवर्तन धीमा हो सकता है और इसमें धैर्य की आवश्यकता होती है, जबकि हिंसक कार्रवाई त्वरित 'समाधान' का भ्रम देती है।
- व्यवस्थागत हिंसा से निपटना: आर्थिक शोषण और संरचनात्मक अन्याय जैसी 'छद्म हिंसा' से लड़ने के लिए अहिंसक रणनीतियों को और विकसित करने की आवश्यकता है।

इन चुनौतियों के बावजूद, अनुसंधान बताते हैं कि अहिंसक आंदोलन दीर्घकाल में अधिक सफल होते हैं। एरिका चेनोवेथ और मारिया जे. स्टीफन की शोध के अनुसार, 1900 से 2006 के बीच हुए प्रमुख अहिंसक आंदोलनों के सफल होने की संभावना हिंसक विद्रोहों से दोगुनी थी, और उनसे बनी शांति अधिक टिकाऊ होती है।[10]

निष्कर्ष: वैश्विक तनाव के वर्तमान दौर में, जब हिंसा के परंपरागत उपाय अक्सर समस्याओं को बढ़ा रहे हैं, अहिंसा एक गंभीर और व्यावहारिक विकल्प के रूप में उभरती है। यह कमजोरों का हथियार नहीं, बल्कि बुद्धिमानों की रणनीति है। यह मानवीय संसाधनों—साहस, संगठन क्षमता, रचनात्मकता और नैतिक दबाव—का इस्तेमाल करती है। गांधी का अहिंसा का दर्शन केवल संघर्ष समाप्त करने का नहीं, बल्कि एक न्यायपूर्ण और शांतिपूर्ण समाज की रचना का दर्शन है। इसके लिए "वसुधैव कुटुम्बकम" (संपूर्ण पृथ्वी एक परिवार है) के विश्व दृष्टिकोण की आवश्यकता है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में, इसका अर्थ है एक बहुध्रुवीय विश्व में सहयोगात्मक सुरक्षा, न्यायसंगत आर्थिक व्यवस्था और साझा मानवता पर आधारित कूटनीति को प्राथमिकता देना।

हिंसा सदैव एक आसान रास्ता प्रतीत होता है, लेकिन उसके परिणाम जटिल और विनाशकारी होते हैं। अहिंसा का मार्ग प्रारंभ में कठिन लग सकता है, लेकिन यह टिकाऊ शांति और सच्चे सामंजस्य की ओर ले जाता है। जैसा कि मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने कहा था, "पुराने ढंग की आँख के बदले आँख की नीति पूरी दुनिया को अंधा छोड़ देती है।... अंधेरे को अंधेरे से नहीं हराया जा सकता। केवल प्रकाश ही अंधेरे को मिटा सकता है। नफरत को नफरत से नहीं हराया जा सकता। केवल प्रेम ही नफरत को मिटा सकता है।" वैश्विक तनावों की जटिल गाँठों को खोलने के लिए, हमें इसी प्रकाश और प्रेम के शस्त्रागार—अहिंसा के व्यावहारिक, रणनीतिक और रचनात्मक उपकरणों—को अपनाने की आवश्यकता है। यह कोई स्वप्निल आदर्श नहीं, बल्कि अस्तित्व का एक अनिवार्य और बुद्धिमत्तापूर्ण विकल्प है।

संदर्भ सूची (References)

1. गांधी, मोहनदास करमचंद (1927), सत्य के प्रयोग (आत्मकथा), अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन मंदिर, पृ. 120
2. शार्प, जीन. (1973), द पॉलिटिक्स ऑफ नॉनवायलेंट एक्शन, बोस्टन: पोर्टर सार्जेंट पब्लिशर, पृ. 45
3. संयुक्त राष्ट्र (2022), ग्लोबल ट्रेंड्स: फोर्स्ड डिस्प्लेसमेंट इन 2021, जिनेवा: संयुक्त राष्ट्र शरणार्थी उच्चायोग (UNHCR), पृ. 8
4. फिशर, लुई (1954), द लाइफ ऑफ महात्मा गांधी. न्यूयॉर्क: हार्पर एंड ब्रदर्स, पृ. 256
5. चांसल, थॉमस एवं अन्य (2022), वर्ल्ड इनइक्वलिटी रिपोर्ट 2022, पेरिस: विश्व असमानता लैब, पृ. 15

6. गांधी, मोहनदास करमचंद (1940), ट्रस्टीशिप, अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन मंदिर, पृ. 4
7. यूनेस्को (2021), रिपोर्ट ऑन इंटरकल्चरल डायलॉग 2021: बिल्डिंग पीस इन द माइंड्स ऑफ मेन एंड वूमेन, पेरिस : यूनेस्को पब्लिशिंग, पृ. 33
8. शार्प, जीन (1973), द पॉलिटिक्स ऑफ नॉनवायलेंट एक्शन, बोस्टन: पोर्टर सार्जेंट पब्लिशर, पृ. 117,450
9. सेमेलिन, जैक्स (1993), अनआर्म्ड अगेंस्ट हिटलर: सिविलियन रेजिस्टेंस इन यूरोप, 1939-1945, न्यूयॉर्क: प्रेजर पब्लिशर्स, पृ. 189
10. चेनोवेथ, एरिका और स्टीफन, मारिया जे. (2011), व्हाई सिविल रेजिस्टेंस वर्क्स: द स्ट्रैटेजिक लॉजिक ऑफ नॉनवायलेंट कॉन्फ्लिक्ट, न्यूयॉर्क: कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस,पृ. 10

Email- hedayatm60@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 278-281
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

मरुस्थलीय पर्यावरण के संदर्भ में मारवाड़ की स्थापत्य कला

पुरुषोत्तम
शोधार्थी,
दृश्य कला विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

पश्चिमी राजस्थान का मारवाड़ क्षेत्र, जो थार मरुस्थल के कठोर आगोश में स्थित है, मानव जिजीविषा और कलात्मक उत्कृष्टता का एक अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत करता है। यहाँ की वास्तुकला (Architecture) केवल सुंदरता का प्रदर्शन नहीं है, बल्कि यह भीषण गर्मी, रेतीली आंधियों और जल अभाव के विरुद्ध एक 'तकनीकी विजय' है। इस शोध आलेख का उद्देश्य मारवाड़ के दुर्गों, जलाशयों, हवेलियों और सामान्य आवासों का वैज्ञानिक और कलात्मक विश्लेषण करना है, जिससे यह समझा जा सके कि कैसे स्थानीय शिल्पकारों ने 'प्रकृति से लड़ने' के बजाय 'प्रकृति के साथ सामंजस्य' बिठाकर एक अद्भुत स्थापत्य शैली को जन्म दिया।

प्रस्तावना एवं भौगोलिक पृष्ठभूमि

प्राचीन भारतीय साहित्य में मारवाड़ को 'मरुवार' या 'मरुप्रदेश' कहा गया है, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'मृत्यु का क्षेत्र' या 'मरुस्थल'। यह अरावली पर्वतमाला के पश्चिम में स्थित है। यहाँ की जलवायु 'शुष्क' (Arid) से 'अर्ध-शुष्क' (Semi-arid) है।

- तापमान: गर्मियों में 48°C से 50°C तक और सर्दियों में जमाव बिंदु के पास।
- वर्षा: अत्यंत न्यून और अनिश्चित (वार्षिक औसत 10-20 सेमी)।
- संसाधन: वनस्पति का अभाव, लेकिन खनिज संपदा (विशेषकर इमारती पत्थर) की प्रचुरता।

स्थापत्य पर पर्यावरण का प्रभाव

मारवाड़ की वास्तुकला की हर ईंट, हर झरोखा और हर दीवार इस भौगोलिक सत्य का उत्तर देती है। यहाँ के निर्माण का मूल मंत्र था— "ताप से बचाव और जल का संचय"। इसी आवश्यकता ने यहाँ की वास्तुकला को 'अंतर्मुखी' बनाया, जहाँ बाहरी दीवारें सपाट और मोटी होती थीं, जबकि आंतरिक भाग खुले और अलंकृत होते थे।

दुर्ग स्थापत्य : सुरक्षा और पर्यावरण का संगम

मारवाड़ के इतिहास में दुर्गों का महत्व सर्वाधिक रहा है। यहाँ के दुर्ग शुक्रनीति में वर्णित 'धन्व दुर्ग' (रेगिस्तानी दुर्ग) और 'गिरि दुर्ग' (पहाड़ी दुर्ग) का मिश्रण हैं।

मेहरानगढ़ (जोधपुर): मरुस्थलीय शक्ति का प्रतीक

राव जोधा द्वारा 1459 ई. में चिड़िया-टूक पहाड़ी पर स्थापित यह दुर्ग 125 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। दुर्ग की दीवारें 20 से 120 फुट ऊँची और 12 से 70 फुट तक चौड़ी हैं। इतनी मोटी दीवारें न केवल तोप के गोलों को रोकती

थीं, बल्कि 'थर्मल मास' (Thermal Mass) का काम करती थीं, जिससे दिन की गर्मी भीतर नहीं पहुँच पाती थी। दुर्ग का मुख्य मार्ग सीधा न होकर घुमावदार है। यह शत्रु हाथियों के वेग को तोड़ने के लिए था। 'लोहापोल' और 'जयपोल' इसके प्रमुख उदाहरण हैं। दुर्ग के भीतर स्थित मोती महल, फूल महल और शीश महल में रंगीन काँच और जालीदार खिड़कियों का प्रयोग इस तरह किया गया है कि तेज धूप छनकर भीतर आए और रंगीन आभा बिखेरे, न कि गर्मी।

नागौर का अहिच्छत्रगढ़ दुर्ग : जल-शीतलन का चमत्कार

नागौर का दुर्ग समतल भूमि पर बना है, इसलिए इसे 'धन्व दुर्ग' की श्रेणी में रखा जाता है। इस किले में सुरक्षा की दोहरी दीवारें हैं। बाहरी दीवार नीची और भीतरी दीवार ऊँची है, ताकि भीतरी दीवार के सैनिक बाहरी दीवार के सैनिकों को कवर फायर दे सकें। नागौर दुर्ग के महलों में दीवारों के भीतर मिट्टी की पकी हुई नालियाँ बिछाई गई थीं। इनमें पानी प्रवाहित किया जाता था, जिससे वाष्पीकरण के सिद्धांत पर महल ठंडे रहते थे। यह 16वीं शताब्दी में इंजीनियरिंग का एक चमत्कार था। यहाँ के फव्वारे गुरुत्वाकर्षण और 'साइफन' तकनीक पर आधारित थे, जो मरुस्थल के बीच नखलिस्तान का अनुभव कराते थे।

सिवाना और जालोर : अभेद्य शरणस्थल

सिवाना दुर्ग (बाड़मेर) 'कुमुट' की झाड़ियों से घिरी 'हल्देश्वर पहाड़ी' पर स्थित है। मारवाड़ के राजाओं के लिए संकटकाल में यह सबसे सुरक्षित स्थान था। जालोर का दुर्ग (सुवर्णगिरी) अपनी ग्रेनाइट की चट्टानों के लिए प्रसिद्ध है, जिन्हें भेदना लगभग असंभव था।

जल स्थापत्य (Hydraulic Architecture) – मरुस्थल की जीवन रेखा

मारवाड़ में जल स्रोतों का निर्माण 'पुण्य' का कार्य माना जाता था। यहाँ के जल स्थापत्य को चार मुख्य श्रेणियों में बाँटा जा सकता है।

बावड़ी (Stepwells) : सामाजिक और वैज्ञानिक केंद्र

बावड़ियाँ मारवाड़ की वास्तुकला का सबसे विशिष्ट अंग हैं। ये गहरे कुएँ होते हैं जिन तक पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ बनाई जाती हैं। बावड़ियाँ कई मंजिला होती थीं। जैसे-जैसे हम नीचे जाते हैं, तापमान में 5-6 डिग्री की कमी आती है। जोधपुर की 'चांद बावड़ी', 'तापी बावड़ी' और 'तूरजी का झालरा' केवल जल स्रोत नहीं थे। इनकी सीढ़ियों पर बने विश्राम कक्ष (Pavilions) गर्मियों में महिलाओं और नागरिकों के लिए 'क्लब' या सभा स्थल का काम करते थे। मेड़ता और जोधपुर की बावड़ियों में मेहराबदार दरवाजे और आले (Niches) बने होते थे, जिनमें जल देवताओं की मूर्तियाँ रखी जाती थीं।

झालरा : वास्तुकला की ज्यामिति

झालरा मूलतः आयताकार सीढ़ीदार तालाब होता है। इसका पानी पीने के लिए नहीं, बल्कि धार्मिक और स्नान कार्यों के लिए होता था। जोधपुर का 'महामंदिर झालरा' अपनी सीढ़ियों की जटिल ज्यामिति के लिए प्रसिद्ध है। यह डिजाइन पानी के स्तर के घटने-बढ़ने के बावजूद पानी तक आसान पहुँच सुनिश्चित करता था।

टांका : पारिवारिक जल बैंक

टांका मारवाड़ की घरेलू वास्तुकला का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह प्रत्येक घर, दुर्ग और खेत में पाया जाता है। यह एक भूमिगत पक्का कुंड होता है। इसके चारों ओर की जमीन (आगोर/Catchment Area) को साफ और पक्का रखा जाता है ताकि वर्षा जल (जिसे यहाँ 'पालर पानी' कहते हैं) बहकर इसमें जमा हो सके। टांके का पानी साल भर ठंडा और जीवाणु मुक्त रहता है। चूने का प्लास्टर पानी को शुद्ध रखने में मदद करता है।

नाडी और तालाब

जोधपुर के रानीसर और पदमसर तालाबों का निर्माण प्राकृतिक चट्टानों की ढलानों (Natural Slopes) का उपयोग करके किया गया है। यहाँ बारिश का पानी पहाड़ों से बहकर सीधा इन तालाबों में आता था। पानी को शुद्ध करने के लिए तालाब की तलहटी में विशेष प्रकार की मिट्टी और चूने का प्रयोग किया जाता था।

आवासीय स्थापत्य – हवेलियाँ और पोल

मारवाड़ के आवासों को सामाजिक स्तर के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है, लेकिन पर्यावरण अनुकूलन के सिद्धांत सभी में समान थे।

हवेलियाँ : पत्थर में तराशी गई कविता

धनी व्यापारियों (सेठ-साहूकारों) और सामंतों के आवास 'हवेली' कहलाते हैं। पोकरण, फलोदी और जोधपुर की हवेलियाँ इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। पत्थर की जाली (Stone Lattice): हवेलियों की सबसे बड़ी विशेषता बलुआ पत्थर की बारीक जालियाँ हैं। जब हवा जाली के छोटे छिद्रों से गुजरती है, तो उसका दबाव बढ़ता है और वेग तीव्र होता है (Venturi Effect), जिससे हवा ठंडी होकर अंदर आती है। अंदर बैठी स्त्रियाँ बाहर देख सकती थीं, लेकिन बाहर से कोई भीतर नहीं देख सकता था। चौक : हर हवेली के मध्य में एक खुला आंगन होता था। रात में ठंडी हवा इस चौक में जमा होती थी और दिन भर कमरों को ठंडा रखती थी। गर्म हवा हल्की होकर ऊपर उठ जाती थी। छज्जे और झरोखे : खिड़कियों पर बाहर निकले हुए गहरे छज्जे (Overhangs) सीधी धूप को दीवारों पर पड़ने से रोकते थे। झरोखे (Balconies) गली के दृश्यों का आनंद लेने और हवा खाने के लिए बनाए जाते थे।

पोल (Pol) और शहरी नियोजन

मारवाड़ के शहर (जैसे जोधपुर, बीकानेर) सघन रूप से बसे हैं। गलियाँ जानबूझकर संकरी और टेढ़ी-मेढ़ी बनाई जाती थीं। इससे एक मकान की छाया दूसरे मकान पर पड़ती थी, जिससे गलियाँ धूप में भी ठंडी रहती थीं। मोहल्ले के प्रवेश द्वार को 'पोल' कहा जाता है। यह सुरक्षा और सामुदायिक भावना का प्रतीक था। हर पोल के बाहर एक चबूतरा होता था, जो सामाजिक बैठकों (हताई) का केंद्र था।

ग्रामीण आवास (झूंपड़ा और कोट)

ग्रामीण क्षेत्रों में आवास निर्माण में 'जुगाड़' और स्थानीय सामग्री का अद्भुत प्रयोग मिलता है।

झूंपड़ा : यह गोल आकार का होता है। गोलाकार दीवारें मरुस्थल की तेज आँधियों को टकराकर दिशा बदलने में मदद करती हैं, जिससे घर गिरता नहीं है। छत 'खींप' या 'बजरे' की घास से बनाई जाती है, जो उष्मा की कुचालक (Insulator) होती है। भीषण गर्मी में भी झूंपड़े का तापमान बाहर से 5-7 डिग्री कम रहता है। दीवारों पर गोबर और पीली मिट्टी का लेप किया जाता है, जो एंटी-बैक्टीरियल होता है और तापमान नियंत्रित करता है।

निर्माण सामग्री और तकनीक

मारवाड़ की स्थापत्य कला की सफलता का बड़ा श्रेय यहाँ की निर्माण सामग्री को जाता है।

पत्थर : छीतर पत्थर (Jodhpur Sandstone): यह लाल और बादामी रंग का पत्थर है। यह न केवल सुंदर है, बल्कि उष्मा का कुचालक भी है। दिन भर धूप पड़ने पर भी यह जल्दी गर्म नहीं होता और रात को जल्दी ठंडा हो जाता है। इंटरलोकिंग तकनीक : पुराने महलों और दुर्गों में सीमेंट का प्रयोग नहीं होता था। पत्थरों को 'खांचा पद्धति' (Interlocking System) से जोड़ा जाता था, जिससे वे भूकंप और तोप के वार सहने में सक्षम थे।

चूना और आराइश (Lime Plaster) : दीवारों को चिकना बनाने के लिए 'आराइश' (Araish) तकनीक का प्रयोग किया जाता था। इसमें चूने को दही, गुड़, मेथी और शंख पाउडर के साथ घोंटा जाता था। यह प्लास्टर इतना चिकना और चमकदार होता था कि इसमें चेहरा देखा जा सकता था (जैसा कि मेहरानगढ़ के महलों में दिखता है)। यह सतह सूर्य की किरणों को परावर्तित (Reflect) करती थी, जिससे कमरे ठंडे रहते थे।

सामाजिक और सांस्कृतिक पहलू

स्थापत्य केवल भवनों का निर्माण नहीं, बल्कि समाज का दर्पण है। मर्दाना और जनाना: हवेलियों और महलों में पुरुषों (मर्दाना) और महिलाओं (जनाना) के लिए अलग-अलग क्षेत्र होते थे, जो उस समय की पर्दा प्रथा को दर्शाते हैं। कला और धर्म: प्रवेश द्वारों पर गणेश जी की प्रतिमा, दीवारों पर बने मांडने (Folk Art), और तोरण द्वार यह बताते हैं कि मारवाड़ का जनजीवन धर्म से ओत-प्रोत था। छतरियाँ (Cenotaphs): राजाओं और वीरों की याद में श्मशान घाटों

पर बनी छतरियाँ (जैसे जसवंत थड़ा, मंडोर की छतरियाँ) स्थापत्य का एक अलग रूप हैं। ये खुले स्तंभों वाले भवन होते हैं, जो स्मृति और कला का संगम हैं।

निष्कर्ष

मारवाड़ की स्थापत्य कला का अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि यह "अभाव में प्रभाव" उत्पन्न करने की कला है। यहाँ के वास्तुकारों ने मरुस्थल को 'शत्रु' नहीं, बल्कि एक 'चुनौती' माना और उसका समाधान तकनीकी दक्षता से निकाला। आज जब हम 'ग्रीन बिल्डिंग' की बात करते हैं, मारवाड़ की सदियों पुरानी हवेलियाँ और टांके हमें सिखाते हैं कि कम ऊर्जा और स्थानीय सामग्री का उपयोग करके कैसे आरामदायक जीवन जिया जा सकता है। मेहरानगढ़ की बुलंदी, बावड़ियों की गहराई और हवेलियों की नक्काशी आज भी विश्व को विस्मित करती है। यह स्थापत्य कला मारवाड़ के लोगों के स्वाभिमान, सौंदर्यबोध और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का जीवंत दस्तावेज है। इस प्रकार, मारवाड़ की स्थापत्य कला केवल इतिहास का विषय नहीं है, बल्कि यह भविष्य के वास्तुकला विज्ञान के लिए एक प्रेरणा स्रोत है।

संदर्भ सूची

1. गहलोत, जगदीश सिंह. मारवाड़ राज्य का इतिहास. हिंदी साहित्य मंदिर, 1991.
2. मिश्र, अनुपम. आज भी खरे हैं तालाब. गांधी शांति प्रतिष्ठान, 1993.
3. मिश्र, अनुपम. राजस्थान की रजत बूंदें. गांधी शांति प्रतिष्ठान, 1995.
4. मिश्र, रतनलाल. राजस्थान के दुर्ग. प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, 2006.
5. शर्मा, गोपीनाथ. राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास. राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, 2003.
6. सोमानी, रामवल्लभ. राजस्थान की स्थापत्य कला. पंचशील प्रकाशन, 1998.
7. "मारवाड़ के आवास गृह." इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, ignca.gov.in/coilnet/rj201.htm.
8. "मारवाड़ के जलाशय." इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र (IGNCA), ignca.gov.in/coilnet/rj216.htm.

Email Id : purushottamkeshav@gmail.com

Mobile number : 9636960798

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 February 2026 Page No. : 282-286
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Inclusive Growth in India: Progress, Challenges, and Future Directions

Dr. Yogendra Kumar
Associate Professor,
Govt. Girls College Ajmer (Rajasthan)

ABSTRACT
Inclusive growth means both rapid economic expansion and a fair distribution of its benefits so that opportunities and outcomes improve across social groups and regions. Since the economic reforms of 1991, India has experienced strong GDP growth and sustained reductions in poverty, together with major advances in financial and digital inclusion. Yet many problems remain: employment creation has not kept pace with growth, large informal employment persists, regional and social inequalities remain deep, and public investments in health and education are comparatively low. This paper analyses India's performance on inclusive-growth indicators, reviews policy achievements and shortfalls, and proposes an integrated policy agenda emphasizing human capital, social protection, labour-intensive growth, regional targeting, gender equity, and green resilience. Empirical points draw on national surveys and international databases through 2023–2025.

KEYWORDS: Inclusive Growth, Social Equity, Poverty, Liberalization, Human Development, Sustainable Development,

INTRODUCTION

Inclusive growth is a development objective that combines two related goals: (a) high and sustained rates of economic growth and (b) broad-based distribution of the gains so that poverty, regional and social exclusion decline, and productive opportunities expand for the majority. For a large, diverse country such as India, inclusion matters because uneven growth can worsen poverty pockets, create social tensions, and undercut long-term economic potential. The analysis uses secondary sources (household surveys, government reports, international data) and organizes evidence across income/poverty, employment, human development (health and education), financial/digital inclusion, and regional disparities.

CONCEPTUAL APPROACH AND INDICATOR FRAMEWORK-

The conceptual basis is simple: inclusive growth requires expansion of both opportunities (jobs, education, credit, health) and capabilities (health, skills, social protection), plus institutions that enable the poor and excluded to participate in and share the benefits of growth. Key indicators used in this paper:

- Poverty headcount and changes over time (World Bank and national estimates).
- Income inequality (Gini and complementary measures).

- Labour force participation and employment quality (PLFS/WB).
- Human development indicators: literacy, school enrolment, infant/child mortality, life expectancy.
- Public spending on education and health (% of GDP).
- Financial/digital inclusion metrics: Jan Dhan accounts, UPI transaction volumes, Aadhaar/DBT coverage.
- Regional contrasts: state-level human development and output differentials.

This multi-indicator approach allows us to go beyond GDP to test whether growth has been broad-based and equity-sensitive.

OBJECTIVES OF THE STUDY

This study aims to:

1. Evaluate India's progress in achieving inclusive growth since the 1991 economic reforms.
2. Identify the major economic, social, and structural challenges hindering social equity.
3. Propose strategic policy recommendations to strengthen inclusive and sustainable growth.

RECENT PERFORMANCE: ACHIEVEMENTS AND EMPIRICAL EVIDENCE

- **Poverty reduction and income improvements-**India has seen a marked decline in poverty over the last decade. Recent technical work updating household consumption estimates indicates that hundreds of millions of people have moved out of extreme poverty between 2011–12 and 2022–23. Updated World Bank analysis shows a very large reduction in extreme poverty in India for the 2011–23 period.
- **Labour market trends-**Labour force participation and employment indicators turned more favourable in recent rounds of the Periodic Labour Force Survey (PLFS). Between 2017–18 and 2022–23, the reported labour force participation rate and female participation improved significantly, with increases recorded in both rural and urban areas. These changes suggest recent job creation and higher participation, though job quality and informality remain concerns
- **Financial inclusion and digital payments-**India has made exceptional progress in financial inclusion: the Pradhan Mantri Jan Dhan Yojana (PMJDY) has opened tens of crores of bank accounts, with strong female participation and a majority in rural areas. At the same time, the Unified Payments Interface (UPI) has grown into one of the world's largest real-time retail payment systems, processing tens of billions of transactions monthly in 2024–2025 — a rapid enabler of low-cost digital payments. These developments have materially lowered transaction costs, expanded digital access, and improved efficiency of subsidy transfers via DBT.

Social indicators and human capital-India's literacy and enrolment indicators have improved over decades, and selective states show strong human development outcomes. However, per-capita public spending on health remains low relative to peer countries, and public education spending has fluctuated; strengthening the quality of schooling and healthcare delivery is an ongoing policy priority. World Bank and government data show health and education spending as a modest share of GDP compared with several middle-income peers.

CHALLENGES

- **Jobless and insecure growth-**Despite higher GDP growth, employment creation — particularly formal, stable jobs with social protection — has lagged. Large shares of the workforce remain in informal activities with low productivity and limited social security. Where job creation has happened, a large portion remains low paid or part-time.
- **Agrarian distress and rural vulnerabilities-**Agriculture still support a large portion of the poor; low farm productivity, fragmentation of landholdings, price volatility, and

climate vulnerability keep earnings low and push distress migration. Social safety nets such as MGNREGA help but do not fully replace the need for structural transformation and rural non-farm employment.

- **Regional and social inequality-**Economic and human development indicators vary widely by state. States such as Kerala and Tamil Nadu rank high on health and education; Bihar and Uttar Pradesh lag. Social exclusion based on gender, caste, and tribal identity also limits access to opportunities.
- **Gaps in public spending and service quality-**India's public spending on health and education as percent of GDP has increased but remains lower than what many development economists recommend for rapid human capital accumulation. Beyond quantity, service quality and last-mile delivery are uneven. Corruption, administrative capacity limits, and implementation gaps blunt the impact of many schemes.
- **Environmental stress and climate risk-**Climate change and environmental degradation disproportionately affect the poor—floods, droughts, and soil degradation reduce agricultural incomes and increase vulnerability, making inclusive growth harder to achieve without climate-resilient policies.

SELECTED CASE EVIDENCE

- **Kerala versus Bihar: contrasting development models-**Kerala's long history of public investment in education and healthcare produced strong human development despite modest per-capita incomes. In contrast, Bihar's relative neglect of social sectors and weaker governance have kept human development indicators low even when economic growth has occurred. These contrasts illustrate the role of state policy choices and institutions in shaping inclusion.
- **MGNREGA's safety-net role-** MGNREGA has provided crucial rural employment, helped raise bargaining power and wages in rural labour markets, and reduced off-season distress migration for some households. Nonetheless, the program's average days of employment per household and administrative delays in wage payments suggest a need to improve operational performance and complement it with rural development that creates sustainable livelihoods. (See studies assessing migration and wage impacts.)
- **JAM (Jan-Dhan, Aadhaar, Mobile) and DBT-**The JAM architecture has reduced leakages in transfer programs and improved targeting; combining financial accounts with Aadhaar authentication and mobile access has allowed faster and more transparent transfers. However, challenges with biometric authentication failures, digital literacy, and access to devices persist in remote areas.

POLICY PRESCRIPTIONS: A UNIFIED AGENDA FOR DEEPER INCLUSION

- The evidence suggests that purely market-driven growth will not guarantee inclusion. A deliberate, multi-dimensional policy strategy is needed. The following recommendations form an integrated agenda.
- **Invest decisively in human capital-**Raise and reprioritize public spending to strengthen primary health care and school quality, focusing on early childhood development, nutrition, and teacher capability. Expand vocational and technical training linked to local demand and modernizing sectors. Strengthen measurement systems to track learning outcomes and health service delivery.
- **Build a universal social-protection architecture-**Consider portable social protection (coverage across jobs, including informal sector), a more universal minimum floor for basic services, and targeted top-ups for the most vulnerable. Streamline grievance redress and digital payment reliability to ensure timeliness of benefits.

- ❖ **Raise the quality and quantity of jobs-**Promote labour-intensive manufacturing and services through improved access to credit, infrastructure, and export markets for MSMEs. Strengthen labour laws and incentives that encourage formalization while protecting bargaining rights.
- ❖ **Target regional imbalances-**Adopt place-based policies (special development zones, infrastructure and skills investments) for lagging regions and districts, coupled with stronger local governance capacity. Improve fiscal transfers and ensure conditional funding for social services in weaker states.
- ❖ **Close the digital divide while protecting data rights-**Expand affordable broadband and device access in rural and marginalized areas, along with digital literacy programs. Ensure data protection and inclusive design of digital platforms so marginalized users can safely use JAM, UPI, and DBT systems.
- ❖ **Promote gender equity and social inclusion-**Remove structural barriers to female workforce participation (childcare, safe transport, workplace flexibility). Enforce anti-discrimination measures and invest in community-level programs to address caste and tribal exclusion.
- ❖ **Green and climate-resilient inclusion-**Mainstream climate adaptation into rural development, support climate-smart agriculture, and invest in renewable energy for rural livelihoods.

IMPLEMENTATION AND INSTITUTIONAL REFORM PRIORITIES

Policy design must be matched with strong institutions and monitoring:

- ❖ Strengthen local government (panchayats and municipalities) capacity to plan, implement and monitor programs.
- ❖ Improve inter-governmental fiscal coordination to direct funds to priority human capital investments in lagging areas.
- ❖ Modernize administrative systems (digital registries, grievance redress, open data) while protecting privacy and remedying exclusionary failures.
- ❖ Invest in rigorous evaluation (RCTs, administrative data, and household panels) to learn what works at scale.

CONCLUSION

India’s post-1991 growth has created fiscal space and technological tools (JAM, UPI, Aadhaar) which, if well-deployed, can speed inclusive outcomes. Empirical gains on poverty, financial inclusion, and digital adoption are substantial, but they coexist with structural challenges: jobless growth, informality, regional inequality, weak human capital investments, and climate vulnerability. To convert growth into durable and broad-based inclusion, India needs a sustained policy pivot toward human capital, social protection, labour-intensive job creation, regional targeting, gender equity, and climate resilience — all implemented through stronger local institutions and evidence-driven governance.

REFERENCES

- Aayog, N. I. T. I. (2021). National Multidimensional Poverty Index: Baseline Report. Government of India.
- Drèze, J., & Sen, A. (2013). An uncertain glory: India and its contradictions. Penguin Books.
- Ghani, E., Kerr, W. R., & O'Connell, S. D. (2013). Promoting entrepreneurship, growth, and job creation. In E. Ghani (Ed.), The service revolution in South Asia. Oxford University Press.
- Government of India. (2005). The National Rural Employment Guarantee Act (NREGA), 2005. Ministry of Law and Justice.

- Government of India. (2016). The Aadhaar (Targeted Delivery of Financial and Other Subsidies, Benefits and Services) Act, 2016. Ministry of Law and Justice.
- Ministry of Finance. (2023). Economic Survey 2022-23. Government of India.

- National Sample Survey Office (NSSO). (2019). Key indicators of household consumer expenditure in India, NSS 75th round. Ministry of Statistics and Programme Implementation, Government of India.
- Planning Commission. (2014). Report of the expert group to review the methodology for measurement of poverty. Government of India.
- Reserve Bank of India. (2023). Annual Report 2022-23.
- Sen, A. (1999). Development as freedom. Alfred A. Knopf.

Email-dr.yogendrakumar82@gmail.com

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२
ISSN : 2395-7115
बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
www.bohalsm.blogspot.com grsbohal@gmail.com 8708822674 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/1 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ० अरुण कुमार सिंह
प्रोफेसर
इतिहास विभाग डी ए वी पीजी कॉलेज आजमगढ़

for the paper titled,

भारतीय ज्ञान परंपरा में नाथ एवं अघोर दर्शन में चिकित्सा पद्धति का अध्ययन: पूर्वांचल के विशेष संदर्भ में

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 11-14

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/2

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

अंजना एम

शोधार्थी,

हिंदी विभाग, कार्यवट्टम कैंपस केरल विश्वविद्यालय, तिरुवनंतपुरम

for the paper titled,

दो हज़ार दस के बाद के महिला लेखकों की कहानियों में रचनात्मक लेखन और प्रवृत्तियाँ

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 15-18

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/3 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

Ravi Shekhar
Department of Zoology,
Dhanauri (P.G.) College, Dhanauri, Haridwar

Rakhi Baliyan
Department of Zoology,
Dhanauri (P.G.) College, Dhanauri, Haridwar

Kuldeep Singh Tandwal
Department of Education,
Harsh Vidya Mandir (P.G.) College, Raisi, Haridwar

for the paper titled,

The Influence of Language on Memory and Identity: Exploring Bilingualism in Diasporic Communities in Uttarakhand.

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 19-24

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/4 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

देशराज

असिस्टेंट प्रोफेसर,

हिन्दी विभाग युवराज दत्त महाविद्यालय लखीमपुर-खीरी

for the paper titled,

श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों मे राजनितिक चेतना

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 25-29

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/5 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

राजेन्द्र सिंह झाला

शोधकर्ता,

शोध केंद्रः-शिक्षा अध्ययनशाला, सम्राट विक्रमादित्य विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

डा० प्रियांशी पारेख

शोध निर्देशिका,

सहा0 प्राध्यापक, लोकमान्य तिलक शिक्षा महाविद्यालय उज्जैन (म.प्र.)

for the paper titled,

स्मार्ट क्लास की वर्तमान शिक्षण में उपयोगिता एवं महत्व

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 30-34

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/6 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

अतिशय वर्मा

विभाग - हिंदी (शोधार्थी),

डॉ. अशोक कुमार

शोध निर्देशक,

हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय धर्मशाला

for the paper titled,

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और हिंदी भाषा की उपयोगिता

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 35-39

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/7 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

अभय कुमार 'अमर'

शोधार्थी, हिन्दी विभाग,

भूपेन्द्र ना. मंडल विश्वविद्यालय लालूनगर, मधेपुरा, बिहार

for the paper titled,

संत कबीर के साहित्य में सन्निहित: आदर्श राष्ट्रीयता का दर्पण

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 40-45

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/8 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

रितु शर्मा
शोध छात्रा ,
प्रोफेसर इंद्र सिंह ठाकुर
शोध निदेशक,
दीन दयाल उपाध्याय केंद्र
डॉ अशोक कुमार
सह निदेशक,
(हिंदी विभाग) हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय,धर्मशाला

for the paper titled,

सामाजिक चेतना के संदर्भ में पंडित दीन दयाल उपाध्याय और अटल बिहारी बाजपेयी के साहित्य की प्रासंगिकता

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 46-50

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/9 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

मदन मोहन मिश्रा
शोधार्थी (शारीरिक शिक्षा),
सोना देवी विश्वविद्यालय घाटशिला,पूर्वी सिंहभूम

for the paper titled,

शारीरिक शिक्षा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एक नजर में

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 51-55

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/10 **https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808**

Certificate of Publication

is awarded to

अभिषेक बडगोत्रा

शोध छात्र ,

डॉ० विद्याधर सिंह

शोध निर्देशक,

सह आचार्य ,

संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय जम्मू-180001

for the paper titled,

आरण्यक ग्रन्थों में प्राप्त यज्ञ विधान एवं उसका मीमांसा दर्शन पर प्रभाव

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 56-58

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/11 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ॰ सुकन्या चल्ला

ए पी टी डब्लू आर एस गर्ल्स, करेडु, प्रकाशम ज़िला।

for the paper titled,

विद्यालयों में बढ़ता शैक्षणिक दबाव : कारण, प्रभाव एवं समाधान

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 59-62

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/12 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ रघुनंदन प्रसाद दीक्षित (प्रखर)
पूर्व सहायक अनुदेशक,
27, शांतिदाता सदन नेकपुर चौरासी, फतेहगढ़
जनपद-फर्रुखाबाद (उत्तर प्रदेश) पिन-209601

for the paper titled,

महाकवि तोषनिधि कन्नौजी भाषा के प्रथम कवि : एक अनुशीलन

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 63-65

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/13 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

ਪੁਸ਼ਵਿੰਦਰ ਕੌਰ

ਖੋਜਾਰਥੀ

ਗੁਰੂ ਕਾਸ਼ੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ ਤਲਵੰਡੀ ਸਾਬੋ

ਡਾ. ਗੁਰਪ੍ਰੀਤ ਕੌਰ

ਐਸੋਸੀਏਟ ਪ੍ਰੋਫੈਸਰ

ਗੁਰੂ ਕਾਸ਼ੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ ਤਲਵੰਡੀ ਸਾਬੋ

for the paper titled,

ਕੈਨੇਡੀਅਨ ਨਾਟਕਕਾਰਾਂ ਦੇ ਨਾਟਕਾਂ ਦੇ ਮਰਦ ਪਾਤਰਾਂ ਦਾ ਮਨੋਵਿਸ਼ਲੇਸ਼ਣਾਤਮਕ ਅਧਿਐਨ (ਕੁਲਵਿੰਦਰ ਖਹਿਰਾ ਅਤੇ ਸੁਰਜੀਤ ਕਲਸੀ ਦੇ ਨਾਟਕ ਦੇ ਸੰਦਰਭ ਵਿਚ)

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 66-71

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/14 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

PRIYA SHUKLA

Research Scholar,

MGKVP VARANASI

for the paper titled,

Traditional Knowledge and Geographical Indications: Protecting Heritage and Promoting Sustainability

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 72-76

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/15 **https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808**

Certificate of Publication

is awarded to

दीपिका शुक्ला

शोध छात्रा,

कानपुर विश्वविद्यालय हिंदी विभाग

for the paper titled,

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और पौराणिक आख्यान

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 77-82

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/16 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

ਜਸਪ੍ਰੀਤ ਕੌਰ

ਖੋਜਾਰਥੀ,

ਟਾਂਟੀਆ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਸ੍ਰੀ ਗੰਗਾਨਗਰ

for the paper titled,

ਸੁਰਜੀਤ ਪਾਤਰ ਦੀ ਕਵਿਤਾ ਵਿੱਚ ਪੰਜਾਬ ਸੰਕਟ ਦੀ ਪੇਸ਼ਕਾਰੀ

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 83-87

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/17 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

Rohit Hazra

Research Scholar,

Pondicherry University,

Dr. Priyanka Sharma

Co Author

Assistant professor, Pondicherry University

for the paper titled,

INFLUENCE OF MUGHAL'S EMPIRE IN KATHAK DANCE

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 88-97

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/18 **https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808**

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Devendra Kumar Sharma

Deputy Librarian,

Central University of Himachal Pradesh, Dharamshala, Dist-Kangra (HP), (India)

for the paper titled,

Use of Artificial Intelligence in Electronic Resources Management

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 98-107

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/19 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Manish Rathore,

Principal,

Moti Lal Dave T.T College Banswara

for the paper titled,

Role of Education Empowerment in Promoting Social Stability

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 108-111

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/20

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

डां.श्रीकला .एस .आर

प्रोफसर,

हिन्दी विभाग, यूनिवार्सिटी कालेज तिरुवनन्तपुरम

for the paper titled,

उत्तराधुनिक हिंदी कहानियों चित्रित सहजीवन

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 112-115

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/21 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

दुलाल गोप,
शोधार्थी,
स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, बिनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविद्यालय,धनबाद।

for the paper titled,

छोटानागपुर के उरांव जनजाति की आर्थिक स्थिति का एक ऐतिहासिक अध्ययन

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 116-120

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/22 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

अल्पना गौतम

शोधार्थी,

प्रो० (डॉ०) सुषमा गौड़ियाल

शोध निर्देशिका,

हिन्दी विभाग बरेली कॉलेज, बरेली,

महात्मा ज्योतिबा फुले रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय बरेली।

for the paper titled,

नीला आकाश में दलित सामाजिक स्थिति

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 121-123

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/23 **https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808**

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. हृद्या. एम. पी
सहायक अध्यापिका,
सामूतिरि गुरुवायूरप्पन क़ॉलेज कालिकट, केरल

for the paper titled,

हिंदी की चमक-दमक विज्ञापन में

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 124-126

9 772395 711007

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/24 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

श्री सायसिंग अवास्या
सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान,
वीर बलिदानी खाज़्या नायक शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सेंधवा, जिला-बड़वानी (म. प्र.)

for the paper titled,

भारतीय ज्ञान परंपरा में वसुधैव कुटुंबकम् की अवधारणा

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 127-130

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/25 **https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808**

Certificate of Publication

is awarded to

RAUT NILESHKUMAR KAILASHBHAI

Research Scholar,

Department of Commerce

ORCID ID: 0009-0005-5281-7164

Veer Narmad South Gujarat University Surat, Gujarat, India

for the paper titled,

A Study on Consumer Behavior Towards Quick Commerce Platforms in Surat City

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 131-138

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/26 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ० विक्रम सिंह राठौर

असिस्टेंट प्रोफेसर,

नवीन नाथ

शोध-छात्र

हिन्दी विभाग,

एम०बी० राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय हल्द्वानी (नैनीताल) उत्तराखण्ड-(263139)

for the paper titled,

श्रीलाल शुक्ल के कथा साहित्य में शैक्षिक स्वार्थ भावना

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 139-143

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/27 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

श्रीमती किरण कुमारी

शोधार्थी

न्दिी विभाग, पंडित दीनदयाल उपाध्याय शेखावटी विश्वविद्यालय, सीकर (राज.)।

डॉ. हंसराज चौहान

शोध निर्देशक

सह-आचार्य, हिन्दी विभाग, राजकीय कन्या महाविद्यालय, होंद, सीकर (राज.)।

for the paper titled,

शेखावटी नाथ संत श्री बैजनाथकृत गीता-मर्म एवं कर्मयोग की व्याख्या : एक समीक्षात्मक अध्ययन

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 144-147

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/28 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. विष्णु कुमार

सहायक प्रोफेसर,

शिक्षा विभाग जैनविश्वभारती संस्थान, लाडनूं

for the paper titled,

उच्च माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों में यौगिक एवं ध्यान क्रियाओं का संवेगात्मक विकास पर प्रभाव : एक अध्ययन

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 148-152

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/29 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

गणेश गिरी

शोधार्थी,

डॉ. धीरज सिंह खाती

शोध निर्देशक (असिस्टेंट प्रोफेसर),

सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय अल्मोड़ा

for the paper titled,

महिला नेतृत्व और राजनीति में भागीदारी

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 153-157

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/30 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

ईश्वरी.ए
अस्सिटेंट प्रोफेसर - हिंदी,
रथिनम कॉलेज ऑफ़ आर्ट्स एंड साइंस
पोलाची मेन रेड, कपिम नगर, एचनारी, कोयंबटूर - 641021.

for the paper titled,

समकालीन सांस्कृतिक व्यवहार में भारतीय सौंदर्य मूल्यों की प्रासंगिकता

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 158-162

9 772395 711007

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/31 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

पवन कान्त

शोध छात्र,

राजकीय महाविद्यालय पिहानी, हरदोई

संबद्ध हिंदी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्विधालय, लखनऊ (उ. प्र.)

डॉ. सुरेश कुमार

शोध-निर्देशक,

एसोसिएट प्रोफेसर, राजकीय महाविद्यालय, पिहानी, हरदोई (वर्तमान में)

for the paper titled,

दलित आलोचना का बदलता परिदृश्य

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 163-167

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/32 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

जसवीर

शोधार्थी,

हिंदी विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक ,हरियाणा

for the paper titled,

वर्तमान संदर्भों में हिंदी साहित्य में LGBTQ+ विमर्श

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 168-171

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/33 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. ममता स्नेही
सहायक आचार्या,
विश्वविद्यालय स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग,
ल.ना.मि.विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार ।

for the paper titled,

ज्योतिष शास्त्र को आर्यभट्ट का योगदान : एक विश्लेषण

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 172-175

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/34 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

हिमांशु नागदा
शोधार्थी (हिन्दी),
तुलनात्मक भाषा एवं संस्कृति अध्ययनशाला
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर, मध्यप्रदेश 452001
डॉ विजयलक्ष्मी पोद्दार
प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (हिन्दी),
एम.के.एच.एच गुजराती गर्ल्स कॉलेज, इंदौर, मध्यप्रदेश

for the paper titled,

मनीषा कुलश्रेष्ठ के कथा साहित्य में व्यक्त मूल्य विघटन

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 176-179

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/35 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. राजेश कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर,
हिंदी विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, रोहतक

for the paper titled,

भारतीय साहित्य के संवर्द्धन एवं प्रसार में अनुवाद की भूमिका

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 180-185

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/36 **https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808**

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Lathif Ahamed B

HOD & Assistant Professor,

Department of Hindi, St. Francis College Bengaluru – 560034

for the paper titled,

शिक्षण को प्रभावित करने वाले कारक और आज की शिक्षण पद्धति

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 186-190

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/37 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

लक्ष्मी कुमारी
शोधार्थी,
दिल्ली विश्वविद्यालय

for the paper titled,

सांस्कृतिक एवं सामाजिक चेतना के प्रसार में अनुवाद की भूमिका

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 191-196

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/38 **https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808**

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ० राजीव कुमार सक्सेना
असोसिएट प्रो०, समाजशास्त्र विभाग
राजकीय महाविद्यालय बनबसा (चम्पावत)

for the paper titled,

महिला उद्यमिता और विकास का अध्ययन

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 197-200

9 772395 711007

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/39 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ॰ नकुल पाण्डेय
सहायक प्राध्यापक,
स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग,
विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग, झारखण्ड ।

for the paper titled,

कवि त्रिविक्रमभट्ट की भाषा शैली

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 201-204

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/40 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

परम सिंह बरडे

सहायक प्राध्यापक (अर्थशास्त्र),

वीर बलिदानी खाज्या नायक शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय सेंधवा, जिला बड़वानी (म.प्र.)

for the paper titled,

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ग्रामीण अर्थव्यवस्था के स्वरूप का अध्ययन

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 205-209

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/41 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

Ankita Verma

Research scholar,

Department of Teacher Education,

Nehru Gram Bharti (Deemed to be) University, Prayagraj

for the paper titled,

Parenting Style As A Predictor Of Child Behaviour

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 210-213

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/42 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. हेमचन्द्र दुबे
असिस्टेंट प्रोफेसर हिन्दी,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय द्वाराहाट (अल्मोड़ा)

for the paper titled,

आंचलिक संस्कृति और वाचिक परंपरा : उत्तराखण्ड के कुमाऊँ क्षेत्र के सम्बन्ध में

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 214-216

9 772395 711007

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/43 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

जीतेन्द्र कुमार मीना
ज्योति विद्यापीठ , जयपुर

for the paper titled,

"ऋणम् कृत्वा घृतम् पिबेत् से जीवन्मुक्ति तक: डिजिटल युग में अस्तित्वगत संकट और भारतीय दर्शन का समाधान"

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 217-220

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/44 **https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808**

Certificate of Publication

is awarded to

मधु कुमारी

शोधार्थी,

हिन्दी-विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

for the paper titled,

रामवृक्ष बेनीपुरी के रेखाचित्र 'लाल तारा' का 'चयन' की दृष्टि से शैलीवैज्ञानिक विश्लेषण

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 221-224

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/45 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. ज्योति सिंह
(गृह विज्ञान)
आगरा (उ.प्र.)

for the paper titled,

"ऑनलाइन शॉपिंग का पारावारिक बजट पर प्रभाव"
(एक विश्लेषणात्मक अध्ययन)

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 225-230

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/46 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. तृप्ति तिवारी
सहायक प्राध्यापक
(गृह विज्ञान विभाग),
जननायक चन्द्रशेखर विश्वविद्यालय, बलिया (उ.प्र.)

for the paper titled,

“ऑनलाइन शिक्षा और बाल विकास - एक विश्लेषणात्मक अध्ययन"

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 231-236

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/47 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ० प्रमोद कुमार यादव

असिस्टेंट प्रोफेसर

राजनीति विज्ञान विभाग,

एम०एल०के० (पी०जी०) कॉलेज, बलरामपुर (उ०प्र०)

for the paper titled,

भारत में लोकतन्त्र और चुनौतियाँ

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 237-240

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/48 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

मुन्ना राम महतो
शोधार्थी,
डॉ. शिल्पी राज
सहायक प्राध्यापिका,
शिक्षा विभाग,
झारखण्ड केन्द्रीय विश्वविद्यालय, राँची.

for the paper titled,

'झारखण्ड के प्राथमिक विद्यालयों में मातृभाषा आधारित शिक्षण का विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं संज्ञानात्मक विकास पर प्रभावात्मक अध्ययन'

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 241-245

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/49 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

SHRABANI MANNA

RESEARCH SCHOLAR

OF BINOD BIHARI MAHTO KOYLANCHAL UNIVERSITY, DHANBAD

for the paper titled,

बृहदारण्यकोपनिषदि प्रथमद्वितीयोऽध्याययोः दार्शनिकचिन्तनम् - एकं सामान्यम् अध्ययनम्

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 246-250

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/50 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

Anupa Haloi

Guest faculty,

Dispur college, Guwahati

for the paper titled,

**A Critical analysis of Nishkarma karma and
Arne Naess ´s EcosophyT**

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 251-253

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/51 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ॰ छबिलाल
सहायक आचार्य राजनीति विज्ञान विभाग,
जननायक चन्द्रशेखर विश्वविद्यालय, बलिया ।

for the paper titled,

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी के प्रथम कार्यकाल के दौरान भारत-नेपाल सम्बन्ध : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 254-261

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/52 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

विष्णु सिंह जाट
शोधार्थी (हिन्दी),
तुलनात्मक भाषा एवं संस्कृति अध्ययनशाला
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इंदौर

for the paper titled,

पारिभाषिक शब्दावली : निर्माण प्रक्रिया व समस्याएँ

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 262-266

9 772395 711007

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/53 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

Deepika Meena

Research Scholar,

Department of Political Science, University of Rajasthan, Jaipur

for the paper titled,

Role of Non-Government Organisations and Self-Help Groups in Socio-Economic Development of Tribal areas in Rajasthan

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 267-272

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/54 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. मो. हेदायतुल्लाह
राजनीति विज्ञान
ल० ना० मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

for the paper titled,

गाँधीवादी दर्शन और 21वीं सदी का युद्धोन्माद

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 273-277

9 772395 711007

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/55 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

पुरुषोत्तम
शोधार्थी,
दृश्य कला विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

for the paper titled,

मरुस्थलीय पर्यावरण के संदर्भ में मारवाड़ की स्थापत्य कला

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 278-281

9 772395 711007

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No. February 2026/56 https://doi.org/10.5281/zenodo.18621808

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Yogendra Kumar

Associate Professor,

Govt. Girls College Ajmer (Rajasthan)

for the paper titled,

Inclusive Growth in India: Progress, Challenges, and Future Directions

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

February 2026, Vol. 23, Issue-2(part-one), Page No. 282-286

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007